☐ उपमिति-भव-प्रपंच कथा द्वितीय खण्ड

☐ सम्पादक : महोपाध्याय विनयसागर

☐ प्रकाशक : देवेन्द्रराज मेहता
सचिव, राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर

सज्जन नाथ मोदी, सुमेरसिंह बोथरा
मन्त्री, संयुक्तमन्त्री, सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

एस० एम० बाफना
मैनेजिंग ट्रस्टी, सेठ मोतीशा रिलीजियस एण्ड चेरिटेबल ट्रस्ट,
भायखला–बम्बई

☐ प्रकाशन : वर्ष १९८५

☐ मूल्य : ६०.०० साठ रुपया : दोनों खण्डों का १५० ०० एक सौ पचास रुपया

☐ मुद्रक : पॉपुलर प्रिन्टर्स,
जयपुर–२

☐ प्राप्ति स्थान :

१. राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान,
३८२६, यति श्यामलालजी का उपाश्रय,
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,
जयपुर (राज०)–३०२ ००३

२. सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल,
बापू बाजार, जयपुर (राज०)–३०२ ००३

३. सेठ मोतीशा रिलीजियस एण्ड चेरिटेबल ट्रस्ट,
१८०, सेठ मोतीशा लेन,
भायखला–बम्बई–४०००२७

प्रकाशकीय

प्राकृत भारती पुष्प ३१-३२ के रूप मे **उपमिति-भव-प्रपञ्च कथा के प्रथम हिन्दी अनुवाद** को राजस्थान प्राकृत भारती सस्थान, जयपुर, सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, और सेठ मोतीशाह रिलीजियन्स एण्ड चेरीटेबल ट्रस्ट, भायखला-बम्बई द्वारा सयुक्त प्रकाशन के रूप मे पाठको के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमे हार्दिक हर्ष है।

ऐतिहासिक एव साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उद्भट विद्वान् श्री सिद्धर्षि गणि द्वारा लिखित सस्कृत भाषा का यह ग्रन्थ १०वी शताब्दी का है। रूपक के रूप मे इतना बडा ग्रन्थ सम्भवत पूर्व मे या पश्चात् काल मे नही लिखा गया। इसकी रचना शैली भी वैशिष्ट्यपूर्ण है। धर्म जो सीमित दायरे से विस्तृत मानव-धर्म के स्तर का है, उसके विभिन्न पहलुओं को रूपक/उपमाओ के माध्यम से मनोवैज्ञानिक एव रुचिकर रूप मे प्रस्तुत किया गया है, जो मूल लेखक के बहु आयामी व्यक्तित्व एव अनुभवो के कारण ही सम्भव हुआ है।

सिद्धर्षि गणि प्रारम्भ मे गृहस्थ थे। उनका प्रारम्भिक जीवन अत्यधिक विषयासक्ति का था। माता और पत्नी का उलाहना सुनकर, आक्रोश मे उन्होने घर छोड दिया। अपने समय के प्रमुख विद्वान् जैन श्रमण दुर्गस्वामी के प्रतिबोध से जैन श्रमण बने और धर्म तथा दर्शन का व्यापक एव तुलनात्मक अध्ययन किया। बाद मे बुद्धधर्म की ओर आकर्षित हुए तथा बुद्ध श्रमण भी बन गये। पर, अपने मूल गुरु को दिये गये वचन के अनुसार वापस उनके पास आये और पुनः प्रतिबोध प्राप्त कर जैन श्रमण बने।

इस प्रकार जीवन के विभिन्न पक्षो को सघन रूप से जीने और त्यागने वाले सिद्धर्षि गणि जैसे सवेदनशील विद्वान् व्यक्ति ही ऐसे अद्भुत ग्रन्थ की रचना कर सकते थे। भारतीय दर्शन एव जैन साहित्य के प्रमुख/मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० **हर्मन जैकोबी** (जर्मन) को इस ग्रन्थ ने इतना अधिक प्रभावित किया कि उन्होने इस ग्रन्थ को भारतीय सस्कृत साहित्य का एक मौलिक एवं अद्वितीय ग्रन्थ बताया तथा मूल ग्रन्थ को सम्पादित कर प्रकाशित करवाया। बाद मे जर्मन भापा मे इसका अनुवाद भी हुआ। ६० वर्ष पूर्व **श्री मोतीचन्द गिरधरलाल कापड़िया** द्वारा अनुदित **गुजराती**

अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। हिन्दी के प्रमुख विद्वान् **श्री नाथूराम प्रेमी** ने भी केवल प्रथम प्रस्ताव का हिन्दी मे अनुवाद कर प्रकाशित किया। यह काम उनके देहावसान के कारण आगे नही बढ पाया।

पुस्तक के २ से ८ प्रस्तावो का अनुवाद **श्री लालचन्द जी जैन** ने किया तथा हमारे अनुरोध को स्वीकार कर जैन साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् **महोपाध्याय श्री विनयसागर जी** ने प्रथम प्रस्ताव का अनुवाद, समग्र अनुवाद का मूलानुसारी अविकल सशोधन तथा सम्पादन का वृहत्भार भी वहन कर इस कार्य को सफलता के साथ सम्पन्न किया। प्रूफ सशोधन मे **श्री ओंकारलाल जी मेनारिया** ने पूर्ण सहयोग दिया। एतदर्थ तीनो संस्थाये तीनो विद्वानो की आभारी है।

पुस्तक का मुद्रण कार्य पॉपुलर प्रिण्टर्स, जयपुर द्वारा किया गया, जिसके लिये भी तीनों सस्थाये सचालको की आभारी है।

आशीर्वचन प्रदान कर आचार्यप्रवर श्री **हस्तिमलजी** महाराज एव आचार्यप्रवर श्री **पद्मसागरसूरिजी** महाराज ने तथा सिद्धहस्त लेखक मुनिपु गव श्री **देवेन्द्रमुनिजी** महाराज 'शास्त्री' ने विस्तृत भूमिका लिखकर हमे कृतार्थ किया है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज के तो हम अत्यन्त ऋणी हैं कि जिनकी सतत् प्रेरणा से ही इसका हिन्दी अनुवाद सम्भव हो सका।

यदि विषय-प्रतिपादन, सैद्धान्तिक ऊहापोह आदि मे कही मान्यता अथवा परम्परा भेद आता हो तो उससे प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नही है।

हिन्दी भाषा-भाषी अतिविशाल समाज के कर-कमलो मे इस ग्रन्थ का सर्वाङ्ग पूर्ण हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है। आशा है, पाठकगण इसके अध्ययन से आनन्द और ज्ञान दोनो प्राप्त करेंगे।

एस. एम. बाफना
मैनेजिंग ट्रस्टी

सेठ मोतीशा
रिलीजियस एण्ड
चेरिटेबल ट्रस्ट
भायखला—बम्बई

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव

राजस्थान प्राकृत भारती सस्थान,
जयपुर

सज्जननाथ मोदी
सुमेरसिंह बोथरा
मन्त्री, सयुक्तमन्त्री

सम्यग् ज्ञान
प्रचारक मण्डल,
जयपुर

विषयानुक्रम

□

□

उपमिति-भव-प्रपंच कथा

५. पञ्चम प्रस्ताव

प्रस्ताव ५.

पात्र-परिचय

स्थल	मुख्य पात्र	परिचय	सामान्य पात्र	परिचय
वर्धमान नगर (बहिरंग)	**धवल**	वर्धमान नगर का राजा		
	कमल सुन्दरी	राजा धवल की रानी		
	विमल	राजा धवल का पुत्र		
	सोमदेव	सेठ, वामदेव का पिता		
	कनकसुन्दरी	सैठ सोमदेव की पत्नी, वामदेव की माता		
	वामदेव	संसारी जीव, कथानायक, सोम-देव-कनकसुन्दरी का पुत्र		
	स्तेय	वामदेव का मित्र (अन्तरग)		
	बहुलिका	वामदेव की सखी (अन्तरग)		
(क्रीड़ानन्द भवन)	**रत्नचूड**	विद्याधर, विमल का मित्र, मेघनाद-रत्नशिखा का पुत्र, मणिप्रभ का दौहित्र	वैताढ्य पर्वत	गगन शेखर नगर
			मणिप्रभ	गगन शेखर नगर का राजा, विद्याधर
	अचल	विद्याधर, रत्नचूड का प्रतिद्वन्दी, मणिशिखा-अमितप्रभ का पुत्र	**कनकशिखा**	विद्याधर मणि-प्रभ की रानी
			रत्नशेखर	विद्याधर मणि-प्रभ का पुत्र

	चपल	अचल का भाई, रत्नचूड का विरोधी	**रत्नशिखा**	मणिप्रभ की पुत्री, मेघनाद की पत्नी,
	चूतमंजरी	विद्याधर रत्नचूड की पत्नी, मणिप्रभ की पौत्री, रत्नशेखर की पुत्री	**मणिशिखा**	मणिप्रभ की पुत्री, अमितप्रभ की पत्नी

वंशवृक्ष

मणिप्रभ-कनकशिखा

- रत्नशेखर (रतिकान्ता)
  - चूतमंजरी पुत्री
- रत्नशिखा (मेघनाद)
  - रत्नचूड
- मणिशिखा (अमितप्रभ)
  - अचल
  - चपल
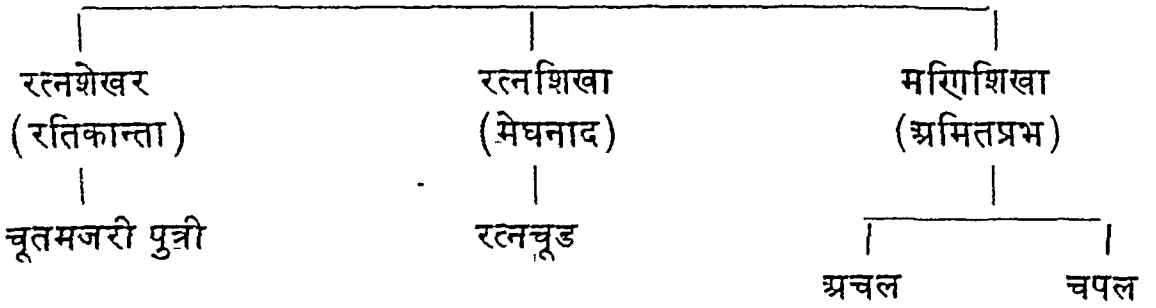
	चन्दन	सिद्धि-पुत्र, रत्नशेखर का मित्र	**मुखर**	जासूस, रत्नचूड का चर
	बुधाचार्य	परोपकारी आचार्य		

बठर गुरु कथा

भव ग्राम स्वरूप (शिव मन्दिर)	**सारगुरु**	शैवाचार्य	चोर आदि	
	बठरगुरु	तस्करो द्वारा आरोपित शैवाचार्य सारगुरु का नाम	**महेश्वर**	शिव भक्त

बुध चरित्र के पात्र

धरातल नगर (अन्तरग)	**शुभविपाक**	धरातल नगर का राजा, बुधाचार्य का पिता
	निजसाधुता	राजा शुभविपाक की रानी, बुधाचार्य की माता

	बुध कुमार	शुभविपाक-निज-साधुता का पुत्र, बुधाचार्य की पूर्व स्थिति		
	अशुभविपाक	राजा शुभविपाक का छोटा भाई		
	परिणति	अशुभविपाक की रानी		
	मन्द कुमार	अशुभविपाक-परिणति का पुत्र		
	धिषणा	विमलमानस नगर के शुभाभिप्राय राजा की पुत्री, बुध की पत्नी		
	विचार कुमार	बुध और धिषणा का पुत्र	**मोहराज सैन्य**	दुष्टाभिसन्धि आदि
	घ्राण	नासिका प्रदेश मे स्थित, मन्द का मित्र	**चारित्र-धर्मराज-सैन्य**	सद्बोध मत्री, सम्यग्दर्शन सेनापति आदि
	भुजगता	घ्राण की परिचारिका		
	मार्गानुसारिता	विचार की मौसी	**लीलावती**	देवराज की पत्नी, मदकुमार की बहिन
	सत्य	चारित्रधर्मराज का दूत		
	संयम	चारित्रधर्मराज का राज्यपाल, मोहराज द्वारा कदर्थित	**कमल**	धवलराज का पुत्र
विशदमानस नगर (अन्तरग)	**शुभाभिसन्धि**	विशदमानस नगर का राजा		
	शुद्धता	शुभाभिसन्धि की रानी		
	पापभीरुता	शुभाभिसन्धि की रानी		
	ऋजुता	रानी शुद्धता की पुत्री, बहुलिका की शत्रु		
	अचोरता	रानी पापभीरुता की पुत्री, स्तेय की शत्रु		
	सरल सेठ	भद्र प्रकृति का सेठ	**बन्धुल**	काचनपुर सरल सेठ का मित्र
	बन्धुमती	सरल सेठ की पत्नी		

१. माया और स्तेय से परिचय

[ससारी जीव अपनी कथा आगे बढाते हुए सदागम को कह रहा है, भव्यपुरुष सुन रहा है तथा प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसकेता पास ही बैठी है। आत्मकथा क्रमशः प्रगति कर रही है :—]*

विमल कुमार

बाह्य प्रदेश में ससार प्रसिद्ध समस्त सौन्दर्यो का मन्दिर स्वरूप वर्धमान नामक एक नगर था। इस नगर के पुरुष पूर्वाभाषी (आतिथ्य सत्कार करने वाले), पवित्र, प्राज्ञ, उदार, जाति-वत्सल और जैन-धर्मपरायण थे। इस नगर की स्त्रियाँ भी अत्यन्त विनयी, शुद्ध शीलगुण विभूषित, सुन्दर अवयवो वाली, योग्य लज्जा मर्यादा वाली और धार्मिक वृत्ति वाली थी। [१–३]

उस नगर का राजा धवल था। वह अभिमानोद्धत शत्रु रूपी हाथियो के कुम्भ-स्थल का भेदन करने वाला, निष्कपट तथा सत्पराक्रम सम्पन्न था। वह अपने बन्धु-वर्ग के लिये कुमुद-विकासी चन्द्र जैसा शीतल था और शत्रुओ के लिये तम-विनाशी सूर्य जैसा प्रखर एव प्रचण्ड रूपधारक था। इस धवल राजा की समस्त रानियो मे ध्वजा के समान श्रेष्ठ सौन्दर्य और शील गुण सम्पन्न कमल-सुन्दरी नामक पटरानी थी। उस पटरानी के गर्भ से सद्‌गुणो का मन्दिर विमल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस विमल की यह विशेषता थी कि जब यह छोटा था तब भी वालको जैसी व्यर्थ चेष्टाये नही करता था परन्तु पूर्ण विकसित मनुष्य की तरह बड़प्पन एव बुद्धिमत्ता के अनेक लक्षण प्रकट करता था। [४–८]

वामदेव का जन्म

इसी वर्धमान नगर मे सोमदेव नामक अतिधनवान सेठ रहता था। वह गुणो का आश्रय स्थान सर्वजनमान्य एव ख्यातिप्राप्त था। वह धन मे कुबेर, रूप मे कामदेव और बुद्धि मे बृहस्पति को भी मात दे सके, ऐसा था। वह अत्यन्त धैर्यवान था और उसमे किसी प्रकार का घमण्ड नही था। सोमदेव के अनुरूप ही गुणवती

---

* पृष्ठ ४६९

कनकसुन्दरी नामक उसकी पत्नी थी, जो शीलगुण सम्पन्न, लावण्यामृत से पूर्ण और अपने पति के प्रति अटूट भक्ति वाली थी। [६-११]

हे अगृहीतसकेता! मेरी स्त्री भवितव्यता ने मुझे जो गोली दी थी उसके प्रभाव से मैं अपने अन्तरंग मित्र पुण्योदय के साथ कनकसुन्दरी की कुक्षि मे पहुँच गया। गर्भकाल पूर्ण होने पर जैसे रगमंच पर नट प्रकट होता है वैसे ही मैं योनि से वाहर आया। मेरी माता यह जानकर अतीव प्रसन्न हुई कि उसने एक निष्पाप पवित्र सुन्दर वालक को जन्म दिया है, इस भावना से माता ने मुझे देखा।* मेरे साथ पुण्योदय का भी जन्म हुआ था, पर मेरी माता उसे नही देख पायी, क्योकि अन्तरग व्यक्ति साधारण लोगो की भाति दिखाई नही देते। परिचारको ने मेरे पिता को जब यह सुसवाद सुनाया तव उन्होने पुत्र-जन्म-महोत्सव किया, याचको को प्रचुर दान दिया, गुरुजनो की पूजा भक्ति की और स्वजन सम्बन्धी आनन्द के वाजे वजा-बजाकर नाचे। जब मैं बारह दिन का हुआ तब मेरे पिता ने वड़े महोत्सव के साथ अत्यधिक सन्तुष्टिपूर्वक मेरा नाम वामदेव रखा। [१२-१८]

माया और स्तेय का परिचय

अनेक प्रकार के लाड-प्यार और सुखोपभोगो का अनुभव करता हुआ मै क्रमश वडा होने लगा। साथ ही मेरी चेतना भी वृद्धि को प्राप्त होती गई। हे भद्रे! जब मै कुछ समझदार हुआ तब मैंने दो काले रग के पुरुष और एक कमर झुकी हुई विकृताकृति स्त्री को देखा। मै सोच रहा था कि ये तीनो कौन है और मेरे पास किस प्रयोजन से आये है, तभी उनमे से एक पुरुष मुझ से बाहे भीचकर प्रेम से मिला और मेरे पाँवो मे पडा।

फिर वह वोला—अरे मित्र! तू मुझे पहचानता है या भूल गया?

मैंने कहा—भाई! मैंने तो नही पहचाना, आपके साथ का कोई सम्बन्ध मुझे याद नही आता।

मेरा उत्तर सुनकर वह काला मनुष्य शोकातुर हो गया।

मैं (वामदेव)—भाई! आप इतने शोकातुर और व्यग्र क्यो हो गये?

मनुष्य—मेरा घनिष्ठ परिचय होते हुए भी तू मुझे भूल गया, यही मेरे शोक और व्यग्रता का कारण है।

मैं (वामदेव)—अरे भाई सुलोचन! तूने पहले मुझे कव देखा है? यह तो वताओ।

---

* पृष्ठ ४७०.

मनुष्य ! मैं वताता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। तुझे याद होगा कि पहले तू असंव्यवहार नगर मे रहता था। उस समय तेरे पास मेरे जैसे अनेक मित्र थे, पर मैं उस समय तेरा मित्र नही बन पाया था। इसके वाद तू एक समय भ्रमण की कामना से इस नगर से बाहर निकल गया। फिर तू एकाक्षनिवास नगर और विकलाक्षपुर मे वहुत वार घूमा। घूमते-घूमते तू पचाक्षपशुसंस्थान नगर मे आ पहुचा। इस नगर में सज्ञि संज्ञक (संज्ञा वाले) गर्भज कुलपुत्र रहते हैं। अनेक स्थानों पर घूम फिर कर तू भी उनकी टोली मे चला आया। जब तू गर्भज सज्ञी पचाक्ष-पशु कुल-पुत्र में उत्पन्न हुआ तब मैं तेरा मित्र बना, पर मै छिपकर रहता था इसलिये तू मुझे नही पहचान सका। फिर तो तेरा इधर-उधर घूमने (भ्रमण करने) का स्वभाव ही पड गया। जिससे तू अपनी स्त्री भवितव्यता के साथ अनन्त स्थानो मे अनेक वार भ्रमण करता रहा। तुझे याद होगा कि एक वार तू कुतूहल से घूमते हुए तेरी स्त्री के साथ वाह्य नगर सिद्धार्थपुर गया था। उस समय तू नरवाहन राजा के राजमहल मे रिपुदारण के प्रसिद्ध नाम से कुछ दिन रहा था।* हे बापू ! तेरा असली नाम तो संसारी जीव है किन्तु भिन्न-भिन्न स्थानो मे निवास करते-करते बार-वार तेरा नाम परिवर्तित होता रहता है। हे सुलोचन मित्र ! उस समय तू मुझ से भली प्रकार परिचित हुआ था। उस समय तू मुझे मृपावाद के नाम से जानता था। तूने मेरे साथ वहुत आनन्द किया था, अनेक प्रकार के भोग भोगे थे और मुझे भली प्रकार प्रसन्न किया था। उस जन्म में तुझे मेरे ज्ञान और कौशल के प्रति अतिशय प्रेम था। एक वार तूने मुझे प्रसन्नतापूर्वक पूछा था कि, मित्र ! आनन्द-दायिनी यह कला-कुशलता तुझे किसके प्रसाद से प्राप्त हुई है ? उत्तर मे मैंने कहा था कि मूढता और रागकेसरी की माया नामक पुत्री है, उसे मैंने बडी बहिन बना रखा है। उसी माया के प्रसाद से मुझे यह कुशलता प्राप्त हुई है। वह सर्वदा मेरे साथ ही रहती है और वड़ी वहिन होने से माता जैसा प्रेम रखती है। यह छोटे वच्चे भी जानते हैं कि जहाँ-जहाँ मृषावाद रहता है उसके साथ माया तो रहती ही है। उस समय तूने मुझे अपनी वहिन दिखाने के लिये कहा था। उस समय मैंने तेरी माँग को स्वीकार किया था। बापू ! तुम्हारी उसी वात को याद कर आज मेरी वहिन को साथ लेकर उसकी पहचान कराने आया हूँ। बापू ! रिपुदारण के जन्म में तेरी मेरे प्रति मित्रता, स्नेह और आकर्षण इतना अधिक था कि उसका जितना वर्णन करू वह थोडा है। पर, अभी मैं तेरे पास खडा हूँ तो भी तुम मुझे नही पहचानते हो, इससे अधिक शोक की बात क्या हो सकती है ? मैं सचमुच मे भाग्य-हीन हूँ कि तेरे जैसा परम इष्ट मित्र मुझे भूल गया और पहले के स्नेह को आज याद भी नहीं करता। अब में कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ? इस कारण अभी मेरी ऐसी चिन्ताजनक और दु खदायक स्थिति वन गई है। (१६-४५)

---

* पृष्ठ ४७१

मै (वामदेव)—भाई ! वास्तव मे मुझे अभी यह बात याद नही आ रही है, पर मेरे हृदय मे ऐसे भाव आ रहे हैं मानो तुम्हारे साथ लम्बे समय से परिचय रहा हो । भाई मृषावाद ! जब से मैंने तुम्हे देखा है तब से मेरी आँखे हिम जैसी शीतल हो गई है और मेरे मन मे आनन्द ही आनन्द छा गया है । [४६-४७]

किसी प्राणी को देखने से पूर्व-जन्म मे घटित घटना का स्मरण (जाति-स्मरण) हो जाता है । जैसे इस जन्म मे भी हम जब अपने किसी प्रिय स्नेही सम्बन्धी को देखते है तब हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, पर जब किसी अप्रिय व्यक्ति को देखते है तब मन खिन्न हो जाता है । [४८]

अत , हे भाई ! तुझ इस सम्बन्ध मे किंचित् भी शोक नही करना चाहिये । मित्र ! तू मेरे प्राण के समान है । अब तुझे जो प्रयोजन (कार्य) हो वह प्रसन्नता से कह । [४६]

मृषावाद—भाई वामदेव ! मुझे यही कहना है कि मेरी यह बहिन जो मेरे साथ मे आई है उसका तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेह है । यद्यपि नये-नये नाम निकालने मे आनन्द मानने वाले लोगो ने इसे माया के नाम से प्रसिद्ध कर रखा है तथापि इसके आचरण से प्रसन्न होकर इसका दूसरा सुन्दर नाम बहुलिका रखा गया है । इस समय तो मुझे केवल यही कहना है कि जैसा बर्ताव तुमने मेरे साथ रखा था वैसा ही इसके साथ भी रखना । मै तो अभी छुपकर रहूगा क्योकि मेरे प्रकट होने का अभी अवसर नही आया है ।* अभी तो यही तेरा साथ अधिक देगी । परन्तु, जहाँ यह रहेगी वहाॅ तत्वत· मैं तो रहूगा ही, क्योकि हम दोनो का अन्योन्य स्वरूप अभिन्न है । मेरे साथ यह जो दूसरा पुरुष है, यह मेरा छोटा भाई है । वर्तमान काल मे यह तुमसे मित्रता करने योग्य है । इसीलिये इसे भी मै साथ लेकर आया हूँ । इसका नाम स्तेय है । यह प्रचण्ड-शक्ति-सम्पन्न और महा-तेजस्वी है । पहले यह छुपकर रहता था, परन्तु अभी अपने योग्य प्रसग को जानकर यहाॅ आया है । इसके सम्बन्ध मे भी मुझे यही कहना है कि जैसा प्रेम तू मुझ पर रखता था, वैसा ही स्नेह-पूर्ण व्यवहार तू इसे अपना प्यारा भाई समझ कर इसके साथ रखना । [५०-५६]

मैं (वामदेव)—प्रिय मित्र ! मैं ऐसा ही समझू गा कि जो तुम्हारी बहिन है वह मेरी भी बडी बहिन है और जो तुम्हारा भाई है वह मेरा भी भाई है । इस विषय मे तुझे कहने की या सशय करने की आवश्यकता नही है । [५७]

मृपावाद—मित्र ! बडी कृपा की । तुमने मुझ पर बहुत अनुग्रह किया । तुम्हारे ऐसे वचन को सुनकर मैं सचमुच कृतकृत्य हुआ । हे नरोत्तम ! तुम धन्यवाद के पात्र हो । [५८]

ऐसा कहकर मृषावाद अन्तर्ध्यान हो गया ।

---

* पृष्ठ ०७२

माया और स्तेय के परिचय का प्रभाव

माया और स्तेय के परिचय के परिणामस्वरूप मेरे मन मे जो विचार-तरगे उठने लगी उन्हे सक्षेप मे तुम्हे बतलाता हूँ । मैं समझने लगा कि माया जैसी बहिन और स्तेय जैसे भाई को प्राप्त कर मैं सचमुच कृतकृत्य हुआ हूँ, मेरा जन्म सफल हो गया है । ऐसे भाई-बहिन तो भाग्य से ही प्राप्त होते है । उसके साथ विलास करते हुए मेरी चेतना भ्रमित होने लगी और मन मे अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क के झझावात उठने लगे । माया के प्रभाव से मैं समग्र विश्व को ठगने की सोचने लगा । विविध प्रपचो से लोगो को शीशी मे उतारने की कामनाये करने लगा । स्तेय के प्रभाव से मेरे मन मे विचार उठा कि मै दूसरो का सब धन चुरा लू या उठा लाऊ । भद्रे ! तभी से मै नि.शक होकर लोगो के साथ ठगी करने के और लोगो का धन-हरण कर लेने के काम मे व्यस्त हो गया । मेरे मित्रो और रिश्तेदारो ने भी मुझे पहचान लिया और मेरे ऐसे कुत्सित कार्यों को देखकर वे मुझे तृण के समान तुच्छ समझने लगे । [५९-६४]

विमल के साथ मैत्री

इधर वर्धमान नगर के महाराजा धवल की पटरानी कमलसुन्दरी के साथ मेरी माता कनकसुन्दरी का सम्बन्ध प्रिय सहेली (बहिन) जैसा था और उन दोनो मे आपस मे घनिष्ठ स्नेह था । दोनो माताओ के सम्बन्ध के कारण पटरानी के पुत्र कपटरहित, स्वच्छ हृदय, वात्सल्यप्रिय विमल के साथ मेरा भी मैत्री-भाव स्थापित हो गया । अर्थात् हम एक दूसरे के इष्ट मित्र बन गये । विमलकुमार सर्वदा दूसरो का उपकार करने मे तत्पर रहता था । उसका मन स्नेह से ओतप्रोत था और वह एक महात्मा जैसा दिखाई देता था । किसी भी प्रकार के मनमुटाव या दावपेच-रहित वह मेरे साथ प्रमुदित होकर प्रेम से रहता था । जबकि विमल मुझ पर एक-निष्ठ सच्चा स्नेह रखता था, तब माया के प्रताप से मेरा हृदय कुटिलता का घर बन गया था, इसी कारण मैं अपने मन मे उसके प्रति दुर्भाव रखता था । मै उसके प्रति स्नेह मे सच्चा नही था और विमल जैसे पवित्र महात्मा के प्रति भी मन मे मलिनता रखता था । अर्थात् विमलकुमार सच्चा शुद्ध सात्विक प्रेम रखता था और मै उसके प्रति कपट-मैत्री रखता था । ऐसी विचित्र परिस्थिति मे भी शुद्ध प्रेम और कपट-मैत्री के बीच झूलते हुए, हम दोनो ने अनेक प्रकार की क्रीडा करते हुए, आनन्द करते हुए और सुखोपभोग करते हुए अनेक दिन बिताये । [६५-६९]

महात्मा विमल ने कुमारावस्था मे ही एक श्रेष्ठ उपाध्याय के पास जाकर उनसे सब प्रकार की कलाओ का अभ्यास कर लिया । क्रमश वह युवतियो के नेत्रो को आनन्दित करने वाले कामदेव के मन्दिर के समान और लावण्य* समुद्र की आधारशिला सदृश तरुणावस्था को प्राप्त हुआ । [७०-७१] □

* पृष्ठ ४७३

२. नर-नारी शरीर-लक्षण

एक ओर विमलकुमार का शुद्ध सच्चा प्रेम और एक तरफ मेरा कृत्रिम प्रेम निरन्तर बढ रहा था। हम अनेक प्रकार के आनन्द भोग रहे थे और विलास कर रहे थे। एक दिन हम खेलते-खेलते क्रीडानन्दन नामक दर्शनीय सुन्दर वन में जा पहुंचे [७२]

क्रीडानन्दन वन

यह वन अशोक, नागकेशर, पुन्नाग (जायफल), वकुल, काकोली और अकोल वृक्षो से शोभित हो रहा था। चन्दन, अगर और कपूर के वृक्षो से मनोहारी लग रहा था। उसमे द्राक्षा-मण्डप इतने विस्तृत फैले हुए थे कि वे धूप को रोककर मण्डप के भीतर छाया कर देते थे जिससे वह वन अत्यन्त सुन्दर लगता था। झूमते केवडे की मादक सुगन्ध भौंरो को अन्धा वना रही थी। ताड, हिताल और नारियल के वृक्ष इतने ऊचे बढकर हवा मे झूल रहे थे मानो वे नन्दनवन से स्पर्धा कर रहे हो और शाखारूपी हाथों से लोगो को बुला रहे हो। [७३–७५]

इस वन मे अनेक प्रकार के अद्भुत आम्र लतागृह थे। किसी-किसी स्थान पर सारस, हस और बगुले आकर इधर-उधर घूम रहे थे। मन को हरण करने वाली मृदु गन्ध से भौरे गुनगुना रहे थे। सक्षेप मे यह वन ऐसा सुन्दर था कि उसे देखकर देवता भी मन मे आश्चर्यान्वित भाव से सतोप प्राप्त करते थे। ऐसे मनोज्ञ क्रीडानन्दन वन मे मैं विमल के साथ प्रविष्ट हुआ। हे मृगाक्षि! विमल अतिशय सरल स्वभावी, पाप रहित और मन को आनन्द देने वाला था। ऐसे एकान्त वन में मेरे साथ क्रीडा करते और घूमते-फिरते वह आह्लादित हो रहा था। [७६-७७]

वन में मिथन युगल

जब मै और विमल लतामण्डप के पास आनन्द से बैठे थे तभी हमारे कानो मे दूर से किसी स्त्री-पुरुष के धीरे-धीरे बात करने की, साथ ही पैर के झाझर की अस्पष्ट ध्वनि सुनाई दी। [७८]

यह आवाज सुनते ही विमल बोला—मित्र वामदेव! यह किसकी आवाज आ रही है? मैंने कहा—यह आवाज स्पष्ट न होने से मै इसे भली प्रकार नही सुन सका। यह किसकी है और किधर से आ रही है यह भी नही जान सका। यहाँ तो अनेक प्रकार की आवाजो की सभावना है, क्योकि इस वन में यक्ष विचरण करते

हैं, राजागण (श्रेष्ठ मनुष्य) परिभ्रमण करते हैं, देव भी संभव हैं, सिद्ध रमण करते हैं, पिशाच घूमते हैं, भूत आवाज करते है, किन्नर गाते है, राक्षस फिरते है, किम्पुरुष रहते हैं, महोरग विलास करते है, गन्धर्व लीला करते है और विद्याधर क्रीडा करते हैं । अत जिस ओर से यह ध्वनि आ रही है उस ओर आगे जाकर देखना चाहिये कि ये आवाजे किस की है ?

विमल ने मेरी बात मान ली और हम दोनों उस तरफ चले जिधर से वह मधुर ध्वनि आ रही थी । हम थोड़े ही आगे बढ़े होंगे कि हमे भूमि पर कुछ पद-चिह्न दिखाई दिये । पद-चिह्न विशेषज्ञ विमल बोला—मित्र वामदेव ! ये पद-चिह्न किसी मनुष्य-युगल (स्त्री-पुरुष) के दिखाई देते है ।

भाई ! देखो, बालू मे जो एक के पग के निशान बने हैं वे किसी कोमल और छोटे पाव के हैं । पगतली की सूक्ष्म सुन्दर रेखाये भी बालू मे स्पष्ट दिखाई दे रही है । अन्य के पद-चिह्नो मे चक्र, अकुश और मत्स्य आदि के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे है तथा वे दूर-दूर है । देवताओ के पॉव तो लगते नही, क्योकि वे भूमि से चार अगुल ऊचे रहकर चलते हैं और साधारण मनुष्य के पॉवो मे भी ऐसे चिह्न नही होते । [७६–८१]

अत मित्र वामदेव ! जिस सुन्दर युगल के ये पदचिह्न है वह कोई असाधारण युगल होना चाहिए ।

उत्तर मे मैंने कहा—कुमार ! तुम्हारा कहना सत्य ही होगा, चलो हम आगे जाकर इसकी जाच करे ।

फिर हम कुछ आगे बढे । आगे बढने पर* हमने सघन वृक्षो की झाडियो से घिरा हुआ एक लतामण्डप देखा । लतामण्डप के एक छिद्र से हमने झाक कर देखा । रति और कामदेव के रूप को भी तिरस्कृत करने वाले एक सुन्दर स्त्री-पुरुष के जोड़े को हमने एक-दूसरे मे एकमेक हुए देखा । विमल तो इन दोनो स्त्री-पुरुषो को पाँव से सिर तक घूर-घूर कर देखने लगा, पर वे दोनो ऐसे रस मे लीन थे कि उन्होने हमे नही देखा । हम जब थोडे पीछे हटे तब विमल बोला–मित्र यह स्त्री-पुरुष का जोड़ा कोई साधारण मनुष्यों का नही है, क्योकि इनके शरीर मे बहुत से विशिष्ट लक्षण दिखाई देते हैं ।

मैंने (वामदेव) पूछा—भाई ! स्त्री-पुरुष के शरीर पर कैसे लक्षण होते हैं ? वह मुझे बता । मुझे स्त्री-पुरुष लक्षण जानने की बहुत उत्सुकता है, अतः पहले मुझे वही बता ।

नर-नारी के शारीरिक लक्षण

फिर विमल स्त्री-पुरुष के लक्षण बताने लगा ।

---

* पृष्ठ ४७४

भाई वामदेव ! पुरुषो के लक्षण लाखों ग्रन्थो मे [लाखो पद्यों में] विस्तार से वर्णित है, उनका सक्षेप मे वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है ? वैसे ही स्त्रियो के लक्षण भी अत्यन्त विस्तृत है, उनके वर्णन का अन्त कौन पा सकता है ? कौन उन्हे सम्पूर्ण रूप से अपने ध्यान मे ला सकता है ? तुझे इन लक्षणो को जानने की अत्यधिक उत्सुकता है तो स्त्री और पुरुष के शरीरो के लक्षण मैं तुम्हे सक्षेप मे बताता हूँ, उन्हे ध्यानपूर्वक सुनो। [८२–८४]

मैंने [वामदेव] ने कहा—बड़ी कृपा। ऐसा कहकर जब मैने अपनी इच्छा प्रकट की तब विमल ने बात आगे चलायी :—

पुरुष-लक्षण

पाँव का तल [चरण] रक्तिम, स्निग्ध और सीधा हो, कमल जैसा मनोहर कोमल और सुश्लिष्ट हो तो उसे प्राज्ञजनो ने प्रशसनीय कहा है। पुरुष के चरण-तल मे चन्द्र, वज्र, अकुश, छत्र, शख, सूर्य आदि के चिह्न हो तो वह पुरुपोत्तम और भाग्यशाली होता है। यदि चन्द्र आदि चिह्न पूरे न हो और अस्पष्ट दिखाई देते हो तो वह पुरुष अपनी अवस्था मे भोग भोगने मे भाग्यशाली होता है। जिसके पदतल मे गधा, सूअर या सियार के निशान दिखाई देते हो तो वह मनुष्य निर्भागी और दु:खी होता है। [८५-८८]

विमल—पुरुष-शरीरस्थ लक्षणो का वर्णन कर रहा था इसी बीच मै [वामदेव] उससे पूछ बैठा—मित्र ! तुम शरीर के प्रशस्त लक्षणो का वर्णन कर रहे थे इसी बीच अपलक्षणो का वर्णन क्यो करने लग गये ?

विमल—इसका कारण सुनो। मनुष्य को देखने मात्र से उसके शुभाशुभ लक्षण स्वत. ही दृष्टिपथ मे आ जाते है। इसी कारण लक्षण दो प्रकार के प्रतिपादित किये गये हैं :– १ शुभ लक्षण और २. अशुभ लक्षण। शरीर सस्थित प्रशस्त और अप्रशस्त दो प्रकार के चिह्न [लक्षण] सुख और दु.ख के सकेतकारक होते हैं। इसीलिए विद्वानो ने ये लक्षण दो प्रकार के माने हैं। भद्र ! इसी कारण प्रस्तुत पुरुष के लक्षणो मे अपचिह्नो का वर्णन भी युक्तिसगत है।

मैं [वामदेव]—कुमार ! प्रशस्त और अप्रशस्त चिह्नो की शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से परिहास मे ही मैं बीच मे पूछ बैठा था। वस्तुत: तो दोनो ही लक्षणो का वर्णन कर तुम मेरे ऊपर द्विगुणित अनुग्रह कर रहे हो। अत: तुम इन लक्षणो का सागोपाग वर्णन-क्रम चालू रखो। [८९-९३]

विमल ने पुन: वर्णन प्रारम्भ कर दिया—

मित्र ! जिन मनुष्यों के नाखून उन्नत, विस्तृत, लाल, चिकने और शीशे की तरह चमकते हुए होते हैं वे भाग्यशाली होते हैं और उन्हें धन, भोग और सुख प्राप्त होता है। यदि नाखून सफेद हो तो वह व्यक्ति भीख मांगकर गुजारा करता है।

यदि नाखून रुक्ष और भिन्न-भिन्न रंग वाले हो तो वह व्यक्ति दु शील [बुरे आचरण वाला] होता है [९४-९५] *

जिनके पॉव बीच से छोटे हो वे स्त्री सम्बन्धी किसी कार्य मे मृत्यु को प्राप्त होते है। मास रहित, पतले, पिचके हुए और लम्बे पैर अच्छे नही होते। पैर छोटे-बड़े हो तो भी अच्छे नही गिने जाते। कूर्म के सदृश उन्नत, मोटे, चिकने, मासल, कोमल और एक-दूसरे से मिले हुए पैर भाग्यशाली के होते हैं और सुख देने वाले होते हैं। [९६–९७]

जिन पुरुषो की पिडलिये कौए जैसी दुर्बल और लटकती हुई हो और जाघे बहुत लम्बी और मोटी हो वे दु खी होते है तथा पैदल यात्रा करते है। उन्हे घर के वाहन उपलब्ध नही होते।[९८]

जिनकी चाल हस, मोर, हाथी और बैल जैसी हो वे इस लोक मे सुखी होते हैं, इसके विपरीत चाल वाले दु.खी होते है। [९९]

जिनकी जानु गूढ, सधिरहित और सुगठित हो वे सुखी होते है, बहुत मासल और मोटे जानु अच्छे नही होते। (१००)

जिस पुरुष का लिंग छोटा, कमल जैसा कान्तियुक्त, उन्नत और सुन्दर अग्रभाग वाला होता है वह प्रशस्त माना गया है और टेढे-मेढे लम्बे और मलिन लिग को अशुभ माना गया है। [१०१]

जिसका वृषण (अण्डकोष) सहज लम्बा होता है, वह लम्बी आयु वाला होता है और जिसके वृषण छोटे-मोटे होते है वह थोड़ी आयुष्य वाला होता है। [१०२]

मासल और विस्तृत कटि शुभकारी होती है तथा पतली और सकडी कटि दरिद्रता देने वाली होती है। [१०३]

जिसका पेट सिह, बाघ, मोर, बैल या मछली के पेट जैसा हो वह अनेक भोग भोगने वाला होता है। गोल पेट वाला भी भोग भोगने योग्य होता है। जिसकी कुक्षि मेढक जैसी हो वह पुरुष शूरवीर होता है, ऐसा प्राज्ञो का कथन है। [१०४]

जिसकी नाभि विशाल और गहरी तथा दक्षिणावर्त (दायी तरफ मुडी हुई) हो वह सुन्दर गिनी जाती है। जिसकी नाभि ऊपर उठी हुई और वामावर्त (बायी तरफ मुडी हुई हो) उसे लक्षणशास्त्रकारो ने अनिष्टकारी माना है। [१०५]

जिसका वक्षस्थल विशाल, उन्नत, तुग, चिकना, रोयेदार और सुकोमल हो वह भाग्यशाली होता है। इसके विपरीत जिसकी छाती छोटी, धसी हुई, रुक्ष, रोयेरहित और कठिन होती है वह निर्भागी होता है। [१०६]

* पृष्ठ ४७५

जिसकी पीठ कछुए, सिह, घोडे या हाथी की पीठ के समान होती है वह शुभकारी होती है।

जिस पुरुष की वाहु (भुजा) आवश्यकतानुसार लम्वी न हो वह दुष्ट होता है। छोटी भुजा वाले दास या नौकर होते है। प्रलम्व वाहु वाले भाग्यशाली होते हैं, दीर्घबाहु वाले प्रगस्त गुणी माने गये है। जिसकी दोनो हथेलिया कठिन हो, उसे विशेप काम करना पड़ता है। हाथ के नाखूनो के लक्षण भी पैर के नाखूनो के समान समझ लेने चाहिये। [१०७–१०६]

जिसके कन्वे लम्वे और भेड़ के कंवे जैसे मासरहित हो, वह भार उठाने वाला मजदूर होता है। जो कधे मांसल और छोटे होते हैं, उन्हे विद्वान् लोग श्रेष्ठ मानते हैं। [११०]

पुरुप का गला लम्वा और पतला हो तो वह दु.खदायी होता है। जो गला शख के समान सुन्दराकृति वाला और तीन रेखाओ से युक्त हो वह श्रेष्ठ माना जाता है। [१११]

जिसके होठ विपम हो वह डरपोक, लम्वे हो तो भोगी और छोटे हो तो दु खी होगा। जिसके होठ पीन (भरे हुए) हो वह सौभाग्यशाली होता है। [११२]

दात निर्मल, एक समान, अणीदार, चिकने और पुष्ट हो तो शुभ समझे जाते है। इसके विपरीत गदे, छोटे-वड़े, भोथरे, रुक्ष और पतले दात दु ख के कारण माने जाते है। ३२ दात वाला भाग्यशाली राजा, ३१ दात वाला भोगी, ३० दात वाला* मध्यम और ३० से कम दात वाला भाग्यशाली नही माना जाता। वहुत अधिक या वहुत थोडे दात वाला, काले दात वाला और चूहे जैसे दात वाला पुरुष पापी गिना जाता है। जिसके दात भयानक, घृणोत्पादक या टेढे-मेढे हो वे वुरे व्यवहार वाले, अत्यन्त पापी और नर-पिशाच माने जाते हैं। [११३–११६]

कमल पत्र जैसी लाल रग की अणीदार जीभ शास्त्रो के जानकार विद्वान् मनुष्य की होती है। भिन्न-भिन्न रग वाली जीभ शरावी की होती है। शूरवीर पुरुप का तालू कमल-पत्र जैसा कातियुक्त और मनोहारी होता है। काले तालू वाला कुल का क्षय करने वाला होता है और नीला तालू दु ख का कारण होता है। [११७-११८]

हस अथवा सारस के जैसे सुन्दर स्वर वाला पुरुष सुखी होता है। कौए एव गधे जैसे स्वर वाला दुःखी होता है। [११६]

लम्वी नाक वाला सुखी होता है और विशुद्ध (सीधी) नाक वाला भाग्यशाली होता है। चपटी नाक वाला पापी होता है और टेढ़ी नाक वाला चोर होता है। [१२०]

---

* पृष्ठ ४७६

मनस्वी पुरुष की दृष्टि (आख की पुतली) नील कमल की पखुड़ी जैसी काली और मनोहारी होती है। मधु या दीपशिखा जैसी पीली दृष्टि भी प्रशस्त मानी जाती है। बिल्ली जैसी कजरी आख पापी की होती है। सीधी दृष्टि, वक्र दृष्टि, भयकर दृष्टि, केकरा (टेढ़ी) दृष्टि, दीन दृष्टि, अत्यन्त रक्त दृष्टि, रुक्ष दृष्टि और काले तथा पीले रग की मिश्रित आख खराब मानी जाती है। भाग्यशाली पुरुषो की आख काले कमल जैसी होती है, लम्बे आयुष्य वाले की दृष्टि गम्भीर होती है, भोगी की दृष्टि विशाल होती है और अल्पायुषी की आखे उछलती हुई सी लगती हैं। काने से अन्धा अच्छा, बाडी आख वाले से काना अच्छा, डरपोक दृष्टि वाले से अन्धा, काना तथा बाडा भी अच्छा। अस्थिर और बिना कारण सतत चलने वाली आखे, लक्ष्यहीन आखे, रुक्ष-शुष्क और मलिन आंखे पापी मनुष्य की होती है। पापी नीची दृष्टि से, सरल व्यक्ति सीधी दृष्टि से और भाग्यशाली ऊची नजर रखकर चलता है तथा बार-बार क्रोध करने वाला टेढा-मेढा देखा करता है। [१२१-१२६]

सम्माननीय और सौभाग्यशाली मनुष्य की भौहे लम्बी और विस्तीर्ण होती है। जिसकी भौहे छोटी होती है वह स्त्री सम्बन्धी किसी बडी आपत्ति में गिरता है। [१२७]

धनवान व्यक्ति के कान पतले, चौडे और लम्बे होते है। चूहे जैसे कान वाला व्यक्ति बुद्धिशाली होता है और जिसके कान पर अधिक रोये होते है वह लम्बी आयुष्य वाला होता है। [१२८]

जिस पुरुष का ललाट विशाल और चन्द्र की आभा जैसा उज्ज्वल होता है वह सम्पत्तिशाली होता है, जिसका ललाट अधिक बडा होता है वह दु खी होता है और जिसका ललाट छोटा होता है उसकी आयुष्य थोडी होती है। [१२९]

जिस पुरुष के सिर के बायी तरफ बालो मे वामावर्त (बायी ओर घूमने वाला) भौरा होता है वह लक्षणरहित, क्षुधा-पीडा से घर-घर भीख मागने वाला होता है, फिर भी उसे लूखे-सूखे टुकडे ही मिल पाते है। जिस पुरुष के सिर के दायी तरफ दक्षिणावर्त (दायी ओर घूमने वाला) भौरा होता है उसके हाथ मे लक्ष्मी दासी की तरह रहती है। जिस पुरुष के बाये भाग मे दायी ओर घूमने वाला भौरा हो अथवा दाये भाग मे बायी ओर घूमने वाला भौरा हो वह अपने जीवन के अन्तिम भाग मे भोग भोगेगा इसमे तनिक भी सदेह नही है। [१३०-१३२]*

जिस पुरुष के बाल दूर-दूर, रूखे और मैले हो, वह दरिद्री होता है। जिसके बाल कोमल और चिकने हो वे सुख देने वाले होते है। अग्नि जैसे रग के बाल वाला व्यक्ति विविध क्रीडा करने वाला होता है। [१३३]

---

* पृष्ठ ४७७

सामान्यत: भाग्यशाली पुरुषो के वक्षस्थल, ललाट और मुख विस्तृत होते हैं, नाभि, सत्व (अन्तरग वल) और स्वर गम्भीर होते हैं तथा वाल, दात और नाखून छोटे हो वे सुखकारक होते है। जिनका गला, पीठ, जाघे और पुरुष चिह्न (लिंग) छोटा हो वे पूजनीय होते है। भाग्यशाली मनुष्यो की जीभ और हाथ-पाव के तले लाल होते हैं। दीर्घायुषी व्यक्तियो के हाथ और पैर विशाल होते है। चिकने दात वाले को सुस्वादु भोजन मिलता है अथवा सदाचारी होता है। स्निग्ध आखो वाला पुरुष सौभाग्यशाली होता है। अधिक लम्वा, छोटा, मोटा या काला पुरुष निन्दनीय होता है। जिनकी चमड़ी, रोये, दात, जीभ, वाल और आखे अधिक रुक्ष हो वे भाग्यशाली नही होते हैं। [१३४-१३८]

हे सौम्य ! जिस पुरुष के ललाट मे ५ रेखाये पडती हो तो उसकी उम्र १०० वर्ष, ४ रेखाये पडती हो तो ९० वर्ष, ३ रेखाये पड़ती हो तो ६० वर्ष, २ रेखाये पड़ती हो तो ४० वर्ष और एक रेखा वाले की आयु ३० वर्ष होती है। [१३९-१४०]

धन का आधार हड्डियो पर, सुख का आधार मांस पर, भोग का आधार चमड़ी पर, स्त्री-प्राप्ति का आधार आखो पर, वाहन-प्राप्ति का आधार गति पर, शासक (आज्ञा चलाने) का आधार स्वर पर और सव विषयो का आधार आतरिक वल मे स्थित है। [१४१]

गमन गति (चलने के तरीको) से शरीर का वर्ण (रग) विशेप आवश्यक है, रग से स्वर अधिक आवश्यक है और स्वर से भी अधिक आवश्यक आन्तरिक वल हैं, क्योकि सव विपयो का अन्तिम आधार उसी सत्त्व पर आधारित है। पुरुष का जैसा रग होता है वैसा ही उसका रूप होता है, जैसा रूप वैसा ही मन, जैसा मन वैसा ही सत्त्व और जैसा उसका सत्त्व अर्थात् आन्तरिक बल होता है वैसे ही उसमे गुण होते हैं। [१४२-१४३]

हे भद्र ! इस प्रकार मैंने पुरुष के लक्षणो का सक्षेप मे वर्णन किया, अव स्त्री के लक्षणो का वर्णन करता हूँ जिसे ध्यान से सुनो। [१४४]

सत्त्व-वर्धन के उपाय

यहाँ मैंने विमलकुमार से पूछा—मित्र ! तुमने कहा कि सर्व लक्षणो का आधार अत्यन्त निर्मल सत्त्व (आत्मिक वल) है और अन्त मे उसका विशेष वर्णन किया है, तो क्या यह आत्मिक-वल जैसा और जितना पहले होता है उतना ही रहता है या इसी जन्म मे किसी प्रकार उसमे वृद्धि और विशुद्धता भी वढ सकती है ? [१४५-१४६]

उत्तर मे विमल वोला—सुनो, निम्न उपायो से आतरिक-वल में वृद्धि भी हो सकती है। ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि ये आतरिक-वल को वढाने के उपाय है। ब्रह्मचर्य, दया, दान, नि स्पृहता, तप और उदासीनता ये सव आतरिक

बल को बढाने के कारण है, इनसे सत्त्व अधिक शुद्ध होता है और प्राणी की प्रगति होती है। जैसे शीशे पर सोडे का कपड़ा फेरने-से एवं हाथ फैरने से वह अधिक साफ होता है वैसे ही विशुद्धि के उपायो से सत्त्व जितने अश मे अशुद्ध होता है उतने ही अश में फिर से विशुद्ध हो जाता है। उपरोक्त विशुद्धि के उपाय अन्तरग व्यवहार मे लगी चिकनाई को दूर कर देते है और इनका पुनः-पुन. सेवन (प्रयोग) करने से वे अन्तरात्मा को रुक्ष बना देते हैं।* आत्मा रुक्ष होने से उसमे सचित मैल निकल जाता है, जिससे लेश्या (आत्मपरिणति) शुद्ध होती है, उसी को यहाँ सत्त्व कहा गया है। सत्त्व शुद्ध होने पर प्रशस्त लक्षणो के गुण स्वत. ही पूर्णरूपेण प्रकट होते है और अपलक्षणों के दोष अपना अधिक प्रभाव नही दिखा सकते। भाई वामदेव ! समस्त गुणों का आधारभूत उत्तम सत्त्व जिन भावो (उपायो प्रयोगो) से वृद्धि प्राप्त कर सकता है, ऐसे भाव विद्यमान है, यह बात अब तेरी समझ मे आ गई होगी। [१४७–१५३]

हे अगृहीतसकेता ! मित्र विमल ने आतरिक बल के विषय मे मुझे इतना बताया, पर मेरी समझ में तो कुछ भी नही आया। फिर भी मेरी बहिन माया जो मेरे पास थी, उसके प्रभाव से मैने हाँ कह दिया और सिर हिलाते हुए कहा—कुमार ! तुम्हारी बात ठीक है, इससे अभी मेरे मन का सशय नष्ट हो गया है। अब तुम स्त्री के लक्षणो का वर्णन करो। साथ ही स्त्री-पुरुष के इस जोडे को देख कर तुझे जो इतना विस्मय हुआ है, वे तुझे इन लक्षणो के आधार पर कैसे लगते है वह भी बतला दो। [१५४–१५६]

उत्तर मे विमल बोला—सुनो, इस युगल मे से पुरुष मे जो लक्षण दिखाई दे रहे है उनसे वह कोई चक्रवर्ती होना चाहिये और स्त्री के लक्षणो को देखते हुए वह किसी चक्रवर्ती की स्त्री होनी चाहिये। ऐसे सुन्दर लक्षणो से युक्त श्रेष्ठतम युगल को देखकर ही मुझे विस्मय हुआ था। हे भद्र ! अब स्त्री के लक्षणो का वर्णन कर रहा हूँ। [१५७–१५८]

मैने (वामदेव) कहा—सुनाओ, तब विमलकुमार कहने लगा।

स्त्री-लक्षण

पूरे शरीर का आधा भाग मुह है या यो कहे कि मुह ही शरीर का आधार है, अत. वह ही पूरा शरीर है तो अत्युक्ति नही होगी। मुख से भी नाक श्रेष्ठ (विशेष) स्थान रखता है और नाक से भी आँखे अधिक श्रेष्ठतम (उपयोगी और शुभ लक्षण-सूचक) है। [१५६]

जिस स्त्री के पाँव मे चक्र, पद्म, ध्वजा, छत्र, स्वस्तिक और वर्धमान का चिह्न हो वह स्त्री राजा की रानी है या होने वाली है, ऐसा समझना। [१६०]

* पृष्ठ ४७८

जिस स्त्री के पैर वड़े, टेढे और सूप जैसे हो वह दासी होती है। जिस स्त्री के पाँव अत्यन्त रुक्ष हो वह दरिद्रता प्राप्त करती है और भिन्न-भिन्न कारणों से शोक पाती है। ऐसा लक्षणज्ञ मुनियो का कथन है। [१६१]

जिस स्त्री के पॉव की अगुलिया दूर-दूर हो और रुक्ष हो, वह मजदूरी करने वाली होती है और यदि अगुलिया अधिक मोटी हो तो वह दुःख और दरिद्रता को प्राप्त करती है। जिस स्त्री के पैर की अगुलिया चिकनी, पास-पास, गोल, लाल और वहुत मोटी न हो वह स्त्री सुखी होती है। [१६२–१६३]

जिस स्त्री की जाघे और पिंडलिये पुष्ट हो, अधिक दूर-दूर न हो, चिकनी हो, तिल और रोमरहित हो और हथिनी की सूण्ड जैसी हो तो वह प्रशंसनीय होती है। [१६४]

जिस स्त्री की कमर विस्तृत, मासल, चारो ओर से रक्तिम और शोभायमान हो तथा नितम्ब समुन्नत हो वह विशेष प्रशस्त मानी गई है। जिस स्त्री के पेट पर अधिक नाडियां दिखाई देती है और उन पर मास दिखाई नही देता है वह दुष्काल मे से आई हुई भूख का घर होती है। जिस स्त्री के पेट का मध्य भाग वरावर लगा हुआ और सुन्दर हो वह सुख भोगने वाली होती है। [१६५-१६६]

जिस स्त्री के हाथ के नाखून खराब हो, हाथ पर फोड़े से दिखाई देते हो, वार-वार पसीना आता हो, अधिक मोटे हों, हाथ पर रोये उगे हो, अधिक कठोर हो, हाथो की आकृति ठीक न हो, पीले, चपटे और रुक्ष हो, ऐसे हाथ वाली स्त्री बहुत दु.खी होती है। [१६७]

नोट—स्त्री-लक्षणो का वर्णन यहाँ एकाएक रुक गया है, इससे लगता है कि या तो स्त्री-शरीर का अधिक वर्णन हितकर नही समझा गया हो या लिखा हुआ अश गुरु ने या अन्य किसी महापुरुष ने वाद मे निकाल दिया हो।

३. आकाश-युद्ध

जब विमलकुमार लतामण्डप के दूसरे भाग मे वामदेव के साथ बात कर रहा था, स्त्री-पुरुष के जोडे को देखकर उनके लक्षणो पर विवेचन कर रहा था तभी वहाँ एक अनोखी घटना घट गई, जिससे उनकी बाते वही बन्द हो गई।* क्या घटना घटित हुई ? सुनिये—

मिथुन-युगल पर आक्रमण

मैने देखा कि आकाश मे सूर्य के समान तेजस्वी अति भयकर दो पुरुष हाथो मे नग्न तलवार लिये हुए लतागृह की ओर तेजी से आ रहे है। [१६८]

विमल की बात वही छोडकर मैंने आश्चर्यान्वित होकर उसका ध्यान उस तरफ आकर्षित करने के लिये कहा—कुमार! कुमार!! देखो। अभी तक विमलकुमार की दृष्टि कोमल कमल के पत्तो मे स्थिर थी, उसने यह दृश्य देखने के लिये तुरन्त अपनी दृष्टि घुमायी और दृश्य देखकर वह सोचने लगा कि एकाएक यह क्या हो गया ?

उसी समय आकाश से आने वाले दोनो पुरुष लतागृह के ऊपर मडराने लगे और उनमे से एक पुरुष बोला—अरे पुरुषाधम! निर्लज्ज! तू कही भी भाग या छुप, तुझे छोडू गा नही। अत. अब तू इस ससार को अन्तिम बार देख ले और अपने इष्टदेव का स्मरण करले या अपना पराक्रम बतला। यो चोर की तरह छुपकर क्यो बैठा है ?

आकाश मे युद्ध

ऐसे तिरस्कार युक्त अति कठोर और युद्ध को निमन्त्रण देने वाले वचन सुनकर लतागृह के युगल मे से पुरुष ने स्त्री से कहा—'सावधान होकर जरा धैर्य से रहो।' ऐसा कहकर स्त्री को लतागृह मे छोडकर उन आने वाले दोनो पुरुषो से बोला—'रे! मेरे विषय मे तुमने जो कुछ कहा है उसे भूल मत जाना, अब देखे कौन भागता है और कौन छुपता है।' यो कहकर उसने अपनी तलवार म्यान से खीची और कटूक्तिपूर्ण अपशब्द बोलने वाले पर झपटा। आकाश मे इन दोनो का दारुण और विस्मयकारक युद्ध हुआ। तलवारे और ढाले खडखड़ाने लगी, शस्त्रो की खनखनाहट और योद्धाओ के सिहनाद से युद्ध का दृश्य भीषणतम हो

---

* पृष्ठ ४७६

गया । अनेक प्रकार के युद्ध-व्यूहो और एक-दूसरे को पराजित करने के लिये ऊपर नीचे अगल-बगल से किये गये उग्र वारो से युद्ध तीव्रतम स्थिति मे आ गया । [१६९-१७०]

भयाक्रान्त सुन्दरी

इस प्रकार जब तीनो मे युद्ध चल रहा था, तव आने वाले दो पुरुषो मे से एक पुरुष बार-बार लतागृह मे प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहा था । वह स्त्री लतागृह मे अकेली रह गई थी इसलिये भयभीत हो गई थी । सिंह के त्रास से जैसे हरिणी घबरा जाती है, वैसी ही स्थिति उसकी हो गई थी । उसके पयोधर भय से धडक रहे थे । वह अस्थिर दृष्टि से दसो दिशाओ मे सहायता के लिये देखती हुई वहाँ से निकल कर भागने लगी । इसी समय उसकी दृष्टि विमलकुमार पर पडी, अत हृदय मे कुछ आश्वस्त होकर उसने विमलकुमार से कहा—'हे महापुरुष ! मेरी रक्षा करिये, मुझे बचाइये, मै आपकी शरण मे हूँ ।' विमल बोला—सुन्दरी ! तनिक भी मत घबराओ । अब डरने का कोई कारण नही है, तुम्हे आच भी नही आने दूगा ।

जब कुमार सुन्दरी को आश्वासन दे रहा था तभी युद्धरत पुरुषो मे से एक जो इतनी देर से लतागृह मे उतरने का प्रयत्न कर रहा था लतागृह के ठीक ऊपर आकर ज्यो ही नीचे उतरने का प्रयत्न करने लगा त्यो ही विमलकुमार के गुण-समूह से उत्पन्न मानसिक बल के प्रभाव से वनदेवता ने उसे आकाश मे ही स्तम्भित कर दिया । तब वह पुरुष आँखे फाड़-फाड कर इधर-उधर देखने लगा और अपने को छुडाने का प्रयत्न करने लगा, पर उसका कुछ भी वश नही चला और हलन-चलन क्रिया-रहित होकर वह चित्रांकित सा आकाश मे लटक गया । [१७१]

आक्रमणकारी की पराजय

स्त्री-पुरुष के जोडे मे से जो पुरुष युद्ध करने आकाश मे गया था उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी को पराजित कर दिया । प्रतिद्वन्द्वी हारकर भागने लगा तो वह पुरुष भी उसके पीछे झपटा । लतागृह पर चित्रलिखित से स्तभित पुरुष ने जब यह देखा तब वह अत्यन्त क्रोधित होकर उसका पीछा करने की सोचने लगा । वनदेवता ने उसके मन के भाव जान लिये । वनदेवता का काम तो केवल स्त्री की मर्यादा को बचाने और विमल के असाधारण गुणो को मान देने का था, युद्ध मे पडने या भाग लेने का नही था, अत उस स्तभित पुरुष को मुक्त कर दिया । मुक्त होते ही वह त्वरित गति से उनके पीछे आकाश मे उडा । वे दोनो तो इतने दूर जा चुके थे कि दृष्टि-पथ मे ही नही आते थे । फिर भी यह देव उनके पीछे दौडता ही रहा ।

उस समय लतागृह मे विमलकुमार की शरणागत वह सुन्दरी विलाप करने लगी—'हा आर्यपुत्र ! हा आर्यपुत्र ! ! आप मुझ मन्दभागिनी को अकेली छोडकर

कहाँ चले गये ? मेरा क्या होगा ?' उस समय मैने और विमलकुमार ने अनेक प्रकार से धीरज बंधाकर उसे आश्वस्त किया ।*

विमल का आभार

कुछ समय पश्चात् सुन्दरी के साथ वाला पुरुष विजय प्राप्त कर विजयश्री की कान्ति से दीप्त और हर्षित होता हुआ, आतुरता से सुन्दरी को ढूढता हुआ वेग से लतागृह मे आ पहुँचा । [१७२]

उसे आया देखकर सुन्दरी को अत्यन्त हर्ष हुआ, मानो उसके सम्पूर्ण शरीर पर अमृत वृष्टि हुई हो । उसके अगोपाग आनन्दातिरेक से पुलकित हो गये । सुन्दरी ने विमलकुमार की शरणागतता का वृत्तान्त सक्षप मे कह सुनाया जिसे सुनकर उसने विमलकुमार को प्रणाम किया और कहा—

अहा ! ऐसे विषम समय मे आपने मेरी प्रिय पत्नी की रक्षा की है अत आप मेरे बन्धु है, पिता है, माता है, मेरे जीवन-प्राण है । हे पुरुषोत्तम ! हे नरोत्तम !! हे धीर ! आप वस्तुत· धन्यवाद के पात्र है, अथवा मै आपका दास हूँ, नौकर हूँ, बिका हुआ गुलाम हूँ, सदेशवाहक चाकर हूँ । आदेश दीजिये, अब मै आपकी क्या सेवा करू ? [१७३-१७४]

उत्तर मे विमलकुमार बोला— महापुरुष ! इस प्रकार शीघ्रता करने की और मेरा आभार मानने की कोई आवश्यकता नही है । मैं आपकी स्त्री को बचाने वाला कौन होता हूँ । वास्तव मे तो आपने ही अपने माहात्म्य से उसे बचाया है । भद्र ! मुझे यह दृश्य देखकर अत्यधिक कौतुक हो रहा है । क्या आप मुझे यह बताने का कष्ट करेंगे कि यह सब घटना कैसे घटित हुई और युद्ध-निमन्त्रण पर आपके आकाश मे उड जाने के बाद क्या हुआ ?

उपरोक्त प्रश्न का सविनय उत्तर देते हुए उस देव-पुरुष ने कहा—यदि आपको यह घटना सुनने की वास्तविक उत्सुकता हो तो आप थोडी देर शान्ति से यहाँ बैठिये, क्योकि यह कथा बहुत लम्बी है ।

फिर सभी लोग लतागृह मे पृथ्वीतल पर आराम से बैठे और देव-पुरुष ने अपनी कथा प्रारम्भ की ।

---

* पृष्ठ ४८०

४. रत्नचूड की आत्मकथा

देव-पुरुष ने अपनी सुन्दर स्त्री के समक्ष विमल और मुझे सुनाते हुए अपनी आत्मकथा प्रारम्भ की। देव-पुरुष ने कहा—

रत्नचूड का परिचय

शरद् ऋतु के शात चन्द्र के किरण-समूह जैसा श्वेतरजोमय वैताढ्य नामक एक पर्वत है। इस पर्वत की उत्तर और दक्षिण दो श्रेणियाँ है। उत्तर श्रेणी मे ६० विद्याधरो के और दक्षिण श्रेणी मे ५० विद्याधरो के नगर बसे हुए है। वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे गगनशेखर नामक एक नगर है। इस नगर का राजा मणिप्रभ और उसकी रानी कनकशिखा है। इनके रत्नशेखर पुत्र और रत्न-शिखा एव मणिशिखा नामक दो पुत्रियाँ हैं। रत्नशिखा का विवाह मेघनाद विद्याधर के साथ और मणिशिखा का अमितप्रभ विद्याधर के साथ हुआ है। मै रत्नशिखा और मेघनाद का पुत्र हूँ। मेरा नाम रत्नचूड है। मणिशिखा और अमितप्रभ के दो पुत्र है जिनके नाम अचल और चपल हैं। अचल और चपल मेरी मौसी के पुत्र होने से मेरे भाई हुए। मेरे मामा रत्नशेखर का विवाह रतिकान्ता से हुआ, जिससे उन्हे एक पुत्री हुई जिसका नाम उन्होने आम्रमजरी रखा। वही आम्रमञ्जरी अभी आपके समक्ष इस लतामण्डप मे बैठी हुई है। मेरी मौसी के पुत्र अचल, चपल, मै और आम्रमञ्जरी, हम सब बचपन मे एक साथ ही क्रीडा करते थे। क्रमश हम सब कुमारावस्था को प्राप्त हुए और कुलक्रम से चली आ रही विद्याधरो की सारी विद्याओ का हमने अभ्यास किया।

रत्नचूड को धर्मप्राप्ति

इधर मेरे मामा रत्नशेखर की बचपन से ही चन्दन नामक सिद्धपुत्र के साथ मित्रता थी। यह सिद्धपुत्र सर्वज्ञ प्ररूपित आगम-शास्त्रो मे अत्यन्त निपुण था और निमित्तशास्त्र, ज्योतिष, मत्र-तन्त्र तथा मनुष्यो के लक्षणो को समझने मे भी बहुत कुशल था। उसकी सगति से मेरे मामा रत्नशेखर भी सर्वज्ञभाषित धर्म के अनुरागी और दृढ भक्त बने। मेरे मामा ने इस श्रेष्ठ जैन-धर्म का ज्ञान मेरे माता-पिता (रत्नशिखा, मेघनाद) और मुझे भी करवाया।* एक समय सिद्धपुत्र चन्दन

---

* पृष्ठ ४८१

ने मेरे लक्षण देखकर मेरे पिता और मेरे मामा से कहा कि तुम्हारा यह बालक एक दिन विद्याधरो का चक्रवर्ती बनेगा। [१७५-१७८]

रत्नचूड-आम्रमञ्जरी का लग्न : अचल-चपल का द्वेष और प्रपञ्च

इसी बीच मैंने (वामदेव) कहा—कुमार! तुमने इसके लक्षण देखकर कहा था कि यह पुरुष चक्रवर्ती होगा, पूर्ण सत्य है। मेरी बात सुनकर विमल ने कहा—मित्र वामदेव! मैंने जो कुछ कहा वह मेरा मनगढन्त कथन नही था, किन्तु आगम-वचन था। आगम-वचन सत्य ही होते हैं, अत इसमे विसवाद या संशय को स्थान ही प्राप्त नही होता। रत्नचूड पुनः कहने लगा—

मैं और मेरे मामा एक धर्म को मानने वाले होने से सार्धमिक (सहधर्मी) थे। उनके विचारों के अनुसार मैं सुलक्षणो (योग्य लक्षणो) से युक्त था अत उन्होने अपनी पुत्री आम्रमजरी का विवाह मेरे साथ कर दिया। मेरी मौसी के लड़के अचल और चपल को यह बात अच्छी नही लगने से वे कुपित हो गये और ईर्ष्यावश मुझे नीचा दिखाने के अनेक प्रयत्न करने लगे, पर वे अपने प्रयत्नो मे सफल नही हुए। तब वे मुझे हराने के लिये तुच्छ प्रपञ्च करने लगे और मेरे दोष ढूंढने लगे। जब मुझे उनके प्रपञ्चो का पता लगा तब यह सोच कर कि कही असावधानी मे मेरी हत्या न हो जाय, मैंने उनके कार्यो पर दृष्टि रखने के लिये मुखर नामक गुप्तचर को नियुक्त किया जो उनके षड्यन्त्रो का पता लगा कर मुझे सूचित करता रहता था। एक बार उस मुखर गुप्तचर ने मुझे सूचित किया कि अचल और चपल ने महान् प्रयास से किसी के पास से काली नामक विद्या प्राप्त की है और अब वे उसे सिद्ध करने के लिये किसी गुप्त स्थान पर गये हैं। मैंने अपने गुप्तचर से कहा—भद्र! जब वे इस विद्या को सिद्ध कर वापिस लौटे तब मुझे सूचित करना। मुखर ने मेरी आज्ञा शिरोधार्य की।

आज प्रात. मेरा गुप्तचर वापिस मेरे पास आया और मुझे बतलाया कि, देव! अचल और चपल काली विद्या सिद्ध कर वापिस लौट आये है। उनके बीच जो गुप्त सकेत वार्ता हुई थी उसे मेरे गुप्तचर ने समझ लिया था और उसने मुझे बताया कि गुप्तमन्त्रणा करते हुए अचल ने कहा—'भाई चपल! मै रत्नचूड के साथ युद्ध करूंगा उस समय तू आम्रमजरी का हरण कर लेना।' हे कुमार! अब आगे आप जैसा उचित समझे वैसा करे।

गुप्तचर की बात सुनकर मैंने विचार किया कि यद्यपि ये दोनो विद्या से शक्तिमान बन गये है तथापि मै इन्हे हराने मे समर्थ हूँ, परन्तु ये दोनों अचल और चपल मेरी मौसी के लडके होने से मेरे भाई हैं। अत इन्हे मारना तो उचित नही है, क्योकि इससे मेरा लोकापवाद (लोगो मे मेरी निन्दा होगी) और धर्म का नाश होगा। किन्तु, यह चपल तो दुष्टाचरण और दुष्ट प्रकृति वाला है। यदि वह छल-कपट द्वारा मेरी पत्नी आम्रमञ्जरी को उठाकर ले जाय और उसे मार दे या

हैरान करे तो उसे फिर से ग्रहण करने मे अथवा उसका त्याग करने से लोगों मे मेरी अपकीर्त्ति होगी। जब मैं अचल के साथ युद्ध करू तब मेरी पत्नी की रक्षा कर सके ऐसा कोई बलवान व्यक्ति भी मुझे इस समय दिखाई नही देता। अतः अच्छा तो यही होगा कि इस समय मैं अपनी पत्नी को लेकर इस स्थान से कही दूर चला जाऊ।

अचल के साथ युद्ध और उसकी पराजय

यही सोचकर मै आम्रमञ्जरी को लेकर गगनशेखर नगर से चल पडा। यह क्रीडानन्दन उद्यान मैने पहले भी कई बार देखा था अत उसे लेकर मैं यही इस लतामण्डप मे आ गया। उसके कुछ देर पश्चात् ही हमे ढूढते हुए अचल और चपल भी यहाँ आ गये। आकाश मे रहकर अचल ने मुझे तिरस्कार पूर्ण कटु वचन सुनाये और युद्ध के लिये निमन्त्रित किया। उन कठोर वचनो को सुनकर मेरे मन की स्थिति कैसी दुविधाजनक हो गई थी, बतलाता हूँ।

एक ओर मेरी प्रिय प्रेममूर्ति प्रिया के स्नेह-तन्तु मुझे बाध रहे थे और दूसरी ओर शत्रु का युद्ध-रस का निमन्त्रण मुझे युद्ध के लिये ललकार रहा था। मेरे हृदय की ऐसी स्थिति हो गई थी कि न उठा जाता था और न रहा जाता था। मै मानसिक द्वन्द्व के कारण निर्णय करने में मूढ सा बन गया था, मानों किसी झूले पर झूल रहा होऊँ। अर्थात् उस समय न तो मैं मेरी पत्नी को अकेली छोडकर जाना चाहता था और न अचल-चपल के युद्ध निमन्त्रण को भुलाकर कायर ही कहलाना चाहता था। [१७६—१८०]

अन्त मे मै एकदम प्रबल क्रोधावेश* मे आकर अचल की ओर दौडा तथा उसके साथ युद्ध करने लगा। हमारी लड़ाई कैसी स्थिति मे हुई और मैंने कैसे अचल को पराजित किया यह तो आपने स्वय देखा ही है। जैसे ही अचल हार कर भागने लगा मैंने भी तुरन्त उसका पीछा किया। जब मैं उसके निकट पहुँचा तब मैंने भी उसे कटु वचनो द्वारा अत्यधिक ललकारा, तब वह रुका और एक बार फिर हमारा युद्ध हुआ। मैंने प्रबल सपाटे से उस पर प्रहार किया जिससे उसकी हड्डिया टूट गईं और वह आकाश से जमीन पर गिरा। उसके अगोपाग चूर-चूर हो गये, उसकी शक्ति नष्ट हो गई, दीनता आ गई, उसकी विद्याओ का प्रभाव नही चला और वह हलन-चलन रहित निष्पन्द सा हो गया।

आम्रमञ्जरी का स्मरण

मैंने सोचा कि अचल तो अब ऐसा हो गया है कि फिर से लडने के लिये मेरे सामने आने की हिम्मत नही करेगा, किन्तु आम्रमञ्जरी को अकेली छोड कर मैं इसके पीछे लगा, यह तो आकाश मे मुट्ठी मारने या दाल को छोडकर उसके

* पृष्ठ, ४८२

छिलके खाने जैसा हो गया। बेचारी अकेली आम्रमञ्जरी तो भय से ही मर गई होगी, अथवा चपल उसे अकेली देखकर अवश्य ही पकड कर ले गया होगा। [१८१—१८२]

अरे ! मैंने यह कैसा बिना सोचे-विचारे काम किया ! अवश्य ही वह पापी उसे उठा ले गया होगा और लेकर न जाने कहाँ चला गया होगा। अब वह दुरात्मा पापी चपल कहाँ गया होगा ? खैर, चल कर देखू तो सही। ऐसा सोचकर त्वरित गति से मैं वहाँ से लौटा। मैं थोडा ही चला था कि चपल मुझे सामने आता हुआ मिला।

चपल की पराजय

दूर से चपल को आते देखकर ही मेरे मन मे अनेक तर्क-वितर्क उठने लगे। मै सोचने लगा कि, अरे ! यह चपल यहाँ कैसे आ गया ? क्या आम्रमञ्जरी इस पापी को दिखाई ही नही दी ? अथवा कही उसने इसकी विषयसुख भोगने की इच्छा का विरोध किया हो और इस पापी ने उसे मार ही न दिया हो ! कुछ भी हो यह तो निश्चित है कि यदि आम्रमञ्जरी जीवित होती और इस पापी के हाथ मे आने जैसी होती तो यह उसे छोडकर यहाँ अचल के पीछे नही आता। कहा भी है :—

एकान्त स्थान मे ढक्कन रहित दही से भरी हुई मटकी को देखकर और दही के स्वाद को जानते हुए भी, ऐसा कौनसा मूर्ख कौवा होगा जो उसे छोडकर अन्य स्थान को जायेगा ? [१८३]

इससे अनुमान होता है कि आम्रमञ्जरी जीवित ही नही है। यदि वह जीवित होती तो उसे छोडकर चपल यहाँ कदापि नही आता। मै मेरे मन मे ऐसी ही अनेक प्रकार की सच्ची-झूठी आशकाये कर रहा था तब तक चपल मेरे पास आ गया। वह शीघ्र ही मुझ से युद्ध करने लगा। उसे भी मैंने अचल की ही भाति पराजित कर जमीन पर गिराया और उसकी भी अचल जैसी ही गति हुई।

अचल और चपल दोनो को हराकर मैं सोचने लगा कि क्या मेरी प्रिय पत्नी मर गई है ? क्या उसे किसी ने नष्ट कर दिया है या कही छुपा कर रख दिया है ? या उसे किसी अन्य के हाथ मे सौप दिया है ? इस प्रकार प्रिय पत्नी के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की कुविकल्प विचार रूपी तरगमालाओ के मध्य मन रूपी नदी मे डूबता-उतराता मै यहाँ आ पहुँचा। स्नेह शकाशील होता ही है। यहाँ आते ही मैंने अपनी प्रिया को पूर्णरूप से सुरक्षित देखा तो मेरे जी मे जी आया, मेरा हृदय प्रफुल्लित हुआ, मेरे सम्पूर्ण शरीर मे आनन्द व्याप्त हो गया, मेरा रोम-रोम पुलकित हो गया, मेरी चेतना स्थिर हो गई, मेरे सारे शरीर मे शाति ही शाति व्याप्त हो गई और हर्ष से मेरा शरीर उद्वेलित हो उठा। मेरे चित्त मे जो उद्वेग था, वह समाप्त हुआ। मेरी प्रियतमा ने आपके विषय मे मुझे सब कुछ बताया तथा आपके माहात्म्य से कैसी अद्भुत घटना घटित हुई थी उस सब का वर्णन किया।

इस प्रकार सक्षेप मे मेरी आत्मकथा समाप्त हुई, कहकर रत्नचूड ने अपना कथन समाप्त किया।

५. विमल, रत्नचूड और आम्रमञ्जरी

रत्नचूड का आभार-प्रदर्शन

आत्मकथा पूरी कर रत्नचूड ने आगे बात चलायी। धीर पुरुष, भाई विमल ! आपने मेरी प्रियतमा की रक्षा कर वास्तव मे मेरे ही जीवन की रक्षा की है। उसकी रक्षा से आपने मेरे कुल की उन्नति की है और मुझे विशुद्ध यश प्राप्त करवाया है। [१८४]

महानुभाव ! मै आपकी प्रशसा मे* अधिक क्या कहूँ ? इस ससार मे ऐसी कोई वस्तु या विषय नही जिसे आपने मेरे लिये न किया हो, अर्थात् आपने मेरा सब कुछ कर दिया है। [१८५]

लोक मे कहावत है कि उपकार का बदला चुकाना तो वणिको (व्यापारियों) का धर्म है, इसमे क्या विशेषता है ? पर जो प्राणी उपकार का बदला चुकाने से मुह चुराता हो, उसे तो पशु ही समझना चाहिये। किये गये उपकार का बदला न चुकाने वाला मनुष्य हो ही नही सकता। अत· हे विमल कुमार ! आप मुझ पर कृपा कर मुझे आज्ञा प्रदान करे कि आपको क्या प्रिय है ? मै आपका सेवक आपके लिये वह कार्य करने को तत्पर हूँ। [१८६-१८७]

विमल—हे कृतज्ञश्रेष्ठ ! आपको ऐसे संभ्रम मे पड़ने की आवश्यकता नही है। आज मुझे आपके दर्शन से क्या प्राप्त नही हुआ ? अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो गया। इससे अधिक प्रिय मुझे और क्या हो सकता है ? कहा है :—

सज्जन व्यक्ति का एक मीठा बोल हजारो मोहरो से अधिक मूल्यवान है, ऐसे भाग्यवान का दर्शन मिलना तो लाखो मोहरो से भी अधिक कीमती है और करोडो मोहरे खर्च करने पर भी ऐसे सज्जन भाग्यवान पुरुष के हृदय के साथ भावपूर्वक मिलन तो अति दुर्लभ है। [१८८]

हे भद्र ! मैने आपका ऐसा क्या काम कर दिया है कि जिससे उसका बदला चुकाने के विषय में आप इतने व्यग्र हैं ?

विमल का उत्तर सुनकर रत्नचूड ने अपने मन मे विचार किया कि ऐसा सज्जन पुरुष किसी भी वस्तु की माग तो क्या करेगा ? पर, मुझे तो मेरे इस अकारण मित्र का कुछ न कुछ प्रत्युपकार तो अवश्य ही करना चाहिये। अन्यथा मेरे

* पृष्ठ, ४८३

मन को शाति नही मिलेगी। ऐसा सोचकर रत्नचूड ने अपने हाथ मे एक रत्न प्रकट किया, जो देखने मे इतना असाधारण था कि उसमे भूरा, लाल, पीला, सफेद और काला कौनसा रंग है, कुछ भी स्पष्टतया कहा नही जा सकता था। इसके प्रकट होते ही चारो दिशाएँ जगमगा उठी। यह रत्न सभी रगो से सुशोभित इन्द्रधनुष जैसा था और अपनी किरणो की प्रभा सर्वत्र फैला रहा था। यह रत्न विमल को दिखाते हुए रत्नचूड ने कहा—भाई विमल! यह रत्न समस्त प्रकार के रोगो को दूर करने वाला, महाभाग्यवान, ससार से दारिद्र्य को नष्ट करने वाला, मोर पख के समान सब रगो वाला और गुणो मे चिन्तामणि रत्न जैसा है। देवताओ ने मेरे कार्य से प्रसन्न होकर प्रसन्नता से यह रत्न मुझे अर्पित किया था। इस रत्न मे यह विशेषता है कि इस लोक मे यह मनुष्यों की सकल इच्छाओ की पूर्ति करता है। [१८८–१९२]

प्रिय बन्धु कुमार! कृपा कर आप इस रत्न को ग्रहण करे। जब तक आप इस रत्न को नही लेगे तब तक मेरे चित्त को शाति नही मिलेगी।

रत्नचूड के अत्याग्रह के उत्तर मे विमल बोला—महात्मा बन्धु! आप इस विषय मे थोडा भी आग्रह नही करे और न अपने मन मे सताप ही करे। आपने दिया और मैंने ले लिया, फिर क्या बाकी रहा? देखो भाई! यह देव प्रदत्त अमूल्य रत्न तो आपके पास रहे तो ही अच्छा है, अतः आप इसे सभाल कर रखे और मन मे किसी भी प्रकार का सकल्प-विकल्प न करे।

तब आम्रमञ्जरी बोली—बन्धु विमलकुमार! आर्यपुत्र की इस अभ्यर्थना (इच्छा) को आप भग न करे। देखिये कहा भी है —

चित्त मे स्पृहारहित होने पर भी सत्पुरुष प्रेम से प्रेरित होकर दान देने को उद्यत दानी की प्रार्थना को कदापि भग नही करते, क्योकि उनमे इतनी दाक्षिण्यता (दयालुता) होती है कि वे किसी को मना कर उसका दिल नही तोड सकते। [१९३]

महर्घ्य रत्न-प्राप्ति पर भी नि स्पृहता

आम्रमञ्जरी की बात सुनकर विमल उत्तर दे ही रहा था कि रत्नचूड ने आदरपूर्वक देवता द्वारा प्राप्त वह रत्न दिव्य वस्त्र मे लपेटकर (मूल्यवान डिविया मे रखकर) विमल के वस्त्र के पल्ले मे बाध दिया।* ऐसे अद्भुत और महर्घ्य रत्न के प्राप्त होने पर भी इच्छारहित मध्यस्थ भावधारक विमल के चेहरे पर हर्ष का कोई भाव प्रकट नही हुआ। विमल के ऐसे गुण को देख कर रत्नचूड के हृदय मे विमल के प्रति अत्यधिक आदर भाव जागृत हुआ। उसके नेत्र विस्मय से विकसित हो गये और वह मन मे सोचने लगा कि, अहा! इस भाई का माहात्म्य तो कुछ अपूर्व ही लगता है। ऐसी नि स्पृहवृत्ति तो कही देखने मे नही आई। इस कुमार का चरित्र

---

* पृष्ठ ४८४

तो मनुष्य लोक में दिखाई देने वाले साधारण पुरुषो से अत्यन्त भिन्न प्रकार का अलौकिक ही लगता है। जिन महात्मा पुरुषो का चित्तरत्न ही ऐसा अमूल्य एवं असाधारण हो गया हो, उन्हे बाह्य निर्जीव रत्नो से प्रयोजन भी क्या है? वास्तव मे अनेक भवो से जिन्होने धर्म कार्यो से अपने चित्त को रग लिया हो, ऐसे पुण्यशाली जीवों का ही चित्त ऐसा होता है। जो प्राणी सर्वदा पापी, शुद्ध धर्म से बहिष्कृत और तुच्छ-वृत्ति के होते है, उनका ऐसा निर्मल चित्त कदापि नही हो सकता।

[१६४-२०१]

विमल का परिचय

उपरोक्त विचारानन्तर रत्नचूड ने पुन. विचार किया कि, मुझे इस कुमार के सम्बन्ध मे पूरा पता लगाना चाहिये कि यह कहाँ का निवासी है? क्या नाम है? इसके पिता कौन हैं? इसका गोत्र क्या है? यह यहाँ क्यो आया है और इसका व्यवहार कैसा है? इस बारे मे मुझे कुमार के मित्र से पूछना चाहिये। ऐसा विचार कर समाधान हेतु रत्नचूड मुझे एकान्त मे ले गया और मुझ से सब बातें पूछी। मैने (वामदेव के रूप मे ससारी जीव ने) कहा कि यही पास ही वर्धमानपुर नामक नगर है, जहाँ क्षत्रिय कुलोत्पन्न धवल राजा राज्य करते है, यह विमल उनका पुत्र है। आज प्रात. उसने मुझसे कहा कि लोगो से ऐसा सुना है कि अपने नगर के बाहर एक क्रीडानन्दन नामक अत्यधिक रमणीय उद्यान है। यह उद्यान हमने पहले कभी नही देखा, इसलिये चलो आज इसे ही देखे। कुमार की इच्छा और आज्ञा को मान देकर हम दोनो इस उद्यान मे आये। फिर हमने दूर से आप दोनो के शब्द सुने। शब्द किसके है? यह जानने की जिज्ञासा हुई, अतः हम उस ओर चल पड़े जिस दिशा से शब्द आ रहे थे। चलते-चलते हमे पृथ्वीतल पर दो प्रकार के पांवो के निशान दिखाई दिये, जिससे हम जान गये कि कोई स्त्री-पुरुष इधर से गये है। फिर आगे बढकर हमने लतामण्डप मे आप दोनो को देखा। विमलकुमार सामुद्रिक शास्त्र के माध्यम से मनुष्य के लक्षण भली प्रकार जानता है, अत उसने उन लक्षणो के आधार से बताया कि इनमे से जो पुरुष है वह चक्रवर्ती बनेगा और साथ मे जो स्त्री है वह चक्रवर्ती की पत्नी बनेगी। इस प्रकार हमारा यहाँ आने का यही प्रयोजन था। कुमार का समग्र व्यवहार विद्वानो द्वारा प्रशसनीय है, लोग उसका सन्मान करते हैं, वह बन्धुओ मे आह्लाद उत्पन्न करता है, मित्रो को उसका व्यवहार प्रिय है और मुनिगण भी उसके व्यवहार की स्पृहा करते है। अभी तक इसने किसी भी तत्त्व ज्ञान के मत को स्वीकार नही किया है। [७]

६. विमल का उत्थान : देवदर्शन

[स्वभाव से नि स्पृह, दाक्षिण्यवान और महासत्त्ववान विमलकुमार का परिचय रत्नचूड विद्याधर को हुआ। रत्नचूड ने राजकुमार को पहचाना, उसकी नि.स्पृहवृत्ति का स्वय अनुभव किया और उसके विशाल हृदय की निर्लोभ वृत्ति का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया।]

मुझसे कुमार का परिचय सुनकर रत्नचूड अपने मन मे विचार करने लगा कि इसे भगवान् की प्रतिमा का दर्शन कराना चाहिये। मुझे लग रहा है कि भगवान् की प्रतिमा के दर्शन से इस पर महानतम उपकार होगा और प्रत्युपकार करने का मेरे मन मे जो मनोरथ है वह भी पूर्ण होगा।

क्रीडानन्दन वन में युगादीश प्रासाद

उपरोक्त विचार करने के पश्चात् रत्नचूड और मैं कुमार के पास आये और रत्नचूड ने विमल से कहा*—मित्र कुमार! कुछ समय पूर्व मेरे मातामह (नाना) मणिप्रभ इस उद्यान मे आये थे तब उन्हे यह क्रीडानन्दन वन अत्यन्त कमनीय प्रतीत हुआ था। उद्यान की प्राकृतिक छटा से हर्षित होकर उन्होने विद्याधरो के आने के लिये यहाँ एक अद्भुत सुन्दर और विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया और उसमे युगादिदेव श्री आदिनाथ देव के बिम्ब को प्रतिष्ठित किया था। (स्थापना की)। इसीलिए मै इस उद्यान मे पहले भी कई बार आया हूँ। यह मन्दिर और बिम्ब अतिशय सुन्दर है, आप भी इसे देखने की कृपा करे। विमल बोला—जैसी मित्र की इच्छा। उत्तर सुनकर रत्नचूड हर्षित हुआ। हम सब भगवान् के मन्दिर की तरफ गये और देव-प्रासाद को देखा।

यह मन्दिर स्वच्छ स्फटिक रत्न की कान्तिवाला, सोने से मढा हुआ, शरद् ऋतु मे विद्युत्वलय की चमक से घिरे बादलो के समान शोभित हो रहा था। हीरे, रत्न और माणक-मणियो के तेज से अन्धकार दूर हो रहा था और उनका प्रकाश दूर से ही दिखाई दे रहा था। [२०२-२०३]

दैदीप्यमान अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल स्फटिक मणियो से निर्मित आगन (फर्श) और सोने के स्तम्भ विशाल प्रासाद को रमणीय बना रहे थे। स्तम्भो पर जडे हुए लाल प्रवाल की किरणो से लटकती हुई मोतियो की मालाये

* पृष्ठ ४८५

भी रक्तिम लग रही थी। लटकती हुई मोतियों की मालाओ के झूलों मे जडे हुए मरकत (नीले) रत्नो की किरणो से श्वेत चामर (चंवर) भी श्याम वर्णी प्रतीत हो रहे थे। श्वेत चामरो मे लगे स्वर्ण निर्मित दडो से छत मे जडे हुए काच भी पीतवर्णी (पीले) दिखाई देते थे। काचमण्डल मे जहाँ-जहाँ लाल रग की मणियो के टुकड़ो से हारमालाये जडी हुई थी और इन मणियो की हारमाला के नीचे शुद्ध स्वर्ण की किंकिणी जाल (घूघरो की लड़े) लटकाई हुई थी। ऐसे अनुपम सौन्दर्य वाले मन्दिर मे प्रवेश कर हम सव ने भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा के दर्शन किये।

विमल को जाति-स्मरण ज्ञान

स्वर्ण निर्मित भगवत्प्रतिमा मनोहारिणी थी, विकार रहित थी, झूठे आडम्बरो से मुक्त थी, अतीव शान्त और दैदीप्यमान थी तथा इस मूर्ति की प्रभा चारो दिशाओ मे फैल रही थी। [२०४]

साथ मे आये हम चारों व्यक्तियो ने अत्यन्त उल्लसित भाव से हर्ष से आँखे विस्फारित कर जिन-विम्व के दर्शन किये और भगवान् आदिनाथ को नमन किया। रत्नचूड और आम्रमञ्जरी ने भी जिन-प्रतिमा की विधि-पूर्वक वन्दना की, उस समय पवित्र आनन्द की उर्मियो के उल्लास से उनका शरीर पुलकित एव रोमांचित हो गया था।

चराचर तीनो लोको के समस्त जीवो के वन्धु युगादीश भगवान् के विम्व को देखते ही विमलकुमार का जीववीर्य अतिशय उल्लसित एव प्रस्फुटित हुआ, उसने वडे-वडे कर्म के जाले तोड दिये, उसकी सद्‌वुद्धि मे वृद्धि हुई और गुणों के प्रति दृढ़ अनुराग उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा —

अहा! भगवान् का कैसा कमनीय और मनोहारी रूप है! इस बिम्ब मे कैसी अलौकिक सौम्यता है! अहा इसका निर्विकारीपन! अहो इसकी अतिशयता! अहो इसका कितना अचिन्त्य माहात्म्य है, अद्वितीय प्रभाव है! अहा! इनके इस प्रकार के निष्कल मनोहर आकार से ही अनन्त गुण-समूह की महत्ता स्पष्ट दिखाई देती है। प्रतिमा के दर्शन से ही यह सुनिश्चित प्रतीत होता है कि ये देव वीतराग हैं, वीतद्वेप हैं, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है। [२०५-२०६]

इस प्रकार चिन्तन करते-करते ही विमल ने मध्यस्थ भाव से स्वकीय आत्मा के साथ लगे कर्म-मल को कितने ही अशो मे* क्षय कर दिया और उसे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे उसे पूर्व-भवों की समस्त घटनाये (चित्रपट के समान) याद आने लगी। अपने पूर्व-जन्मो के दृश्य देखकर वह इतना रस-विभोर हो गया कि उसे मूर्छा आ गई। वह मन्दिर के फर्श पर गिर गया, जिसे देखकर सब सम्भ्रम

---

* पृष्ठ ४८६

(विचार) मे पड़ गये कि कुमार को क्या हो गया ? तुरन्त उसके शरीर पर शीतल पवन की गई जिससे उसकी मूर्छा दूर हुई और चेतना आई। उसे जागृत होते देखकर रत्नचूड ने सादर पूछा—मित्र विमल ! ऐसे अद्भुत देवालय मे तुम्हे क्या हो गया ? ऐसे स्थान पर मूर्छा आने का क्या कारण हुआ ? [२०७-२१०]

रत्नचूड के प्रश्न को सुनकर विमल मे फिर से भक्तिभाव जागृत हो गया, शरीर रोमांचित हो गया, हर्ष से नेत्र प्रफुल्लित हो गये और दोनो हाथ जुड गये। उसी स्थिति मे खड़ा होकर वह रत्नचूड के दोनो पाव पकड़ कर हर्षाश्रुपूर्ण डबडबाये नेत्रो से पुनः पुन. उसे प्रणाम करने लगा और बोला—हे मित्र ! तू ही मेरा शरीर, मेरा प्राण, मेरा भाई, मेरा नाथ, मेरे माता-पिता, मेरा गुरु, मेरा देव और मेरा परमात्मा है, इसमे तनिक भी सशय नही है। हे धीर वीर उपकारी ! आपने मुझे समस्त पापपुञ्ज का प्रक्षालन करने मे समर्थ और ससार की परिसमाप्ति करने वाली जिन-प्रतिमा का दर्शन करवाया। [२११-२१४]

हे रत्नचूड ! जिन-बिम्ब का दर्शन करवाकर आपने सर्वोत्कृष्ट सौजन्य का प्रदर्शन किया है, आपने मेरे लिये मोक्ष का द्वार खोल दिया है, मेरी ससार बेल को छिन्न-भिन्न कर दिया है, दुःख के जालो को मूल से उखाड कर सुख वृक्ष प्रदान किया है और मुझे परम सुखस्थान मोक्ष के निकट पहुँचा दिया है। हे परमोपकारी ! किन शब्दो मे तेरे उपकार का वर्णन करू ?

रत्नचूड—भाई ! तुम्हे क्या हो गया ? तू यह सब क्या कह रहा है ? मुझे तो कुछ भी समझ मे नही आ रहा है ?

पूर्वकालीन सुकृत्यों का स्मरण

विमल—आर्य ! भगवान् की प्रतिमा के दर्शन करने से मुझे जाति-स्मरण ज्ञान हो आया जिससे मुझे मेरे कई पूर्व-जन्मो की स्मृति स्पष्ट हो गई। पहले भी मैने कई जन्मो मे प्रेम और भक्तिपूर्वक भगवान् के बिम्ब के दर्शन किये है ऐसा मुझे याद आया। पूर्व-जन्मो मे सम्यक् ज्ञान रूपी निर्मल जल से मैंने चित्तरत्न को बहुत बार स्वच्छ किया था। सम्यक् दर्शन द्वारा धर्म के सद् अनुष्ठानो को आत्मीभूत बनाया/अपनाया था। आत्मा को भावना द्वारा भावित कर भावनामय बना दिया था, साधुओ की उपासना/सेवा से अन्त करण को सुवासित बना दिया था, समस्त प्राणीवर्ग के प्रति मैत्री-भाव रखना तो मेरा स्वभाव ही हो गया था, गुणीजनो के गुणाधिक्य को देखकर मैं हृदय मे आनन्द का अनुभव करता हुआ अगागीभाव/एकतार धारण कर चुका था, क्लेशग्रस्त प्राणी को देखकर चित्त मे करुणा रस उमड़ पडता था, समझाने पर भी न समझने वाले लोगो के प्रति उपेक्षा भाव अधिक दृढ़ हो गया था, विषयजन्य सुख और दुःख के प्रति औदासीन्य वृत्ति अधिक निश्चल हो गई थी, शातरस आत्मा मे एकरस हो गया था, सवेग से पूर्णतया परिचित हो गया था, ससार पर वैराग्य/निर्वेद दृढ हो गया था, करुणा मे अत्यधिक वृद्धि हो गई थी,

आस्तिकता सुदृढ हो गई थी, शुद्ध देव गुरु धर्म पर परिपूर्ण श्रद्धा हो गई थी, सद्गुरुओ पर अपूर्व भक्ति वृद्धि को प्राप्त हुई थी और उस समय तप-सयम तो घर के ही हो गये थे। इसीलिये आज भगवान् के बिम्ब के दर्शन करते ही उसके निष्कलक भाव हृदय पर अवतरित होने लगे और मैं अमृत सिंचित प्रीति से पूर्ण, सुख से सराबोर और हर्ष-प्रमोद से आच्छन्न हो गया होऊ, ऐसा लगने लगा।

उस समय मेरे मन मे आया कि, अहा! ये देव राग, द्वेष, भय, अज्ञान, शोक आदि से रहित है। ये प्रशान्त मूर्ति दिखाई देते है और* इनको देखने से नेत्र आनन्दित होते हैं। इनको बारम्बार देखने से मुझे अधिक आह्लाद होता है। इससे मुझे लगा कि मैने निश्चित रूप से पहले भी कभी इन्हे भली प्रकार देखा है। यह चिन्तन करते हुए मैं लोकातीत अवर्णनीय रस—जो अनुभूति के द्वारा सवेद्य (स्मृति मे आता) है और जो अत्यधिक सुन्दर है—मे डूब गया। अपने एक पूर्व-जन्म मे मुझे उत्तम सम्यक्त्व रत्न प्राप्त हुआ था, उस जन्म से आज के जन्म तक की सभी भूतकालीन घटनाओ का मुझे स्मरण हो आया। [२१५–२१८]

महात्मन्! मन्दिर मे खडे-खडे ही मुझे यह जाति-स्मरण ज्ञान हो गया, अत. महान गुरु द्वारा प्राणियो को होने वाले लाभ को आपने मुझे आज ही प्राप्त करवा दिया है।

ऐसा कहते-कहते रत्नचूड के पावो को विमलकुमार ने फिर पकड लिया और बोला-- हे नरोत्तम! मेरी मूर्छा को लेकर चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है। रत्नचूड विद्याधर ने उसे उठाया और गले लगाकर स्वधर्मी-बन्धु की तरह अत्यन्त विनयपूर्वक उसे प्रणाम किया।

७. विमल का उत्थान : गुरु-तत्त्व-परिचय

[रत्नचूड ने वास्तव मे उपकार का बदला चुकाया। देव दर्शन करवाकर विमल की आत्मा को मोक्ष के प्रति उन्मुख किया जिसके लिए विमल रत्नचूड का आभार मान रहा था। रत्नचूड विमल के उपकार का बोझ नही सह सका, क्योकि वह स्वय विमल के उपकार से दबा हुआ था। हे अगृहीतसंकेता! फिर रत्नचूड ने विमल को गुरु-तत्त्व का परिचय कराया, सुनो।]

---

* पृष्ठ ४८७

उपकार-कीर्तन

प्रणाम कर रहे विमल को उठाकर रत्नचूड ने स्वधर्मीबन्धु की भाति स्वय प्रणाम किया और बोला—कुमार ! मेरा मानसिक उत्साह और मेरे मन के सभी मनोरथ एक क्षण मात्र मे पूर्ण हुए है तथा प्रत्युपकार करने की मेरी इच्छा भी पूर्ण हुई है, क्योकि जिस महान तत्त्वज्ञान एव तत्त्वमार्ग का तुझे पूर्व-जन्म मे परिचय हुआ था, उसे इस जन्म मे स्मरण कराने मे मैं निमित्त बना । मेरी भावना पूर्ण हुई । हे कुमार ! तुझे जो इतना अधिक हर्ष हो रहा है वह ठीक ही है । कहा भी है :—

सन्नारी, पुत्र, राज्य, धन, मूल्यवान रत्न या स्वर्ग के सुख मिले तब भी महात्मा पुरुषो को सतोष नही होता है, क्योकि ये सभी सुख तुच्छ, बाह्य और अल्पकालीन हैं, अत. विचारशील धीर-पुरुषो को तो इनसे सतोष हो ही नही सकता । इस महा भयंकर भव-समुद्र मे अति दुर्लभ जैनेन्द्र मार्ग की प्राप्ति होने पर ऐसे महात्मा पुरुषो का हृदय हर्ष से परिपूर्ण हो जाता है । कारण यह है कि सर्वज्ञ-प्ररूपित धर्म की प्राप्ति होते ही प्राणी समता सुख रूपी अमृत के स्वाद का अनुभव करता है और उसके मन मे प्रतीति होती है कि अनन्त आनन्दपूर्ण मोक्ष को प्राप्त करवाने मे यही निश्चितरूप से साधन बन सकता है । अतएव सर्वज्ञ मार्ग की प्राप्ति से सज्जन पुरुषो को हर्ष और उल्लास क्यो न हो ? [२१६–२२३]

सभी प्राणी अपनी शक्ति के अनुसार फल प्राप्त करना चाहते है । कुत्ते को तो रोटी का टुकडा मिलने से वह सन्तुष्ट हो जाता है, किन्तु सिह को अपने पराक्रम से हाथी का शिकार कर उसके मास से ही सतोष होता है । चूहे को चावल के दाने मिल जाय तो ऊचा-नीचा होकर नाचने लगता है, जब कि हाथी को तो सुभोजन देने पर भी वह उपेक्षा से ही ग्रहण करता है । [२२४–२२५]

जिन्हे तत्त्वज्ञान का दर्शन नही हुआ, वे मूढ प्राणी क्षुद्र मन वाले होते है और थोडे से धन या राज्य की प्राप्ति होते ही फूलकर कुप्पा हो जाते है । [२२६]

धीर ! तुझे तो चिन्तामणि रत्न जैसा महामूल्यवान रत्न प्राप्त होने पर भी तूने इसे मध्यस्थ भाव (सहज भाव) से स्वीकार किया, किन्तु तुम्हारे मुख पर हर्ष की या विषाद की एक रेखा भी मैंने नही देखी । जब कि सन्मार्ग-लाभ (सर्वज्ञ मार्ग) की प्राप्ति से तेरा सारा शरीर रोमाचित हो गया और तुझे इतना अधिक आनन्द हुआ कि तेरे सारे शरीर मे हर्ष के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे । हे श्रेष्ठ पुरुष ! तू वास्तव मे धन्य है, साधुवाद का पात्र है । [२२७–२२८]

भाई ! मेरा इतना अधिक उपकार मानने की और मुझे गुरु मानने की कोई आवश्यकता नही है । बार-बार मेरे पावो मे पड़कर मुझे लज्जित क्यो करते हो ?* मैंने ऐसा तुम्हे क्या दे दिया है ? मैं तो निमित्त मात्र हूँ । तू स्वय ही ऐसी कल्याण-

* पृष्ठ ४८८

परम्परा के योग्य है, तुम में रही हुई पात्रता/योग्यता को देखकर ही मैंने तनिक-सा प्रयत्न किया था ।

यद्यपि समग्र भावो को जानने वाले तीर्थंकरो को भी लोकान्तिक देव जागृत करते है तथापि वे देव तीर्थंकरो के उपदेशक या गुरु नही हो जाते, ऐसा ही मेरे विषय मे समझो । [२२९–२३०]

विमल—महात्मन्! ऐसा मत कहो । तुमने मेरे लिये जो कुछ किया है उसकी तुलना लोकान्तिक देवो के आचार से नही की जा सकती । भगवान् को बोध लोकान्तिक देवो के निमित्त से नही होता, जबकि तुमने तो भगवान् के बिम्ब का दर्शन करवाकर मेरा सम्पूर्ण रूप से कल्याण किया है ।

सर्वज्ञ-भाषित धर्म की प्राप्ति मे जो भी प्राणी तनिक भी निमित्त/साधन बनता है वह परमार्थ से गुरु ही है । [२३१]

तुमने मुझे सर्वज्ञ धर्म की प्राप्ति करवाई, अत. तुम मेरे गुरु हो इसमे क्या सशय है ? सद्गुरु का विनय एव वैयावृत्य (सेवा) करना सज्जनो का कर्त्तव्य है, अत· तुम्हारे उपकार के बदले मे मै तुम्हारा विनय करू यह तो मेरा कर्त्तव्य है । बन्धुवर ! भगवान् की आज्ञा है कि स्वधर्मीबन्धु कैसी भी स्थिति का हो तब भी उसकी वन्दनादि विनय करनी चाहिए । तब मुझे सद्धर्म की प्राप्ति कराने वाले तुम्हारे जैसे महानुभाव का विनय न करने का तो प्रश्न ही नही उठता । किसी भी प्रकार की अपेक्षा या आकाक्षारहित होने से तू मेरा पवित्र सद्गुरु है, अतः तेरा विनय करना योग्य ही है । [२३२–२३४]

रत्नचूड—कुमार ! ऐसा मत कहो । तुझमे इतने अधिक गुण है कि उन गुणो की अपेक्षा से तू देवताओ का भी पूज्य है, वस्तुत तुम ही मेरे सत्गुरु हो, अतः तुम्हारा कथन किसी प्रकार उचित नही लगता । [२३५]

विरक्ति और कर्त्तव्य

विमल—सर्वगुण-सम्पन्न कृतज्ञ महामना पुरुषो का यह स्पष्ट लक्षण है कि वे अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गुरु की पूजा करते है, उनकी सेवा करते है और उन्हे सन्मान देते है । जो प्राणी अपने गुरु का दास, भृत्य और गुलाम बनकर उनकी सेवा करने मे लेश मात्र भी नही लजाता वही सच्चा महात्मा, पुण्यात्मा, भाग्यशाली, कुलवान, धैर्यवान, जगत् वन्दनीय, तपस्वी और विद्वान् है । जो शरीर गुरु की सेवा-शुश्रूषा मे तत्पर रहता है वही सच्चा शरीर है । जो वाणी गुरु की स्तुति करती है, गुरु के गुणगान करती है वही सच्ची वाणी है और जो मन सदा गुरु मे लवलीन रहता है वही सच्चा मन है । धर्मदान का उपकार करने वाले प्राणी के उपकार का बदला करोडो जन्मो तक उसकी सेवा करके भी नही चुकाया जा सकता ।

[२३६–२४०]

भाई ! मुझे तेरे साथ अभी निम्न विषय मे विशेष रूप से विचार करना है । इस संसार रूपी कैदखाने से मेरा मन अब विरक्त हो गया है, विषय मुझे दु ख से आच्छन्न लगते है, प्रशमभाव लोकोत्तर अमृत के आस्वादन जैसा लगता है,* अत अब मुझे गृहस्थ मे न रहकर भागवती दीक्षा लेनी है। मेरे माता-पिता और बहुत से भाई-बन्धु भी है उनको भी प्रतिबोध प्राप्त हो, क्या ऐसा कोई मार्ग या उपाय है ? यदि मेरे माध्यम से किसी उपाय से उन्हे भी प्रतिबोध हो सके और वे भी भगवद्-भाषित धर्म को प्राप्त कर सके, ऐसा कोई उपाय आपको ज्ञात हो तो विचार कर मुझे बतलाइये जिससे मैं तत्त्वत. बान्धव-कार्य का आचरण कर, उनका भी हित-साधक बन सकूं । अर्थात् उन पर तात्त्विक उपकार करने का मुझे अवसर मिल सके और मै अपने कर्त्तव्य को पूर्ण कर सकू, क्योकि अन्य किसी प्रकार से मैं अपना कर्त्तव्य निभा सकू यह सम्भव नही है ।

बुधाचार्य-परिचय

रत्नचूड—भाई विमल ! हाँ, इसका मार्ग है । एक बुध नामक आचार्य है । यदि वे किसी कारणवश किसी प्रकार यहाँ पधार सके तो आपके स्वजन सम्बन्धियो और ज्ञातिजनो को अवश्य ही प्रतिबोधित कर सकते है, क्योकि ये आचार्य अतिशयो के निधान, अन्य प्राणियो के मन के भावो (विचारो) को जानने मे निपुण, प्राणियो को प्रशम-रस की प्राप्ति करवाने मे असाधारण, अद्वितीय विद्वान्, सयम-वान् और योग्य समय पर समयानुकूल वाणी बोलने मे अतिशय विचक्षण है ।

विमल—आर्य ! ऐसे असाधारण गुण-लब्धि-सम्पन्न बुधाचार्य को आपने कहाँ देखा ?

रत्नचूड—गई अष्टमी को इसी क्रीडानन्दन उद्यान के इसी मन्दिर मे जब मै अपने परिवार के साथ भगवान् की पूजा करने आया था तब इन पूज्य आचार्य को मैने मन्दिर के बाह्य द्वार के पास देखा था । मन्दिर मे प्रवेश करते समय मैंने महान् तपोधन मुनिवृन्द को देखा था । उनके मध्य मे एक बडे तपस्वी बैठे थे जो वर्ण से काले, आकृति से वीभत्स, त्रिकोण सिर वाले, बाकी-टेढी लम्बी गर्दन वाले, चपटी नाक वाले, विकराल और छिदे-छिदे दातो वाले, लम्बोदर, सर्वथा कुरूप और दर्शक को देखने मात्र से उद्वेग प्राप्त हो ऐसे थे । जो अति मधुर और गम्भीर स्वर से स्पष्ट समझ मे आने योग्य वर्ण और उच्चारण से सुन्दर, भाव एव अर्थपूर्ण भाषा मे आकर्षक धर्मोपदेश सुना रहे थे । यह देखकर दूर से ही मेरे मन मे विचार आया कि ये आचार्यश्री देशना तो उच्चकोटि की सुना रहे है, शब्द-गाभीर्य भी बहुत

* पृष्ठ ४८६

अच्छा है किन्तु गुणानुसार उनका रूप नही है। इस प्रकार विचार करते-करते मै मन्दिर में प्रविष्ट हुआ।

रत्नचूड का देव-पूजन

मन्दिर मे पहुँचकर मैने भगवान् के विम्ब के साथ टकटकी लगा दी। मैने भगवत्प्रतिमा के ऊपर से निर्माल्य (पूर्व दिन मे अर्चित) फूल चन्दनादि उतारे, सम्मार्जन (मोरपीछी आदि से) किया, जल से प्रक्षालित कर स्वच्छ वस्त्र से पोछ कर विलेपन किया, पूजन की, पुष्पो से शोभित किया, मगल दीपक प्रज्ज्वलित किया, सुगन्धित धूप किया और समस्त प्रकार के सासारिक, मन्दिर सम्बन्धी और द्रव्य पूजा सम्बन्धी कार्यो का प्रतिषेध किया। अनन्तर बैठने के स्थान का प्रमार्जन (शुद्ध) कर भूमि पर दोनो घुटने और दोनो हाथ टिका पर पञ्चाग प्रणाम कर भगवत्मुख की ओर दृष्टि को एकाग्र किया। सद्भावनाओ के कारण शुभ परिणाम बढने लगे, हृदय मे आत्यन्तिक भक्ति प्रकट हुई, नेत्र हर्षाश्रुओ से पूरित हो गये, शरीर रोमाचित हो गया और रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया। मानो मेरा सारा शरीर कदम्ब पुष्प हो ऐसा विकस्वर हो गया। अत्यन्त भक्ति मे लीन होकर अर्थज्ञानपूर्वक मैने शक्रस्तव से प्रभु की स्तुति की, पञ्चाग प्रणाम किया और भूमि पर बैठ गया। फिर योग मुद्रा धारण कर सर्वज्ञ प्ररूपित प्रवचन एव शासनोन्नतिकारक प्रधान (श्रेष्ठ) स्तोत्रो से भगवान् की स्तुति की। स्तुति करते-करते भगवान् के गुणो से अन्त करण रग गया। तदनतर* पुन पञ्चाग प्रणाम कर, उसी अवस्था मे प्रमोद मे वृद्धि करने वाले आचार्यादि को नमस्कार किया। उसके बाद पुन खडा होकर जिन मुद्रा धारण कर चैत्यवन्दन किया और अन्त मे मुक्ताशुक्ति मुद्रा से प्रणिधान किया।

इसी बीच मे मेरे परिवार ने भी भगवान् के सन्मुख चढाने योग्य बलि-विधान (नैवेद्य) और स्नात्र पूजा के उपकरण (सामग्री) तैयार की तथा अलकारो से गुम्फित श्रेष्ठ वस्त्र का चन्दरवा बाधा। तत्पश्चात् जिनाभिषेक-पूजन (स्नात्र पूजा) प्रारम्भ की। इस समय सगीत प्रारम्भ हुआ, कलकाहल (ढोल) बजाया जाने लगा, सुघोषा घटा बजाया जाने लगा, नरघा और भाणक बजने लगे, दिव्य दुदुभियो की स्वर-लहरी निकलने लगी, शख का मधुरनाद होने लगा, पटह (नगारे) बजने लगे, मृदग पर ताल दी जाने लगी और कसालक की ध्वनि फैलने लगी। इस प्रकार इन वाद्ययत्रो की स्वर-लहरी के साथ स्तोत्र पाठ (स्नात्र पूजा) की मधुर शब्दावली गुञ्जरित होने लगी। इधर एक ओर मन्त्र-जाप चल रहा था और उधर पुष्पवर्षा की गई। पुष्पो की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर पक्ति भणभणाट/गुञ्जारव करने लगी। महामूल्यवान् रस, सुगन्धित औषधिया और पवित्र तीर्थो के जल से जगत् के समस्त प्राणियो के वधु जिनेन्द्र प्रतिमा का आनन्दपूर्वक अभिषेक किया जाने लगा। तत्पश्चात् शाति एव धीरजपूर्वक आम्रमजरी ने अभिषेक-पूजन किया। आम्रमजरी

---

* पृष्ठ ४६०

के साथ आगत समस्त सखियो ने भी हर्षित होकर समस्त उचित क्रियाएँ निष्पादित की और गायन तथा पूजा मे उल्लासपूर्वक सम्मिलित हुई। अन्त मे महादान दिया गया और अन्य सभी आवश्यक क्रियाएँ पूर्ण की गयी।

रत्नचूड का गुरु-दर्शन

इस प्रकार महदानन्द और उल्लास के साथ भगवान् का अभिषेक-पूजन पूर्ण कर साधु-वन्दना के लिये मै मन्दिर से बाहर आया। मैंने देखा कि एक महा-तपस्वी आचार्य साधुवृन्द के मध्य मे कमलासन पर विराजमान है। मन्दिर मे प्रवेश करते समय जैसे मधुर गम्भीर वाणी से धर्मोपदेश कर रहे थे वैसा ही आकर्षक धर्मोपदेश अभी भी कर रहे थे। परन्तु, इस समय उनका रूप अनुपम सुन्दर था। वे रतिरहित कामदेव के समान, रोहिणीरहित चन्द्र के समान, शचीरहित इन्द्र के समान. तप्त उत्तम सुवर्ण के समान, द्युतिमान एव तेजस्वी थे और स्वकीय देह-दीप्ति की प्रभा से आस-पास बैठे मुनिमण्डल को भी कचनमय (पीतवर्णी) बना रहे थे। उनके पॉव के तलवे (पगथली) कछुए के समान उन्नत, नाडियो का जाल गूढ और छिपा हुआ, प्रशस्त शुभ लक्षणों से चिह्नित, दर्पण के समान जगमग करते हुए नाखून, दोनो चरणो की सुश्लिष्ट अंगुलियाँ, हस्तिशूण्ड के समान जघाएँ, सिह-शावक की लीला को भी तिरस्कृत करने वाली कठिन पुष्ट गोलाकार और विस्तृत कटि, प्रलम्बमान (घुटने को छूने वाली) भुजाएँ, मदोन्मत्त विशाल हाथी के कुम्भस्थल को भेदन करने मे समर्थ हथेलियां, त्रिवली विराजित कण्ठ, चन्द्र एव कमल की शोभा को भी हीन दिखाने वाला मुख, उत्तुङ्ग एव सुस्थित नासिका, सुश्लिष्ट मांसल और प्रलम्ब कान, कमल दल की शोभा से भी अधिक शोभायमान एव कमनीय आँखे, एक समान और मिली हुई दन्त-पक्ति से स्फुरायमान प्रभा से रक्ताभ अधर, अष्टमी के चन्द्र के समान दैदीप्यमान विशाल ललाट जो नीचे के शरीरावयवो पर चूडामणि की शोभा को धारण कर रहा था। अधिक क्या कहू ? इस समय वे अतुलनीय और अनुपमेय शारीरिक सौन्दर्य के धारक थे।

साधु-पुरुषों की लब्धियाँ

मैंने मन्दिर मे प्रवेश करते हुए आचार्यश्री को धर्मोपदेश देते हुए उनकी गम्भीर एव मधुर ध्वनि सुनी थी,* अत उनका वही धीर-गम्भीर स्वर सुनकर मुझे विस्मय हुआ और मैं आश्चर्यान्वित होकर सोचने लगा कि, मदिर प्रवेश के समय मैंने जो स्वर सुना था ठीक वह ऐसा ही था। अहो ! तब तो मन्दिरप्रवेश के समय जो आचार्य धर्मदेशना दे रहे थे वे भी यही होने चाहिए, किन्तु वे तो एकदम कुरूप थे, फिर इनका अनुपम सुन्दर रूप कैसे हो गया ? पर इसमे नवी-

* पृष्ठ ४६१

नता भी क्या है ? मेरे धर्मगुरु सिद्धपुत्र चन्दन ने मुझे बताया था कि श्रेष्ठ साधु अनेक प्रकार की लब्धियो के धारक होते है और लब्धियो के प्रभाव से वे स्वेच्छानुसार अपना रूप विविध प्रकार का बना सकते है । वे परमाणु जैसे सूक्ष्म या पर्वत सदृश विशाल और अर्क (आकडे) की रूई के समान हल्के-फुल्के लघु भी बन जाते हैं । वे देह को विस्तारित कर विश्व मे व्याप्त हो सकते है, देवेन्द्र को किकर के समान आज्ञा दे सकते हैं, कठोर से कठोर शिलातल मे डुबकी लगा सकते है, एक घड़े मे हजारो घडे दिखा सकते है और एक वस्त्र से सहस्रो वस्त्र दिखा सकते है। वे मात्र, कान से ही नही अपितु शरीर के किसी भी अगोपाग से सुन सकते है, स्पर्श मात्र से समस्त रोगो को दूर कर सकते हैं और गगनतल मे पवन की भाति विचरण कर सकते है। इन लब्धिधारक सिद्ध-साधुओ के लिये कुछ भी अशक्य नही है। लब्धि द्वारा वे ऐसे विविध कार्य करने मे पटु होते हैं। इन आचार्य भगवान् को जब मैने पहले देखा था तब वे कुरूप थे और अब अत्यन्त स्वरूपवान एव सुडौल दिखाई देते हैं, इससे लगता है कि वे अतिशय लब्धिधारी है।

गुरु-परिचय

उपरोक्त विचार करते-करते प्रहृष्टचित्त होकर मैंने आचार्य महाराज को वन्दन किया और अन्य मुनियो को भी मैंने नमन किया। उन्होने भी मुझे स्वर्ग और मोक्षमार्ग के साधनभूत 'धर्मलाभ' रूपी आशीर्वाद दिया। शुद्ध भूतल पर बैठकर मैं आचार्यदेव की अमृतोपम धर्मदेशना सुनने लगा। उनकी यह धर्मदेशना भव्य प्राणियो के मन को आकर्षित करने वाली, विषयाभिलाषाओ मे विक्षेप डालने वाली, मोक्ष-प्राप्ति की अभिलाषा उत्पन्न करने वाली, ससार-प्रपच पर निर्वेद (वैराग्य) जागृत करने वाली और जीव को कुमार्ग पर जाने से रोकने वाली थी। आचार्यश्री के ऐसे अद्वितीय उपदेश को सुनकर मैं उनके गुणो से गद्गद् हो गया। फिर मैने निकट बैठे हुए एक शान्तमूर्ति मुनिराज से पूछा—ये भगवान् कौन है ? इनका नाम क्या है ? ये कहाँ के है ? मेरे प्रश्नो के उत्तर मे मुनिराज बोले—ये भगवान् हमारे गुरुदेव हैं। इनका नाम आचार्य बुध है। ये धरातल नगर के राजा शुभविपाक और निजसाधुता रानी के पुत्र हैं। राज्य वैभव को तृणतुल्य समझकर इन्होने उसका त्याग कर दिया और श्रमण बन गये। अधुना अनेक स्थानो पर अप्रतिबद्ध विहार करते हुए आचार्य भगवान् भिन्न-भिन्न स्थानो पर विचरण कर रहे है।

भाई विमल ! बुधाचार्य के सम्बन्ध मे सुनकर, उनके अतिशय की महिमा प्रत्यक्ष देखकर, उनके अद्भुत सुन्दर रूप को देखकर और उनके धर्मदेशना-कौशल का अनुभव कर मैंने सोचा कि अहो ! आज तो आदिनाथ भगवान् के दर्शन कर वस्तुत: रत्नाकर के दर्शन ही किये हैं, क्योकि ऐसे-ऐसे पुरुष-रत्न भी यहाँ मिल जाते है। इस विचार मे मैं भगवान् अर्हत् प्रणीत मार्ग (मत) मे मेरु के समान अडिग

हो गया और मेरा पूरा परिवार भी इन आचार्य भगवान् के दर्शन से अर्हद् धर्म मे स्थिर हो गया । भगवान् को वन्दना कर मै अपने स्थान पर गया और आचार्यश्री भी वहाँ से* अन्यत्र विहार कर गये । यह घटना गत अष्टमी की है । भाई विमल ! मैं इसीलिये कह रहा था कि यदि महात्मा बुध आचार्य किसी प्रकार यहाँ पधार जाये तो तुम्हारे परिवार और बन्धुओ को वे अवश्य ही प्रतिबोध दे सकते है । इन आचार्य भगवन्तो को तो दूसरो पर उपकार करने का व्यसन ही है । इसीलिये उन्होने उस दिन मुझे और मेरे परिवार को धर्म मे स्थिर करने के लिये दो बार भिन्न-भिन्न वैक्रिय रूप धारण किया था ।

विमल—आर्य ! तब तो इन महात्मा को यहाँ पधारने के लिये आप अवश्य ही अभ्यर्थना करना ।

रत्नचूड—जैसी कुमार की आज्ञा । अभी तो मेरे वियोग से मेरे पिता व्याकुल हो रहे होगे और मेरी माता तो पागल हो गई होगी, इसलिये उनके मन को शान्ति देने के लिये उनके पास जाना होगा । फिर तुम्हारी आज्ञानुसार सब व्यवस्था करूंगा । इस विषय मे अब तुमको मन मे किंचित् भी संकल्प-विकल्प करने की आवश्यकता नही है ।

सज्जन से बिछोह

विमल—आर्य रत्नचूड ! क्या आपको जाना ही पडेगा ?

रत्नचूड—कुमार ! आपकी सगति-रूप अमृतरस का आस्वादन करने के पश्चात् जाने की बात तो मेरे मुँह से निकल ही नही सकती । सज्जन की दृष्टि से जड (मूर्ख) भी सन्तोष प्राप्त करता है । जैसे चन्द्र के उदय होने पर उसके दर्शन से कुमुद विकसित हो जाता है वैसे ही उस जड़ प्राणी को भी क्षणभर मे सज्जन पर इतनी प्रीति हो जाती है कि वह जीवित रहते हुए उस सज्जन को छोड़कर अन्यत्र किसी स्थान पर नही जाता । अनन्त दु खो से परिपूर्ण इस ससार मे अमृत के समान यदि कुछ भी है तो वह सज्जन पुरुष के साथ हृदय-मिलन ही है, ऐसा मनीषियो का कथन है । इस ससार मे विरह रूपी मुद्गर न हो तो सज्जन की सगति जैसी अमूल्य वस्तु के दो टुकडे करने (भग करने) मे कोई भी पदार्थ समर्थ हो ही नही सकता । जो प्राणी एक बार सज्जन पुरुष को प्राप्त कर उसे छोड देता है, वह मूर्ख चिन्तामणिरत्न, अमृत या कल्पवृक्ष को प्राप्त कर उसे छोड रहा है, ऐसा समझना चाहिये । हे कुमार ! तेरे विरह के त्रास से जाने की बात कहने से ही मेरी जीभ तालु से चिपक रही है । 'मुझे यहाँ से जाना है' ऐसे शब्द मैं आपके सन्मुख किसी प्रकार बोल भी नही सकता । अरे ! आपके सन्मुख ऐसा कहना तो मुझे वास्तव मे वज्राग्नि के समान अत्यन्त निष्ठुर लगता है । अरे ! ये शब्द तो मेरे मुख से निकल

* पृ० ४६२

भी नही सकते । फिर भी मेरे माता-पिता अत्यधिक चिन्तित हो रहे होगे अतः इस कारण से उन्हे शान्ति प्रदान करने के लिये लाचारी से मुझे ऐसा कहना ही पड रहा है । [२४१-२४६]

विमल—आर्य रत्नचूड ! यदि ऐसा ही है तो आप प्रसन्नता से जाइये, परन्तु मैंने जो अभ्यर्थना की है उसे भूल मत जाना । किसी भी प्रकार से महात्मा बुधसूरि को एक बार यहाँ अवश्य लाना ।

रत्नचूड—कुमार ! इस विषय मे सकल्प-विकल्प करने की आवश्यकता ही नही है ।

सज्जन पुरुष के बिछोह की कल्पना मात्र से कातरहृदया आम्रमजरी आँखो मे आँसू लाते हुए टूटती आवाज मे बोली—कुमार ! आप मेरे सगे भाई है। हे नरोत्तम ! आप मेरे देवर है । हे सुन्दर ! वस्तुत: आप ही मेरे शरीर और प्राण है । आप ही मेरे नाथ अर्थात् कुशल-क्षेमकारक है ।* हे महाभाग ! देखो, मैं गुणहीन हूँ इसलिये मुझे भूल मत जाना, मुझे याद रखना । आप जैसो के स्मृति पटल मे जो व्यक्ति रहे वह वास्तव मे भाग्यशाली है । [२५०-२५१]

विमल—आर्ये ! यदि मैं अपने गुरु और गुरुपत्नी को भी स्मृति पटल मे नही रखू तो मेरा धर्म कहाँ रहा और मेरी सज्जनता या बडप्पन भी कहाँ रहा ? [२५२]

इस प्रकार मेरे साथ वार्तालाप करते हुए रत्नचूड और आम्रमजरी वहाँ से विदा हुए । ★

८. दुर्जनता और सज्जनता

गुरुकर्मी वामदेव

ससारी जीव अगृहीतसकेता के समक्ष स्वय की वामदेव के भव की कथा आगे सुनाते हुए कहता है कि, हे भद्रे अगृहीतसकेता ! रत्नचूड और विमलकुमार ने बहुत ही उच्चकोटि की धर्म सम्बन्धी इतनी बात-चीत की, पर गुरुकर्मी और लम्बे समय तक ससार भ्रमण करने वाला होने से, मद्यपी, निद्रित, विक्षिप्त, मूर्छित, अनुपस्थित और मृतप्राय की भाँति मेरे हृदय मे धर्म का एक वचन भी

---

* पृष्ठ ४६३

नही उतरा। मेरा हृदय मानो वज्र-शिला के कठोरतम पत्थर से बना हो जिससे कि वह जिनवचन रूपी अमृत के सिंचन से भी तनिक भी नरम, भीगा या द्रवित नही हुआ। इसके पश्चात् भगवान् की विशेष स्तुति कर मैं और विमल मन्दिर से बाहर निकले।

अमूल्य रत्न को भूमि में छुपाना

मन्दिर के बाहर आकर विमल बोला—भाई वामदेव ! यह रत्न देते समय रत्नचूड ने मुझ से कहा था कि यह बहुत ही मूल्यवान और प्रभावशाली है। किसी महान् लाभदायक प्रसग पर ही इसका उपयोग किया जा सकता है। मुझे तो इस रत्न के प्रति न तो कोई विशेष इच्छा है और न कोई आकर्षण। मेरी उपेक्षा के कारण कही यह गुम न हो जाय अतः इसे यही किसी स्थान पर छिपाकर हमे चलना चाहिये। उत्तर मे मैंने कहा—जैसी कुमार की इच्छा। मेरे इतना कहते ही विमल ने अपने वस्त्र के पल्ले से बधे रत्न को मुझे सौप दिया। मैंने जमीन मे गड्ढा खोद कर रत्न को छिपा दिया और भूमि को समतल बनादी ताकि कोई पहचान न सके। फिर हम दोनो नगर में गये। वहाँ से मैं अपने घर चला गया और कुमार राजभवन को चला गया।

दौर्जन्य : रत्न का अपहरण

घर पहुँचते ही मेरे शरीर में स्तेय और बहुलिका (माया) ने प्रवेश किया। उनके प्रभाव मे मैं सोचने लगा कि रत्न देते समय रत्नचूड ने कहा था कि इससे सर्व कार्य सिद्ध हो सकते है और यह चिन्तामणि रत्न के समान समस्त गुणो से परिपूर्ण है। ऐसी मूल्यवान वस्तु बार-बार प्राप्त नही होती, ऐसे रत्न को कौन छोड़ सकता है ? अतएव अन्य सब खटपट और चिन्ता छोडकर किसी भी प्रकार इस रत्न को चुरा ही लूँ। [२५३-२५४]

ऐसे अधम विचार के परिणामस्वरूप मै नीचता पर उतर आया। विमल के स्नेह को भूल गया और उसके सद्भावो की अवगणना करदी। इस कृत्य का मुझे भविष्य मे क्या फल मिलेगा, इसका भी विचार नही किया। महापाप कर रहा हूँ यह भी नही सोचा। कार्य-अकार्य की तुलना भी नही की और मात्र स्तेय एव माया के वशीभूत होकर मैं तुरन्त उस स्थान पर गया जहाँ भूमि मे रत्न छिपा-कर रखा था। उस गड्ढे को खोदकर रत्न को वहाँ से निकाला और दूर दूसरे स्थान पर जमीन खोदकर उसे छुपा दिया। मेरे मन मे तर्क उठा कि यदि विमल यहाँ आ गया और उसे जमीन खोदने पर रत्न नही मिला तो वह यही समझेगा कि मैंने रत्न चुरा लिया है, अत. मुझे इसी वस्त्र के साथ रत्न जितना बडे पत्थर का टुकडा बाँधकर इसी स्थान पर छुपा देना चाहिये जिससे कि यदि कदाचित् विमल जमीन खोदकर देखे और उसे रत्न के स्थान पर पत्थर मिले तो वह समझेगा कि

उसकी पुण्यहीनता के कारण यह रत्न पत्थर मे बदल गया है।* ऐसा सोचकर मैंने उसी कपडे मे रत्न के आकार का पत्थर बाधकर उसी स्थान पर और उसी दशा में दबा दिया। इस प्रकार कार्य सम्पन्न कर मैं अपने घर चला आया।

वह दिन तो मेरा आराम से बीत गया। रात्रि मे पलग पर लेटते ही मुझे चिन्ता होने लगी कि, 'अरे! मैं रत्न घर नही लाया, यह तो बहुत बुरा किया। यदि किसी ने मुझे रत्न दूसरे स्थान पर छुपाते देख लिया होगा तो वह अवश्य ही उसे निकाल कर ले जायेगा। अब मुझे क्या करना चाहिए? इस अन्धेरी रात मे तो अभी वहाँ जाना अशक्य हैं। तब 'क्या हो? क्या करूँ?' इस प्रकार सच्चे-झूठे तर्क-वितर्क करने से मन इतना अधिक आकुल-व्याकुल और सन्तप्त हो गया कि मुझे सारी रात नीद नही आई, पलग पर इधर-उधर करवट बदलते हुए ही रात बीत गई। प्रात उठते ही जहाँ रत्न छुपाया था वहाँ मै शीघ्रता से जा पहुँचा।

इसी बीच विमल मेरे घर पर आया तो मै उसे घर पर नही मिला। परिजनो को पूछने पर उन्होने कहा कि 'निश्चित रूप से तो कुछ भी नही कह सकते, परन्तु उसे क्रीडानन्दन उद्यान की तरफ जाते हुए अवश्य देखा था।' विमल मेरे स्नेह से खिचा हुआ मेरे पीछे-पीछे जिस मार्ग से मै गया था उसी मार्ग से आया। दूर से मैने उसे आते देखा और देखते ही घबराहट मे मै यह भूल गया कि रत्न को मैने अन्य स्थान पर छिपाया है। फलत: रत्न के स्थान पर मैने जो पत्थर का टुकडा कपडे मे लपेट कर छुपाया था, घबराहट मे मैने उसे ही खोदकर निकाल लिया और चट-पट कटि-वस्त्र मे छुपा लिया और जमीन को समतल कर दिया। फिर मैं उद्यान के दूसरे हिस्से मे चला गया। इतने मे विमल मेरे पास आ पहुँचा। उसने देखा कि भय से मेरी आँखे बार-बार झपक रही हैं तो वह बोला—'मित्र वामदेव! तू अकेला यहाँ क्यो आया? अरे! तू डर क्यो रहा है?' मै बोला –'भाई! प्रात उठते ही मुझे समाचार मिला कि तुम उद्यान में आये हो अत. तुमसे मिलने मै भी यहाँ आ गया। यहाँ आकर मैंने तुमको बहुत ढूढा पर तुम नही मिले, इस कारण से मेरा मन भय से त्रस्त हो गया कि कुमार कहाँ चले गये? इसी चिन्ता मे मेरी आँखे भयभीत प्रतीत हो रही है। अब तुम्हे देखकर मेरा भय दूर हो गया। अब मेरा मन स्वस्थ हो जायेगा।' मेरा उत्तर सुनकर विमल बोला—'यदि ऐसा है तो अच्छा ही हुआ कि हम मिल गये। चलो, अब हम भगवान के मन्दिर मे दर्शन करने चले।' मैंने कहा—चलो।

हम दोनो जिन मन्दिर के पास आ पहुँचे। विमल मन्दिर मे चला गया और मै कुछ बहाना बनाकर द्वार के बाहर ही खडा हो गया। मै सोचने लगा कि 'हो न हो विमल अवश्य ही सब कुछ जान गया है, अत मै शीघ्र ही यहाँ से भाग जाऊ,

---

* पृष्ठ ४६४

अन्यथा विमल अवश्य ही यह रत्न वापिस ले लेगा। जब तक मैं इस नगर मे रहूँगा, वह मुझे छोडेगा नही, अत. मुझे यह नगर छोडकर पलायन ही कर देना चाहिये।' ऐसा विचार कर मै तेजी से भागा। घर पर भी नही गया, सीधा नगर के बाहर चला आया। दौडते-दौडते मैने अधिक प्रदेश पार कर लिया। तीन रात और तीन दिन लगातार दौड कर मै २८ योजन (३४० कि० मी० लगभग) दूर पहुँच गया। फिर मैने अपनी अण्टी मे से रत्न वाला कपड़ा निकाला और उसकी गाठ खोली। हाथ मे लेकर देखता हूँ तो रत्न के स्थान पर पत्थर! पत्थर को देखते ही 'हाय! मर गया' कहता हुआ मै मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा। बडी कठिनता से मुझे चेतना आई तो पश्चात्ताप करने लगा और जोर-जोर से रोने लगा। मै क्यो वहाँ से भाग कर आया? नगर भी छोडा और रत्न भी गुमाया। जीव! चल, अब वापिस उस स्थान पर लौट कर रत्न लेकर आ। रोते हुए मै वापिस अपने नगर की तरफ चला।

विमल का सौजन्य

हे अगृहीतसंकेता! इधर मेरे मन्दिर के बाहर से भागने के बाद जब विमल भगवान् के दर्शन कर बाहर निकला तो उसने मुझे वहाँ नही देखा, जिससे उसे यह चिन्ता हुई कि वामदेव कहाँ चला गया? उसने सारे* जगल मे, मेरे घर और पूरे नगर मे मेरी खोज करवाई, पर मेरा कही पता नही लगा। उसने चारो दिशाओ मे अपने आदमी मुझे ढूंढने के लिए भेजे। उधर जब मै वापस लौट रहा था तब मेरा पता लगाने घूम रहे विमल के कुछ आदमी मुझे दिखाई दिये जिन्हे देखते ही मै भयभीत हो गया। वे मेरे पास आये और कहने लगे—'वामदेव! तुम्हारे वियोग से कुमार घबरा गये है, प्रतिक्षण शोक-मग्न रहते है, तुम्हे ढूंढकर लाने के लिए हमे भेजा है। उनकी बात सुनकर मैंने मन ही मन कहा—'चलो, अच्छा हुआ। लगता है विमल ने मुझे रत्न निकालते नही देखा' इस विचार से मेरे मन का भय दूर हो गया। विमल के पुरुष मुझे लेकर विमल के पास आये। मुझे देखते ही विमल अत्यन्त स्नेहपूर्वक मुझसे गले मिला। हम दोनो की आँखो मे आसू थे, पर मेरे आसू कपट के थे और विमल के आसू प्रियजन से मिलन पर हर्ष के थे।

वामदेव की अधमता · बनावटी बात

मिलन के बाद विमल ने मुझे अपने आधे आसन पर बिठाया और मुझसे पूछा—मित्र वामदेव! तू मन्दिर के बाहर से क्यो चला गया? कहाँ गया? क्या हुआ? क्या बात हुई? सब कुछ मुझे बता।

उत्तर मे मैंने कहा—मित्र विमल! सुनो, जब तुम जिनमन्दिर मे चले गये तब मै भी तुम्हारे पीछे-पीछे मन्दिर मे आ रहा था कि मैंने आकाश मे से किसी विद्याधरी को भूतल पर आते देखा। वह कैसी थी? सुनो :—

* पृष्ठ ४९५

वह विद्याधरी अपने रूप और लावण्य के तेज से समस्त दिशाओ को प्रकाशित कर रही थी और हाथ मे यमराज की जिह्वा जैसी भीषण नगी तलवार लिये हुए थी। [२५५]

एक ही समय मे सुन्दर और भयकर रूप वाली उस विद्याधरी को देखकर मैं शृ गार और भयानक रस का एक साथ अनुभव कर ही रहा था कि उसने मुझे वहाँ से उठाया और आकाश मार्ग में तेजी से उड़ने लगी।

उस समय मैंने हा कुमार! हा कुमार!! कह कर जोर से आवाजे लगाईं, पर मुझ विह्वल और रोते-चिल्लाते को लिये हुए वह विद्याधरी और भी तेजी से आगे बढने लगी। आकाश मे उडते-उड़ते वह अपने पीन पयोधरो को मेरे वक्ष से चिपका कर मुझे अपनी बाहो मे भीचकर अति स्नेह से बार-बार मेरे मुँह का चुम्बन करने लगी और रतिक्रिया के लिये मुझ से प्रार्थना करने लगी। मित्र! यद्यपि वह स्त्री मुझ पर इतनी अनुरक्त थी और इतना स्नेह दिखा रही थी, फिर भी तेरे जैसे श्रेष्ठ मित्र के वियोग मे वह मुझे विष जैसी लग रही थी। सारे वक्त मैं यही विचार कर रहा था कि यद्यपि यह विद्याधरी अत्यधिक रूपवती है और मुझ पर इतनी अधिक आसक्त है तथापि उससे भी अधिक उत्तम मित्र के बिछोह मे वह लेशमात्र भी मुझे सुख नही दे सकती। [२५६-२५९]

वह विद्याधरी मुझसे सम्भोग के लिये प्रार्थना कर ही रही थी कि अचानक एक-दूसरी विद्याधरी वहाँ आ पहुँची और उसने मुझे देखा। मुझे देखते ही उसे भी मेरे साथ विषय-सुख भोगने की इच्छा जागृत हो गई और वह भी मुझे खीचने लगी। इस खीचातान मे दोनो विद्याधरी एक-दूसरे को 'ओ पापिनी! दुष्टा! तू कहाँ जा रही है ?' कहती हुई अपशब्दो की मारा-मारी करने लगी और उनमे घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। [२६०]

वे दोनो लडाई मे इतनी व्यस्त हो गई कि मेरा भान ही भूल गई जिससे मैं उनके हाथ से छूट पडा और भूमि पर आ गिरा। इतने ऊपर से गिरने के कारण मेरी हड्डिया चूर-चूर हो गई और मेरे बहुत सी चोटे आई। मेरा शरीर चूर्ण बन गया और मुझ मे भागने की भी शक्ति न रही। फिर भी मैं सोचने लगा कि 'इन दोनो मे से कोई आकर मुझे पकडे उससे पहले ही यदि मैं यहाँ से भाग जाऊँ तो इस जीवन मे विमल से मिल सकता हूँ' यही सोचकर मै बडी कठिनाई से छिपते हुए वहाँ से भागा। मार्ग मे मेरा पता लगाने आये हुए तेरे पुरुष मुझे मिल गये और मै इनके साथ तेरे पास चला आया।* कुमार! यही मेरी आप बीती है।

विमल का मुझ पर स्वाभाविक और निष्कपट प्रेम था जिससे मेरी बनावटी कहानी सुनकर भी वह बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे शरीर मे बसी हुई बहुलिका (माया)

---

* पृष्ठ ४९६

भी बहुत प्रसन्न हुई। माया को लगा कि वामदेव ने विमलकुमार को खूब मूर्ख बनाया और उसे ठगकर भी उसका विश्वास प्राप्त कर लिया।

वामदेव को उदरशूल

मैं अपनी कृत्रिम कथा विमल को सुना ही रहा था कि अचानक मेरे शरीर मे इतनी तीव्र वेदना उठी, मानो मगरमच्छ मुझे निगल रहा हो, मानो मै वज्र से दबा जा रहा हूँ, मानो यमराज मुझे चबा रहे हो। अचानक क्या हो गया? कुछ समझ मे नही आया। मेरे उदर की समस्त आते कटने लगी, पेट मे इतने जोर का शूल/दर्द उठा कि मेरी आँखे बाहर निकल आयी, सिर मे दर्द से चीसें उठने लगी, शरीर का जोड़-जोड ढीला पड़ गया, दात हिलने लगे, मुह मे से सासे निकलने लगी, नेत्र फिरने लगे और वाणी बन्द हो गयी। ऐसी अनहोनी वेदना देखकर विमल भी घबरा गया, आकुल-व्याकुल हो गया और हाहाकार कर उठा। धवल महाराज भी वहाँ आ पहुँचे और बहुत भीड इकट्ठी हो गई। तुरन्त ही नगर के सब वैद्यो को बुलवाया गया। राजाज्ञा से उन्होने मुझे बहुत-सी औषधिया खिलाई, पर मेरी व्याधि मे थोडी भी कमी नही हुई।

अमूल्य रत्न की खोज : भण्डाफोड़

मेरी इस अवस्था को देखकर विमल को रत्न की याद आयी। अभी रत्न के उपयोग करने का समय है, ऐसा सोचकर वह स्वय ही क्रीडानन्दन उद्यान मे गया और जहाँ रत्न छुपा कर रखा था उस स्थान को खोदा। पर, अफसोस! उसे वहाँ रत्न नही मिला। 'अब क्या होगा? मित्र के प्राण कैसे बचेगे?' यही सोचते हुए वह मेरे समीप वापिस आया। उसे रत्न के जाने का विषाद नही था, पर मेरे प्राणो की चिन्ता थी।

इसी बीच उसी समय एक बुड्ढी स्त्री सिर धुनाती हुई वहाँ प्रकट हुई। पहले उसने अपने शरीर को मरोडा, दोनो हाथ ऊँचे किये, सिर के बाल खोले भयकर रूप बनाया, फट्-फट् आवाज करने लगी और सारे शरीर से भयकर चेष्टाये करने लगी। राजा और सभी लोग भयभीत हो गये और उन्होने उसकी पूजा की, धूप दिया और उससे पूछा—भट्टारिका! तू कौन है?

उत्तर मे वह बोली—मै वन देवी हूँ। वामदेव की यह अवस्था मैने ही की है। इस पापी ने सद्भावयुक्त सरल स्वभावी विमल को धोखा देकर ठगा है। इस पापी ने रत्न को चुरा कर दूसरे स्थान पर छिपा दिया था। फिर घबराहट मे रत्न के बदले पत्थर को लेकर भागा था। जब इसे मालूम हुआ तो रत्न लेने के लिये लौटकर वापिस आ रहा था और यहाँ आकर इसने यह नकली कहानी गढ सुनाई है। इस प्रकार वनदेवी ने सारी घटना का भण्डाफोड़ इतने विस्तार से किया कि सब लोग मेरी चोरी और ठगी के बारे मे समझ गये। जहाँ मैंने रत्न छुपाया था

उस स्थान को साथ ले जाकर वताया और रत्न दिखाया। इतना प्रत्यक्ष प्रमाण देकर वह वोली—इस दुरात्मा वामदेव को अव मैं चकनाचूर कर दू गी।

वनदेवी के निर्णय को सुनकर विमल ने प्रार्थना की—देवि! सुन्दरि! ऐसा न करिये। यदि आप ऐसा करेगी तो मेरे मन को अत्यन्त दु ख होगा।

सुजनता की पराकाष्ठा

विमल की प्रार्थना पर देवी ने मुझे छोड दिया, पर लोगो ने मेरी जी भर कर खूब निन्दा की, शिष्ट लोगो ने मुझे धिक्कारा और मेरा तिरस्कार किया, वालको ने मेरी हसी उडाई और स्वजन सम्बन्धियो ने भी मुझे घर से निकाल दिया। लोगो की दृष्टि मे मैं तृण से भी अधिक तुच्छ और नीच हो गया। विमल मे इतनी महानता थी कि इतनी अधिक लज्जाकारी घटना हो जाने पर भी वह अव भी मुझे पहले जैसा ही मित्र मानता था और मुझ पर पहले जैसा ही स्नेह रखता था। अपने स्नेह मे, अपने प्रेम-भाव में उसने कोई कमी नही आने दी। एक क्षण भी मेरे से अलग नही होता था और मुख से भी यही कहता था—मित्र वामदेव! ना-समझ लोग कुछ भी कहे, तू अपने मन में तनिक भी उद्विग्न न होना,* क्योकि सव लोगो को प्रसन्न करना तो बहुत कठिन है। अत. लोगो की बात पर तुझे ध्यान ही नही देना चाहिये।

हे अगृहीतसकेता! विमलकुमार जब उपरोक्त वात कह रहा था तब उसे मेरे दुष्ट चरित्र के वारे मे सव कुछ मालूम हो गया था। तब भी मै बहुलिका (माया) के प्रभाव से ऐसा दुष्ट व्यवहार कर रहा था और भाग्यशाली विमल फिर भी मेरे साथ ऐसा अच्छा वर्ताव कर रहा था। इसका कारण यह था कि सूर्य चाहे पश्चिमी दिशा मे उदय हो और पूर्व मे अस्त हो, क्षीरसमुद्र भले ही अपनी मर्यादा को छोड दे, आग का गोला भले ही वर्फ जैसा ठण्डा हो जाय, मेरु पर्वत चाहे तुम्बी की तरह पानी पर तैरने लगे, पर अकारण करुणा और स्नेह वाले सज्जन पुरुष तो दाक्षिण्य समुद्र से ओत-प्रोत ही होते हैं। जिसका आदर किया हो, जिसे एक वार अपना लिया हो, उसे वे नही छोड़ते। भद्रे! यही सज्जनो की वास्तविक महत्ता है। सज्जन पुरुष दुष्टो की चेष्टाओ को जानते हुए भी नही जानते, देखते हुए भी नही देखते और स्वय परम पवित्र शुद्ध आत्मा वनकर ऐसे लोगो पर थोडी भी श्रद्धा नही रखते। हे अगृहीतसकेता! उस समय मेरे सगे सम्वन्धियो ने मुझे छोड दिया, मेरा वहिष्कार कर दिया, लोगो ने मुझे अधम माना तथापि महात्मा विमलकुमार ने मुझे अपने पास रखा। मैं उसी के साथ रहने लगा। [१–६]

❖

* पृष्ठ ४९७

९. विमल-कृत भगवत्स्तुति

[मेरे अत्यन्त अधम व्यवहार के उपरान्त भी विमलकुमार ने अपनी सज्जनता बनाये रखी । मेरे प्रति अपने प्रेम-भाव मे थोड़ी भी कमी न आ पाये इसका पूरा ध्यान रखा । मेरे प्रति उसने अपना सम्बन्ध पहले की ही भाति निरन्तर रखकर अपनी महानता और विशिष्टता का परिचय दिया ।]

अन्यदा एक दिन मै विमल लोचन विमल के साथ क्रीडानन्दन उद्यान मे स्थित तीर्थंकर महाराज के मन्दिर मे दर्शन करने गया । वन्दन-पूजन की समस्त विधिया/क्रियाये पूर्ण होने के पश्चात् विमल ने अत्यन्त मधुर वाणी मे श्री जिनेश्वर देव की स्तुति प्रारम्भ की ।

विमल अभी स्तुति कर ही रहा था कि इतने मे ही अपनी देदीप्यमान द्युति से दिशाओ को प्रद्योतित करता हुआ रत्नचूड विद्याधर वहाँ आ पहुँचा । उसके साथ अन्य बहुत से विद्याधर भी आये थे । उन्होने पीछे खडे होकर कर्णप्रिय अत्यन्त मधुर आवाज मे गाई जा रही भगवान् की स्तुति को सुना । स्तुति सुनकर रत्नचूड अतीव प्रमुदित हुआ । वह सोचने लगा कि, अहा ! धन्यात्मा विमलकुमार जगत्बन्धु महाभाग्यवान् श्री परमात्मा की स्तुति कर रहा है, धन्य है उसे ! हमे उसकी स्तुति को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये । फिर उसने बिना कुछ शब्द किये सकेत मात्र से ही सब विद्याधरो को शान्त रहने का सकेत किया और स्वय भी आम्रमजरी के साथ चित्रलिखित-सा हलन-चलन रहित निश्चल होकर खडा हो गया ।

उस समय विमलकुमार के नेत्र आनन्द अश्रुओ से पूरित हो गये । उसकी दृष्टि तीर्थकर देव के मुख पर एकाग्र और स्थिर हो गई । उसकी वाणी अतिशय गम्भीर हो गई और उसका सम्पूर्ण शरीर रोमाचित/पुलकित हो गया । उस समय उसमे भक्ति का आवेश इतना प्रवल हो गया कि उसके प्रभाव मे मानो वह साक्षात् शाश्वत परमात्मा श्री जिनेश्वर भगवान् के सम्मुख खडा होकर उन्हे उपालम्भ की भाषा मे, विश्वास-आश्वासन की भाषा मे, स्नेह युक्त प्रणय शब्दो मे, प्रार्थना और प्रेम की मधुरता से विशुद्ध मन से स्तुति करने लगा । [७-१५]

इस अपार महा भयकर संसार समुद्र मे डूवे हुए प्राणियो को तारने वाले हे नाथ ! इस भीषण भवसागर मे पड़े हुए मुझ को आप क्यो भूल गये ?

त्रैलोक्य को आनन्द देने वाले हे लोक वन्धु ! मैं सद्भाव को धारण कर रहा हूँ, फिर भी आप मुझे इस ससार सागर से तारने मे विलम्ब क्यो कर रहे है ? लगता है, आप मुझे भूल गये है ।

हे करुणामृतसागर ! मैं दीन-हीन अनाथ वनकर आपकी शरण मे आ गया हूँ तथापि आप मुझे भव से पार नही करते ।* हे स्वामिन् ! शरणागत के साथ इस प्रकार व्यवहार करना कदापि उचित नही है ।

हे नाथ ! आप दयालु है तब इस घोर ससार अटवी मे एक छोटे हिरण के बच्चे के समान मुझे अकेला क्यो छोड रखा है ? यह आपकी कैसी दयालुता है ?

भयभीत और निरालम्ब अकेला हरिण का बच्चा जैसे घोर जगल मे इधर-उधर तरल दृष्टि दौडा कर सहायता के लिये देखता है वैसे ही हे नाथ ! मैं भी असहाय और भयत्रस्त वना सजल नेत्रो से इधर-उधर आपकी सहायता की अपेक्षा कर रहा हूँ, क्योकि आपके अतिरिक्त इस ससार मे मेरा कोई अवलम्ब नही है । आपकी सहायता के बिना मैं तो इस ससार जगल मे भय से ही मर जाऊगा ।

हे अनन्तशक्तिसम्पन्न ! जगत् के आलम्बनदायक नाथ ! मुझ अनाथ को इस ससार रूपी जगल से पार कर निर्भय करिये ।

हे नाथ ! जैसे इस ससार मे सूर्य के अतिरिक्त कमल को विकसित करने मे कोई सक्षम नही है, वैसे ही हे जगच्चक्षु ! आपके अतिरिक्त इस जगत से मेरी निर्वृत्ति करने मे (मुझ को उबारने मे) अन्य कोई समर्थ नही है ।

क्या यह मेरे कर्म का दोष है ? या मेरा स्वय (कष्ट-साध्य अधम आत्मा) का दोष है ? अथवा दूषित काल का प्रभाव है ? या मेरी आत्मा अभी तक भव्य नही वन पाई है ?

सद्भक्तिग्राह्य भुवन-भूषण ! क्या मुझ मे आपके प्रति अभी तक ऐसी निश्चल भक्ति ही उत्पन्न नही हुई है ?

खेल ही खेल मे कर्म के जाल को छिन्न-भिन्न करने वाले ! कृपातत्पर हे स्वामिन् ! आप मुक्ति के इच्छुक मुझ को अभी तक मुक्ति क्यो नही देते ?

हे जगत् के अवलम्वन ! मै आपसे स्पष्टतया निवेदन करता हूँ कि हे नाथ ! इस लोक मे आपको छोड़कर मेरा और कोई आधार नही है, कोई शरण-दाता नही है ।

हे प्रभो ! आप ही मेरे माता, पिता, भाई, स्वामी और गुरु हैं । हे जगदा-नन्द ! हे प्राणेश्वर ! आप ही मेरे जीवन है ।

---

* पृष्ठ ४६८

जैसे बिना पानी के मछली तडफ-तड़फ कर मर जाती है वैसे ही हे नाथ ! यदि आप मेरा तिरस्कार करेंगे, मेरे प्रति उपेक्षा रखेंगे तो मैं भी इस भूमि पर निराश होकर तडफ-तड़फ कर मर जाऊंगा ।

हे प्रभो ! मेरा मन आप मे पूर्णतया निश्चल हो चुका है, यह तो मैंने स्वय अनुभव किया है । हे केवलज्ञानी ! आप तो अन्य लोगो के मन मे रहे हुए समस्त भावो को जानने वाले है, फिर मैं आपको यह बात किस मुख से निवेदन करू ?

प्रभो ! मेरा मन तो कमल के समान है और आप त्रिभुवन को प्रकाशित करने वाले सूर्य हैं । जैसे सूर्य के उदित होने पर कमल विकसित होता है वैसे ही आपका ज्ञान रूपी प्रकाश मेरे चित्त को विकसित कर मेरे कर्म रूपी कोष को विदीर्ण कर देता है ।

हे जगन्नाथ ! आपको तो अनन्त प्राणियो की परम्परा के व्यापार पर ध्यान देना पडता है अत. आपकी मेरे ऊपर कैसी दया-माया है, मैं नही जानता ।

जैसे मोर बादल को देखकर नाच उठता है वैसे ही हे जगन्नाथ ! आपका सद्धर्म रूपी नीरद (मेघ) रूप देखकर मेरा मन मयूर नाच उठता है और मेरे हाथ-पाँव भी नृत्य करने लगते है ।

भगवन् ! यह तो कृपा कर मुझे बताइये कि मेरा इस प्रकार नाच उठना वास्तव मे आपकी भक्ति है या कोरा पागलपन ?

जब आम्र वृक्ष पर मजरिया आ जाती हैं तब उसे देखकर जैसे कोयल स्वत ही मधुर तान कुहू-कुहू छेड देती है । वैसे ही सुन्दर रस और आनन्द-बिन्दु-सदोह-दायक ! आपको देखकर मेरे जैसा मूर्ख भी मुखर हो जाता है और आपकी स्तुति करने लग जाता है ।

हे जगत्श्रेष्ठ ! हे स्वामिन् ! मैं मूर्ख और असम्बद्ध प्रलाप करता हूँ ऐसा मानकर आप मेरी उपेक्षा नही करे, तिरस्कार नही करे,* क्योकि सन्त/सज्जन पुरुष नत व्यक्ति के प्रति वात्सल्यभाव के धारक होने के कारण उनके प्रति कुछ भी ऊचा-नीचा कह देने पर भी रुष्ट नही होते ।

हे जगन्नाथ ! बच्चा तुतला-तुतला कर अस्पष्ट, अस्त-व्यस्त और झूठे सच्चे शब्द बोलता रहता है फिर भी क्या उसके निरर्थक प्रलाप से पिता के आनन्द मे वृद्धि नही होती ?

उसी प्रकार हे प्रभो ! मै मूर्ख भी बच्चे की तरह ग्राम्य शब्दो द्वारा कुछ भी उल्टी-सीधी बकवास (स्तुति) कर रहा हूँ । मेरी इस बकवास से आपकी प्रसन्नता मे वृद्धि हो रही है या नही ? कृपया यह तो बताइये ।

---

* पृष्ठ ४९९

अनादिकालीन अभ्यास और योग के कारण मेरी स्थिति ऐसी हो गई है कि मेरा चपल मन अपवित्र कीचड के गड्ढे मे गन्दे सूअर के समान फसा ही रहता है।

हे नाथ ! मैं अपने इस चचल मन को रोकने में असमर्थ हूँ, अतः हे देव ! आप कृपाकर इसे रोकें।

प्रभो ! मेरे बार-बार प्रार्थना करने पर भी आप उत्तर नही देते, तो हे अधिपति ! क्या आपको मुझ पर अभी भी सदेह है कि मै आपकी आज्ञा का किंचित् भी पालन नही करूगा ?

प्रभो ! मै आपका किंकर बनकर आपकी सेवा मे इतना आगे बढ गया कि उच्च और स्वच्छ भावना पर चढ रहा हूँ, फिर भी ये परीषह मेरा पीछा कर रहे हैं, इसका क्या कारण है ?

आपको प्रणाम करने वाले लोगो की शक्ति को बढाने वाले हे मेरे नाथ ! अभी भी ये दुष्ट उपसर्ग मेरा पीछा नही छोड़ते, इसका क्या कारण है ? हे स्वामिन ! आप तो समस्त विश्व के द्रष्टा है तथापि आश्चर्य है कि आपका यह सेवक आपके सामने बैठा है और उसे यह कषाय रूप शत्रुवर्ग पीडित कर रहा है, तब भी आप मेरी तरफ क्यो नही देखते ? आप मुझे इन शत्रुओ से छुडाने मे समर्थ हैं और मै आपकी करुणा के योग्य हूँ तथापि आप मुझे कषाय-शत्रुओ से घिरा हुआ देखकर भी मेरी उपेक्षा करते है, यह आप जैसे शक्ति-सम्पन्न के लिये उचित नही है।

अहो महाभाग्यवान ! ससार से मुक्त आपको देखने के पश्चात् इस विषम-ससार मे क्षण-मात्र भी रहने मे मुझे किंचित् भी प्रीति नही है।

हे प्रभो ! आतरिक शत्रु-समूह ने मुझे दारुण बन्धनो से जकड रखा है, बाध रखा है, अत मैं क्या करू ?

हे नाथ ! आप कृपा कर अपनी उद्दाम लीला से मेरे इस शत्रु समूह को मेरे से दूर करदे जिससे मै आपकी शरण मे आ सकू।

वीर ! हे परमेश्वर ! यह ससार आपके आश्रित है और मुझे इस ससार सागर से पार लगाना भी आपके अधीन है। भगवन् ! यदि ऐसा ही है तो आप चुपचाप क्यो बैठे हैं ? मेरा उद्धार क्यो नही करते ?

हे करुणाधाम ! अब ससार समुद्र से मेरा बेडा पार लगाइये, देर मत कीजिये। आपके अतिरिक्त मेरा कोई शरण नही है, आधार नही है, अतः मेरे उच्चरित उद्गारो को क्या आप जैसे महापुरुष अब भी नही सुनेगे। [१९–५०]

❖

१०. मित्र-मिलन : सूरि-संकेत

[विमलकुमार अत्यन्त भाव-विह्वल होकर भगवान् की प्रार्थना कर रहा था। मैं पास ही खड़ा था और मेरे पीछे रत्नचूड एव आम्रमञ्जरी अपने परिवार के साथ शान्ति से खडे स्तुति सुन रहे थे। पूरे मन्दिर मे दिव्य शान्ति और दिव्य गान प्रसरित हो रहा था। ऐसे अतिशय आनन्द के इस प्रसग पर विमल के मुख से स्तुति के शब्द भाव, रस, एकाग्रता और प्रेम-पूर्वक निकल रहे थे। आखिर स्तुति पूर्ण हुई।]

मित्र-मिलन

प्राणियो के नाथ भगवान् की सुन्दर मानसिक सद्भावपूर्ण स्तुति के पश्चात् विमल ने पचाग प्रणाम किया। उसकी मधुर वाणी से अत्यन्त हर्षोल्लसित और रोमाचित विद्याधर रत्नचूड ने मन मे अत्यधिक सन्तुष्ट होकर कहा – 'हे धैर्यवान ! आपने भवभेदक भगवान् की अतिशय सुन्दर भावपूर्ण स्तुति की है।' इस प्रकार कहता हुआ रत्नचूड विमल के सन्मुख आया और पुन कहने लगा—'हे महाभाग्यवान बन्धु ! त्रैलोक्यनाथ भगवान् पर आपकी इतनी अधिक दृढ भक्ति है, आप वास्तव मे भाग्यशाली है, कृतकृत्य है और आपका इस भूमण्डल पर जन्म सफल है। हे नरोत्तम ! यह निश्चित है कि आप वास्तव मे ससार से मुक्त हो ही गये है, * क्योकि प्राणी को एक बार चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति होने के बाद वह कभी दरिद्री नही होता, अर्थात् उसमे फिर से दरिद्री बनने की योग्यता ही समाप्त हो जाती है।' [५१–५५]

विद्याधराधिपति रत्नचूड ने अत्यन्त मधुर वाणी से विमल का अभिनन्दन किया और तत्पश्चात् भक्ति पूर्वक आदिनाथ भगवान् को नमस्कार किया। तदनन्तर विमल ने रत्नचूड को नमस्कार किया और उसने भी स्नेह-पूर्वक विमल को प्रणाम कर आदर-पूर्वक उसे शुद्ध भूमि पर अपने पास बिठाया। आम्रमञ्जरी भी अभिवादन नमस्कार आदि कृत्य पूर्ण कर वहाँ आकर उनके पास बैठ गई। सब विद्याधर भी मस्तक झुकाकर भूमितल पर बैठ गये। दोनो ने एक दूसरे के स्वास्थ्य के बारे में कुशल समाचार पूछे और क्षेमकारी सवाद प्राप्त कर प्रसन्नता-पूर्वक दोनो बातें करने लगे। [५६–५९]

---

* पृष्ठ ५००

रत्नचूड को महाविद्याओ की प्राप्ति

रत्नचूड ने कहा—हे महाभाग्यवान बन्धु! मुझे वापिस यहाँ आने मे अधिक समय लगा जिसका कारण बताता हूँ, और आपने मुझे बुध आचार्य को यहाँ लाने के लिये कहा था, किन्तु मै उन्हे अभी तक नही ला सका हूँ। हे महाभाग्य! उसका भी कारण बताता हूँ, सुने—आपके पास से प्रस्थान कर मै सीधा वैताढ्य पर्वत पर अपने नगर की ओर गया। वहाँ मेरी माता शोक-विह्वल हो रही थी और मेरे पिताजी भी शोक-सन्तप्त हो रहे थे। दिन भर उनके पास रहकर उनको धैर्य वन्धाया। परस्पर मिलने-भेटने मे वह दिन आनन्द-पूर्वक व्यतीत हो गया। रात्रि मे प्रभु को नमस्कार कर मै पलग पर सो गया। परमात्मा जिनेश्वर भगवान् का ध्यान करते हुए मै बाहर से तो निद्रित जैसा लग रहा था, पर भीतर से जागृत था। उस समय 'हे भुवनेश्वर भक्त! महाभाग्यशाली! उठो उठो' ऐसे मनोहर शब्द मेरे कान मे पडे, जिसे सुनकर मै जागृत हुआ। उस समय मैने देखा कि अनेक देविया अपने तेज से दिशाओ को प्रकाशित करती हुई मेरे सामने खडी है। मै तत्क्षण ससभ्रम उठ खडा हुआ और उनकी अतुलित पूजा की। वे सब मेरी प्रशसा करते हुए कहने लगी—'हे नरोत्तम! जिनेश्वर-भाषित धर्म तुम्हारे मन मे दृढीभूत (स्थिर) हुआ है, अत: तुम धन्यवाद के पात्र हो, कृतकृत्य हो और हमारे द्वारा पूज्य हो। हम रोहिणी आदि विद्या देविया है। तुम्हारे पुण्य से प्रेरित होकर तुमको पूर्ण योग्य समझकर तुम्हारा वरण करने हेतु स्वय चलकर तुम्हारे पास आई है। तुम्हारे अत्यन्त निर्मल गुणो से हम तुम्हारे वशीभूत हुई है और हम सभी अत:-करण पूर्वक तुम्हारी अत्यन्त अनुरागिणी बनी है। हे धैर्यवान! जिस भाग्यशाली के हृदय मे विश्व को जाज्वल्यमान करने वाला परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र बसा हुआ है उस प्राणी के लिये क्या कोई भी वस्तु की प्राप्ति दुर्लभ हो सकती है? पच परमेष्ठि नमस्कार मत्र के प्रभाव से हम तुम्हारे साथ यन्त्रवत् जुडी हुई है और तुम्हारी किकरिया वनकर स्वय तुम्हारे पास आई है। हे पुरुषोत्तम! हम तुम्हारे शरीर मे प्रवेश करेगी। हमे आज्ञा दीजिए। भविष्य मे आप चक्रवर्ती बनेंगे। विद्याधरो की यह विशाल सेना हमारे आदेश से अब आपके अधीनस्थ हो गई है।* यह समस्त विशाल सेना अब आपको स्वामी स्वीकार कर अभी आपके द्वार पर खडी है।' उनके ऐसा कहते ही देदीप्यमान कुडल, वाजूबन्द और मुकुटो की मणियो की प्रभा से दिशाओ को प्रकाशित करते हुए अनेक विद्याधरो ने आकर मुझे नमस्कार किया। [६०–७५]

उसी समय प्रात.काल की नौवत गडगडा उठी और काल-निवेदक ने सूचित किया—सूर्य अपने स्वभाव से ससार मे उदित हुआ है जो मनुष्यो की स्थूल दृष्टि के प्रसार को वढाता है और मानवो को प्रवोध (जाग्रत) करता है। विशुद्ध सद्धर्म

* पृष्ठ ५०१

के समान सूर्य भी सदनुष्ठानो का हेतु बनता है, अर्थात् दिन मे लोगो से प्रशस्त कार्य करवाता है और समग्र सम्पत्तियो को प्राप्त करवाता है। अत. हे लोगो ! उठो जागो और सद्धर्म का आदर करो, जिससे तुम्हे अतर्कित और अकल्पित विभूतिया (समृद्धिया) प्राप्त होगी। [७६–७८]

रत्नचूड का राज्याभिषेक

कालनिवेदक के शब्द सुनकर मैंने मन मे सोचा कि, अहा ! भगवद्भाषित सद्धर्म की महिमा कितनी प्रभावशाली है कि जिन विद्याओ का कभी मुझे स्वप्न मे भी ध्यान नही था वे स्वय ही मुझे सिद्ध हो गईं। परन्तु, मुझे हर्षित होकर इसी मे अनुरक्त नहीं होना चाहिये। वास्तव मे तो यह मेरे लिये विघ्न ही उपस्थित हुआ है, क्योकि अब मैं अपने मित्र विमल के साथ दीक्षा नही ले सकू गा। कारण यह है कि पुण्यानुबन्धी पुण्य को भी भगवान् ने तो सोने की बेडी ही कहा है। सिद्धपुत्र चन्दन ने तो मुझे पहले ही बता दिया था कि मैं विद्याधरो का चक्रवर्ती बनू गा और विमल ने मेरे शारीरिक लक्षणो को देखकर इसी बात का समर्थन किया था। तब क्या किया जा सकता है ? जो होना होगा वह तो होगा ही ! मैं ऐसा सोच ही रहा था कि विद्या देवियाँ मेरे शरीर मे प्रविष्ट हो गई और विद्याधरो ने मेरा राज्याभिषेक प्रारम्भ कर दिया। अनेक प्रकार के कौतुक रचे गये, अनेक मगल किये गये, पवित्र तीर्थों से जल मंगवाया गया, चौदह रत्न प्रकट हुए और सोने तथा रत्नो के कलश तैयार करवाये गये। यो अत्यन्त आनन्द और महोत्सव पूर्वक मेरा राज्याभिषेक किया गया।

बुधाचार्य का गुप्त संदेश

बन्धु विमल ! उसके पश्चात् देव-पूजा, गुरु और बडे लोगो का सन्मान, राजनीति की स्थापना, प्रधानवर्ग और सेवको का नियोजन, अधीनस्थ राज्यो की यथोचित भेट और प्रणाम स्वीकार तथा अभिनव राज्यों की उचित व्यवस्था आदि कार्यो मे मेरे कितने ही दिन व्यतीत हो गये। इन कार्यो से निवृत्त होते ही मुझे आपका आदेश स्मरण मे आया और मै सोचने लगा कि, अरे ! आपने मुझे बुधाचार्य का पता लगाकर उन्हे आपके पास लाने को कहा था, किन्तु मै कितना प्रमादी हूँ कि अभी तक मैने न महात्मा का पता ही लगाया और न उन्हे विमल के समीप ही ले जा सका। अतएव फिर महात्मा का पता लगाने मै स्वय ही अनेक देश-देशान्तरो मे घूमा। अन्त मे एक नगर मे मुझे आचार्य बुध के दर्शन हुए। मैने उन्हें आपके बन्धुजनो को प्रतिबोधित करने की प्रार्थना की। उन्होने कहा—तुम यहाँ से जाओ और मेरा गुप्त सदेश विमल को दे दो। मै कुछ समय पश्चात् आऊ गा। विमल के सम्बन्धियो को प्रतिबोधित करने का एकमात्र यही उपाय है।

तदनन्तर बुधसूरि ने रत्नचूड को जो गुप्त सदेश दिया था उसे उसने विमल के कान के पास अपना मुह लेजाकर धीरे से सुना दिया।* हे अगृहीतसकेता ! उसने जो सन्देश विमल को सुनाया वह मैं नही सुन सका। गुप्त सदेश सुनाने के बाद सब लोग सुन सके इस प्रकार रत्नचूड ने विमल से कहा—इसी कारण से मुझे यहाँ आने मे देरी हुई और मै बुधसूरि को अपने साथ नही ला सका। उत्तर मे विमल बोला—भाई! आपने बहुत अच्छा किया।

फिर मै, विमल, रत्नचूड, आम्रमञ्जरी और अन्य सभी विद्याधर नगर मे आये। रत्नचूड दो-तीन दिन तक वहाँ आनन्द पूर्वक रहा, फिर वापिस अपने नगर को लौट गया। ●

११. प्रतिबोध-योजना

विमलकुमार का विरक्ति भाव

कुशल भावो का अत्यधिक अभ्यस्त होने से, कर्मजाल के पूर्णरूप से निर्बल हो जाने से, ज्ञान की अत्यधिक विशुद्धि होने से, इन्दिय सुखो को त्याज्य मान लेने से, प्रशान्त भाव को धारण कर लेने से, किसी भी प्रकार का दुश्चरित्र या दुर्व्यवहार विद्यमान न होने से, आत्मवीर्य प्रबल हो जाने से और परमपद प्राप्ति का समय निकट आ जाने से विमलकुमार राज्य-लक्ष्मी मे अनुरक्त नही हो रहा था। ऐसी स्थिति मे वह विमलकुमार शरीर-संस्कार (शरीर की किसी प्रकार की शुश्रूषा या विभूषा) नही करता था। किसी प्रकार के लीला-नाटक आदि की रचना नही करवाता था। ग्राम्यधर्म (लोक प्रचलित साधारण धर्म) की तो उसे रच मात्र भी अभिलाषा नही थी। वह तो केवल इस ससार रूपी जेल से विरक्त रहकर सदा शुभ ध्यान मे लीन रहते हुए अपना समय व्यतीत कर रहा था।

विमल के माता-पिता का चिन्तन

विमल को विरक्त देखकर उसकी माता कमलसुन्दरी और पिता धवल राजा को चिन्ता हुई कि, अरे! यह विमल सुन्दर स्वस्थ, मनोहारी तरुण होने पर भी, कुबेर के वैभव को भी तिरस्कृत करने योग्य वैभवपति होने पर भी वह देवागनाओ

---

* पृष्ठ ५०२

को भी अपने लावण्य से पराजित करने वाली सुन्दर राजकन्याओं को देख कर भी उन पर आसक्त क्यो नही होता ? वह स्वय रूपातिशय से कामदेव को भी तिरस्कृत करता है, सभी कलाओ मे निष्णात है, शरीर से स्वस्थ है, सभी इन्द्रिया भी पूर्ण एव पुष्ट है और उसने अभी तक किसी मुनि का दर्शन भी नही किया है, फिर भी युवावस्था का विकार उस पर क्यो असर नही करता ? वह कभी अर्ध उन्मीलित नेत्र से किसी पर कटाक्ष भी नही फैकता, मुख से मन्द मन्द स्खलित वचन भी नही बोलता, वाद्य एव गायन कला का भी उपयोग नही करता, सुन्दर वस्त्राभूषण भी धारण नही करता, मदान्ध भी नही होता, सरलता का त्याग भी नही करता और विषय सुख का तो नाम भी नही लेता। अरे ! इसका यह ससार-विमुख अलौकिक चरित्र कैसा है ? यदि यह प्रिय पुत्र इस प्रकार विषय सुखो से विमुख होकर साधु की तरह रहेगा तो हमारा यह राज्य निष्फल है, हमारी प्रभुता व्यर्थ है, वैभव निष्प्रयोजन है और हम जीवित भी मृत समान है। अतएव राजा-रानी ने विचार किया कि इस पुत्र को किस प्रकार विषयो मे प्रवृत्त करवाया जाय। एकान्त मे दोनो ने गहराई से विचार-विमर्श किया और अन्त मे इस निर्णय पर आये कि उसे विषय-सुख का अनुभव करवाने के लिये पाणिग्रहण का प्रस्ताव स्वय ही कुमार के समक्ष रखना चाहिये। वे जानते थे कि पुत्र विनयी, उदार हृदयी और सरल स्वाभावी होने से हमारी बात कभी नही टालेगा।

माता-पिता का कथन

ऐसा परामर्श कर धवल राजा और कमलसुन्दरी एक दिन विमलकुमार के पास आये और कुछ प्रसग निकाल कर बोले—प्रिय ! सैकडो मनोरथो के बाद हमे तुम्हारी प्राप्ति हुई है। यद्यपि तुम अब राज्य-धुरा को धारण करने मे सक्षम हो गये हो तथापि तुम अपनी* अवस्था के अनुरूप कार्य क्यो नही करते ? राज्य-भार क्यो नही सभालते ? राजकन्याओ से विवाह क्यो नही करते ? अनेक प्रकार के विषय सुखो का भोग क्यो नही करते ? कुल-सतान की वृद्धि क्यो नही करते ? अपनी इस शान्त और सुखी प्रजा को आनन्दित क्यो नही करते ? अपने स्वजन-सम्बन्धियो को आह्लादित क्यो नही करते ? प्रणयिजनो (प्रेमीजनो) को सतुष्ट क्यो नही करते ? अपने पितृदेवो का तर्पण (तृप्त) क्यो नही करते ? मित्र-वर्ग को सन्मानित क्यो नही करते ? और हमारे इन वचनो को मान्य कर हमे हर्षविभोर क्यो नही करते ?

विमल का उत्तर

अपने माता-पिता की बात सुनकर विमलकुमार ने मन मे विचार किया कि माता-पिता ने बहुत ही सुन्दर बात कही है। इनकी यही बात इनको प्रतिबोधित

---

* पृष्ठ ५०३

करने का मार्ग प्रशस्त कर सकेगी अर्थात् उन्ही की वात से अव उनको उपदेश दिया जा सके ऐसी व्यवस्था होना सम्भव है। ऐसा सोचकर विमलकुमार ने विनयपूर्वक उत्तर दिया—पिताश्री ! आप जो आज्ञा प्रदान करे और मातुश्री जो आदेश दे वह सव तो मेरे लिये आचरण करने योग्य है ही, इसमे सकल्प-विकल्प तो किया ही नही जा सकता। मेरा इस विषय मे ऐसा विचार है कि हमारे राज्य मे रहने वाले सभी लोगो के दु.ख दूर कर, उन्हे सुखी वनाकर फिर मै सुख का अनुभव करू तो श्रेष्ठ रहेगा। राज्य की वास्तविक सार्थकता इसी मे है, अन्य किसी प्रकार से नही। राजा का प्रमुख धर्म यही है और इसी मे उसकी प्रभुता है। कहा भी है कि :—

विधाय लोक निर्बाध स्थापयित्वा सुखेऽखिलम् ।
य स्वय सुखमन्विच्छेत् स राजा प्रभुरुच्यते ।।
यस्तु लोके सुदु खार्त्ते सुख भु क्ते निराकुल. ।
प्रभुत्व ही कुतस्तस्य कुक्षिम्भरिरसौ मत· ।। [७९–८०]

जो राजा अपनी प्रजा को बाधा-पीडा रहित वनाकर सर्वत्र सुख की स्थापना करने के पश्चात् स्वय भी सुख की कामना करता है तो वही राजा वास्तव मे प्रभु कहा जाता है। किन्तु जिसकी प्रजा तो दु ख से तडफती रहे और वह स्वय बिना किसी व्याकुलता के निरन्तर सुख भोगता रहे तो फिर उसकी प्रभुता कहाँ रही ? ऐसा राजा या स्वामी तो निरा पेटू और स्वार्थी ही है।

पिताजी ! माताजी ! मुझे तो यही राज्य-धर्म लगता है। अब वह समय आ गया है। अभी ग्रीष्म ऋतु से सारी पृथ्वी तप रही है, अत. मै तो इसी मनोनन्दन उद्यान मे रहूगा। मेरे वन्धु और मित्र वर्ग भी यही मेरे पास ही रहेगे। आप दोनो की आज्ञा का पालन करते हुए और ग्रीष्म ऋतु मे करने योग्य सभी लीलाओ को करते हुए मैं वहाँ रहूगा। आप राजपुरुषो को ऐसी आज्ञा दीजिये कि जो कोई दुःखी और दुर्भागी प्राणी हो उन्हे ढू ढ कर वे वहाँ मेरे पास लावे और वे सव भी मेरे साथ सुख का अनुभव कर सके ऐसी व्यवस्था करे। (इस प्रकार की योजना को कार्यान्वित करने से राज्य-धर्म भी निभेगा और आपकी आज्ञा का पालन भी होगा।)

विमलकुमार का उत्तर सुनकर उसके माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए और वोले—पुत्र ! बडो का मान रखने वाले हमारे लाडले ! तुमने बहुत ही सुन्दर कहा। तेरे जैसे विवेकी पुरुष को तो यही कहना चाहिये और ऐसा ही करना चाहिये।

विमल का हिमगृह में निवास

धवल महाराजा की आज्ञा से मनोनन्दन उद्यान मे एक विशाल हिमगृह (ताप नियत्रित गृह) बनवाया गया। यह हिमगृह निरन्तर कमल के पत्तो से आच्छादित रहे इस प्रकार इसकी रचना की गई। नीलरत्न जैसे हरे केले के वृक्ष

चारो तरफ बांध दिये गये। एक कृत्रिम नदी भवन के मध्य में बनाई गई जिसमें कपूर आदि सुगन्धी पदार्थों से गमकता पानी निरन्तर वहता ही रहे। चन्दन और कपूर के पानी से चारो तरफ मिट्टी गीली की गई और दीवारो पर चारो तरफ सुगन्धी वेले, कमलनाल के तन्तु और नालो से भिन्न-भिन्न विभाग बना कर हिमभवन तैयार करवाया गया। ग्रीष्म ऋतु के ताप को दूर करने और शीत ऋतु का सुखदायी वातावरण उत्पन्न करने वाले इस हिमभवन मे शिशिर ऋतु के नव पल्लव के समान सुन्दर रग-विरगे पलग और ठडे तथा* सुखकारी सुकोमल आसनो की व्यवस्था की गई। हिमभवन के तैयार हो जाने पर विमल अपने बन्धुओ, मित्रो एव लोक समुदाय के साथ उसमे प्रविष्ट हुआ। विमल और उसके साथ आये जन-समुदाय पर चन्दन का लेप किया गया, कर्पूर की पराग से ढक दिया गया, सुगन्धी लोध्र फूलो की मालाओ से मण्डित कर दिया गया, मोगरा पुष्पो से अलकृत किया गया और सारे शरीर पर वडे-वडे मोतियो की मालाये अथवा मोती के फूलो की मालाये पहनाई गई। सबको पतले और कोमल (मुलायम) वस्त्र पहनाये गये, मानो सुगन्वित शीतल झिरमिर वर्षा हो रही हो ऐसे शीतल सुगन्धी पखो से सव को पवन किया गया। सब को रसमय और सात्विक आहार करवाया गया, सुगन्धित पान खिलाये गये और मनोहारी मधुर एव अस्पष्ट गीतो से सव को प्रमुदित किया गया। अगुली आदि के इशारो से प्रवर्तित सुन्दर विविध प्रकार के नृत्यो से आनन्दित किया गया। सुन्दर चेष्टाये करती हुई मनोहारिणी विलासिनी स्त्रियो के कमलपत्र जैसे चपल नेत्रो की पक्तियो के अवलोकन से कुमार सहित समस्त लोगो के हृदयो को अत्यन्त उल्लसित करते हुए ऐसा दृश्य उपस्थित कर दिया गया कि मानो कुमार सहित सभी लोग स्पष्टत· रतिसागर मे डूब गये हो। अपने माता-पिता को अत्यधिक प्रमुदित करने के लिये कुमार ने ऐसी योजना वनाई कि सभी लोगो को अपनी आत्मा से भी अधिक वाह्य सुख प्राप्त हो और उसके माता-पिता को भी अतीव प्रसन्नता हो। पूर्वोक्त राजाज्ञा के अनुसार इस कार्य के लिये नियुक्त राजकीय पुरुपो द्वारा सभी दु खी प्राणियो को इस हिमभवन मे लाया जाता, उनके सब दु ख दूर किये जाते और उन्हे सुखी/आनन्दित बनाने के लिये सव प्रकार की अनुकूलता का प्रबन्ध किया जाता। युवराज विमल अपने पिता धवल राजा को यो सर्व प्रकार से सतुष्ट कर रहा था। पुत्र को इस प्रकार सुखसागर मे डुबकी लगाते देखकर राजा ने नगर मे आनन्दोत्सव मनाया और सम्पूर्ण प्रजा को हर्ष हो ऐसे आनन्द के साधनो की रचना करवाकर नया त्यौहार पैदा कर दिया। [८१]

दीन-दु खी की खोज

धवल राजा और महादेवी कमलसुन्दरी सतुष्ट हुए और समस्त प्रजाजन एव मत्रीमण्डल भी प्रमुदित हुए, क्योकि उनकी धारणा के विपरीत उन्हे युवराज

* पृष्ठ ५०४

विमल सुखसागर मे डुबकी लगाता हुआ दिखाई दिया। एक दिन दीन-दु.खियो को ढूढ कर लाने गये हुए कई राजपुरुप हिमभवन मे प्रविष्ट हुए और राजा के सामने पर्दा लगाकर उन्होने पर्दे के पीछे एक पुरुष को बिठाया। फिर सामने आकर महाराजा को प्रणाम करते हुए बोले—'महाराज! आपकी आज्ञा से हम दीन दु'खियो को ढूढते हुए घूम रहे थे कि हमे एक अत्यन्त दु खी पुरुप दिखाई दिया, जिसे हम आपके पास यहाँ ले आये है। यह पुरुष अत्यन्त घृणा उत्पन्न करने वाला होने से आपके दर्शन के योग्य नही है इसलिये हमने इसे पर्दे के पीछे रखा है। अब इसके विषय मे आपका जैसा निर्देश हो वैसा करें।' यह सुनकर धवल राजा ने पूछा—'भद्रो! तुमने उसे कहाँ देखा और वह किस प्रकार एव किस कारण से अत्यन्त दुःखी है? घटना और कारण बताओ।'

महाराजा के प्रश्न को सुनकर राजपुरुषो मे से एक ने हाथ जोड़ कर कहा—देव! आपकी आज्ञानुसार दुःख और दरिद्रता से उत्पीडित लोगो को ढूढकर लाने के लिये हम गये हुए थे। अपने नगर मे तो हमने सब को सुखी और आनन्दमग्न देखा, अत. हम जगल मे गये। वहाँ दूर से हमने इस पुरुष को देखा। उस समय मध्याह्न का समय था, पृथ्वीतल अग्नि की भाति तप रहा था। तप्त लोहपिण्ड के समान सूर्य आग का गोला बनकर जगत को तापित कर रहा था। ऐसे समय मे अग्नि के समान जलती रेत मे इस पुरुष को हमने बिना जूतो के उघाडे पैर चलते देखा। [८२–८३]*

हमने सोचा कि यह व्यक्ति अत्यन्त दु.खी होना चाहिये, अन्यथा ऐसे समय मे नगे पैर क्यो चलता? हमने दूर से ही आवाज देकर उसे बुलाया—'अरे भाई! ठहरो! ठहरो!' हमारी आवाज के उत्तर मे वह बोला—'भाइयो! मैं तो खड़ा ही हूँ, तुम्ही सब ठहरो।' ऐसा कह कर वह चलने लगा। मैं शीघ्रता से दौडकर उसके पास गया और बडी कठिनाई से बलपूर्वक उसे पकड़ कर एक वृक्ष के नीचे लाया। अनन्तर समस्त राजभृत्य इसका वर्णन करते हुए कहने लगे—इसके शरीर का रग भयकर दावाग्नि से जले हुए वृक्ष के ठूँठ जैसा काला था, भूख से उसका पेट अन्दर जा रहा था, होठ प्यास से सूख गये थे, यात्रा की थकान उसके शरीर पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी, इसके शरीर पर अत्यधिक पसीना हो रहा था मानो भयकर अन्तस्ताप से जल रहा हो, शरीर से कोढ गल रहा था, शरीर पर बने कृमियो के जालो से वह अत्यन्त व्याधिग्रस्त लगता था, मुख की भावभगी से हृदयशूल की वेदना से ग्रसित लगता था, अग-प्रत्यग हिल रहे थे और शरीर पर वृद्धावस्था के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, गहरी और गर्म स्वास छोड़ रहा था मानो महाज्वर से ग्रसित हो, आँखो मे चेप और मैल जम रहा था और आँखो से सतत पानी बह रहा था, नाक चिपक गया था, हाथ-पैर लगभग सड गये थे, सिर गजा हो रहा था मानो अभी लोच किया हो, शरीर पर अत्यन्त मैले वस्त्र का टुकडा और एक कम्बल था, हाथ मे

* पृष्ठ ५०५

डडे से बधी दो तुम्बिये थी और ऊन से बनी एक पीछी लटक रही थी। हे स्वामिन् ! जब हमने इसे देखा और इसका अत्यन्त बीभत्स रूप हमे दिखाई दिया तब हमे लगा कि यह समस्त दुःखो का भण्डार, दरिद्रता की अतिम स्थिति मे फसा हुआ और वास्तव मे दया का पात्र है। हे नाथ ! इसके बीभत्स रूप को देखकर हमे लगा कि यह इसी ससार मे नारकीय जीव है, जो यही नरक की पीडा भोग रहा है। [८४-८५] ऐसे प्रत्यक्ष नारकीय प्राणी को देखकर हमने उससे कहा—'हे भद्र ! इस भरी दोपहरी मे तू क्यो भटक रहा है ? हे भाई ! ठडी छाया मे थोडा बैठता क्यो नही ?' तब इसने उत्तर दिया—'भाइयो ! मैं स्वतत्र नही हूँ। मेरे गुरु की आज्ञा से भटक रहा हूँ। मुझे उनकी आज्ञा का अनुसरण करना ही पड़ता है।' हम सोचने लगे कि, अरे ! यह तो बेचारा पराधीन है। अहो ! इसके महान दुःख के कारणो पर विचार करने से मन कुंठित हो जाता है। एक तो यह ऐसी अत्यत खेद-जनक स्थिति में है और फिर पराधीन भी है। पुनः हमने इससे पूछा—'भाई ! यदि तू तेरे गुरु की आज्ञा इसी प्रकार सर्वदा मानता रहेगा तो उससे तुझे क्या लाभ होगा ?' हमारे प्रश्न के उत्तर मे इसने कहा—'भाइयो ! मेरे साथ आठ बड़े-वडे यम जैसे भयकर ऋणदाता लगे हुए है। वे दया-रहित है और मुझे बहुत दु ख देते है। मेरे गुरु उनको ग्रन्थीदान देकर (ऋण को चुका कर) मुझे उनके त्रास से मुक्त करेगे।' इस दु खियारे का ऐसा विचित्र उत्तर सुनकर हम विचार मे पड गये। 'अहो ! यह तो बहुत दु ख की बात है। यह तो बहुत पीड़ित लगता है। इसके दु ख का कारण बहुत ही कष्टदायी है। ऐसी अत्यन्त अधम स्थिति मे भी दान लेकर अपना ऋण चुकाने की इसे दुराशा है। हद हो गई। इससे अधिक दु खी मनुष्य इस ससार मे और कहाँ मिलेगा ?' ऐसा सोचकर हमने इस दरिद्री से कहा—'भद्र ! तू हमारे साथ हमारे राजा के पास चल। वहाँ ले जाकर हम तुम्हारे सब दु.ख दूर करवायेंगे। तेरी सब दरिद्रता मिटायेगे और कर्ज भी चुकवा देगे।' हमारी बात का इसने विचित्र उत्तर दिया। वह बोला—'भाइयो! आपको मेरी चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। तुम या तुम्हारे राजा मुझे (कर्ज से) नही छुडा सकते'* ऐसा कहकर यह तो फिर से चलता बना। इसके इस विचित्र व्यवहार को देखकर हमने सोचा कि शायद यह दुरात्मा अत्यन्त दु ख से पागल हो गया है, पर हमे तो अपने राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिये। यही सोचकर हम इसे पकड कर आपके सामने लाये है।

राजसेवको से सारा वृत्तान्त सुनकर धवल राजा ने कहा—'अहा ! यह तो बडी अद्भुत घटना है। मुझे भी इसमे कुतूहल लग रहा है। मुझे देखने दो, बीच से पर्दा हटा दो।' राजपुरुषो ने पर्दा हटा दिया। धवल राजा को ठीक वैसा ही पुरुष दिखाई दिया जैसा कि राजपुरुषो ने वर्णन किया था। ऐसे विचित्र बीभत्स पुरुष को देखकर राजा और उसके पारिवारिक लोग अत्यधिक विस्मित हुए। □

---

* पृष्ठ ५०६

१२. उग्र दिव्य-दर्शन

[अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। विचित्र प्रश्न करने वाला और अत्यन्त दु खी तथा वीभत्स दिखाई देने वाला प्राणी धवल राजा के समक्ष खडा था। उसके आँखो की चमक और व्यवहार का वेग विचित्र होता जा रहा था। उसके सम्बन्ध मे राजपुरुषो द्वारा किया गया वर्णन सब को आश्चर्य मे डुबो रहा था।]

विमल का विशिष्ट-चिन्तन

विमलकुमार सोच रहा था कि, अहो! आचार्य बुध भगवान् ही आ पहुँचे लगते हैं। अहो! आचार्य इतने शक्तिसम्पन्न है कि वे चाहे जैसा रूप बना सकते है। उनकी शक्ति को धन्य है। अहा! उनकी मुझ पर कितनी कृपा है। अहो! अन्य पर उपकार करने की उनकी सात्विक वृत्ति को धन्य है। अहो! अपनी सुख-सुविधा की वे तनिक भी अपेक्षा नही रखते। अहो! किसी कारण या अपेक्षा के उनकी सज्जनता को धन्य है। कहा भी है —

सत्पुरुष स्वभाव से ही अपने कार्य की उपेक्षा/अवगणना करके भी दूसरो के कार्य-साधन मे सर्वदा उद्यमशील रहते हैं। दूसरो का हितसाधन करना उनका प्राकृतिक गुण है, इसमे सदेह नही। अथवा सत्पुरुष दूसरो के हित-साधन को स्वय का ही कार्य समझकर प्रवृत्ति करते हैं। सूर्य प्रभात से सध्या तक लोक को उद्योतित करता है, पर क्या वह किसी से कुछ फल की आशा करता है ? नही। वह अपनी प्रवृत्ति मात्र परोपकार के लिए ही करता है और परोपकार को ही स्वकार्य समझता है। अपना कार्य होने पर भी सत्पुरुष उसकी ओर विशेष लक्ष्य नही रखते। चन्द्र मे कलक है जिसे मिटाना उसका कार्य है, फिर भी वह उस ओर ध्यान न देकर मात्र जगत मे शीतल चादनी फैलाने का ही कार्य करता है। वीर एव बुद्धिशाली पुरुष विना प्रार्थना के ही परहित का कार्य करते हैं। वर्षा भली प्रकार बरस कर सृष्टि को नवपल्लवित करती है और गर्मी को शात करती है, पर मेघ से प्रार्थना करने कौन जाता है ? साधु पुरुष स्वप्न मे भी अपने शरीर के सुख की इच्छा नही करते, दूसरो के सुख के लिये अनेक प्रकार के क्लेश सहन करना, ताप सहन करना, दु ख भोगना ही उनका वास्तविक सुख होता है। जिस प्रकार आग का स्वभाव अपनी गर्मी से अनाज आदि पकाना और जल का स्वभाव प्राणियो को जीवन देना है उसी प्रकार सत्पुरुषो का लोक मे परहित करने का स्वभाव ही होता है। ऐसे सत्-पुरुष जो अन्य के हित और परोपकार मे रत रहते है और जो परहितार्थ अपने सुख, धन और जीवन को भी तृण-तुल्य समझते है वे स्वय ही अमृत नही तो क्या है ? महात्मा अपने धन और जीवन का उपयोग भी परहित मे करने के लिए सर्वदा कृत-निश्चय होते हैं। ऐसे महात्मा पुरुषो के स्वकीय प्रयोजन निश्चित रूप से स्वत: ही सिद्ध हो जाते हैं। [८६–९३]

मुझे तो निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि स्वय बुध आचार्य ही वैक्रिय रूप धारण कर मेरे बन्धुवर्ग को बोध देने के लिए यहाँ आये है। [६४] अरे हाँ, आचार्यदेव ने रत्नचूड द्वारा मुझे कहलाया था कि मैं दीन-दु खियो की शोध-खोज करू और वे अन्य रूप धारण कर यहाँ आयेंगे। उन्होने यह भी कहलाया था कि यदि मै उन्हे पहचान लू तो भी मै उन्हे वन्दना नही करू और जब तक स्व-प्रयोजन की सिद्धि (अपने बन्धुओ को प्रतिबोधित करने का कार्य सिद्ध) नही हो तब तक मैं उनकी किसी से पहचान भी नही करवाऊ।

आचार्य को अंतरंग प्रणाम

आचार्य बुध के गुप्त सदेश को स्मरण कर तथा उनकी परोपकारवृत्ति की प्रशसा कर विमल ने उन्हे मानसिक नमस्कार किया :—

हे वस्तु सद्भाव के ज्ञाता ! भव्य प्राणियो के वत्सल ! * मूढ प्राणियो को प्रतिबोध देने मे कुशल ! हे आचार्य भगवन् ! आपको नमस्कार हो। अज्ञान रूपी अपार जल से भरे ससार-सागर को पार करवाने मे निपुण हे महाभाग महात्मन् ! आपका स्वागत है। आप भले पधारे, आपने यहाँ पधार कर बहुत ही प्रशस्त कार्य किया। [६५–६६]

आचार्य भगवान् ने भी विमल के मानसिक नमस्कार का मानसिक उत्तर इस प्रकार दिया :—

हे भद्र ! हे अनघ ! (पापरहित) तेरी कार्य-सिद्धि के लिए ससार-सागर से पार उतारने वाला और सर्व प्रकार के कल्याण को प्रदान करने वाला तुझे धर्मलाभ हो। [६७]

दीन-दु.खी के आक्रोशमय उद्गार

जब राजपुरुप इस दीन-दु.खी पुरुष को हिमभवन मे लेकर आये थे तब उस समय वह खेद सहन करने मे असमर्थ हो हाय-हाय करता हुआ जमीन पर बैठ गया और जमीन पर बैठा-बैठा ही ऊघने लगा। उसे ऐसी विचित्र स्थिति मे देखकर वहाँ उपस्थित पुरुपो मे से कई हँस रहे थे, कई शोकातुर थे, कई निन्दा कर रहे थे और कई तिरस्कार कर रहे थे। कई लोग आपस मे चुपचाप बाते कर रहे थे—'अरे ! यह तो बहुत दु खी है, गरीब है, रोगग्रस्त है, परिश्रान्त है, व्यथित है, भूख से पीडित है। अरे ! यह नराधम तो एक नाटक जैसा ही है। अरे ! इसे कहाँ से उठा लाये ? कौन ले आया ? देखो न, अत्यधिक दु खी होने पर भी बेचारा कुछ नही समझता और बैठा-बैठा ही ऊघ रहा है।' [६८–६६]

उपरोक्त परिस्थिति को देखकर परिवर्तित रूप मे विद्यमान बुध आचार्य ने अपनी आँखो को दीपक के समान तेजस्वी बना लिया और अतिशय कुपित होकर

---

* पृष्ठ ५०७

सभाजनो पर तीक्ष्ण दृष्टि फेंकते हुए गभीर स्वर मे कहने लगे—अरे ! पापी अधम पुरुषो ! क्या मैं तुमसे भी कुरूप हूँ कि तुम मूर्खो की तरह मुझ पर हँस रहे हो ? क्या तुम मुझे अपने से अधिक दु.खी समझकर हँस रहे हो ? अरे मूर्खो ! शरीर के काले तुम्ही हो, भूख से पाताल मे पेट धसे हुए तुम्ही हो, प्यास से सूखे होठ वाले भी तुम्ही हो। मार्ग-श्रम से थके हुए भी तुम्ही हो, ताप से पीडित भी तुम्ही हो और कोढी भी तुम्ही हो, मैं नही। अरे नराधमो ! शूल पीडा से तुम्ही पीड़ित हो, वृद्धावस्था से जीर्ण भी तुम्ही हो, महाज्वर से ग्रसित भी तुम्ही हो, उन्मादग्रस्त और अधे भी तुम्ही हो, मैं नहीं। अरे मूर्ख मनुष्यों ! पराधीन ऋणग्रस्त और बैठे-बैठे ऊघने वाले भी तुम्ही हो, मैं नही। दरिद्र, मलिन और दुर्भागी भी तुम्ही हो, मै नही। अरे ना-समझ बच्चों ! अरे पापियो ! काल की आँख तुम पर ही लगी है, तभी तो मुझे दुर्बल मुनि मानकर तुम लोग मुझ पर हँस रहे हो [१००–१०५]

दीन का उग्र दर्शन

इस दीन-दु खी पुरुष की जाज्वल्यमान सूर्य जैसी तेजस्वी आँखो से निकलते दैदीप्यमान प्रकाश से चारो दिशाए प्रकाशित हो रही थी। उसकी विद्युत् जैसी लप-लपाती जिव्हा और चमकती हुई दतपक्ति को देखकर तथा सारे ससार को थर-थर कंपित करने वाली सिहनाद जैसी वाणी को सुनकर, जैसे हरिणो का झुड भय से थर-थर कापने लगता है वैसे ही सभी सभाजन भय से काप उठे। [१०६–१०८]

धवल राजा का चिन्तन और प्रार्थना

विचक्षण धवल राजा ने अपनी कल्पना को दौडाया और कुछ सोचकर विमल से बोले—कुमार ! यह कोई साधारण पुरुष नही लगता है।* इसकी आँखे पहले मैल और चेप से भरी थी और अब सूर्य से अधिक चमक रही है। हे वत्स ! इसका मु ह तेज से दैदीप्यमान हो रहा है। वत्स ! रणभूमि मे करोडो शत्रुओ को छिन्न-भिन्न कर देने वाली इसकी सिहनाद-सम वाणी सुनकर मेरा दिल अब भी काप रहा है। अत. मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि यह कोई साधारण पुरुष न होकर प्रच्छन्न रूप मे साधु का वेष धारण कर कोई देव यहाँ आया है। अतएव हे वत्स ! ये मुनिपु गव क्रोधान्ध होकर हम सब को अपने तेज से जला कर भस्म न कर दे, उसके पहिले ही हमे इन्हे शान्त करना चाहिये, प्रसन्न करना चाहिये और इनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये। [१०९–११३]

विमल—आपश्री का निर्णय मुझे भी युक्तियुक्त लग रहा है, इसमे सदेह नही। ये साधारण पुरुष न होकर अवश्य ही कोई विशिष्टतम महात्मा प्रतीत होते हैं। पिताजी ! ये हमारा कुछ भी बिगाड़ करे उसके पहले ही हमे इन्हे प्रसन्न कर

---

* पृष्ठ ५०८

लेना चाहिये। महात्मा लोग भक्ति से ही प्रसन्न होते है, अत हमे इनके पावो मे पडना चाहिये। [११४-११५]

विमल की बात सुनकर दैदीप्यमान चपल मुकुटधारी धवल राजा अपने दोनो हाथ जोड़कर मुनि महाराज की ओर दौडे और उनके चरणो मे गिर पडे। महाराजा द्वारा मुनि के चरण-कमल छूकर वन्दना करते ही वहाँ उपस्थित जन-समूह ने भी मुनि के चरण छूकर नमस्कार किया। पावो मे पडे-पड़े ही महाराजा बोले—हे मुनिराज! हम निर्बुद्धि अज्ञानी मनुष्यो ने आपका जो अपराध किया हो उसे क्षमा कीजिए और हम पर प्रसन्न होकर आपका दिव्य-दर्शन कराने की कृपा कीजिये। [११६-११८]

दिव्य-दर्शन

राजा और सभी लोग उनको प्रणाम कर जैसे ही खड़े होकर सामने देखते है तो उनके आश्चर्य का पारावार नही रहता। दीन-दुखी, कुरूप, भिखारी के स्थान पर उन्होने देखा कि मुनीन्द्र एक अत्यन्त सुन्दर दिव्य स्वर्ण-कमल पर विराजमान है। उनके शरीर का लावण्य देवो के लावण्य को भी तिरस्कृत करने वाला और नेत्रो को तृप्त करने वाला है। उनका तेज इतना अधिक विस्तृत और दीप्तिमान था कि मानो वे साक्षात् सूर्य ही हो। वे समस्त लक्षणो से विभूषित और समस्त अगोपागो से स्पष्टतः अतिशय सुन्दर दिखाई देते थे। मुनीश्वर को अतिशय कान्तिमान सुन्दर स्वरूप मे देखकर राजा और वहाँ उपस्थित समग्र जन समूह के नेत्र आश्चर्य से प्रफुल्लित हो गये। [११९-१२२] □

१३. बुधसूरि : स्वरूप-दर्शन

दीन-दुखी दिखाई देने वाले भिखारी ने जब अपना अत्यन्त आकर्षक रूप धारण किया और एक शात मुनीश्वर के रूप मे स्वर्ण-कमल पर बैठकर उपदेश देना प्रारम्भ किया तब वहाँ उपस्थित लोग स्वभाव से ही अन्दर ही अन्दर बाते करने लगे—अरे! यह पहले तो कैसे कुरूप थे और अब ऐसे सौन्दर्यपुञ्ज कैसे हो गये? लगता है वास्तव मे ये कोई महा भाग्यशाली देवता ही होगे। [१२३]

धवल राजा का प्रश्न

जब लोग मन ही मन उपरोक्त बाते कर रहे थे तब भूपति धवल ने अपने दोनो हाथ जोडकर ललाट पर लगाते हुए पूछा—भगवन्! आप कौन है? क्या हमे बताने की कृपा करेगे? [१२४]

मुनि—भूप ! मैं न तो कोई देवता हूँ और न ही कोई राक्षस ! मैं तो एक साधारण यति (साधु) हूँ और मेरे वेश से ही आप सब यथावस्थित रूप भली प्रकार समझ सकते है । [१२५]

धवल राजा—भगवन् ! आपने पहले जो अत्यन्त वीभत्स, घृणोत्पादक, करुणाजनक विकृत रूप धारण किया था, उसका क्या कारण था ? आपके पहले शरीर मे जो काला रग आदि स्पष्ट दोप दिखाई दे रहे थे,* वे सब दोष आप मे न होकर हम लोगो मे है, ऐसा आपने जो कहा वह किस कारण से कहा ? फिर क्षण भर मे आपने ऐसा असाधारण सुन्दर रूप कैसे धारण कर लिया ? भगवन् ! मुझ जैसे मूढ को तो इन आश्चर्यजनक बातो को देखकर मन मे अत्यधिक कुतूहल हो रहा है, अत. हे प्रभो ! आप इस सम्बन्ध मे स्पष्टत. समझाकर मेरी जिज्ञासा को शात करने की कृपा करे । [१२६–१२९]

बुधाचार्य का उत्तर

बुधाचार्य—भूपेन्द्र धवल और सभाजनो ! आप मध्यस्थ मानस बनाकर शान्ति से बैठे और मेरे द्वारा कथ्यमान प्रसग को ध्यानपूर्वक सुने । हे राजन् ! मैंने पहिले जो रूप धारण किया था, वह ससार मे रहे हुए जीवो को उद्देश्य (लक्ष्य) मे रखकर ही धारण किया था । वास्तव मे सभी ससारी जीव मेरे पहले के रूप जैसे ही हैं, किन्तु वे मूढ चित्त वाले होने से इसे समझ नही पाते । अत सब प्राणियो पर दृष्टान्तभूत (घटित होने वाला) और उन्हे लज्जित करने वाला अत्यन्त वीभत्स रूप मैंने उन प्राणियो को प्रतिबोधित करने के लिए ही धारण किया था । हे राजन् ! मैंने वह रूप मुनि वेप मे धारण किया उसका विशेप कारण था और 'काला रग आदि शरीर के समस्त दोष तुम मे ही है मुझ मे नही' यह भी मैंने सकारण ही कहा था । हे भूप ! इस विषय पर अब मैं विस्तार से कथन करता हूँ, आप सभी सभाजन बुद्धि-चातुर्य को धारण कर ध्यानपूर्वक सुनें और समझने का प्रयत्न करे । [१३०–१३५]

स्पष्टीकरण—१. काला रंग

सर्वज्ञ दर्शन मे जो बुद्धिशाली मुनि महात्मा होते है वे तप और सयम के योग से अपने समस्त पापो और दोषो को क्षालित कर देते है, अत बाहर से चाहे वे काले-कीट दिखाई देते हो, घृणोत्पादक वीभत्स हो, कोढी हो, भूख-प्यास से पीडित हो, तथापि वस्तुत (परमार्थ से) वे सुन्दर हैं । हे राजन् ! पाप मे आसक्त, विपयो मे गृद्ध और सद्धर्म से वहिष्कृत (विशुद्ध धर्म से दूर) गृहस्थ बाह्य दृष्टि से निरोग, सुखी और आनन्दित दिखाई देने पर भी तत्त्वत वे रोगी, दु खी और पीडित है । पुन., काला रग आदि दोप जैसे गृहस्थो में होते है वैसे साधुओ मे नही

---

* पृष्ठ ५०९

होते । उनमे ये दोष क्यो नही होते, इसका कारण अब मैं समझाता हूँ । जो व्यक्ति बाहर से सुवर्ण जैसे पीले रग का हो किन्तु भीतर से पाप रूपी अधकार से लिप्त हो तो परमार्थ से वह काला ही है, ऐसा पण्डितजनो का अभिमत है । हे नरेन्द्र ! बाहर से कोयले जैसा काला व्यक्ति भी यदि अन्त.करण से स्फटिक रत्न जैसा निर्मल हो तो वह कनकवर्णी ही है, ऐसा विचक्षण लोग मानते है । अतएव काले रग वाले साधु का भी मन यदि वास्तव मे शुद्ध है तो, हे नरपति ! परमार्थत. उसे स्वर्ण के समान कनकवर्णी ही मानना चाहिये । हे नराधिप ! गृहस्थ ससार मे रहकर अनेक प्रकार के आरम्भ-समारम्भ युक्त पाप-परायण होता है, अत. उसका शरीर स्वर्ण जैसा गौरवर्णी दिखने पर भी परमार्थ से उसे कृष्णवर्णी ही समझना चाहिये । इसी वास्तविकता के कारण मैंने उस समय तुम्हे और सभाजनो को कहा था कि काला मैं नही तुम सब लोग हो ।* [१३६–१४५]

२. भूख

हे नरेश्वर ! मैंने तुम सब को भी भूखा बताया उसका भी स्पष्टीकरण सुनो । पहले भूख शब्द की व्याख्या समझो । चाहे जितने विषयो के प्राप्त होने पर भी तृप्ति न हो, सन्तोष प्राप्त न हो, उसे ही विद्वान् परमार्थ-दृष्टि से भूख मानते है । अर्थात् खाने की इच्छा को भूख तो मात्र व्यवहार मे कहा जाता है, वास्तविक भूख तो मानसिक असन्तोष पर आधारित है । सद्धर्म से रहित ससार के सभी मूढ प्राणी प्राय. ससार मे इतने अधिक आसक्त होते है कि उन बेचारो की यह भूख कभी मिटती ही नही, अर्थात् सदा बुभुक्षित ही रहते है । ऐसे प्राणी खा-पीकर, विषय भोगकर तृप्त दिखाई देने पर भी तत्त्व से वे क्षुधातुर ही हैं, ऐसा समझे । दूसरी ओर निरन्तर सन्तोष से पुष्ट होने वाले साधुओ का यदि आप गहराई से अवलोकन करे तो, हे राजन् ! आपको दिखाई देगा कि यह भयकर भाव-भूख उन पर कोई असर नही कर पाती, क्योकि उनके मन मे कभी असन्तोष होता ही नही । चाहे उनके पेट खाली हो, भूख से उत्पीडित दिखाई देते हो तथापि स्वस्थ मन वाले होने से उन्हे तृप्त ही समझना चाहिये । हे पृथ्वीपति ! इसीलिये मैंने तुम सब को क्षुधा से पीडित कहा था और स्वय को तृप्त बताया था । [इस से तुम्हे समझना चाहिये कि मेरे जैसे योग्य आचरण वाले सभी साधु तृप्त हैं और तुम्हारे जैसे ससार मे रहने वाले धन-धान्य, विषय, कषाय और परिग्रह मे आसक्त गृहस्थ अतृप्त है ।] [१४६–१५१]

३. प्यास

हे नरपति ! अप्राप्त भोगों को प्राप्त करने की अभिलाषा भाव-कठ का शोषण करने वाली होने से उसे ही प्यास कहा जाता है । जैन धर्म-रहित प्राणी चाहे जितना पानी पीकर भी निरन्तर इस भाव-तृष्णा से पीडित रहते है, क्योकि

* पृष्ठ ५१।

उन्हे नये-नये विषय-भोग प्राप्त करने की अभिलाषा निरन्तर बनी रहती है, जिससे उनका भाव कण्ठ सूखता ही रहता है। दूसरी ओर यदि आप मुनियो के विषय मे अवलोकन करेगे तो आपको प्रतीति होगी कि ये महात्मा भविष्य मे प्राप्त करने योग्य किसी भी प्रकार के भोगो के विषय में बिल्कुल इच्छा-रहित होते हैं, निःस्पृह होते है, इससे उन्हे सामान्य जल प्राप्त हो चाहे न हो किन्तु वे वास्तविक प्यास से तो दूर ही रहते है। भोग भोगने की अभिलाषा प्राणी को कैसा आकुल-व्याकुल बना देती है, इस पर तनिक गम्भीरता से विचार करे। हे राजन्! इसीलिये मैने कहा था कि तुम सब तृषा-पीडित हो, मैं नही। [१५२-१५५]

४ मार्ग-श्रम

इस ससार का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ और इसका अन्त कहाँ और कब हो जायगा, इसे कोई नही जानता। यह ससार-मार्ग सैकडो दोष रूपी चोरो से व्याप्त है, पूरा मार्ग विषम है, विषय रूपी मस्त हाथी या विषैले सर्पो से भरा हुआ है और दु:ख रूपी धूल से परिपूर्ण है। हे नरेन्द्र! ऐसे आदि-अन्त-रहित, चोर-सर्प से व्याप्त विषम मार्ग को विद्वानो ने अपने भाव-चक्षुओ से देखा है और इस सम्पूर्ण मार्ग को शरीरधारियो के लिये अति भयंकर दु:ख और खेद का कारण बताया है। ससारी प्राणी इस ससार-मार्ग पर कर्म रूपी सम्बल (गठरी) का भार सिर पर लाद कर (घाणी के बैल की तरह) निरन्तर घूमते रहते हैं, पर लेशमात्र भी आगे नही बढ पाते। फलत. विशुद्ध जैन-धर्म-रहित मूढ प्राणी ससार-महामार्ग से थककर खेद प्राप्त करते हुए निरन्तर क्षुभित और दु:खी दिखाई देते है। उनके व्यवहार मे उनका मार्ग-श्रम स्पष्ट झलकता है। वे चाहे शीत-ताप-नियन्त्रित सुन्दर घर, बगले या राज्यमहल मे रहते हो तथापि तत्त्वत उन्हे निरन्तर मार्गश्रम से थकित ही मानना चाहिये। हे भूपति! दूसरी ओर मुनि विवेकपर्वत शिखर पर स्थित सतताह्लादकारी जैनपुर मे निवास कर लीला लहर करते है। जैनपुर के हिम-शीतल चित्तसमाधान मण्डप मे रहकर वे अपने आपको इतना निवृत्त कर लेते है कि मार्गश्रम अथवा त्रास का कोई भी कारण उनके पास नही रहता, अर्थात् विगतश्रम हो जाते है। बाहर से देखने पर आपको मुनिगण मार्गश्रम से परिश्रान्त लग सकते है, किन्तु परमार्थ से उन्हे अश्रान्त समझना चाहिये।* इसीलिये हे राजेन्द्र! मैने पहले तुम्हे थका हुआ और स्वय को खेदनिर्मुक्त कहा था। [१५६-१६४]

५ ताप

हे भूप! क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी चतुर्विध दारुण और गहन कषायो के ताप से संसारी प्राणियों के सर्वांग सतत जलते रहते है। यद्यपि बाह्य शरीर पर वे सदा चन्दनादि शीतल पदार्थों का विलेपन किये रहते हैं, फिर भी

---

* पृष्ठ ५११

कषायो के ताप से वे सर्वदा तप्त ही रहते है। हे नृप ! जबकि दूसरी ओर साधुगण सतत शात मन वाले, निष्कषाय और पापरहित होने से निस्ताप रहते है। यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे ताप-पीड़ित दिखाई देते है, तथापि परमार्थ से उन्हे ताप से दूर ही समझना चाहिये। हे राजेन्द्र ! इसीलिये मैने पूर्व मे कहा था कि तुम सब ताप-पीड़ित हो, मैं नही। [१६५–१६९]

६. कोढ :

हे नरेन्द्र ! जैसे सामान्यतया कोढ की व्याधि होने पर शरीर मे कृमि पैदा हो जाते है, हाथ-पैरो से कोढ झरता रहता है, नाक चपटी अथवा नष्ट हो जाती है, आवाज घर्घर (मोटी) और अव्यक्त हो जाती है वैसे ही हे राजन् ! मनीषियो ने मिथ्यात्व, अज्ञान अथवा कुदेव कुगुरु कुधर्म मे श्रद्धा को ही कुष्ठ व्याधि कहा है। इस कोढ से ग्रसित होने पर ससारी प्राणियो मे अनेक प्रकार के कुविकल्प रूपी कृमि उत्पन्न हो जाते है, जिससे उनका आस्तिकता रूपी रस गलता रहता है, रूप नष्ट हो जाता है, सद्बुद्धि रूपी नासिका चपटी हो जाती है और मदोन्मत्तता के कारण उनकी वाणी भी घर्घर और अस्पष्ट हो जाती है। सम, सवेग, निर्वेद और करुणारूपी जो हाथ-पैर की अगुलिया है वे मूल से नष्ट हो जाती हैं। इसीलिये हे पृथ्वीनाथ ! विद्वज्जनो ने ससारी मूढ प्राणियो को सर्वदा मिथ्यात्वरूपी कोढ के उद्वेग से ग्रसित कहा है। यद्यपि वे सर्व अवयवो से सुन्दर दिखाई देते है, तथापि भाव (अन्तरग दृष्टि) से उनके शरीर के समग्र अवयव कृमिजाल से क्षत-विक्षत ही समझना चाहिये। दूसरी ओर मुनिगण सम्यग्भाव (सम्यक्त्व) से पवित्र और मिथ्यात्व से रहित होने से उन्हे यह मिथ्यात्व रूपी कोढ नही होता, अत उन्हे सर्व अवयवो से सुन्दर समझना चाहिये। हे नृपति ! यदि कभी बाह्य शरीर से वे कुष्ठ-ग्रसित भी दिखाई दे तब भी वे मानसिक कुष्ठ से रहित होने से कोढी नही है, ऐसा समझना चाहिये। इसी दृष्टि से विचार कर मैने कहा था कि तुम सब कोढ-ग्रस्त हो, मैं नही। [१७०–१७७]

७. शूल-पीड़ा

हे राजन् ! प्राणियो को जब अन्य प्राणी पर द्वेष-भाव उत्पन्न होता है तब उसकी समृद्धि को देखकर उस पर ईर्ष्या होती है, उसे ही विद्वान् पुरुष शूल-पीडा कहते हैं। इस ईर्ष्या रूपी शूल से आक्रात प्राणियो के हृदय मे प्रतिक्षण टीस उठती रहती है और वे दूसरो को दु खी देखकर प्रसन्न होते है। द्वेष से धधकते हुए वे बार-बार अपने चेहरे को विकृत करते है। किन्तु, हे राजन् ! सर्वत्र समान चित्तवाले और द्वेष-रहित साधुओ को यह महाशूल नही होता। इसी कारण को ध्यान मे रखकर मैने पहले कहा था कि तुम सब शूल से पीडित हो, मै नही।

[१७८–१८१]

८. वृद्धावस्था

हे नरेन्द्र ! अनादि काल से ससार-चक्र चल रहा है, जिसमे प्राणी समान गति से जन्म, मरण और पूर्ववत् व्यवहार की प्रवृत्ति करता ही रहता है,* पर इसके इस जन्म-मरण और व्यवहार मे कोई विशिष्टता देखने मे नही आती है । इसने न कभी श्रेयस्करी विद्याजन्म (विद्वत्ता का अनुभव) ही प्राप्त किया है, न कभी इसने विवेक रूपी तरुणाई ही प्राप्त की है और न कभी भावमृत्यु को ही प्राप्त होता है । इसलिये प्राणी जब तक ससार मे रहता है, मात्र जीवन-मरण के चक्कर ही लगाता रहता है और अनन्त दुःख समूह रूपी वृद्धावस्था से जीर्ण-शीर्ण ही दिखाई देता है । बाह्य दृष्टि से चाहे ऐसे प्राणी युवक ही दिखाई देते हो, पर तत्त्वत. उन्हे जरा-जीर्ण ही समझना चाहिये । हे नृप ! जब कि दूसरी ओर साधुओ का जीवन ही श्रेयस्करी विद्यामय होता है, विवेक रूपी यौवन से वे ओत-प्रोत रहते हैं और दीक्षा सुन्दरी के साथ आनन्द से विलास करते है । उन्हे त्रासकारी बुढापा आता ही नही, वे सदा भाव-यौवन मे ही रहते हैं और जब मरते है तब इस प्रकार मरते है कि उन्हे पुनः जन्म लेना ही न पडे । अत. सभी ससारी प्राणी दीर्घजीवी होने पर भी बुढापे से जीर्ण है, जब कि साधु अपने कर्मो को काटने मे शक्तिमान होने से सर्वदा यौवन मे ही रहते हैं । (हे राजन ! इसी पर्यालोचन के कारण मैंने पहले तुम लोगो से कहा था कि तुम सब वृद्ध हो, मै नही ।) [१८२–१८८]

९. ज्वर

हे भूप ! ससारी मूर्ख प्राणी सर्वदा राग रूपी सताप से सतप्त रहते है, अत विद्वानो ने उन्हे महाज्वर से तप्त कहा है । साधुओ मे तो राग की गन्ध भी नही होती, अत. बाह्य दृष्टि से भले ही वे ज्वर-पीडित दिखाई देते हो, पर राग रूपी सताप से रहित होने से उन्हे ज्वर-रहित ही समझना चाहिये । [१८९-१९०]

१० उन्माद

हे धरानाथ ! अपने आपको पण्डित मानने वाले भी जब मूर्ख ससारी प्राणी की तरह करणीय कर्त्तव्य/कार्य और सद् अनुष्ठान मे तो प्रवृत्त नही होते, अपितु बार-बार रोकने पर भी पाप कार्य तथा अकरणीय कार्यों मे तत्परता से प्रवृत्त होते हैं, अत. वे उन्मत्त (पागल) ही है ऐसा समझे । जबकि दूसरी ओर शुद्ध बुद्धि वाले साधुगण सर्वदा सदनुष्ठान मे रत रहते है, अत उन्हे ऐसा उन्माद नही होता । हे राजन् ! इसी विचार-विमर्श के आधार पर मैने कहा था कि तुम सब वृद्धावस्था से जीर्ण, रोगग्रस्त और उन्मादयुक्त हो, मै नही हूँ । [१९१–१९४]

११. अन्धापन

हे वसुधापति ! ससारी प्राणी भले ही बाह्य दृष्टि से विशाल नेत्रो वाले हो और अपने सुन्दर नेत्रो से आखे फाड़-फाड कर देख रहे हो, फिर भी वे अन्दर से

* पृष्ठ ५१२

कामान्ध होते है, अत: पहले से ही मैंने उन्हे विकलाक्ष (अन्ध) कहा है। इस प्रकार का कामजन्य अन्धत्व साधुओ मे कदापि नही होता है। यद्यपि बाह्य दृष्टि से साधु मन्द दृष्टि वाले या नेत्रहीन भी होते है पर वे कामान्ध नही होते, अत उन्हे अन्धा नही कहा जा सकता। हे राजन्! इसीलिये मैंने तुम सब लोगो को अन्धा और स्वय को पूर्ण एव विशाल नेत्रो वाला सुलोचन कहा है। [१९५–१९८]

१२. पराधीनता

हे राजन्! गृहस्थ प्राणी पराधीन क्यो है और साधू स्वतन्त्र क्यो है? इस विषय मे अब बताता हूँ। स्त्री, पुत्र और चचल कुटुम्ब आदि भिन्न-भिन्न कर्मो से निर्मित होने से परमार्थ से स्नेह-रहित है।* पर, जिन मूढ प्राणियो ने इस परमार्थ को नही समझा है, उन्हे तो वे मन से अत्यन्त ही प्रिय लगते है और वे तो इसे ही ससार मे सारभूत तत्त्व मानते है। उनके मोह मे फसा पामर प्राणी रात-दिन पशु की भाति दास/नौकर की भाति क्लेश सहन करता है। वह न तो स्वस्थ चित्त से खाना खा सकता है, न रात मे सो सकता है और धन-धान्य से समृद्ध होने की चिन्ता मे निरन्तर आकुल-व्याकुल रहता है। वह सदा कुटुम्ब का आज्ञाकारी बनकर आदेशो का पालन करता रहता है, फिर भी वस्तुतत्त्व के परमार्थ से अनभिज्ञ अपनी पराधीनता को नही जानता। यह प्राणी मनुष्य आदि चार गति वाले इस ससार-चक्र मे सकल जीवो से माता, पिता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, पुत्री आदि सम्बन्धों से अनेक बार सम्बन्धित हो चुका है। इस वस्तुस्थिति को समझने वाला चतुर प्राणी फिर क्यो बार-बार उनके लिये अपने जीवन को हारता है? क्यो अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है? इसीलिये महात्मा पुरुष स्त्री, पुत्र आदि रूप इस पिजरे का पूर्णरूप से त्याग कर नि.सग स्वतन्त्र हो जाते है। नि.सग बुद्धि वाले साधु ही स्वतन्त्र है, स्वाधीन है, भाग्यशाली हैं, पाप-रहित है और जगत् के स्वामी है। ऐसे महाबुद्धिमान् महात्मा अपने गुरु के अधीन होने पर भी घर-कुटुम्ब के पाश/बन्धन से निर्मुक्त होने से पूर्णतया स्वतन्त्र है। हे मानवेश्वर! इस बात को ध्यान मे रखकर ही मैने तुम्हे पराधीन और अपने को स्वतन्त्र कहा था। [१९९-२१०]

१३ आठ ऋणदाता

हे राजन्! मैंने पहले जो कहा था कि मेरे सिर पर आठ ऋणदाता है, वे प्राणियो से सम्बन्धित ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म है, जो प्राणी को अनेक प्रकार के दु ख देते है। ये कर्म जीव को निरन्तर व पुन -पुन कदर्थित करते रहते है। इन तीव्र दारुण कर्मो से प्राणी दान आदि लेने-देने मे, भोग-उपभोग करने मे और अपनी शक्ति का उपयोग करने मे असमर्थ हो जाता है। ये कई प्राणियो को कभी भूखा-प्यासा रखते है, कभी उसे दीन-हीन बनाकर विह्वल कर देते हैं और कभी उसे नरक के कोठे मे डालकर गाढ पीडा देते है। ये आठ कर्मरूपी ऋणदाता साधुओ के

* पृष्ठ ५१३

भी होते है, किन्तु वे शुद्ध प्राय होते है। उनका ऋण अल्प मात्रा में होता है, अतः वे उनको इतना कष्ट नही दे पाते। फिर वे मुनिगण इतने शक्ति-सम्पन्न एव कृत-निश्चयी होते है कि नित्य ही अपने ऋण को थोडा-थोडा चुकाकर उसे घटाते रहते है, अत. ये आठ ऋणदाता साधुओ को इतना त्रास नही दे सकते। हे राजन्! इसीलिये मैने पहले तुम सबको कर्जदार और स्वय को ऋणमुक्त कहा था।
[२११-२१६]

१४ प्रचला निद्रा

हे नरेन्द्र! जैन-धर्म-रहित प्राणी नित्य ही भाव निद्रा मे सोते रहते है इसका भी विवेचन सुनो। कर्म-परम्परा अति भीषण है, यह ससार-सागर अति-घोर है, राग आदि भयकर दोष है, प्राणियो का मन चपल है, पाँचो इन्द्रियाँ बहुत चचल है,* जीवन अस्थिर है, समस्त समृद्धिया भी चलायमान हैं, शरीर क्षणभगुर है, प्रमाद प्राणियो का शत्रु है, पाप-सचय दुस्तरणीय है, असयम दु ख का कारण है, नरक रूपी कु आ महा भयकर है, प्रियजनो का सयोग अनित्य है, अप्रिय सयोग भी क्षणिक है, कलत्र-मित्र और बान्धवजनो के प्रति राग और विराग भी क्षणिक है, मिथ्यात्व बैताल महा भयकर है, वृद्धावस्था तो हाथ मे ही वैठी है, भोग अनन्त दु.खदायी है और मृत्यु रूपी पर्वत अति दारुण है। यह सब बिना सोचे ही प्राणी पाव पसार कर सोया है, अपने विवेक चक्षुओ को बन्द कर चेतना-शून्य होकर घुर-घुर आवाज करता हुआ घोर निद्रा मे पडा है। विवेकीजनो द्वारा बहुत तेज आवाज से जगाने पर वह थोडा जागकर भी अपनी आँखो को घूर्ण-मान करता हुआ पुन इस महामोह निद्रा मे बार-बार सो जाता है। हम कहाँ से आये है? किस कर्म से आये है? कहाँ आये है? कहाँ जायेगे? इन सब पर ये मूर्ख प्राणी कोई विचार नही करते। अत बाह्य दृष्टि से ऐसे प्राणी जागृत दिखाई देने पर भी वस्तुत वे भाव-निद्रा मे सो रहे है, समझना चाहिये। जबकि मुनिपु गवो को ऐसी महामोह रूपी निद्रा नही होती। वे भाग्यशाली तो नित्य जागृत रहते है। सर्वज्ञ प्ररूपित आगम रूपी दीपक से महाबुद्धिमान साधु अपनी और अन्य प्राणियो की गति और आगति को जान जाते हैं, अत. उन्हे बाह्य निद्रा से सुप्त होने पर भी विवेक नेत्रो के खुले होने से जागृत ही समझना चाहिये। इन सब बातो का विचार कर ही मैने पहले कहा था कि तुम सब सो रहे हो, मै नही। महामोह निद्रा मे पडे होने के कारण तुम वस्तु-स्वरूप को सम्यक् प्रकार से नही समझते, जबकि मेरे विवेक चक्षु खुले होने से मै प्रत्यक्षत एव स्पष्टत देखता हूँ। [२१७-२३२]

१५ दरिद्रता

हे राजन्! जो सद्धर्म से रहित है, परमार्थ से उन्ही प्राणियो को दरिद्रता से आक्रान्त दारिद्र्य-मूर्ति समझना चाहिये। हे नरपति! ज्ञान, दर्शन, चारित्र और

---

* पृष्ठ ५१४

वीर्य जो भावरत्न है, वस्तुतः वे ही धन के भण्डार है, वे ही ऐश्वर्य के कारण है और वे ही सुन्दर है, जो पापात्माओ के पास नही होते। फिर इनके बिना उनके पास कैसा धन ? फलतः इन भाव-रत्नो से रहित जो लोग धन से परिपूर्ण दिखाई देते है, उन्हे भी परमार्थ से निर्धन ही समझना चाहिये।* हे भूप ! जबकि दूसरी ओर साधु महात्मा तो नित्य ही चित्त रूपी मन्दिर मे इन भाव-रत्नो से जगमगाते रहते है, अत. वे ही वास्तव मे सच्चे धनिक है, वे ही धन्य है और वे ही परम विभूति सम्पन्न है। वे नि.सदेह निखिल ससार का पोपण करने मे शक्तिमान है। हे नृप ! बाहर से फटे मैले वस्त्रो से वे भले ही मलिन, भिखारी और दरिद्र दिखाई देते हो और उनके हाथ मे तूम्बड़े (पात्र) दिखाई देते हो तथापि परमार्थ से विद्वानो ने उन महर्घ्य एव अमूल्य रत्नधारी मुनियो को ही परमेश्वर माना है। हे नरेन्द्र ! आवश्यकता पडने पर वे महात्मा अपने तेज के द्वारा एक तृण से भी रत्नो के भण्डार का निर्माण कर सकते है। अतः अपने दारिद्र्य का पर्यालोचन न कर आपने मुझ जैसे भाव-रत्नो के धारक महाधनी साधु को दरिद्री कैसे बतलाया ? [२३३–२४२]

१६ मलिनता

हे पृथ्वीपति ! जो व्यक्ति कर्म-मल से भरा हुआ है वही वास्तव मे मलिन है। कर्म-मल से पूरित प्राणी शरीर के बाहरी अंगोपागो को कितना भी धोकर, सुन्दर वस्त्र धारण करले तथापि उसकी मलिनता मे न्यूनता नही आती। जबकि बाहर से मलिन वस्त्र धारण करने पर भी जिनके मन बर्फ, मोती के हार और गाय के दूध के समान स्वच्छ है, हे मानवेश्वर ! वे ही वास्तव मे स्वच्छ हैं, निर्मल हैं, ऐसा समझना चाहिये। तुम सब लोगों मे विद्यमान इस भाव-मलिनता का विचार किये बिना ही तुम सब ने किस कारण से मेरी हँसी उडाई ? [२४३–२४५]

१७ दुर्भाग्य

सद्धर्म में निरत पुरुप ही इस विश्व में सौभाग्य-सम्पन्न होता है। ऐसा पुरुष ही विवेकी पुरुषों का हृदयवल्लभ होता है। जिसका चित्त सद्धर्मवासित होता है वही जगत के समस्त सुर, असुर, चराचर प्राणियो का बन्धु तुल्य होता है। अर्थात् ऐसा सत्पुरुष ही समस्त सृष्टि के साथ मैत्री-भाव/प्रेम-भाव रखता है। साधु तो इस लोक में सर्वदा सदाचार में ही रत रहते है, अत वे ही वास्तव में सौभाग्यशाली है। जो ऐसे साधु पुरुषों से द्वेष करते हैं वे नराधम हैं, पापी है। जिस प्राणी मे अधर्म का जितना आधिक्य है वह भावत उतना ही दुर्भागी है। सभी विवेकी पुरुष ऐसे अधर्मी की निन्दा करते है। अतः जो प्राणी पाप-रत है वही लोक मे दुर्भाग्य के योग्य होता है। हे नराधिप ! ऐसे पापी की जो प्रशसा करते हैं वे भी दुर्भागी और पापी

---

* पृष्ठ ५१५

हैं। फिर मैं तो प्रकट रूप मे भी मुनि वेष मे था, धर्मी था। ये दुर्भागी लोग मुझ सोभागी को देख भी सकते थे, तब भी तुम लोगो ने मुझे दुर्भागी क्यो कहा? किस लिये मेरी निन्दा की? [२४६-२५१] □

१६. पारमार्थिक आनन्द

[धवल राजा और सभाजनो को अपने स्वरूप का दर्शन कराते हुए बुधाचार्य ने ससारी जीवन की अधमता और साधु जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला। ससारी जीवो की झूठी समझ को दूर करने के कारणो पर प्रकाश डालते हुए उन्होने स्पष्ट किया कि किसी भी प्रकार उनकी निन्दा करना उचित नही था।]

सांसारिक सुख

उन्होने कहा—हे राजन्! जिनवचनामृत-रहित पामर प्राणी इस ससार के गर्भ मे भटकते है, कर्म-परम्परा रूपी रस्से से निरन्तर बधते है, विषयो को भोगने पर भी तृप्ति न होने से विषय-बुभुक्षा से पीडित रहते है, विषयेच्छा रूपी तृषा से प्यासे रहते है, निरन्तर भवचक्र मे भटकते हुए थक कर खिन्न हो जाते है, कषायाग्नि से प्रतिदिन दहकते रहते है, मिथ्यात्व रूपी कोढ से ग्रस्त रहते है, ईर्ष्या शूल से विधते रहते है, ससार मे दीर्घकाल तक निवास होने के कारण वृद्धावस्था से जीर्ण हो जाते है, राग-ज्वर से धधकते है,* कामवासना रूपी काचपटल से अन्धे हो जाते है, भाव-दरिद्रता से आक्रान्त हो जाते है, जरा रूपी राक्षसी से पराभव प्राप्त करते है, मोहान्धकार से आच्छादित रहते है, पाच इन्द्रियो के घोडो से खीचे जाते है, क्रोधाग्नि मे पकते रहते हैं, मान पर्वत से स्तब्ध रहते हैं, माया जाल से वेष्टित रहते हैं, लोभ समुद्र मे डूबते रहते हैं, इष्ट-वियोग की वेदना से सन्तप्त रहते है, अनिष्ट के सयोग से परितप्त होते है, कालपरिणति के वशीभूत इधर से उधर डोलते रहते हैं, लम्बे समय तक बड़े कुटुम्ब के भरण-पोषण से बार-बार सत्रस्त होते है, कर्म रूपी कर्जदारो से बार-बार लाछित होते है, महामोह की दीर्घ निद्रा से सब से पीछे रह जाते हैं और अन्त मे मृत्यु रूपी मगर-मच्छ के ग्रास बनते हैं। हे राजन्! यद्यपि ये ससारी प्राणी वीणा, मृदग आदि के मधुर स्वर सुनते है, नेत्रो को आकृष्ट करने वाले विभ्रम, विलास एव कटाक्ष युक्त मनोहर रूप देखते हैं, अच्छी

* पृष्ठ ५१६

तरह से निष्पादित कोमल स्वादिष्ट और मनोनुकूल विशिष्ट प्रकार का भोजन करते है, कपूर, अगरु, कस्तूरी, पारिजात, मंदार, नमेरु, हरि-चन्दन, संतानक के फूलो को और अग्निपुट द्वारा निर्मित सुगन्धित पदार्थो की सुगन्ध लेते है, ललित ललनाओ का कोमल शैया पर आनन्द से स्पर्श करते है, आलिगन करते है, प्रेमी मित्रो के सग आनन्द करते है, सुन्दर वन वाटिका मे विलास करते है, मनोवाछित चेष्टाये और क्रीडाये करते है, वर्णनातीत विषय-वासना-रस मे आकठ डूबे रहते हैं, रसासक्ति के अभिमान में आखे भी मुदी (निमीलित) रहती हैं तथापि उन प्राणियो का यह सुखानुभव मात्र क्लेश रूप और निरर्थक ही है। हे राजन्! मैंने प्रारम्भ मे जो विविध प्रकार के दुःखो के सैकड़ो कारण बताये हैं उनसे तो यह ससारी प्राणी निरन्तर घिरा ही रहता है, फिर सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? मानसिक शाति कैसे मिल सकती है?

इस प्रकार की परिस्थिति में भी, दुखों से आकण्ठ डूबा हुआ होने पर भी प्राणी मोह के कारण अपने को सुखी मानता है। हे भूप! उसका यह सुख शिकारियो द्वारा शक्ति, नाराच (बाण), तोमर (भाला) से आहत होने पर त्रस्त हरिण को जैसा सुख प्रतीत होता है वैसा ही ससारी प्राणियो का सुख है। अथवा उसका यह सुख आटा लगे काटे मे फसी हुई तालुविद्ध मूर्ख मछली का सुख ही है जो आटा खाने के लोभ मे अपने प्राण गवाती हैं। हे नरेन्द्र! विशुद्ध धर्मरहित प्राणियो के मस्तक दुःख-सघात मे इतने विदीर्ण रहते हैं मानो वे महादुखी नारकीय जीव ही हो, अर्थात् वास्तविक सुख की तो गन्ध भी उनके पास नही फटकती।

[२५२-२५५]

साधुओं के पारमार्थिक आनन्द

हे राजन्! श्रेष्ठ मुनिपुगवो को उपरोक्त सभी क्षुद्र उपद्रव कदापि बाधित/उत्पीड़ित नही करते है, क्योकि उनका मोहान्धकार नष्ट हो जाता है और उन्हे सम्यक् ज्ञान (विशुद्ध सत्य ज्ञान) की प्राप्ति हो जाती है। किसी भी विषय का कदाग्रह (झूठा आग्रह) करने की प्रवृत्ति से वे निवृत्त हो जाते हैं। सतोषामृत उनकी रग-रग मे व्याप्त रहता है। वे किसी भी प्रकार का अनैतिक आचरण नही करते जिससे उनकी भव-बेल सूख कर टूट जाती है। धर्म मेघ रूपी समाधि स्थिर हो जाती है और उनका अन्तरग अन्तःपुर (आन्तरिक गुण) उनके प्रति अधिकाधिक अनुरक्त होता है।

मुनिपुंगवो के अन्तरंग अन्तःपुर (११ पत्नियो) का वर्णन भी सुनिये—

इन श्रमण वृन्दो को धृति सुन्दरी सन्तोष प्रदान करती है,* श्रद्धा सुन्दरी चित्त को प्रसन्न रखती है, सुखासिका सुन्दरी आह्लादित करती है, विविदिषा सुन्दरी शान्ति का प्रसार करती है, विज्ञप्ति सुन्दरी प्रमोद प्रदान करती है, मेधा सुन्दरी सद्बोध प्रदान करती है, अनुप्रेक्षा सुन्दरी हर्षोल्लास का कारण भूत बनती है,

* पृष्ठ ५१७

मैत्री सुन्दरी मनोभीप्सित अनुकूल आचरण करती है, करुणा सुन्दरी प्रति समय वात्सल्य भाव रखती है, मुदिता सुन्दरी सतत आनन्द प्रदान करती है और उपेक्षा सुन्दरी समस्त प्रकार के उद्वेगो का नाश करती है।

हे नरेश्वर! अत्यन्त प्रिय एव प्रगाढ अनुरागिणी इन ग्यारह सुन्दरियो मे प्रेमासक्त (धैर्यादि आन्तरिक गुणो मे दृढासक्त) होकर ये मुनीन्द्र सर्वदा आमोद-प्रमोद करते है, अर्थात् प्रमुदित रहते हैं। इन्ही सुन्दरियो (आन्तरिक गुणो) के सम्पर्क से ये श्रमणगण स्वय की आत्मा को संसार-सागर से पार और निर्वाण-सुख-समुद्र मे डूवा हुआ मानते है। (यह तो अनुभव सिद्ध और शास्त्र प्रसिद्ध ही है कि) शान्त चित्त वाले विशुद्ध ध्यानी मुनियो को जो सुख प्राप्त होता है वैसा सुख देवो को, इन्द्र को या चक्रवर्ती को भी प्राप्त नही हो सकता। जो महात्मागण अपने देह रूपी पिंजरे मे भी पराया हो इस भाव से रहते है, उन्हे कैसा सुख मिलता है, यह पूछने का साहस ही कौन कर सकता है? ससार-गोचरातीत जिस सुख की अनुभूति वे करते है उस आनन्द रस के स्वरूप को वे ही जान सकते है, अन्य प्राणी नही। ऐसी परिस्थिति मे भी जब कि मैं सुख-पूरित हूँ तब भी वस्तुतत्त्व के पारमार्थिक रहस्य को समझे बिना लोगो ने मुझे दु खी कहकर मेरी जो निन्दा की है, वह व्यर्थ है। स्वय दु.खी होते हुए भी तुम सब लोग झूठे सुख के अभिमान में विचित्र नाटक कर रहे हो, किन्तु हे राजेन्द्र! वास्तविक पारमार्थिक सुख क्या है? कहाँ है? कैसे मिलता है? यह कोई नही जानता और न समझने की कोई चेष्टा ही करता है। [२५६–२६२]

१५. बठरगुरु कथा

[सदागम के समक्ष ससारी जीव वामदेव अपनी आत्मकथा को आगे सुनाते हुए कहता है कि दरिद्री के वेष मे उपस्थित बुधाचार्य अपनी बुलन्द आवाज मे मेरे मित्र विमल के पिता धवल राजा को जब उपरोक्त विवेचन सुना रहे थे तब राजा के मन मे एक शका उठी और उन्होने आचार्य से पूछा।]

धवल राजा का प्रश्न : आचार्य का समाधान

भगवन्! आपके कथनानुसार जब विषयो मे दु:ख और समभाव मे ही सब से उत्तम सुख है तब सब लोग उसे समझ कर भी बोध को क्यो नही प्राप्त करते? [२६३]

बुधाचार्य—राजन् ! लोग महामोह के वशीभूत होकर वस्तुतत्त्व को नही समझते (सत्यमार्ग पर नही चलते और परमार्थ सुख के विषय मे विचार भी नही करते।) जैसे इस बठरगुरु ने किया था। [२६४]

धवल राजा—भगवन् ! यह बठरगुरु कौन था और उसे तत्त्वबोध क्यो नही हुआ ?

बुधाचार्य—राजन् ! मैं तुम्हे बठरगुरु की कथा विस्तार से सुनाता हूँ। सुनो—

बठरगुरु की कथा

भव नामक एक बडा गाँव था। इस गाँव मे स्वरूप नामक शिव मन्दिर था। यह मन्दिर मूल्यवान रत्नो से पूर्ण, विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों से भरपूर, द्राक्षादि स्वादिष्ट शीतल मधुर पेय से युक्त, धन-धान्य से समृद्ध और सोने, चाँदी, कपड़े तथा वाहनों से सम्पन्न था। यह शैव देवमन्दिर स्फटिक जैसा निर्मल, उत्तुग, सुखोत्पादक और सब प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण था। [२६५]

इस शिव मन्दिर मे सारगुरु नामक शिवाचार्य अपने कुटुम्ब के साथ रहता था। वह इतना ग्रथिल (गेला, मूर्ख) था कि अपने हितेच्छु और प्रेमी कुटुम्बीजनो का भी भली प्रकार पालन-पोषण नही करता था और न उनके स्वरूप (वास्तविकता) को ही जानता था। शिवमन्दिर मे कैसी समृद्धि भरी हुई है, यह भी वह नही जानता था। अर्थात् उसकी मूर्खता की पराकाष्ठा तो यह थी कि वह न तो यह जानता था कि घर मे कौन-कौन है और न यह जानता था कि घर मे कितनी पूजी है।*

उस गाँव के चोरो को यह पता लग गया था कि शिव मन्दिर मे कितनी समृद्धि है और उसके मूर्ख व्यवस्थापक को इसका पता भी नही है। अतः धूर्त चोरो ने वहाँ आकर सारगुरु से मित्रता गाँठी। पगला आचार्य चोरो को भले लोग, हितेच्छु, प्रेमी और हृदयवल्लभ समझने लगा। परिणामस्वरूप आचार्य अपने कुटुम्ब का अनादर कर चोरो के साथ निरन्तर विलास करने लगा और अपने कुटुम्ब को भूल-सा गया।

सारगुरु के ऐसे विचित्र व्यवहार को देखकर शिवभक्त उसे समझाने लगे—'भट्टारक ! आप जिनकी सगति कर रहे है वे महाधूर्त और चोर है। आपको उनकी सगति छोड़ देनी चाहिये।' सारगुरु ने तो उनकी बात सुनी ही नही, सुनी भी अनसुनी करदी। उसकी मूर्खता से तग आकर लोगो ने उसका नाम बठर (मूर्ख) गुरु रख दिया। आखिर मे जब लोगो को यह विश्वास हो गया कि यह मूर्ख धूर्त और तस्करो से घिर गया है और उनकी मैत्री मे ही आनन्द मानता है तब लोगो

---

* पृष्ठ ५१८

ने शिव मन्दिर मे आना ही छोड दिया। शिवभक्तो का आना-जाना वन्द होने से धूर्तो का जोर वढा, उन्होने अपना कपट जाल अधिक फैलाया। बठरगुरु के पागल-पन को वढावा देने लगे और अन्त मे शिवमन्दिर पर अपना अधिकार कर, बठरगुरु के परिवार को एक कोठरी मे वन्द कर ताला लगा दिया।

शिवमन्दिर और वठरगुरु को अपने वश मे कर धूर्त तस्कर वहुत प्रसन्न हुए। उन्होने सब से अधिक धूर्त तस्कर व्यक्ति को अपना नायक चुना। फिर धूर्त लोग अपने नायक के सन्मुख तालियाँ बजाकर नाच करने लगे और बठरगुरु से भी प्रतिदिन अनेक प्रकार के नाटक करवाने लगे। नाच करते हुए धूर्त चोर लोग गाते भी जाते थे—

हे मनुष्यो ! तुम भी किसी प्रकार धूर्तता का भाव धारण कर मित्र को ठगो और उसके भोजन का हरण करलो। देखो, हमने तो वठरगुरु के मन्दिर मे घुसकर अधिकार कर लिया और अब मनमानी कर रहे है। अत. तुम यहाँ आकर देखो तो सही कि हम कैसे उसके नायक (अधिकारी) बन गये है। [२६६]

अन्य चोरो ने अपनी दूसरी तान छेडी—

अरे ! हमारी जगप्रसिद्ध धूर्तता से यह वठरगुरु तो हमारे वश मे आ गया है और सैकडो रत्नो की समृद्धि के साथ यह शिवमन्दिर भी हमारे हस्तगत हो गया है। हम सब खाते है, पीते है और मस्ती छानते है। [२६७]

इतने पर भी वह हतभागी वठरगुरु न तो अपने तिरस्कार और विडम्बना को समझता है, न अपने कुटुम्ब का हाल-चाल जानता है और न यह जानता है कि धन-धान्य से परिपूर्ण मन्दिर दूसरो के हाथ मे चला गया है। वह यह भी नही समझता कि मन्दिर पर अधिकार करने वाले उसके शत्रु है, मित्र नही। वह तो इन शत्रुओ को अपना परम मित्र मानता है। ऐसी मूर्खता से पागल बना बठरगुरु हृष्ट-तुष्ट होकर रात-दिन चोर परिवार के बीच मे नाचता गाता हुआ आनन्द मानता है।

इस भव गाव मे चार मोहल्ले थे अतिजघन्य, जघन्य, उत्कृष्ट और अत्यु-त्कृष्ट। जब वठरगुरु को भूख लगती है और चोरो से भोजन मागता है तब चोर उसके शरीर पर काले दाग बनाकर, हाथ में घटकर्पर (मिट्टी की ठीकरी का पात्र) देकर कहते है कि, 'मित्र गुरु महाराज ! भिक्षा मागिये, थोडा घूमिये।' वठर की तो स्थिति ऐसी हो गई थी कि जैसा चोर कहे वैसा उसे करना ही पडे। अत वह धूर्तो से घिरा हुआ पहले अतिजघन्य मोहल्ले मे गया। वहाँ धूर्तो ने ताल दे-देकर उसे घर-घर नचाया। धूर्तो ने मोहल्ले मे रहने वाले अधम लोगो को गुरु की * मरम्मत करने का सकेत किया, अत. उस मोहल्ले के निवासियो ने यमराज के समान वठर गुरु की लाठियो, पत्थरो, लातो और मुट्ठियो से खूब मरम्मत की। घोर पीडा से तिलमिलाता

* पृष्ठ ५१६

हुआ बेचारा बठर जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगा। इस अतिजघन्य मोहल्ले में बठर ने बहुत समय तक घूमकर घोर दु:ख देखे, पर उसे कही भी भिक्षा नही मिली। मार खाकर वह उस अतिजघन्य मुहल्ले से वापिस निकला। उसका मिट्टी का खप्पर टूट गया। ठीकरे के फूट जाने पर धूर्तो ने बठर के हाथ मे मिट्टी का सकोरा दिया और उसे लेकर दूसरे जघन्य मोहल्ले मे आये। यहाँ के क्षुद्र निवासियो ने भी बठर की खूब खिल्ली उड़ाई। यहाँ पर भी उसे भिक्षा नही मिली और वह इस मोहल्ले से खाली हाथ लौटा। सकोरे के फूट जाने पर धूर्तो ने बठर को ताँबे का पात्र दिया और उसको तीसरे उत्कृष्ट मोहल्ले मे ले गये। यहॉ पर बठर को रत्नपूरित शिव मन्दिर का नायक (स्वामी) है इस कारण कुछ-कुछ भीख मिली। यहा के निम्न लोगो ने भी इसकी कदर्थना/विडम्बना की, परन्तु पहले और दूसरे मोहल्ले जितनी नही। इस तीसरे मोहल्ले मे भी वह बठर कुछ समय तक घूमता रहा। एक दिन उसका ताम्रपात्र भी टूट गया। ताम्रपात्र के टूट जाने पर धूर्तो ने बठर को चादी का पात्र दिया और उसे अपने साथ चौथे अत्युत्कृष्ट मोहल्ले मे ले गये। यहॉ के निवासी उसे रत्नो के अधिपति के रूप मे भली प्रकार जानते थे, अत. यहॉ बठर को घर-घर से सुसस्कृत बढिया भिक्षा मिली। [२६८-२७४]

इस प्रकार से धूर्त चोर लोग बठर गुरु को पुन -पुन एक से दूसरे मोहल्ले मे फिराते, रात-दिन नाटक करवाते और नचाते। प्रत्येक घर के लोग उसकी हसी उडाते, उसे मारते, प्रसन्नता से तालिया बजाकर उसकी नकल उतारते और विविध प्रकार से उसकी विडम्बना करते। तस्करो के द्वारा ऐसी कदर्थना किये जाने पर भी वह मूर्ख गुरु जैसी-तैसी भिक्षा से पेट भरकर मन मे प्रसन्न होता, सन्तुष्ट होता। [२७५-२७७]

कभी-कभी तो उत्साह मे आकर गाने भी लगता—

अरे! यह मेरा मित्रवर्ग तो मेरे ऊपर अत्यधिक प्रेम रखता है और सब लोग मेरा विनय (सन्मान) करते है। अरे! मुझे तो यह सचमुच मे राज्य मिल गया और यह मेरा विकट उदर (पेट) भी अमृत भोजन से भर जाता है। [२७८]

विशेषता तो यह कि मूर्ख बठरगुरु आकण्ठ दु ख मे डूबा हुआ होने पर भी अपने को सुखसमुद्र से सराबोर मानता था और उन धूर्त चोरो के दोषो का वर्णन कर उनके स्वरूप को बताने वाले हितेच्छुओ से द्वेष करता था। [२७९] वह मूर्ख यह बात तो समझता भी नही था कि स्वय बाह्य भावो मे पटक दिया गया है, वह पामर रत्नो से परिपूर्ण स्वकीय मन्दिर से निकाल दिया गया है, अपने हितेच्छु अनुरागी सुन्दर कुटुम्बियों से दूर कर दिया गया है और दु खसमुद्र मे डूबा हुआ है। इन सब परिस्थितियो को पैदा करने वाले ये धूर्त चोर है, यह भी वह नही जानता था।

हे राजन्! इस प्रकार बठरगुरु की कथा का एक भाग मैंने तुम्हे सुनाया। ये धर्मरहित ससारी प्राणी भी इसी प्रकार के हैं। ●

१६. कथा का उपनय एवं कथा का शेष भाग

वठरगुरु की कथा सुनकर धवल राजा को बडा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—महाराज ! यह कैसे हो सकता है ?

वुधाचार्य—राजन् ! सुनिये। इस कथा का उपनय (सार) इस प्रकार है —

इस ससार को भव नामक गाव समझे। संसार के मध्य मे जीव-लोक के स्वरूप (वास्तविक रूप) को अति विस्तृत शिव-मन्दिर समझे। जैसे शिव-मन्दिर रत्नो से भरपूर है वैसे ही जीव का स्वरूप अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य आदि अमूल्य रत्नो से पूर्ण है और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा परमानन्द को देने वाला है। जैसे रत्नो का स्वामी ही भौताचार्य*/सारगुरु है वैसे ही जीव-स्वरूप का स्वामी समग्र जीवलोक है। जीव के ज्ञानादि जो स्वाभाविक गुण है वे उसके कुटुम्बी है। यद्यपि ये स्वाभाविक गुण ही श्रेयस्कारी और हितकारी है, पर सारगुरु रूपी जीव-लोक के चित्त मे यह प्रतिभासित नही होता। [२८०–२८३]

इस ससार मे कर्म-योग (सासारिक कार्य प्रणाली) से मदोन्मत्त यह जीव भी सारगुरु की तरह गुणरत्नो से पूर्ण अपने स्वरूप को नही जानता। राग-द्वेप आदि दोष ही चोर कहे गये हैं, जो महा धूर्त है और इस जीवलोक को ठगते है, किन्तु सारगुरु की ही भाति जीवलोक को ये धूर्त तस्कर ही मित्र और प्रिय लगते है। ये रागादि धूर्त ही जीव को अपने गाढ बन्धन मे बाध कर कर्मोन्माद बढाते है, जीव के स्वरुप को वश मे कर उसके जो स्वाभाविक गुण रूपी कुटुम्बी है, उनका हरण कर, कारागार मे डाल कर चित्त-द्वार बन्द कर देते है। हे पृथ्वीनाथ ! ये रागादि धूर्त तस्कर शिवमन्दिर के समान जीवलोक के गुण-रत्नो से समृद्ध स्वरूप का हरण कर उस पर अधिकार कर लेते है। जीव के स्वाभाविक गुणो का हरण कर, उसके भाव-कुटुम्व को अपने वश मे कर, ये धूर्त उस पर महामोह का राज्य स्थापित कर देते है, जैसे चोरो ने सारगुरु को वश मे कर उसके कुटुम्ब को कमरे मे बन्द कर ताला लगा दिया था। सासारिक उन्माद के बढ जाने से सारगुरु रूपी जीवलोक रागादि धूर्तो को अपना मित्र मानकर हृष्टचित्त होता है और उनके वशीभूत हो जैसे वे नचाते हैं, वैसे नाचता है। हे नृप ! गीत, ताल और नृत्य का जो यह महा कोलाहल इस संसार मे सुनाई देता है वह रागादि चोरो द्वारा ही किया जा रहा है। [२८४–२९१]

---

* पृष्ठ ५२०

जैसे शिवभक्तो ने सारगुरु को बार-बार टोका, समझाया, वैसे ही जैन दर्शन के प्रवुद्ध विद्वानो को समझना जो इस जीव को प्रतिक्षण रोकते है और इस जीव को बार-बार समझाते है कि, हे जीवलोक! तुझे इन राग-द्वेष आदि चोरो की सगति नही करनी चाहिये, ये तेरे भाव शत्रु है और सर्वस्व हरण करने वाले दुष्ट है। किन्तु, कर्म के प्रवल उन्माद मे विह्वल बना ससारी जीवलोक सारगुरु के समान ही उनके हितकारी वचनो की अवगणना कर, हृदय से राग-द्वेष आदि शत्रुओ को ही अपना श्रेष्ठ सुहृद् व भाग्यशाली और हितेच्छु मित्र मानता है। जैसे शिवभक्तों ने वस्तुस्थिति और उसकी मूर्खता को जानकर सारगुरु का बठरगुरु नामकरण कर उसके पास जाना छोड़ दिया था वैसे ही जैन दर्शन के प्रबुद्ध साधु, मुनि महात्मा भी यह जानकर कि यह जीव भी राग-द्वेषादि धूर्तों से घिरा हुआ है, अत मूर्ख समझ कर उसे छोड देते है। [२९२–२९७]

कथा प्रसग मे पहले कह चुके है कि जैसे भूख से व्याकुल होने पर बठरगुरु ने उन धूर्त तस्करो से भोजन की याचना की तब उन तस्करो ने बठरगुरु के हाथ मे मिट्टी का खप्पर देकर, शरीर पर मषी के तिलक आदि लगाकर भिक्षा मगवाई वैसे ही इस जीव के साथ भी समान रूप से घटित होता है। [२९८–२९९]

राग आदि के वश मे पडा हुआ प्राणी भोग भोगने की उत्कट इच्छा वाला वन जाता है, अत. अपने माने हुए राग-द्वेषादि मित्रो के समक्ष जब अपनी भोगेच्छा प्रकट करता है * तब बठरगुरु की तरह राग-द्वेष आदि गर्वोन्मत्त धूर्त चोर प्राणी को भोगो की भिक्षा मागने को विवश करते हैं। भिक्षा हेतु भ्रमण करने की विधि इस प्रकार है :—काले पाप कर्मों जैसे सारे शरीर पर गहरे काले दागो से अच्छी तरह से चर्चित कर, विशाल नरक के आयुष्य रूपी मिट्टी का ठीकरा उसके हाथ मे दे देते है। भव गाव में जो चार मोहल्ले अतिजघन्य, जघन्य, उत्कृष्ट और अत्युत्कृष्ट कहे गये है उन्हे क्रमशः नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति समझना चाहिये। मिट्टी का खप्पर, सकोरा, ताम्रपात्र और रजत पात्र को भी क्रमश. नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतियो का आयुष्य समझना चाहिये। यह जीव भी भाव-चोरो से घिरकर पापात्मा नरक गति रूप प्रथम मोहल्ले मे भटकता है। वहाँ मागने पर भी उसे भोग-भोजन नही मिलता, किन्तु क्षुद्रजनो के समान भयानक नरकपालो द्वारा उत्पीड़ित किया जाता है। इस प्रकार तीव्र अनन्त महादु:ख का अनुभव कर आयुष्यरूपी खप्पर/ठीकरे के टूट जाने पर यह जीव किसी अन्य गति मे प्रविष्ट होता है। फिर भव ग्राम के दूसरे मोहल्ले के समान यह भोगेच्छु लम्पट प्राणी तिर्यच योनि मे जाता है। वहाँ भी वह भटकता है किन्तु उसकी भोगेच्छा पूरी नही होती और वह अधमजनो द्वारा केवल भूख-प्यास आदि विविध कष्टो को भोगता है। सकोरे रूपी तिर्यञ्च आयुष्य के फूट जाने पर, कुछ पुण्य की प्राप्ति होने पर वह तीसरे उत्कृष्ट मोहल्ले मे अर्थात् मनुष्य गति मे आता है। वहाँ कुछ पुण्योदय से

* पृष्ठ ५२१

उसे आन्तरिक ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, जिसे छाया कहा गया है। हे महाराज ! इस छाया रूपी पुण्योदय के फल-स्वरूप यहाँ प्राणी की भोगेच्छा कुछ-कुछ पूरी होती है, किन्तु यहाँ भी धूर्त तस्कर, राजभय आदि के समान राग-द्वेष रूपी धूर्त उसे अनेक प्रकार से पीड़ित करते हैं। ताम्र-पात्र के भग्न होने पर जैसे वठरगुरु चौथे अत्युत्कृष्ट मोहल्ले मे ले जाया जाता है, उसी प्रकार हे नरेन्द्र ! मनुष्य आयु-रूप ताम्रपत्र के भग्न होने पर कभी जीव देवगति को भी प्राप्त होता है। यहाँ जीव की अन्तरंग ऐश्वर्य रूपी गुणरत्नो की छाया अधिक गहरी और विशाल होती है, अतः वह जीव यहाँ अत्यधिक भोगो को प्राप्त करता है। वह जीव देवलोक मे रजतपात्र के आकार के समान देव भव की आयुष्य को भोगता है और इस गति मे यथेच्छ भोगरूपी भोजन प्राप्त करता है। [३००–३१७]

हे महाराज ! जैसे वठरगुरु भूख लगने पर भव ग्राम मे भिक्षा के लिये वारम्वार इधर-उधर भटकता है, कर्मयोग से उन्मत्त रहता है, पाप-मसि से विलेपित रहता है राग-द्वेष रूपी धूर्त उसको चारों ओर से घेर कर हुँकार करते है, हँसते हैं,* गाते हैं, चिल्लाते हैं, नाचते हैं, उद्दाम लीला करते है और अनेक गति रूप घरो मे जव जीव भटकता है तव उसी के साथ रहते है। [३१८–३२०]

वठर गुरु प्राप्त भिक्षा से मन मे प्रसन्न होता है, पर वह वेचारा यह जान भी नही पाता कि उसके रत्नादि वैभवों से परिपूर्ण मन्दिर पर और उसके स्नेहशील हितेच्छु कुटुम्ब पर धूर्तों ने अधिकार कर रखा है जिससे वह दु ख-समुद्र के मध्य मे फंसा हुआ स्वयं के स्वरूप को नही पहचान पाता। केवल मोहदोष की अधिकता से सन्तुष्ट और सुखी मानता हुआ, विविध चेष्टाये करता हुआ स्वकीय आत्मा की अधिकाधिक विडम्वना करता है वैसे ही यह प्राणी जव ससार में कदाचित् तुच्छ वैषयिक सुख, इन्द्रत्व, देवत्व, राज्य, रत्न, धन, पुत्र, स्त्री आदि को प्राप्त करता है तब वह मिथ्या-भिमानपूर्वक अपने को पूर्ण सुखी मानने लगता है। वह इस तुच्छ सुख मे इतना डूब जाता है कि उसे सच्चे सुख की ओर आँख उठाकर देखने का भी समय नही मिलता और तनिक सोच-विचार भी नही करता। हे राजन् ! जैसे तुम्हारी इस सभा मे वैठे लोग यह मानते हैं कि अहो ! उन्हे सुख मिल गया, अहो ! उन्हें स्वर्ग मिल गया और वे अपने को कृतार्थ समझने की भूल करते है। पर, यह नही समझते कि उनका स्वय का आत्म-स्वरूपज्ञान, दर्शन, वीर्य, आनन्द आदि अनन्त अमूल्य रत्नों से भरा हुआ है। ये पामर यह भी नही जानते कि महामूल्यवान रत्नो से परिपूर्ण स्वकीय आत्मा का स्वरूप जिसे मन्दिर के समान कहा गया है उसे राग-द्वेष रूपी चोरो ने हरण कर लिया है। ये यह भी नही जानते कि क्षमा, मार्दव, सरलता, निर्लोभता, सत्य आदि मेरा भाव-कुटुम्ब ही वास्तव मे मेरा हैं और जो प्रियकारी एव हितवर्धक है। राग-द्वेष रूपी शत्रुओ से घिरे प्राणी को यह भी जानकारी नही होती कि इन दुष्ट धूर्तों ने चित्तरूपी कारागृह मे उसे डालकर, उसके आत्म-स्वरूप को जकड कर कैद कर लिया

---

* पृष्ठ ५२२

है। अनन्त आनन्द, महा ऐश्वर्य और वास्तविक सुख के हेतुभूत कुटुम्ब से दूर हटाया हुआ प्राणी दु ख समूह से भरे हुए भव ग्राम मे फसा रहता है, फिर भी वह राग-द्वेष आदि अपने शत्रुओ को ही अपना मित्र मानता रहता है। बठरगुरु की भिक्षा-प्राप्ति के समान ही थोडे से विषय सुख की प्राप्ति होते ही यह मूर्ख प्राणी लहर मे आकर हँसने, नाचने और तालियाँ पीटने लगता है। हे राजन्! यह ससारी प्राणी तत्त्व को न समझकर दु.खसमुद्र मे डूबा हुआ होने पर भी अपने को सुखी समझता है। यही वस्तुस्थिति है। [३२१–३३५]

दु खो से मुक्ति कैसे हो ?

आचार्य द्वारा बठर-कथा का दार्ष्टान्तिक उपनय (रहस्य) सुनकर धवल राजा ने पूछा—भगवन्! आपके कथनानुसार जब हम सब पागल, सदा सन्निपात-ग्रस्त और अति विषम रागादि तस्करो से घिरे हुए है जिन्होने हमारे शिवमन्दिर रूपी रत्नपूरित स्वरूप पर अधिकार कर रखा है और हमारे क्षमादि स्वाभाविक गुणयुक्त भाव-कुटुम्ब का नाश कर दिया है, जिससे हम इस भव ग्राम रूपी ससार मे भटक रहे है, जहाँ भोग की भीख भी मिलना अति दुर्लभ है, फिर भी उसके अश मात्र की प्राप्ति से संतुष्ट हो जाते हैं और परमार्थ से दु खसागर मे डूबे हुए है तब हमारा इस परिस्थिति से उद्धार कैसे होगा ?

बुधाचार्य—राजेन्द्र! * अब मैं तुम्हे बठरगुरु की कथा का शेष भाग सुनाता हूँ। उसमे बठर का उद्धार जिस प्रकार हुआ उसी प्रकार तुम्हारा भी भव-विडम्बना से उद्धार हो सकेगा।

धवल राजा—भगवन्! उसके बाद बठरगुरु का क्या हुआ ?

आचार्य बोले :—

कथा का शेष भाग

राजन्! बठरगुरु को निरन्तर धूर्त तस्करो द्वारा दिये गये त्रास को देखकर किसी एक शिव-भक्त को उस पर अत्यधिक दया आ गई। उसने सोचा कि वास्तव मे साधन-सम्पन्न किन्तु भोला बठर इस प्रकार पीडित हो यह तो ठीक नही है। इसे इस भयंकर दु,ख से मुक्त करने का कोई न कोई उपाय सोचना चाहिये। सोचते-सोचते शिव-भक्त किसी वैद्यराज के पास गया और उसे बठर का सारा वृत्तान्त सुनाकर उससे उसकी दु खमुक्ति का उपाय पूछा। वैद्य ने उसे जो उपाय बतलाया, उसे शिव-भक्त ने अच्छी तरह समझ लिया। वैद्य द्वारा बताये गये उपाय के अनुसार सामग्री लेकर वह रात मे शिव मन्दिर मे गया। उसने जब देखा कि बहुत समय तक बठर को नचाते-नचाते थक कर धूर्त सो गये है तब भक्त ने अवसर देखकर मन्दिर मे जाकर दीपक जलाया। प्रकाश होते ही बठर ने भक्त को देखा। उस समय उसमे तथाभव्यता (योग्यता) होने से एव अत्यधिक थकान से श्रान्त होने के कारण बठर ने कहा—"मैं बहुत थक गया हूँ, मुझे बहुत प्यास लगी है, थोडा पानी पिला

* पृष्ठ ५२३

दो ।' शिव-भक्त ने कहा—'गुरुजी ! मेरे पास तत्त्वरोचक तीर्थ जल है, इसे आप पीजिये ।' वठर ने वह जल पीया । उस जल के पीते ही उसका उन्माद क्षण भर में नष्ट हो गया, उसकी चेतना निर्मल हो गई और जैसे ही उसने अपनी दृष्टि शिव मन्दिर मे घुमाई वैसे ही उसको ज्ञात हो गया कि जिन्हे वह अपना मित्र समझता था वे तो उसके शत्रु, चोर, लुटेरे और धूर्त है । फिर वठर ने शिव-भक्त से पूछा कि, 'यह सब कैसे हुआ ?' भक्त ने सारा वृत्तात वठर को धीरे-धीरे सुना दिया । सारी वास्तविकता सुनकर गुरु ने पूछा—'अब मुझे क्या करना चाहिये ?' भक्त ने उसे एक वज्रदण्ड दिया और कहा—'गुरु ! ये जो तेरे मित्र बनकर बैठे है वे वास्तव मे तेरे शत्रु है, इन्हे इस वज्रदण्ड से मार भगाओ, तनिक भी विलम्ब या ढील मत करो ।' उसी समय गुस्से मे आकर वठर ने चोरो को वज्रदण्ड से मार-मार कर उनका कचूमर निकाल दिया । फिर वठर ने अपनी चित्त कोठरी को खोला तो उसका कुटुम्ब भी मुक्त हुआ । जब उसने आँखो के सामने रत्नो का ढेर देखा तब उसे ज्ञात हुआ कि शिवमन्दिर मे कितनी अमूल्य सम्पत्ति है, जिससे उसका मन अति हर्षित हुआ । फिर उसने चोर, लुटेरो और धूर्तो से भरे हुए भवग्राम को छोड दिया और एकान्त मे आये हुए निरुपद्रव एक शिवालय नामक महामठ मे पुन सारगुरु के नाम से रहने लगा । इस प्रकार सारगुरु की कथा का शेष भाग पूर्ण हुआ ।

शेष कथा का सक्षिप्त उपनय

धवल राजा—भगवन् ! वठरगुरु की उत्तरकथा हम पर कैसे घटित होगी ?

आचार्य—राजन् ! इस कथा मे जो शिवभक्त है उसे सद्धर्म के उपदेशक सद्गुरु समझे । ससार रूपी भवग्राम मे भटकते हुए, रागादि चोरो से त्रस्त, अनेक दु खो से पीडित, अपने अन्तरग ऐश्वर्य से भ्रष्ट, स्व-भाव रूपी गुणो के हितेच्छु कुटुम्ब से रहित, ससार मे आसक्त, भिखारी की तरह विषयो की भीख मागने और थोडी सी भीख से सन्तुष्ट होने वाले कर्मोन्माद से विह्वल प्राणी को देखकर सद्गुरु को उस पर करुणा आती है और इस प्रकार की भयकर दु ख-परम्परा से उसे किस प्रकार छुडाया जाए, इसका विचार करते है । [३३६–३३८]*

इसके परिणामस्वरूप गुरु उपाय ढूढते है और जिनेश्वर भगवान् रूपी महा-वैद्य के उपदेश से उपाय जान लेते है । तदनन्तर जैसे धूर्त चोर सोये हुए होते है वैसे ही जब राग-द्वेषादि क्षयोपशम भाव को प्राप्त होते है तब अवसर देखकर धर्माचार्य जीवस्वरूप शिवमन्दिर मे जाकर सत्यज्ञान का दीपक प्रज्वलित करते है और प्राणी को सम्यक् दर्शन रूपी निर्मल जल पिलाते है तथा चारित्र रूपी वज्रदण्ड उसके हाथ मे देते है । उस समय प्राणी का आत्मस्वरूप रूप शिवमन्दिर सत्यज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश से जगमगा उठता है, महा प्रभावशाली सम्यग्-दर्शन रूपी जलपान से आठो कर्मो का उन्माद नष्ट हो जाता है और उसके हाथ मे महावीर्यशाली दैदीप्य-मान चारित्र का वज्रदण्ड आता है तब वह धर्माचार्य के उपदेश का अनुसरण कर

* पृष्ठ ५२४

पहले महामोह आदि धूर्तों और राग-द्वेष आदि चोरो को सचेत करता हुआ चारित्र रूपी वज्रदण्ड के प्रहार से उन्हे पछाड देता है। महामोह और राग-द्वेष रूपी चोर धूर्तो का निर्दलन करने पर प्राणी का कुशलकारी आशय (भावनाये) विस्तृत होता है, उसके पूर्व मे बधे हुए कर्म क्षय होते है, नये कर्मो का बन्ध नही होता और-अधम व्यवहार के प्रति प्रीति नष्ट हो जाती है। उसका जीव-वीर्य (आन्तरिक तेज) उल्लसित होता है, आत्मा निर्मल बनती है, अत्यधिक अप्रमाद भाव जागृत होता है, झूठे-सच्चे सकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते है, समाधिरत्न स्थिर हो जाता है और उसकी ससार-परम्परा घटती जाती है।

तत्पश्चात् जब प्राणी स्वय के चित्तरूप कमरे के आवरण रूप जो दरवाजे बन्द थे उन्हे वह खोलता है तब उस कमरे मे बद स्वय के स्वाभाविक गुण रूपी कुटुम्बीजन प्रकट होते है। अत्यन्त विशुद्ध ज्ञान रूपी प्रकाश से अपनी आत्मऋद्धि का अवलोकन कर प्राणी को निर्बाध आनन्द की प्राप्ति होती है, सच्ची आत्मजागृति होती है और मन मे प्रमोद होता है। फलस्वरूप वह दु ख से भरपूर भवग्राम (ससार) को छोड देने का विचार करता है। ससार त्याग की इच्छा होने से उसकी विषय मृग-तृष्णा शान्त हो जाती है, अन्तरात्मा रुक्ष हो जाती है, शेप सूक्ष्म कर्म परमाणु भी झड जाते हैं, चिन्ता-रहित हो जाता है, विशुद्ध आत्मध्यान स्थिर हो जाता है और योगरत्न दृढ़ हो जाता है। उस समय वह जीव जब महासामायिक को ग्रहण कर अपूर्वकरण द्वारा क्षपक श्रेणी को प्राप्त कर बडे-बडे कर्मजालो की शक्ति का नाश कर देता है तब उसमे शुक्लध्यान रूपी अग्नि-ज्वाला प्रकट होती है। अनन्तर योग का वास्तविक माहात्म्य प्रकट होता है और वह समग्र घाती कर्मों के पाश से मुक्त होकर परमयोग की स्थिति को प्राप्त होता है, जिससे प्राणी मे केवलज्ञान का आलोक प्रदीप्त होता है। इसके पश्चात् जगत् पर अनुग्रह (उपकार) करता है। आयुष्य के अल्प रहने पर केवली समुद्घात द्वारा शेष चार कर्मो को भी समान कर, मन वचन और काया की प्रवृत्ति का निरोध कर, शैलेशी अवस्था पर आरोहण करता है। पश्चात् वह भवोपग्राही समग्र कर्म-बन्धनो को तोड़कर देह रूपी पिंजरे का सर्वथा त्याग कर, भवग्राम (ससार) का सर्वदा के लिये त्याग कर, सततानन्द प्राप्त कर, समस्त प्रकार की बाधा-पीडा से मुक्त होकर शिवालय (मोक्ष) नगर मे पहुँच जाता है। यह नगर महामठ जैसा है वहाँ वह सारगुरु की तरह अपने को स्थापित कर अपने भाव-कुटुम्बियो (स्वाभाविक गुणो) के साथ समस्त कालो मे रहता है।

हे राजन्! इसी कारण मैने तुम्हे कहा था कि वठरगुरु की उत्तर कथा मे जिस प्रकार घटित हुआ उसी प्रकार यदि तुम्हारे सम्बन्ध मे भी घटित हो तो तुम भी समस्त प्रकार के दु.ख, कष्ट, त्रास और विडम्बना से मुक्त हो सकते हो, इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही है।

१७. बुधाचार्य-चरित्र

बुधाचार्य द्वारा बठरगुरु की कथा* और सारगर्भित उपनय सुनकर धवलराजा हर्षित हुए और समस्त सभाजन भी अत्यधिक प्रमुदित हुए। इस वास्तविकता को सुनकर उनमे इतना अधिक भक्तिरस उमड पडा कि उनके कर्म के जाले पतले पड गये और उन्होने हाथ जोड कर मस्तक पर लगाते हुए कहा—हे यतीश्वर! जिस प्राणी के आप जैसे नाथ हो, भक्तवत्सल हो उसका कौनसा कार्य सिद्ध नही हो सकता? अतएव आप निर्विकल्प चित्त होकर हमे मार्ग-दर्शन दीजिये कि अब हमे क्या करना चाहिये? जिससे कि हमारी इस दु.ख-पूर्ण ससार से मुक्ति हो सके। [३३९–३४२]

बुधाचार्य का सदुपदेश

बुधाचार्य—भद्रो! तुम सब लोगो ने बहुत अच्छी बात की है। तुम लोगो की बुद्धि प्रशसनीय है। मेरे विवेचन को तुम लोगो ने भली प्रकार से समझा है। हे श्रेष्ठ मानवो! आप लोगो ने मेरे वाक्यार्थ को भावार्थ सहित (सरहस्य) समझ लिया है, ऐसा लगता है। अत. हे नरेन्द्र! मै मानता हूँ कि सम्प्रति मेरा परिश्रम सफल हुआ है। हे राजन्! मेरा यही आदेश है कि ससार से मुक्ति के लिये तुम्हे भी वही करना चाहिये जो मैने किया है। [३४३–३४५]

धवल राजा—भगवन्! आपने क्या किया है? वह बताने की कृपा करे।

बुधाचार्य—राजेन्द्र! इस कारागृह जैसे ससार को असार जानकर मैने ससार से मुक्ति के लिये भागवती दीक्षा को अगीकार किया है। यदि तुम लोगो को भी मेरे उपदेश से अनन्त दु खो से परिपूर्ण ससार रूपी कैद खाने से निर्वेद (वैराग्य) हुआ हो तो ससार का सर्वथा उच्छेद करने वाली भागवती दीक्षा को अगीकार करो। कहावत है कि "धर्म की त्वरित गति है" अर्थात् धर्म के कार्यों मे तनिक भी विलम्ब नही करना चाहिये, अत. हे भव्य लोगो! तुम्हे भी यह कार्य शीघ्र ही सम्पन्न करना चाहिये। [३४६–३४८]

धवल राजा—भगवन्! आपने जो कर्त्तव्य निर्दिष्ट किया है वह मेरे मानस मे स्थिर हो गया है, किन्तु मुझे एक जिज्ञासा (कौतूहल) उत्पन्न हुई है वह शान्त हो ऐसा स्पष्टीकरण करे। हे नाथ! हमे तो आपने परिश्रम करके प्रतिबोधित किया, किन्तु आपको किसने, कब, कैसे और किस नगर मे प्रतिबोधित किया? अथवा हे भगवन्! आप स्वयबुद्ध परमेश्वर है? हम सब के हित की इच्छा से हम सब की जिज्ञासा को तृप्त करने की कृपा करे। [३४९–३५१]

---

* पृष्ठ ५२५

बुधाचार्य—राजन् ! शास्त्रो की ऐसी आज्ञा है कि साधुओ को अपनी आत्मकथा का वर्णन नही करना चाहिये; क्योकि आत्मकथा का कथन करने से लघुता (तुच्छता) प्राप्त होती है। यदि मै अपना चरित्र तुम्हारे समक्ष कहूंगा तो ['अपने मुह मियां मिठ्ठु' बनने की कहावत के अनुसार] मुझे भी लोग तुच्छ समझने लगेगे; क्योकि स्वचरित्र का वर्णन करने पर यह अनिवार्य है, अतएव आत्म-वर्णन करना योग्य नही है। [३५२–३५३]

आचार्य देव की बात सुनकर धवल राजा ने पूज्य गुरुदेव के चरण पकड लिये और कौतूहल जानने के आवेग मे आत्म-कथा सुनाने का बारम्बार आग्रह करने लगे। धवल राजा और सभाजनो का इतना अधिक आग्रह देखकर आचार्य बोले—लोगो ! तुम्हे मेरा चरित्र सुनने की अत्यधिक जिज्ञासा और कौतूहल है तो लो सुनो ! मै तुम्हे अपनी आत्मकथा सुनाता हूँ,* ध्यानपूर्वक सुनो। [३५४–३५६]

बुध-चरित्र

इस लोक मे प्रख्यात अनेक घटनाओ से ओत-प्रोत, विस्तृत और अति सुन्दर धरातल नामक एक सुन्दर नगर था। इस नगर मे सुप्रसिद्ध प्रभाववाला जगत् का आह्लादकारी कीर्तिमान शुभविपाक नामक राजा राज्य करता था। इस राजा ने अपने प्रताप से समग्र भू-मण्डल पर अधिकार कर रखा था। उसके समग्र अगोपागो से अत्यन्त रूपवती जगत्प्रसिद्ध और अतिप्रिय निजसाधुता नाम की रानी थी। अन्यदा समय परिपूर्ण होने पर निजसाधुता देवी की कुक्षि से बुध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र लोकविश्रत हुआ, क्योकि यह गुणो की खान थी और समग्र कला-कौशल का मन्दिर था। क्रमश. यौवनावस्था को प्राप्त होने पर यह कुमार रूपाधिक्य के कारण कामदेव की तरह अत्यधिक आकर्षक बन गया।
[३५७–३६१]

इस शुभविपाक राजा के एक भाई था जिसका नाम अशुभविपाक था और वह भयकर, अदर्शनीय और जगत्सतापकारी जनमेजय के सदृश था। इस अशुभ-विपाक की पत्नी का नाम परिणति था, जो जगत्प्रसिद्ध लोक-सतापकारिणी और अति भयकर शरीर वाली थी। इनके एक मन्द नामक पुत्र हुआ, जो अति रौद्र आकृति वाला था और साक्षात् विष के अकुर जैसा क्रूर था। वह करोडो दोषो का भण्डार और गुणो की छाया से भी दूर था। जैसे-जैसे वह मन्द बडा होता गया वैसे-वैसे मन्द मदविह्वल मदोद्धत बनता गया। बुध और मन्द चचेरे भाई होने से उनमे गाढ मैत्री होना स्वाभाविक था। बचपन से ही वे साथ ही पले थे, साथ ही खेलते थे और साथ ही आनन्द कल्लोल करते थे। कभी नगर मे, कभी उद्यानो मे वे क्रीडारस-परायण होकर स्वेच्छा से साथ-साथ ही घूमने और खेलने निकल जाते थे।
[३६२–३६७]

* पृष्ठ ५२६

इधर विमलमानस नगर मे शुभाभिप्राय नामक राजा राज्य करता था जिसके एक चारुदर्शना धिषणा नाम की पुत्री थी। यह पुत्री जब युवावस्था को प्राप्त हुई तब स्वयवर रचाया गया, जिसमे उसने बुधकुमार का वरण किया। पश्चात् उसके पिता ने बडी धूमधाम से बुधकुमार के साथ उस धिषणा का लग्न कर दिया। बुध और धिषणा को अनेक मनोरथो के पश्चात् काल-पूर्ण होने पर एक सर्वगुणसम्पन्न अति रूपवान विचार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। [३६८-३७०]
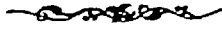
१८. घ्राण परिचय : भुजंगता के खेल

नासिका महागुफा

अन्यदा बुधकुमार और मन्द अपने क्षेत्र मे क्रीडा कर रहे थे उस समय अकस्मात एक आकर्षक विचित्र घटना घटित हुई। इस घटना का वर्णन आप सुने।

जिस क्षेत्र मे बुध और मन्द क्रीडा कर रहे थे उस क्षेत्र के किनारे उन्होने ललाटपट्ट नामक एक मनोहर, विशाल श्रेष्ठ पर्वत देखा। उस पर्वत पर एक अत्युच्च शिखर था, जिस पर एक मनोरम कबरी नामक झाडी थी। ऐसा लगता था मानो उसके चारो ओर भ्रमरो के झुण्ड बैठे हो। ऐसे मनोरम पर्वत और वन-शोभा को देखकर उन दोनो का मन पर्वत को निकट से देखने का हो गया और वे उस तरफ चल पडे। वे बढ ही रहे थे कि उन्होने पर्वत की तलहटी मे सुदीर्घ शिलाओ द्वारा निर्मित * नासिका नामक लम्बी महा गुफा देखी। यह महा गुफा दूर से इतनी रमणीय लग रही थी कि वे दोनो इसे देखने का लालच नही छोड सके। वे दोनो प्रसन्न होकर गुफा की तरफ चलने लगे। पास जाकर उन्होने देखा कि गुफा के मुख पर दो बडे-बडे अपवरक (कक्ष) है। कमरो के द्वार पर खडे रहकर उन्होने देखा कि गुफा बहुत गहरी है और उसके भीतर गहन अन्धकार है। अन्धेरा इतना गहरा था कि तेज दृष्टि वाला भी कुछ न देख सके और न यह जान सके कि गुफा कितनी लम्बी होगी। [३७१-३७८]

गुफा के पास आकर मन्द बोला—देखो इस गुफा मे दो बडे-बडे द्वार हैं, लगता है किसी बडे शिलाखण्ड से नासिका महा गुफा के दो भाग किये गये है।

* पृष्ठ ५२७

यह सुनकर बुध ने कहा— हाँ, भाई ! तेरी बात ठीक है । इन दोनो द्वारो के बीच जो मोटी शिला दिखाई देती है, उसे गुफा को दो भागो मे बाँटने के लिये ही प्रयुक्त किया गया है । [३७९–३८०]

घ्राण एवं भुजंगता का परिचय

बुध और मन्द इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि गुफा द्वार मे से एक चपल आकृति वाली बालिका बाहर आई । बाहर आते ही बालिका ने दोनो राजपुत्रो को प्रणाम किया, चरण छुए और चेहरे पर अत्यन्त स्नेह और प्रेम के भाव प्रदर्शित करते हुए बोली— अहा ! आपका सुस्वागत ! आपकी मुझ पर बडी कृपा है । आपने यहाँ पधार कर, सुधि लेकर मुझ पर महती कृपा की है ।

इस रूपवती बाला का मधुर सम्भाषण सुनकर मन्द मन मे बहुत सन्तुष्ट हुआ । उसके वाक्चातुर्य और भाषण-कुशलता से मन्द उसके प्रति आकर्षित हुआ । उत्तर मे वह स्नेहपूर्वक नम्रता से बोला—हे सुलोचने ! तुम कौन हो और किस कारण से इस गुफा मे रहती हो ? हमे बताओ । [३८१–३८५]

मन्द कुमार के वचन सुनते ही वह बाला शोकावेश मे मूर्छित एव चेतनाशून्य होकर जमीन पर गिर पड़ी । उसकी दशा देखकर मन्द की उसके प्रति आसक्ति और बढ गई । उसकी मूर्छा भग करने के लिये वह हवा करने लगा और ठडे पानी के छीटे देने लगा । चेतना आने पर बाला के नेत्रो से बडे-बड़े मोतियो के समान अश्रु बिन्दु टपकने लगे । मन्द द्वारा पुन -पुन शोक का कारण पूछने पर उसने स्नेह से गद्गद स्वर में कहा—अरे नाथ ! मैं वास्तव मे मन्दभागिनी हूँ कि आप दोनो मेरे स्वामी होकर भी मुझे भूल गये, मेरे शोक का इससे बडा क्या कारण हो सकता है ? मेरे देव ! मैं आप दोनो की सेविका भुजगता हूँ । आपने स्वय ही तो मेरी नियुक्ति इस नासिका महागुफा मे की थी । इसी गुफा मे आप दोनो का प्राणप्रिय मित्र घ्राण रहता है, जिसकी परिचारिका बनकर मैं आपकी आज्ञा से ही यहाँ रहती हूँ । आप दोनो की घ्राण के साथ चिरकालीन मित्रता है । यह मित्रता कब और कैसे हुई, हे नाथ ! इस बारे मे बताती हूँ, आप सुने । [३८६–३९२]

पूर्व इतिहास

बहुत समय पहले आप दोनो असव्यवहार नगर मे रहते थे, जहाँ कर्म-परिणाम राजा का शासन चलता था । उसी की आज्ञा से पहले आपको वहाँ से हटाकर एकाक्षसस्थान नगर मे लाया गया, फिर आप दोनो प्राणियो से व्याप्त विकलाक्ष नगर मे आये ।* आपको स्मरण होगा कि इस नगर मे तीन मोहल्ले थे । त्रिकरण नामक दूसरे मोहल्ले मे बहुत से कुलपुत्र रहते थे । वहाँ आप दोनो भी रहते थे । जब आप दोनो वहाँ रहते थे तब कर्मपरिणाम राजा ने आप पर प्रसन्न होकर आप दोनो को यह गुफा और उसका रक्षक घ्राण नामक मित्र दिया था । यह घ्राण मित्र और हितकारी है ऐसा आप दोनो मानते थे । उसके बाद से ही

* पृष्ठ ५२८

अपार शक्ति और महत्ता वाला आपका यह मित्र आपके लिये सुख-सिन्धु का कारण बना। आपका यह मित्र आप पर बहुत स्नेह रखता है। राजा के आदेश से वह इस गुफा मे ही रहता है और आप दोनो उसका भरण-पोषण करते है। जहाँ-जहाँ आप गये हैं, वहाँ-वहाँ नानाविध सुगन्धित पदार्थों से आप दोनो ने उसका पोषण किया है। एक बार आप दोनो जब मनुजगति मे गये तब तो आप लोगो ने उसका विशेष रूप से पोषण किया। आप दोनो ने ही बड़े स्नेह से मुझ निर्भागिनी भुजगता को अपने मित्र घ्राण की परिचारिका/दासी नियुक्त किया था। घ्राण से आप दोनो की मित्रता चिर-समय से है और तभी से मैं भी आपकी सेविका के रूप मे लोगो मे प्रसिद्ध हूँ। फिर भी आप गज-निमीलिका धारण कर मुझे न पहचानने का अभिनय कर रहे है, अतएव मेरे लिये इससे अधिक शोक का क्या कारण हो सकता है? हे नाथ! पुरातन काल से चले आ रहे आपके इस मित्र पर कृपा दृष्टि करे और उसके प्रति स्नेह रखकर पुन उसका पालन-पोषण करे। [३९३-४०५]

अपने झूठे स्नेह का इस प्रकार भ्रामक प्रदर्शन करती हुई भुजगता बुध और मन्द कुमार के पाँवो मे गिर पड़ी। बुध कुमार को इस भुजगता का व्यवहार असुन्दर प्रतीत हुआ और उसे उसके व्यवहार मे धूर्तता दिखाई दी तथा उसे लगा कि उसका पैरो मे गिरना कृत्रिमता पूर्ण है। कहा भी है :—"कुलवती स्त्रियो के कपोलो पर स्मित हास्य होता है, वे मृदुवाणी मे लज्जापूर्वक बोलती है और उनकी तरफ निर्निमेप (एकटक) देखने पर भी उनमे विकार दृष्टिगोचर नही होता।" यह बाला तो बडी तेज-तर्रार है, इसके नेत्र विलास से स्फुरित हो रहे है और इसकी वाक्पटुता से स्पष्ट लगता है कि यह कोई दुष्टा है, इसमे कोई सन्देह नही। महात्मा बुध ने इस प्रकार मन मे निश्चित कर उसकी बात का कोई उत्तर नही दिया। [४०६-४१०]

मन्द की आसक्ति

मन्द कुमार को उसके व्यवहार मे कोई कृत्रिमता नही लगी, अत. चरणो मे गिरी हुई उस बाला को हाथ पकड कर उठाया तथा प्रेम से विह्वल होकर उससे बोला—हे सुन्दरि! विषाद को छोड। सुमुखि! जरा धैर्य धारण कर। हे बाले! तू ने जो कहा वह ठीक ही होगा। हे सुलोचने! पर सच्ची बात तो यह है कि * मुझे तो कुछ भी याद नही है। फिर भी तू ने जो स्नेह प्रदर्शित किया है तथा पुरानी स्मृतियो को प्रत्यक्ष की तरह साकार कर दिया है, अत अब यह बता कि अब मुझे क्या करना चाहिये? ताकि मैं तदनुसार ही करूँ। हे भद्रे! मै तो तेरा स्नेहक्रीत किंकर हो चुका हूँ।

भुजगता—नाथ! जैसे आपने पूर्वकाल मे अपने मित्र घ्राण का पोषण किया वैसे ही अब भी अपने पुराने मित्र का पोषण करे, उसे भुलाये नही, यही मेरी प्रार्थना है।

---

* पृष्ठ ५२९

मन्द—हे कमलमुखी सुन्दरि! मित्र घ्राण का पोषण कैसे करूँ? यह तो बता।

भुजगता—नाथ! आपका यह मित्र सुगन्ध का लोभी है, अतः इसका पोषण सुगन्धित द्रव्यो से करे। चन्दन, अगरु, कपूर, कस्तूरी, केसर आदि के चूर्ण का विलेपन इसे अत्यधिक प्रिय है। इलायची, लोग, कपूर आदि अन्य सुगन्धित फलो और पदार्थों से बना ताम्बूल (पान) यह बडे प्रेम से खाता है। मघमघायमान करते सुगन्धित धूप, गन्ध गुटिकाये, अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प आदि अन्य सभी सुगन्धित पदार्थ इसे अति प्रिय है, लेकिन दुर्गन्ध इसे तनिक भी प्रीतिकर नही है, अत यदि आप इसका सुख चाहते हो तो दुर्गन्ध से इसे सदा दूर रखे। इस प्रकार आप अपने मित्र घ्राण का पोषण करे। यह मित्र आपको दु.खनाशक और सुखकारक होगा। हे देव! यदि आप इस पद्धति से घ्राण का पालन-पोषण करेंगे तब इससे आपको जो सुख प्राप्त होगा उसका वर्णन करना भी अशक्य है।

मन्द—हे विशालनेत्रि! तुमने बहुत अच्छी बात कही। हे सुभ्रु! जैसा तुमने कहा, वैसा ही मैं करूँगा। अब तुम आकुलता को छोडकर स्वस्थ हो जाओ।

यह सुनकर बालिका की आँखे हर्ष से विकसित हो गईं। 'आपकी बडी कृपा' कहती हुई वह भुजंगता फिर मन्द के पैरो पर गिर पडी। [४११–४२५]

बुध की कर्त्तव्यशीलता

बुध कुमार तो निर्जनवन मे स्थित मुनि के समान मौन धारण कर भुजगता का कृत्रिम प्रेम-प्रदर्शन और वाचालता का खेल देखता रहा। बालिका भुजंगता भी समझ गई कि यह कोई (पहुँचा हुआ व्यक्ति है,) शठ है, मेरे चक्कर मे आने वाला नही है। अत वह मुँह से तो कुछ भी न बोली किन्तु बुध की ओर तिरस्कृत दृष्टि फेंक कर मन ही मन कुछ बडबडाने लगी। उसके अस्पष्ट शब्दो मे छुपी हुई विजय की दुष्ट वासना को देख बुध ने मन मे विचार/निश्चय किया कि, अरे! यह पर्वत और महागुफा तो मेरे क्षेत्र (शरीर) मे ही है जिसमे घ्राण बैठा है, अत. मुझे उसका पोषण तो करना ही है। किन्तु, यह दुष्ट बालिका जैसा कह रही है तदनुसार सुख की कामना से इसका पोषण करना मेरा कर्त्तव्य नही है। अत. जब तक मैं इस क्षेत्र (शरीर) से मुक्त नही हो जाता तब तक लोक-यात्रा के अनुरोध से, विशुद्ध मार्ग से, बिना आसक्त हुए मै इसका पोषण करूँगा। ऐसा सोचकर बुध ने घ्राण का पोषण कर्त्तव्य रूप मे करते हुए भी किसी प्रकार के दोषो को नही अपनाया और * उत्तम सुख भी प्राप्त करता रहा। [४२६–४३१]

इधर मन्द कुमार दुष्टा भुजंगता के वशीभूत होकर घ्राण के पालन-पोषण मे आसक्त होकर दु खसागर मे गोते लगाने लगा। वह मन्द सुगन्धित द्रव्यो को

* पृष्ठ ५३०

एकत्रित कर उसकी निर्माण प्रक्रिया मे रात-दिन व्याकुल बना रहता। इससे उसकी शान्ति नष्ट हो गई और उसका मन विक्षुब्ध रहने लगा। वह मूर्ख दुर्गन्ध से बचने के लिये दुर्गन्ध-नाशक साधनो को एकत्रित करने के लिये सर्वदा खिन्न-मनस्क रहता। वह 'शान्ति का सुख क्या है ?' यह भी नही जानता था। इस कारण विवेकीजन उस पर हँसते थे। तदपि वह मोहदोष के कारण घ्राण के पालन-पोषण मे प्रगाढासक्त होकर अपने आपको पूर्ण सुखी मानता था। [४३२-४३५]

१६. मोहराज और चारित्रधर्मराज का युद्ध

विचार का देशाटन-अनुभव

इधर बुध कुमार और धिषणा का पुत्र विचार योग्य पालन-पोषण से शनै-शनै युवावस्था को प्राप्त हो गया था। एक बार यह कुमार विनोद हेतु भ्रमण के लिये देशान्तरो की ओर यात्रा हेतु चल पड़ा। जिस समय भुजगता और घ्राण का परिचय बुध कुमार से हुआ था उसी समय विचार कुमार बाह्य और आन्तरिक प्रदेशो की लम्बी यात्रा कर वापस अपने घर लौटा था। विचार के यात्रा-प्रवास से लौटने पर उसकी माता धिषणा, पिता बुध और समस्त राज-परिवार को अत्यधिक आनन्द हुआ और इस प्रसन्नता के समय मे उन्होने एक बडा उत्सव मनाया। इसी उत्सव मे विचार को पता लगा कि पिताजी और चाचाजी की घ्राण से मित्रता हुई है, अत उसने अपने पिताजी को एकान्त मे ले जाकर हाथ जोडकर विनयपूर्वक कहा —[४३६-४४०]

पिताजी! मैं छोटे मुँह बडी बात नही करना चाहता, किन्तु आप दोनो की घ्राण से जो मित्रता हुई है, वह योग्य नही है। वह अच्छा व्यक्ति नही है, महादुष्ट है। क्यो ? इसका कारण आप सुने। पिताश्री! आप जानते हैं कि मैं आपको और माताजी को पूछे बिना देश-दर्शन की कामना से भ्रमण के लिये यहाँ से चला गया था। तात! मैंने भूमण्डल पर भ्रमण करते हुए अनेक ग्राम, नगर, कस्बो की रमणीयता का दर्शन किया। अन्यदा मै घूमता हुआ भवचक्र नगर मे पहुँचा।

मार्गानुसारिता मौसी से मिलन

इस नगर के राज्य-मार्ग पर मैंने एक सुन्दरी को देखा। मुझे देखकर इस विशालाक्षी सुन्दर ललना को अतिशय प्रसन्नता और अवर्णनीय नवीन रस का अनु-भव हुआ। जैसे कल्पवृक्ष की मजरी को अमृत के छीटे देने पर, घन-गर्जन से हर्षित

होकर नृत्याभिमुख मयूरिका को, रात्रि विरह के पश्चात् चक्रवाक को देखकर चकवी को, निरभ्र शरद् ऋतु मे चन्द्रकला की सुन्दरता को देखकर किसी को भी आनन्द होता है वैसा ही आनन्द मुझे अपलक दृष्टि से देखकर उस शान्त साध्वी स्त्री को हो रहा था। मानो उसका किसी राज्य सिंहासन पर अभिषेक हो रहा हो अथवा सुखसागर मे डुबकी लगा रही हो, वैसी ही आनन्द दशा का वह अनुभव कर रही थी। उसे हर्ष-विभोर देखकर मुझे भी आनन्द हुआ "स्नेह से परिपूर्ण सज्जन पुरुष को देखने से चित्त अवश्य ही आर्द्र/प्रेममय हो जाता है," इस साधारण नियम के अनुसार मै भी उसके प्रति आकर्षित हुआ। मैने उसे प्रणाम किया और उसने मुझे आशीर्वाद दिया।

फिर वह बोली—हे वत्स! * मेरे हृदयनन्दन ! तू कौन है ? कहाँ से आया है ? बतला।

उत्तर मे मैंने कहा—'मै धरातल नगर निवासी बुधराज और धिषणा माता का पुत्र हूँ और ज्ञान प्राप्त करने के लिए विदेश यात्रा करता हुआ इधर आ निकला हूँ।' मेरा उत्तर सुनकर उसकी आँखो मे हर्ष के आँसू आ गये और स्नेह-पूर्वक मुझसे मिलकर, बार-बार मुझे चूमती हुई मेरे सिर को सूघने लगी। [४४१-४५२] वह फिर बोली—

हे महाभाग्य ! तू यहाँ आया यह बहुत ही अच्छा किया। पुत्र ! तेरे हृदय और आँखो से मैंने पहले ही तुझे पहचान लिया था। मनुष्य के नेत्र और हृदय जाति-स्मरण के हेतु है, जिसे देखने मात्र से ही प्रिय अथवा अप्रिय का ज्ञान हो जाता है। प्रिय वत्स ! तू तो मुझे प्राय कर नही जानता, क्योकि जब मैने तुझे छोड़ा था तब तू बहुत छोटा था। तेरी माता धिषणा मेरी प्रिय सखी है और बुध-राज का भी मुझ पर बहुत स्नेह है। मेरा नाम मार्गानुसारिता है। तेरी पापरहित पवित्र माता तो मेरा शरीर, जीवन, प्राण और सर्वस्व है और तेरे पिता बुधराज तो मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय है। उन दोनो की आज्ञा से जब मैं लोकदर्शन के लिये निकली थी तब तो तेरा जन्म ही हुआ था। अत हे सुन्दर पुत्र ! तू तो मेरा भानजा है, मेरा जीवन है। प्रिय वत्स ! तू मेरा सर्वस्व है और मेरा परमात्मा है। वत्स ! तू देश-भ्रमण के लिए घर से निकला यह अच्छा ही किया। मुझे तो निःसशय ऐसा लगता है कि तू बहुत ही जिज्ञासु है। [४५३-४६०] कहा भी है—

यह ससार अनेक प्रकार की घटनाओ और कुतूहलो से भरा पडा है, जो प्राणी घर से निकल कर उसको आदि से अन्त तक नही देखता वह कूप-मण्डूक जैसा है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति के लिए ससार बहुत छोटा होता है और उसकी दृष्टि भी सीमित होती है। धूर्तो की धूर्तता और छल-कपट से भरी हुई तथा विविध घटना-चक्रो से परिपूरित इस पृथ्वी को जब तक अनेक बार न देख ले तब तक उस पुरुष

* पृष्ठ ५३१

को विलासिता, पाण्डित्य, बुद्धिमत्ता, चातुर्य, विविध देशों की भाषाओं का ज्ञान और व्यवहार-सौष्ठव का ज्ञान एवं अनुभव हो ही कैसे सकता है ? [४६१-४६३]

तू इस महान् भवचक्र नगर को देखने आया यह बहुत ही अच्छा किया। हे वत्स ! यह नगर अनेक घटनाओ का मन्दिर है, अनेक नूतन एव अद्भुत वस्तुओ का सगम है तथा चतुर मनुष्यो से व्याप्त है। जिस प्राणी ने इस नगर को अच्छी तरह देख लिया उसने समस्त चराचर विश्व को देख लिया, [क्योकि यहाँ स्वर्ग, मृत्यु और पाताल का समावेश हो जाता है।] अधिक क्या कहूँ, वत्स ! तू स्वय चलकर यहाँ आया और सौभाग्य से मेरी दृष्टि तुझ पर पड़ गई, अतः मैं धन्य हूँ, भाग्यशाली हूँ और कृतकृत्य हूँ। [४६४-४६७]

उत्तर मे मैंने कहा —हे अम्ब ! जैसा आप कह रही है यदि वैसा ही है* तो मै मानता हूँ कि मेरे भाग्य ने मुझे आप जैसी माता से मिलन करवाकर सर्वश्रेष्ठ कार्य किया है। हे माताजी ! अब आप मुझ पर महती कृपा कर मुझे यह समस्त भवचक्र नगर अच्छी तरह दिखावे। [४६८-४६९]

भवचक्र-दर्शन

विचार अपने पिता बुधराज से कह रहा है कि मेरी मार्गानुसारिता मौसी ने मेरा उत्तर सुनकर मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया और विविध घटनाओ के साथ समग्र भवचक्र नगर मुझे साथ लेकर दिखलाया। इस नगर मे भ्रमण करते हुए दूर से मैंने एक नगर देखा, जिसके मध्य मे एक बडा पहाड और उसके शिखर पर वसा हुआ दूसरा नगर था। यह देखकर मैंने मौसी से पूछा—'हे मात ! भवचक्र नगर के मध्य में यह कौनसा पुर है ? यह कौनसा महागिरि है ? और पर्वत शिखर पर स्थित कौनसा पुर है ?' मेरा प्रश्न सुनकर मार्गानुसारिता मौसी ने कहा—'पुत्र ! क्या तू नही जानता ! यह तो जगत् मे सुप्रसिद्ध सात्विकमानसपुर है, यह विश्व-विख्यात विवेकगिरि पर्वत है और इसके अप्रमत्त नामक शिखर पर स्थित त्रिभुवन विख्यात जैनपुर नामक महानगर है। तू तो तत्त्वसार का ज्ञाता है फिर तूने ऐसा प्रश्न क्यो किया ?' [४७०-४७५]

घायल संयम

मौसी के साथ मेरी वात हो ही रही थी कि एक नवीन घटना घटित हुई। घटना सुनिये :—

मैंने देखा कि गाढ प्रहारो से आहत और विह्वल एक राजपुत्र को अन्य पुरुप उठाकर ला रहे हैं और उसको घेरे हुए वहुत से पुरुष है। उसे देखते ही मैंने मौसी मे पूछा—माताजी ! यह राजपुत्र जैसा घायल पुरुष कौन है ? इस पर इतने गाढ प्रहार किसने किये हैं ? इसे ये पुरुप कहाँ ले जा रहे है ? और इसकी सेवा मे कौन लोग खडे है ? [४७६-४७८]

---

* पृष्ठ ५३२.

मार्गानुसारिता—इस महागिरि पर चारित्रधर्मराज का राज्य है। उसके पुत्र यतिधर्म का यह प्रसिद्ध पराक्रमी सयम नामक योद्धा है। इस राज्य के प्रबल शत्रु महामोह आदि अत्यधिक दुष्ट है। इसे अकेला देखकर उन्होने इसे खूब मारा। शत्रुओ की सख्या अधिक होने से इसे इतनी मार खानी पडी कि इसका सारा शरीर लहूलुहान और जर्जरित हो गया है। यतिधर्म के सुभट इसे रणभूमि से उठाकर लाये है। हे वत्स ! ये सुभट इसे स्वकीय राजमन्दिर मे ले जा रहे है। इसी जैनपुर मे इसके सभी सम्बन्धी रहते है। [४७९-४८२]

मैंने कहा—मौसी ! शत्रुओ द्वारा अपने अनुचर को इतना घायल देखकर अब चारित्रधर्मराज क्या करेगे, यह देखने की मुझे बडी उत्कठा है, अत. आप कृपाकर मुझे उस शिखर पर ले चलिये और बताइये कि अब इस सयम का स्वामी चारित्रधर्मराज क्या करता है ? [४८३-४८४]

चारित्रधर्मराज की सभा में विचार-विनिमय

मौसी ने मेरी बात सुनकर कहा—वत्स ! ऐसा ही करते है। पश्चात् मौसी का अनुसरण करता हुआ मै उसके साथ विवेकगिरि पर्वत पर गया।* वहाँ से मैंने देखा कि जैनपुर के चित्तसमाधान मण्डप मे राजमण्डल के मध्य मे चारित्रधर्मराज बैठे थे। उनके आस-पास बहुत से दूसरे राजा बैठे थे, जिन सब के नाम और गुणो का मौसी ने अलग-अलग वर्णन किया, क्योकि वह स्वय उन सबको भली प्रकार से जानती थी। इसी समय सैनिकगण घायल सयम को वहाँ लेकर शीघ्रता से आये और सारी घटना कह सुनाई। शत्रु द्वारा अपने व्यक्ति की ऐसी घायल दशा देख कर और सुनकर सारी सभा क्षुब्ध हो गयी। उस समय सभाजनो के भयकर-गर्जन और हथेलियो द्वारा ताल ठोकने की प्रबल ध्वनि से पृथ्वी काँप उठी। उस खलबली से वह सभा गर्जित महासमुद्र जैसी दिखाई देने लगी। कई क्रोधित यमराज की तरह हुँकार करने लगे, कईयो की भुजाये फडकने लगी, किन्ही के रोगटे खडे हो गये, किन्ही के मुँह क्रोध से लाल हो गये, किन्ही की भौहे चढ गई, कोई छाती तानकर अपनी तलवारो पर दृष्टि डालने लगे, कोई क्रोधान्ध हो जाने से आरक्त नेत्र वाले हो गये, किन्ही के प्रचण्ड अट्टहास से पृथ्वी काँपने लगी, किन्ही के क्रोध से आतप्त शरीरो से पसीने की बूदे टपकने लगी और किन्ही के शरीर क्रोध से अग्नि-पिंड के समान लाल हो गये। [४८५-४९४]

समस्त राजमण्डल को क्षुभित देखकर चारित्रधर्मराज को उनके मत्री सद्बोध ने कहा—देव ! धैर्यवान सत्पुरुषो को यो असमय के घन-गर्जन की भाँति एव कायर पुरुषो के समान क्षुब्ध होना उचित नही है। आवेश मे आये हुए इन राजाओ को शान्त कीजिये, इनका अभिप्राय जानिये और इनकी परीक्षा भी करिये। [४९५-४९७]

* पृष्ठ ५३३

सद्बोध मत्री की बात सुनकर चारित्रधर्मराज ने सभा मे व्याप्त क्षोभ को रोकने के लिये समग्र राजाओ की तरफ अपनी दृष्टि घुमाई, जिसे देखकर विचक्षण राजा और योद्धा मौन हो गये। [४६८]

चारित्रधर्मराज ने सभी सभासदों से कहा—राजाओ! जो घटना घटित-हुई है वह तो आपने सुनी ही है और समझी भी है। अब हमको इस विषय मे क्या करना चाहिये ? आपके मन मे जो विचार हो, उन्हे प्रकट करे। [४६६]

सभासदों का आक्रोश

महाराज का प्रश्न सुनकर वहाँ बैठे सत्य, शौच, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य आदि राजाओ के मन मे युद्ध करने का उत्साह बढा और उन्होने एक आवाज मे कहा—अपने योद्धा सयम की उन्होने ऐसी दुर्दशा की उसे क्या चुपचाप सहन कर ले ? क्या अभी भी हमे प्रतीक्षा करनी चाहिये ? हे देव! अपराध करने वाले को क्षमा करने से यदि अपराध की क्षमा ही अपथ्य सेवन के समान परिणत होती हो अर्थात् उनकी अपराध वृत्ति मे बढोतरी होती हो तो उसको जडमूल से नष्ट कर देना ही परमौषध है। जब तक पापात्मा महामोह आदि भयकर शत्रुओ को मार कर न भगाया जायगा तब तक हम जैसो को सुख की गन्ध भी कैसे मिलेगी ? परन्तु जब तक इस सम्बन्ध मे देवचरणो की (आपकी) प्रबल इच्छा नही होगी * तब तक इन दुरात्माओ का नाश नही होगा। हे स्वामिन्! देखिये, आपका एक-एक योद्धा ऐसा वीर है कि भयकर समरागण मे अकेला भी सम्पूर्ण शत्रु सेना को पराजित कर भगा सकता है, जैसे अकेला केशरीसिंह मृगो की पूरी टोली को भगा सकता है। यदि आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा बीच मे बाधक न होती तो इस शत्रु सेना को ज्वार भाटा से क्षुभित समुद्र की लहरो की भाति हमारे योद्धा क्षणमात्र मे नष्ट कर देते।
[५००–५०६]

सेनापति का आक्रोश

मोहराजा आदि के विरुद्ध एकमत से सघर्ष करने को उद्यत सभी महारथी राजा महाराजा के समक्ष खडे हो गये। उनके शरीर पर युद्ध-लोलुपता (रण की खुजली) के चिह्न देखकर महाराज ने अपनी दृष्टि उनकी ओर घुमाई तो वे सब महारथी, दुर्दान्त मदोन्मत्त हाथी को विदीर्ण करने मे समर्थ सिह जैसे दिखाई देने लगे। विचारने योग्य महत्वपूर्ण प्रसग होने से चारित्रधर्मराज अपने मत्री सद्बोध और सेनापति सम्यग्दर्शन के साथ गुप्त मन्त्रणा करने हेतु मन्त्रणा कक्ष मे चले गये। हे पिताजी! मौसी मार्गानुसारिता भी उस समय मेरे साथ अन्तर्ध्यान होकर उस कक्ष मे प्रविष्ट हो गई। महाराज चारित्रधर्मराज ने अपने मत्री और सेनापति से पूछा कि, अब हमे क्या करना चाहिये ? इस पर सेनापति सम्यग्दर्शन ने कहा—देव! हमारे महारथी योद्धा सत्य, शौच आदि ने जैसा कहा वैसा ही करने का समय

* पृष्ठ ५३४

आ गया है। इस प्रसग मे विचार या विलम्ब करने का प्रश्न ही क्या है ? कारण यह है कि अत्यन्त दुष्ट चित्त वाले और नष्ट करने योग्य शत्रुओ द्वारा ऐसा असहनीय अपराध होने पर तो कोई भी स्वाभिमानी अनदेखी कर चुपचाप कैसे बैठ सकता है ? शत्रु से पराजित होकर अपमानित होने से तो वह मर जाय तो श्रेयस्कर है, जल जाय तो अच्छा है, उसका जन्म न लेना ही प्रशस्य है और यदि वह गर्भ मे ही गल जाता तो अच्छा होता। जो प्राणी शत्रुओ से बार-बार मर्दित होकर और धूलि-धूसरित होकर भी स्वस्थ चित्त से चुपचाप बैठा रहे, तो वह प्राणी धूल, तृण और राख जैसा तुच्छ है, या यो कहे कि वह कुछ भी नही है तो ठीक है। यदि किसी राजा का एक भी शत्रु होता है तो वह उसे जीतने की इच्छा रखता है तब जिसके सिर पर अनन्त शत्रु हो वह चुप कैसे बैठ सकता है ? अर्थात् उसके लिये अनदेखी करना लेशमात्र भी योग्य नही है। अत हे महाराज ! आप अपने समस्त शत्रुओ को नष्ट कर, पृथ्वी को निष्कटक कर फिर निराकुल होकर शान्ति से बैठिये। इस प्रकार अत्यन्त उत्कट वाक्यो द्वारा प्रसगोचित कार्य करने मे अपने विचार प्रदर्शित कर सेनापति सम्यग्दर्शन चुप होकर बैठ गया। [५०७–५१८]

सद्बोध का राजनीति-चिन्तन

तदनन्तर चारित्रधर्मराज ने सद्बोध मन्त्री की तरफ अपनी दृष्टि घुमाई और इशारे द्वारा उसे अपना अभिप्राय प्रकट करने का सकेत किया। प्रत्येक घटना के कारणो का पृथक्करण कर गहन चिन्तन के पश्चात् वस्तु-तत्त्व के रहस्य को समझने मे कुशल मन्त्री इस प्रकार बोला—देव ! विद्वान् सेनापति जी ने आपके समक्ष जो युक्तिसगत परामर्श दिया है, उसके पश्चात् मेरे जैसे का इस प्रसग मे कुछ बोलना भी उचित नही है, फिर भी हे राजेन्द्र ! आप मुझे गौरव प्रदान कर प्रसगानुसार विचार व्यक्त करने की आज्ञा देते है, अत: आपकी कृपा और उत्साह से प्रेरित होकर ही मेरी वाणी प्रस्फुटित हो रही है।* सम्यग्दर्शन की ओर लक्ष्य कर मन्त्री ने कहा—सेनापति जी ! आपमे उत्कट तेज है। आपका वाक्चातुर्य पर अधिकार है। आपकी स्वामिभक्ति भी सराहनीय है। हे धीर ! आपने कहा कि स्वाभिमानी व्यक्ति का शत्रुओ द्वारा किये गये पराभव को सहन करना दु सहनीय है, यह सत्य है। यह भी सत्य है कि शत्रु द्वारा पराभूत प्राणी इस ससार मे तुच्छ है। महामोह आदि शत्रु दुष्ट है, शठ हैं, पापी है, नाश करने योग्य है, इसमे भी कोई सशय नही है। महाराज के अनुचर उनका नाश करने मे समर्थ/पराक्रमी है, यह भी सत्य है। महाराज के महारथी योद्धाओ की बात छोडिये, उनकी स्त्रियाँ भी महा-मोह आदि का नाश करने मे सक्षम है, तदपि विचक्षण पुरुष योग्य अवसर के विना कोई भी कार्य प्रारम्भ नही करते, क्योकि नीति और पुरुषार्थ योग्य अवसर के प्राप्त होने पर ही कार्य सिद्ध कर सकते हैं। यद्यपि महाराज और आपके समक्ष

---

* पृष्ठ ५३५

नीतिशास्त्र की बाते करना तो पिष्ट-पेषण जैसा ही है, तथापि कुछ विशेष बाते फिर से याद दिलाने की धृष्टता करता हूँ :— [५१९-५२८]

राजनीति मे छः गुण, पाँच अग, तीन शक्ति, तीन उदय और सिद्धि, चार प्रकार की नीति और चार प्रकार की राजविद्या प्रतिपादित की गई है। इस प्रकार की और भी अनेक नीतियाँ नीतिशास्त्र मे वर्णित है, जिनसे आप दोनो सुपरिचित हैं, अत उनका वर्णन क्या करना।

छ गुण है :—स्थान, यान, सन्धि, विग्रह, सश्रय और द्वैधीभाव।

राजनीति के पाँच अग है—१ उपाय, २. देशकाल का विभाग, ३. सैन्यबल और सम्पत्ति का ज्ञान, ४ आपत्ति का प्रतीकार और ५ कार्यसिद्धि। राजनीतिज्ञ पुरुष इन पाँचो अगो के पूर्णतया जानकार होते है और इन अगो का सम्यक् प्रकार से चिन्तन करते है।

तीन प्रकार की शक्ति कही गई है :—१ उत्साह शक्ति, २ प्रभाव शक्ति, और ३ मत्र शक्ति। अर्थात मानसिक प्रेरणा, राज्य का प्रभाव और वास्तविक चिन्तन यह तीन प्रकार की शक्ति है।

इन तीन शक्तियो की प्राप्ति से राज्यरक्षण, प्रभुता और शत्रु-विजय यह तीन प्रकार के उदय होते है और स्वर्ण, मित्र तथा भूमि का लाभ होता है। यह तीन प्रकार की सिद्धि कहलाती है।

राजनीतिज्ञ साम, दाम, भेद और दण्ड इन चार प्रकार की नीतियो का निखिल कार्यो मे पर्यालोचन कर प्रवृत्त होते है।

राजाओ को चार प्रकार की राजविद्या का ज्ञान अवश्य होना चाहिये। तर्कविद्या, त्रयी (साम, यजु और ऋग् तीन वेदो का ज्ञान), वार्ता (कृषि और इतिहास का ज्ञान) और दण्डनीति। [५२९-५३७]

हे महत्तम! इस समस्त राजविद्या के श्रीपूज्यपाद और सेनापति जी सम्यक् प्रकार से विशिष्ट ज्ञाता है ही, अत अधिक विवेचन की क्या आवश्यकता है? मुझे तो केवल यह निवेदन करना है कि कोई व्यक्ति कितने भी शास्त्र जानता हो, पर अपनी अवस्था को ठीक से न समझ सकता हो तो उसका ज्ञान अन्धे के सामने स्वच्छ दर्पण रखने के समान व्यर्थ है।* जो व्यक्ति असाध्य कार्य को करने का प्रयत्न करता है, किन्तु उस विषय मे योग्य विवेक नही रखता वह हँसी का पात्र बनता है और समूल नष्ट हो जाता है। तात! जिस प्रयोजन को स्वीकार किया है उसका मूल पहले ही नष्ट हो चुका है, अत युद्ध करने का या शत्रु-विजय का यह उत्साह क्या अर्थ रखता है? कारण स्पष्ट है :—यह भवचक्र, स्वय हम, वे महामोह आदि शत्रु, कर्मपरिणाम, अपने महाराजा आदि सभी तो ससारी जीव

* पृष्ठ ५३६

नामक महात्मा के अधीन है और उसी के अधिकार में यह महाटवी है। पर, यह ससारी जीव तो अद्यावधि मेरे जैसे का नाम भी नही जानता और महामोह आदि शत्रुओ को अपना प्रगाढ मित्र मानता है। अतएव यह निश्चित है कि जिस सैन्य-पक्ष के प्रति ससारी जीव का अधिक पक्षपात (झुकाव) होगा उसी की विजय होगी, क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति मे मूलनायक/वरराजा तो वही है। अत· जब तक उसकी समझ मे यह नही आये कि हमारी सेना उसका हित करने वाली है तब तक वह हमारे पक्ष मे नही होगा और जब तक वह हमारे पक्ष मे न हो तब तक युद्ध की तैयारी, प्रयाण और विग्रह/युद्ध आदि व्यर्थ है। ऐसे समय मे तो साम नीति का अवलम्बन कर, गजनिमीलिका की तरह दर्शक बनकर इस स्थिति की उपेक्षा करना ही समुचित है। कार्य की महत्ता का चिन्तन कर विज्ञजन पहले कार्य-सीमा का सकोच भी करते है, अर्थात् पीछे भी हटते हैं। जैसे हाथी को मारते समय सिंह पीछे हटकर वेग के साथ सबल आक्रमण करता है। ऐसा करने से पुरुषत्व/पराक्रम का नाश नही होता। [५३८–५४९]

सम्यग्दर्शन—आर्य ! यह ससारी जीव हमको पहचानेगा या नही ? इसका तो कुछ पता ही नही चलता और शत्रु जैसे आज हमे त्रस्त कर रहे है वैसे ही भविष्य मे भी पुन.-पुन. त्रस्त करते रहेगे। देखिये, जैसे आज अवसर का लाभ उठाकर शत्रुओ ने हमारे योद्धा सयम को घायल किया वैसे ही वे भविष्य मे हम सबको भी बार-बार मार-मारकर घायल करते रहेगे। अतएव इस स्थिति मे चुप्पी साधना सगत नही है। [५५०–५५१]

सद्बोध—आर्य ! इस विषय मे शीघ्रता मत करिये। योग्य समय पर ही पग उठाया जा सकता है। आप घबराये नही, क्योकि यह निश्चित है कि देर-अबेर ससारी जीव हमे अवश्य पहचानेगा। इसका कारण यह है कि कर्मपरिणाम महाराजा जैसे उनके सैन्य (पक्ष) मे सम्मिलित है वैसे ही हमारे सैन्य पक्ष मे भी है। उनका व्यवहार सर्वदा दोनो पक्षो के साथ प्राय. समान रहता है। इधर ससारी जीव भी कर्मपरिणाम महाराजा की आज्ञानुसार ही समस्त प्रवृत्ति करता है। भविष्य मे कभी अवसर देखकर कर्मपरिणाम महाराजा ससारी जीव को हमारी पहचान करायेगे, उसे बतायेंगे कि हम उसके कितने हितेच्छु है, तब ससारी जीव प्रसन्नता से हमारी पूजा करेगा, हमारा सन्मान करेगा और तभी हम शत्रु का निर्दलन करने मे समर्थ होगे। [५५२–५५५]

आर्य ! किसी समय अवसर देखकर, चिन्तन कर कर्मपरिणाम महाराजा पहले अपनी बडी बहिन लोकस्थिति से परामर्श लेंगे, अपनी पत्नी काल-परिणति को पूछेंगे, अपने सेनापति स्वभाव को कहेगे,* नियति और यदृच्छा आदि स्वकीय परिजनो को अवगत करेंगे और फिर ससारी जीव की पत्नी भवितव्यता को भी अनुकूल करेगे। ससारी जीव निर्मल होकर स्थिति समझने योग्य हो गया है, ऐसे

* पृष्ठ ५३७

अवसर की अपेक्षा करेगे और देखेगे कि उसे हमारी बात रुचिकर प्रतीत होने लगी है तभी महाराजा उसे हमारी पहचान करायेंगे। उस समय किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नही होने से संसारी जीव को वह बात हितकारी लगेगी। फलस्वरूप वह हमको निर्मल दृष्टि से देखेगा और हमारी बात को प्रसन्नता से स्वीकार करेगा। सेनापति जी ! तभी हम अपने शत्रु को समूल नष्ट करने मे समर्थ होगे। अत मेरे विचार मे अभी इस प्रसग मे समय बिताना ही हितकारी है। [५५६]

सम्यग्दर्शन—मन्त्री जी ! यदि ऐसा ही है, तो उन दुरात्माओ के पास हमे किसी दूत को भेजना चाहिये जिससे कुछ नही तो वे हमारे लोगो की कदर्थना तो न करे और अपनी मर्यादा को तो न तोडे। [५५७]

सद्बोध मत्री—मेरी राय मे तो अभी दूत भेजना भी व्यर्थ है। अभी तो बगुले की तरह इन्द्रियो को सकुचित कर चुपचाप बैठकर समय की प्रतीक्षा करना ही श्रेयस्कर है। [५५८]

सम्यग्दर्शन—पुरुषोत्तम ! मेरी समझ मे तो भयभीत होकर चुपचाप बैठने का कोई कारण नही है। वे पापी कितने भी क्रोधित हो तब भी मेरे जैसे का क्या बिगाड सकते हैं ? अथवा, हे मान्यवर ! यदि हमको विग्रह नीति वाले दूत को न भेजना हो तो, समझा कर वास्तविकता का ज्ञान करवाने वाले (सामनीति वाले) दूत को भेजकर उसे कहे कि वह सन्धि की शर्तें उचित रूप मे तय करके आवे। इसमे क्या आपत्ति है ? [५५९-५६०]

सद्बोध—आर्य ! ऐसा न कहिये, क्योकि जब विपक्षी क्रोध मे उन्मत्त हो तब सामनीति नही चल सकती, इससे तो सघर्ष की वृद्धि ही होती है। तप्त घी मे पानी डालने से वह और भभक उठता है, यह सशय-रहित है। मान्यवर ! यदि आपकी इच्छा हो तो एक बार दूत भेजकर आपके कौतुहल को भी पूर्ण कर देते है, पर उसका वही परिणाम आयेगा जो मै कह रहा हूँ। महाराज की इच्छा भी दूत भेजने की हो तो एक दूत भेज दिया जाय और शत्रुओ की भावना को भली प्रकार समझ कर तदनुसार समयोचित कार्य किया जाय। [५६१-५६३]

दूत-प्रेषण

सद्बोध मत्री की अन्तिम बात का महाराज चारित्रधर्मराज ने भी अनुमोदन किया, अत. सत्य नामक एक दूत को शत्रु-सेना की तरफ भेजा। पिताजी ! उस समय मेरी असीम जिज्ञासा को देखकर मेरी मौसी मार्गानुसारिता प्रच्छन्न रूप से दूत का अनुसरण करती हुई मुझे साथ-साथ ले गई। अन्त मे हम महामोह राजा की सेना के निकट पहुचे। मैने वहाँ देखा कि प्रमत्तता नदी के किनारे चित्तविक्षेप नामक बडे मण्डप के सभास्थल मे सिंहासन पर महामोह महाराज विराजमान थे। शत्रुओ से खचाखच भरी हुई इस राज्यसभा मे सत्य नामक दूत ने प्रवेश कर महाराज को प्रणाम किया। उसे एक योग्य आसन पर

बिठाया गया। परस्पर कुशल समाचार पूछने के बाद अदम्य साहसी दूत ने उदार बुद्धि से क्रोध को शात करने के लक्ष्य से कहा :—[५६४–५६८]

दूत का संदेश

इस चित्तवृत्ति अटवी का अधिष्ठाता और स्वामी तो ससारी जीव ही है, इसलिये वही इसका मूल नायक है। यह सदेहरहित है कि बाह्य और अतरग सभी ससारी राजाओ का* और उनके ग्रामो एव नगरो का अधिपति भी वही है। यही कारण है कि आप हम और अन्य कर्म-परिणाम आदि अतरग राजा तो ससारी जीव के किंकर है। ऐसी परिस्थिति मे जबकि हम सब का राज्य एक ही है और हमारे स्वामी भी एक ही ससारी जीव है तब परस्पर मे विरोध कैसा ? शक्ति सपन्न और स्वामिभक्त सेवक परस्पर मिलकर भाई-बन्धुओ की तरह रहते है। अपने स्वामी का हित चाहने वाले सेवक आपस मे लड-भिडकर अपने ही पक्ष का नाश करने वाला कोई कार्य नही करते। अतएव हे राजन् ! आज के पश्चात हम दोनो का प्रेम सदा के लिये बना रहे, हमारी प्रीति और आनन्द मे सतत वृद्धि हो तभी हमारे स्वामी ससारी जीव की वास्तविक सेवा हो सकेगी। [५६९–५७४]

दूत की भर्त्सना

सत्य नामक दूत की स्पष्ट बात सुनकर मदोन्मत्त मोहराजा की सभा अत्यधिक क्षुब्ध हो गई। वहाँ उपस्थित राजा और योद्धा अपने होठ काटने लगे, उनके शरीर लाल-पीले हो गये, जमीन पर पैर पटकने लगे और सभी की बुद्धि क्रोध से अन्धी हो गई। सत्य दूत की स्पष्टोक्ति उन्हे अच्छी नही लगी, यह जताने के लिये वे सभी एक साथ बोल पडे—"अरे दुष्ट ! मूर्ख ! अरे दुरात्मा ! तुझे किसने ऐसी शिक्षा दी है कि ससारी जीव हमारा स्वामी है, हम तुम उसके सेवक है तथा हम और तुम सम्बन्धी है। तू ऐसी कपोल कल्पित बाते बनाता है ! तेरे पक्ष वाले सब याद रखे कि तुम सब नराधम पाताल मे चले जाओ तो भी हम नही छोडेगे। अरे अधम ! तू क्या बोला ? ससारी जीव हमारा स्वामी ! और तुम लोग हमारे सम्बन्धी ! अरे ! बहुत अच्छा सम्बन्ध जोडा ! धन्य है तेरे वचनो और गुणो को ! तू अपनी भलाई चाहता है तो अपने इष्टदेव का स्मरण कर और शीघ्र ही उल्टे पैरो यहाँ से भाग जा। तुम लोगो की शान्ति करने के लिये हम भी तुम्हारे पीछे-पीछे ही आ रहे है" इस प्रकार कहते हुए वे परस्पर तालियाँ पीटते, हँसते और निकृष्ट वचनो से दूत की कदर्थना करने लगे। [५७५–५८१]

उसी समय उन क्रोधान्ध शत्रु राजाओ ने कवच धारण कर, अपने शस्त्रास्त्र धारण कर महामोह के साथ युद्ध के लिये प्रस्थान कर दिया। इधर सत्य दूत ने भी वापस आकर चारित्रधर्मराज को सब परिस्थिति से अवगत कराया। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि महामोह की पूरी सेना चढकर आ रही है, तब उन्होने भी अपनी सेना

* पृष्ठ ५३८

को तैयार होने की आज्ञा दे दी। सम्पूर्ण सेना सज्जित होकर चितवृत्ति अटवी के किनारे पर आकर युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गई। यहाँ इन दोनो महामोह और चारित्रधर्मराज का विस्मयकारी युद्ध हुआ। [५८२-५८५]

चारित्रधर्मराज और मोहराज का युद्ध

एक ओर चारित्रधर्मराज का अनुसरण करने वाले राजाओ के समूह और उनके करोडो योद्धाओ के शस्त्रो से निर्गत विस्तृत प्रकाश-जाल चारो ओर फैले अन्धकार का नाश कर रहा था, तो दूसरी ओर दुष्टाभिसन्धि आदि महामोहराजा के प्रचण्ड उग्र/भयकर राजाओ की रणभेरी बज रही थी और उनके काले शरीरो की प्रभा से चारो ओर अन्धकार पटल फैल रहा था जिससे ज्ञान रूपी सूर्य का जो प्रकाश आ रहा था वह आच्छादित हो रहा था।* दोनो सेनाओ का भयकर युद्ध होने लगा जिससे कायर मनुष्यो के मन मे मृत्यु का महा भय उत्पन्न होने लगा। शस्त्रो और युद्ध के वाद्यो की ध्वनि से ससार मे सचरण करने वाले जीवो को त्रास हो रहा था और इस महायुद्ध को देखने की लालसा से विशाल संख्या मे विद्याधर और विद्यासिद्ध आ गये थे। इसी भीषण सग्राम मे महामोह राजा के योद्धा अपने दुश्मनो को पराजित करते हुए आगे बढ रहे थे। [५८६]

चारित्रधर्मराज की धर्म-सेना शत्रु के अनेक प्रकार के भयकर शस्त्रो से मार खा रही थी। उनके हाथी, घोडे, रथ आदि के दल पराजित हो रहे थे और शत्रु की भयकर गर्जना सुन उनकी सम्पूर्ण सेना काँप उठी थी। [५८७]

हे पिताजी! अन्त मे इस युद्ध मे चारित्रधर्मराज पर बलशाली महामोह राजा की विजय हुई। चारित्रधर्मराज की सेना पराजित होकर भाग खडी हुई और योद्धागण भाग कर अपने स्थानो मे छुप गये। महामोह के योद्धा जयनाद का कोलाहल करते हुए शत्रुओ के पीछे भागे और उन्हे चारो तरफ से घेर लिया। युद्धजय के पश्चात् महामोह नरेन्द्र का राज्य चारो तरफ फैल गया और चारित्रधर्मराज घेरे के बीच मे घिर गये। [५८८-५९०]

पिताजी! उस समय मौसी ने पूछा—क्यो वत्स! युद्ध देखा? अब तो तुम्हारा कुतूहल शान्त हुआ?

उत्तर मे मैंने कहा—हाँ मौसी! आपकी कृपा से मेरी जिज्ञासा पूर्ण हुई। मौसी! अब मुझे यह जानने की अभिलाषा है कि इस युद्ध का मूल कारण क्या है? कृपया उसे बतला दे। [५९१-५९२]

सघर्ष का मूल कारण

मार्गानुसारिता मौसी—वत्स! जब यह महायुद्ध चल रहा था तब तूने महाराजा रागकेसरी के आगे युद्धनिपुण मत्री विषयाभिलाष को देखा होगा? पहले

* पृष्ठ ५३९

एक बार इस मंत्री ने ससार को अपने वश में करने की इच्छा से अपने पाँच कर्मचारी कही भेजे थे। चारित्रधर्मराज के तन्त्रपाल सतोष ने इन पाँचो को खेल-खेल मे ही पराजित कर दिया था। हे पुत्र ! तभी से दोनो पक्षो मे परस्पर विरोध पैदा हो गया, जिसके परिणामस्वरूप अभी ऐसा महायुद्ध अन्तरग राजाओ मे हुआ। यह सब आन्तरिक राजाओ की आन्तरिक खटपट का परिणाम है। [५९३–५९६]

पिताजी ! जब मैंने मौसी से पूछा कि इन पाँच कर्मचारियो के नाम क्या है ? ये पाँचो ससार को किस प्रकार वश मे कर सकते है ? तब मौसी ने कहा कि, वत्स ! इनके नाम स्पर्श, रसना, घ्राण, दृष्टि और श्रोत्र है। ये स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द पहले तो प्राणी को अपनी तरफ आकर्षित करते है और उसके पश्चात् वे तीनो जगत् को अपने वश मे कर लेते हैं। इन पाँचो मे से प्रत्येक इतना प्रबल शक्ति-सम्पन्न कि वह अकेला ही ससार को वश मे कर सकता है। यदि ये पाँचो ही सम्मिलित होकर ससार को वश में कर ले, तो इसमे बडी बात ही क्या है ? [५९७–५९८]

विचार का स्वदेश में प्रत्यागमन

तदनन्तर मैंने मौसी से कहा—माताजी ! देश-दर्शन और भ्रमण का मेरा कौतूहल पूर्ण हो गया है। आपकी कृपा से मैंने थोडे समय में ही बहुत कुछ देख लिया है। अब अपने पूज्य पिताजी के पास शीघ्र ही जाऊँगा। [५९९]

मार्गानुसारिता ने कहा कि—वत्स ! इन लोगो का व्यवहार और चेष्टाये तुमने देख ही ली है, अब तुम जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ही आ रही हूँ। पिताजी ! इस प्रकार प्रयोजन का निश्चय कर वहाँ से सीधा मै यहाँ आया हूँ।* मुझे आपसे केवल यही निवेदन करना है कि आपका मित्र घ्राण अच्छा व्यक्ति नही है। यह भोले लोगों को ठगने वाला, उन्हे त्रस्त करने वाला और ससार मे भटकाने वाला है। रागकेसरी के मन्त्री ने मनुष्यो को त्रस्त और विडम्बित करने के लिये जिन पाँच अनुचरो को ससार मे भेजा है, उन्ही मे से तीसरा यह घ्राण हैं। [६००–६०२]

बुध का निर्णय

विचार कुमार अपने पिता बुधराज के समक्ष उपरोक्त वृत्तान्त सुना ही रहा था कि मार्गानुसारिता वहाँ आ पहुँची और उसने बुध नरेन्द्र के सम्मुख विचार के कथन का समर्थन किया, फलस्वरूप बुध ने घ्राण का त्याग करने का निश्चय कर लिया। [६०३–६०४]

मन्द की दशा

इधर दूसरी ओर मन्द कुमार भुजगता की सगति मे पडकर घ्राण मित्र के पालन-पोषण मे सदा उद्यत रहने लगा। वह उसके लिये उत्तमोत्तम सुगन्धित द्रव्य

* पृष्ठ ५४०

एकत्रित करने में प्रयत्नशील रहने लगा। अर्थात् वह अपने मित्र घ्राण को प्रसन्न करने के लिये अनेक कष्ट सहन करके भी सुगन्धित पदार्थ प्राप्त करने के अवसर को हाथ से नही जाने देता था। [६०५]

हे राजन्! इसी धरातल नगर में देवराज नामक राजा था जिसके लीलावती नामक पत्नी थी जो मन्द कुमार की बहिन थी। एक दिन मन्द कुमार अपनी बहिन के यहाँ गया। सयोगवश उसी समय लीलावती ने अपनी सौत के पुत्र को मारने के लिये एक डूम्ब से हलाहल तेज विष को सुगन्धित पदार्थ मे मिलवाकर पुड़िया बनवाई और उस पुडिया को घर के दरवाजे के बाहर रख दी, जिससे कि उससे आकर्षित होकर सौत का लडका उसे सूघे और मर जाय। विष-मिश्रित सुगन्धी द्रव्य की पुड़िया द्वार पर रख कर वह घर के भीतर चली गई। उसके थोडी देर पश्चात् ही मन्द कुमार वहाँ आया और उसने द्वार पर पडी हुई पुडिया को देखा, जिसमे से उत्कट तीव्र सुगन्ध निकल रही थी। उसके अन्तर मे प्रविष्ट भुजगता ने उसे उसी समय उस सुगन्ध को घ्राण तक पहुँचाने का आदेश दिया। फलस्वरूप दुरात्मा मन्द ने उस कागज की पुडिया को खोला और उसे नाक के पास ले गया। अन्तर मे बैठे हुए घ्राण ने ज्योही उस तीव्र सुगन्ध को सूघा त्योही तत्क्षण उसके सारे शरीर मे मूर्छा व्याप्त हो गई और मन्द वही जमीन पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

घ्राण की आसक्ति मे रक्त मन्दकुमार की मृत्यु की इस घटना से बुध कुमार को घ्राण के प्रति अत्यधिक विरक्ति उत्पन्न हो गई। [६०६–६११]

बुध की दीक्षा

तत्पश्चात् बुध कुमार ने अपनी साली मार्गानुसारिता से पूछा—भद्रे! इस घ्राण से अब मैं पूर्णरूपेण विरक्त हो गया हूँ। अब यह मेरे से सर्वदा दूर ही रहे, इससे मेरा किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहे, ऐसा कोई उपाय बतलाइये। [६१२]

मार्गानुसारिता—देव! भुजगता का त्याग कर आप सदाचारी बन जाइये और सदाचार-परायण साधुओ के समुदाय मे रहिये। साधुओ के मध्य मे रहते हुए सदाचारी जीवन विताने पर घ्राण आपके पास रहते हुए भी आपका कुछ बिगाड़ नही सकेगा। दोष और सक्लेश का कारण नही बन सकेगा। इसकी छाया भी आप पर नही पडेगी और धीरे-धीरे स्वतः ही इसका सर्वथा त्याग हो जायेगा। [६१३–६१४]

बुध कुमार को मार्गानुसारिता का कथन आत्म-हितकारी लगा, अत. उसने वैसा ही करने का निश्चय कर लिया। सद्गुरु का योग मिलने पर उसने गुरु महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की और साधुओ के बीच रहकर सदाचार का पालन करने लगा तथा सद्गुरु की उपासना सेवा मे दत्तचित्त हो गया। धीरे-धीरे आगमोक्त शुद्ध भावो का ज्ञान होने पर उसे कुछ लब्धियो की प्राप्ति भी हुई और आचार्य ने

गच्छ-सचालन के हेतु सूरि पद के योग्य समझकर उसे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। [६१५-६१७]

अपनी आत्मकथा को समाप्त करते हुए बुधसूरि ने धवल राजा से कहा—हे राजन्! आपको प्रतिबोधित करने वही बुधसूरि अपने गच्छ और शिष्यो को छोडकर अकेला यहाँ आया है। हे धरानाथ! जो व्यक्ति आपको कथा सुना रहा है और आप सब सुन रहे हैं वह कथावाचक बुधकुमार नामक व्यक्ति मैं स्वय ही हूँ। [६१८-६१९] ●

२०. विमल की दीक्षा

आत्मकथा समाप्त करने के पश्चात् बुधसूरि ने कहा—हे राजन्! मेरी आत्मकथा जो अभी मैने सुनाई है, वह जैसे मुझे प्रतिबोधित करने मे कारणभूत हुई वैसे ही वह आप सब को प्रबुद्ध करने मे समर्थ है। क्योकि, त्रैलोक्य मे जहाँ कही मनुष्य विचरण करते है वही उनके पीछे महामोहादि शत्रु उन्हे उत्पीडित करने के लिए भागते-फिरते है। महामोह और उसके अधीनस्थ सभी योद्धा अत्यन्त भयकर है और जो भी प्राणी उनके चक्कर मे आता है, उसके वे क्षणभर मे टुकडे-टुकडे कर उसके अस्तित्व का लोप कर देते है। हे नरेन्द्र! उनका निवारण करने के लिए जैनशासन रूपी स्थान ही अत्युत्तम और भयरहित है। जो प्राणी इस तत्त्व-रहस्य को समझते है और भय से मुक्त होना चाहते है, उन्हे इस निर्भय स्थान मे प्रवेश करना चाहिये। हे भूपति! आपको इस कार्य मे पल भर की भी देरी नही करनी चाहिए। आप कालकूट विष जैसे भयकर इन्द्रिय विषयो का त्याग करे और इस दिव्य प्रशम सुखरूपी अमृत का पान करे। [६२०-६२५]

बुधसूरि की सारगर्भित वाणी को सुनकर धवल राजा ने मुस्कराते हुए विमलकुमार एव अन्य सभासदो की तरफ देखा और फिर उन सबको लक्ष्य करके कहा—सभाजनो! महात्मा बुधसूरि ने जो उपदेश दिया है उसे आप सबने सुना है, क्या आपके हृदय पर उनके वचनो का कुछ असर हुआ है? यह सुनकर जैसे सूर्य के प्रकाश से कमलवन विकसित हो जाता है वैसे ही बुधसूरि (सूर्य) के प्रताप से समस्त सभाजनो के मुखकमल खिल उठे। सभी ने एक साथ भक्ति पूर्वक हाथ जोड-कर मस्तक झुकाते हुए कहा - देव! हमने महात्मा के वचन ध्यानपूर्वक सुने हैं और आपकी कृपा से उसके भाव (रहस्य) को भी समझा है। अभी तक हमारे मन अज्ञानान्धकार से घिरे हुए थे, उन्हे महात्मा ने अन्धकार दूर करके प्रकाशमान कर

* पृष्ठ ५४१

दिया है। हम सब मिथ्यात्व के विष में झोंके खा रहे थे, पर महात्मा ने अमृत-सिचन कर हमे जीवनदान दिया है। आचार्यदेव के वचन हमारे चित्त मे गहराई से उतरे है, अत. गुरुदेव के आदेश का हमे अविलम्ब पालन करना चाहिए।
[६२६-६३२]

समस्त सभाजनो के ऐसे प्रशस्त उत्तर को सुनकर धवल राजा अति प्रसन्न हुए। राजा के मन का आशय सभाजन जानते थे और सभाजनों के मन का आशय राजा ने जान लिया था। चिन्तित कार्य को कार्यान्वित करने के पूर्व किसी का राजसिंहासन पर राज्याभिषेक करना आवश्यक था। राजा का विचार विमलकुमार को राजगद्दी देने का था, अत उन्होने विमल से कहा—पुत्र! मेरा विचार दीक्षा लेने का है, अब तुम राज्य का सम्यक् प्रकार से पालन करो। बडे पुण्योदय से मुझे आज श्रेष्ठतम सद्गुरु का योग मिला है। [६३३-६३४]

विमल—पिताजी! यदि मै आपका प्रिय पुत्र हूँ तब आप मुझे दुःखों से परिपूर्ण राज्य पर स्थापित करने की इच्छा क्यो करते है? इससे लगता है कि आपका मुझ पर सच्चा स्नेह नही है। पिताजी! आप मुझे दुःखपूरित ससार मे फेककर स्वय मुक्तिमार्ग की ओर प्रयाण करना चाहते है तो आपके ये विचार श्रेष्ठ नही माने जा सकते।

विमलकुमार के वचनो को सुनकर तत्त्वदर्शी धवल राजा को प्रसन्नता हुई, वे बोले—पुत्र! तेरे विचार सुन्दर हैं और अवसर के योग्य है। यदि तेरी भी यही इच्छा है तो हम तुझे छोडकर नही जायेंगे। [६३५-६३७]

तदनन्तर धवल राजा ने अपने दूसरे पुत्र कमल का राज्याभिषेक किया।* फिर आठ दिन तक अत्यधिक धूमधाम से जिन पूजा की, अष्टाह्निका महोत्सव किया, पूरे देश और नगर मे अनेक दीन-दुःखी याचको को विधिपूर्वक अनेक वस्तुओ का प्रचुर दान दिया और अवसरोचित समस्त कर्त्तव्य पूर्ण कर, शुभ दिन मे अपनी रानी, पुत्र विमलकुमार, बन्धुजनों एव कई नगरवासियो सहित बुधसूरि महाराज के पास विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करने हेतु नगर से बाहर निकला। विशेष क्या कहूँ? उस दिन बुधसूरि का अमृतमय प्रवचन जितने लोगो ने सुना था उनमे से बहुत ही थोडे लोगो ने दीक्षा नही ली। जिन थोडे से लोगो ने चारित्र ग्रहण नही किया उन्होने सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रतो को अगीकार किया। सच ही है, रत्नो की खान के पास जाकर कौन दरिद्री रह सकता है? [६३८-६४२]

* पृष्ठ ५४२

२१. वामदेव का पलायन

वामदेव के भव मे ससारी जीव अपनी आत्मकथा सदागम के समक्ष सुनाते हुए कह रहा है—हे अगृहीतसकेता ! इस सम्पूर्ण घटना के घटित होने के समय मैं तो वहाँ वामदेव के रूप मे उपस्थित ही था। आचार्य की रूप-परिवर्तन की शक्ति, वास्तविकता को समझकर उसे प्रकट करने का कौशल, अपने कथन को रूपक द्वारा समझाने का चातुर्य और महामोह के अन्धकार को दूर करने वाले प्रवचनो को सुनकर भी मैं लेशमात्र भी प्रबुद्ध नही हुआ, मेरे मन पर कुछ भी प्रभाव नही पडा और मुझे उनका कथन तनिक भी रुचिकर नही लगा। इसका क्या कारण था ? यह भी तू सुन। तुझे याद होगा कि पहले बहुलिका योगिनी (माया) मेरी बहिन बनी हुई थी, उस बहिन ने योगशक्ति से मेरे शरीर मे प्रवेश कर लिया था और मुझ पर अपना अधिकार जमा लिया था। आचार्य के पास आने के समय भी वह मेरे शरीर मे उल्लसित हो रही थी। [६४३–६४५]

हे अगृहीतसकेता ! ऐसे अत्यन्त दयालु, परोपकारी, कुशल, प्रतापी, महाभाग्यवान और विशुद्ध जीवन वाले महापुरुष महात्मा आचार्य को मुझ दुरात्मा ने इस बहुलिका की शिक्षा मे आकर वचक और ढोगी माना। मैंने माना कि यह साधु के वेष मे कोई पाखण्डी आया है जो अपनी इन्द्रजाल जैसी रचना कर झूठी चतुरता से सब लोगो को ठग रहा है। देखो, इसकी दुष्टता और ठग विद्या को ! इसने कैसा युक्तियुक्त जाल फैलाया है ! इसका वाक्चातुर्य कितना महान् है कि राजा और उसके सभासद भी मूर्ख बन गये है ! बात ऐसी है कि जो दुरात्मा प्राणी इस बहुलिका के वशीभूत हो जाता है वह स्वय शठाधम बनकर सारे ससार को धूर्त समझने लगता है। मैने भी अनेक सच्ची झूठी कल्पनाओ के द्वारा उस समय बुधाचार्य को धूर्त माना, फलस्वरूप उनके विशुद्ध प्रवचनो का मुझ क्षुद्र पर कोई असर नही हुआ। [६४६–६५०]

इधर नगर मे महोत्सव हो रहा था, दीक्षा का समय निकट आ रहा था। उस समय मुझ पापी ने विचार किया कि मेरा मित्र विमल आग्रह करके बलपूर्वक मुझे अवश्य ही दीक्षा दिलवायेगा, अत उसके आग्रह करने के पहले ही मैं यहाँ से कही भाग जाऊ तो अच्छा रहेगा। हे चपलनेत्रा ! इस विचार से मैं मुट्ठी बाँधकर, भागकर वहाँ से इतनी दूर चला गया कि ढूढने पर भी मेरी गन्ध न मिल सके।

[६५१–६५३]

वामदेव के भविष्य की पृच्छा

दीक्षा के समय विमल ने मुझे समुपस्थित न देखकर बहुत ढुंढवाया, पर जब मेरा कोई पता न लगा तब उसे चिन्ता हुई और उसने बुधाचार्य से पूछा—भगवन्! वामदेव कहाँ गया है? और किस कारण से गया है?

गुरु महाराज ने अपने ज्ञान से उपयोग लगाकर, मेरा समस्त चरित्र जानकर कहा—वह इस डर से भाग गया है कि कही तुम उसे आग्रह कर बलपूर्वक दीक्षा न दिलवा दो।*

इस पर विमल ने गुरु महाराज से पूछा—भगवन्! आपके अमृतोपम वचन सुनकर वह मेरा मित्र ऐसी चेष्टा क्यो करता है? क्या वह भव्य जीव नही है? [६५४-६५७]

बुधाचार्य—कुमार! वामदेव अभव्य तो नही, पर अभी उसका व्यवहार किसी विशेष कारण से ऐसा बना हुआ है। इसकी एक बहुलिका नाम की अतरंग बहिन है, जो महा भयकर योगिनी है। वह शरीर के भीतर रहकर अपनी प्रवृत्ति करती है। वामदेव को उस पर बहुत स्नेह है। फिर इसका स्तेय नामक एक अतरग भाई भी है, उस पर भी इसका बहुत राग है। ये दोनो वामदेव को अपने वश मे करके रखते है। इन दोनो के वशीभूत होकर ही इसने अभी ऐसा व्यवहार किया है। पहले भी इसने इन दोनो के कहने पर ही रत्नो की चोरी की थी। प्रकृति से तो वामदेव सुन्दर ही है, किन्तु अभी इन दोनो के प्रभाव के कारण ही वह ऐसी विपरीत प्रवृत्ति कर रहा है। [६५८-६६१]

विमल—गुरुदेव! वह बेचारा इन दोनो दुष्ट अन्तरग भाई-बहिनो से कब मुक्त होगा? यह तो बताइये। [६६२]

बुधाचार्य—विमल! बहुत समय पश्चात् इसका इनसे छुटकारा होगा। वह कैसे होगा, सुनो। विशदमानस नगर मे शुभाभिसधि नामक राजा राज्य करता है, जिसके शुद्धता और पापभीरुता नामक दो अतिशय निर्मल आचार वाली रानियाँ हैं। शुद्धता के एक ऋजुता नामक पुत्री है और पापभीरुता के अचौर्यता नामक पुत्री है। ये दोनो कन्याये पढी-लिखी और सुन्दर हैं। इनमे से ऋजुता अत्यन्त सरल और साधु जीवन वाली है। यह सभी को सुख देने वाली है और हे भाग्यशाली! तुम्हारे लोगो की वह जानी पहचानी है। राजा की दूसरी अचौर्यता नामक कन्या भी स्पृहारहित, शिष्ट पुरुषो की प्रिय और सर्वांगसुन्दरी है तथा इसे भी तुम्हारे जैसे पहचानते है। जब तुम्हारा मित्र वामदेव इन दोनो भाग्यशाली कन्याओ से बिवाह करेगा तब स्तेय और बहुलिका उस पर अपना किसी प्रकार का प्रभाव नहीं दिखा सकेगी, क्योकि ऋजुता और अचौर्यता, बहुलिका और स्तेय की प्रकृति से ही विरोधिनी है। अत दोनो एक साथ नही रह सकती। [जहाँ ऋजुता होगी वहाँ

* पृष्ठ ५४३

बहुलिका को भागना ही पड़ेगा। सरलता के समक्ष माया कैसे टिकेगी ? अचौर्यता के समक्ष स्तेय / चोरी कैसे टिकेगी ?] जब ये दोनो वामदेव को मिलेगी तभी माया और स्तेय से उसकी मुक्ति होगी। इस समय वह नाममात्र भी धर्म-प्राप्ति के योग्य नही है, अतः अभी उसके प्रति उपेक्षाभाव रखना ही उचित है। [६६३–६७०]

आचार्यदेव के वचन सुनकर मेरे मित्र महात्मा विमल ने वस्तुस्थिति को समझ कर मेरे प्रति उपेक्षाभाव धारण कर लिया और फिर मेरे सम्बन्ध मे विचार करना भी छोड़ दिया। [६७१] □

२२. वामदेव का अन्त एवं भव-भ्रमण

विमल के पास से भागकर मै काचनपुर गया। वहाँ के बाजार मे एक दुकान पर सरल नामक सेठ बैठा था। मै उसकी दुकान पर गया। मेरे शरीर मे रही हुई बहुलिका ने उसी समय अपना प्रभाव दिखाया और उसके वशीभूत होकर मैं सेठ के पाँवो मे गिर गया। कृत्रिम नाटक करते हुए मेरी आँखे आनन्दाश्रुओ से भर गई। मेरे नाटक को सत्य समझकर सरल सेठ का दिल भी पिघल गया, वह बोला—भद्र ! क्या हुआ ? तू क्यो रो रहा है ?

मैं—पिताजी ! आपको देखकर मुझे अपने पिताजी की याद आ गई।

सरल सेठ— वत्स ! तू मत रो। यदि ऐसा ही है तो* आज से तू मेरा पुत्र ही है।

मैं—आज से मैं भी आपको अपना पिता मानता हूँ।

तत्पश्चात् सेठ मुझे अपने घर ले गया और अपनी स्त्री बन्धुमती को मुझे सौंप दिया। उसने मुझे स्नान, भोजन आदि करवाया और मेरा नाम तथा कुल आदि पूछा। मैने अपना नाम, कुल आदि बता दिया। सेठ को जब ज्ञात हुआ कि मैं उसका सजातीय ही हूँ, उसके कुल का ही हूँ तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपनी स्त्री से बोला—

प्रिये ! हम वृद्ध हो गये है और अभी तक हमारे पुत्र नही हुआ है, यही सोचकर भगवान ने हमे पुत्र दिया है। आज से वामदेव को अपना पुत्र समझो। [६७२]

पति के वचन सुनकर बन्धुमती भी बहुत प्रसन्न हुई। सरल सेठ ने घर का सारा भार मुझे सौप दिया, मानो मैं ही घर का स्वामी होऊ और दुकान मे गुप्त

* पृष्ठ ५४४

स्थान पर रखे हुए हीरे मोती आदि मूल्यवान रत्न भी मुझे बतला दिये। सेठ को धन पर अधिक आसक्ति थी इसलिए वह दुकान पर ही सोता था और मुझे भी अपने साथ ही सुलाता था।

एक दिन सध्या का भोजन कर हम घर मे बैठे थे कि सरल सेठ के प्रिय मित्र बन्धुल के घर से निमन्त्रण आया कि आज उसके यहाँ पुत्र-प्राप्ति की उपलब्धि मे छठी का रात्रि जागरण है और उसमे सेठजी की उपस्थिति आवश्यक है। सेठ ने मुझ से कहा—पुत्र वामदेव! आज मुझे बन्धुल के यहाँ जाना ही पडेगा, तुम दुकान जाओ और वहाँ सावधानी से सोना।

मैंने कहा–पिताजी! आपके बिना मुझे अकेले दुकान जाना अच्छा नही लगता। आज तो मैं घर पर ही माताजी के पास रहूँगा। सेठ ने सोचा कि पुत्र का माता के प्रति स्नेह अधिक है इसलिए मुझे अपनी इच्छानुसार करने को कहकर सरल सेठ बन्धुल के यहाँ चला गया।

रात्रि के समय मेरे शरीर मे स्थित स्तेय जागृत हुआ और उसके वशीभूत मेरे मन मे सेठ की दुकान मे छुपाया हुआ अमूल्य धन चुरा लेने का विचार हुआ। अर्ध रात्रि को उठकर मै दुकान पर गया। मुझे दुकान खोलते हुए चौकीदारो ने दूर से ही देखकर पहचान लिया था। मैं अभी नया ही था, इसलिये उन्हे थोड़ी शका हुई कि यह भाई मध्यरात्रि मे दुकान क्यो खोल रहा है? उन्होने मुझे कुछ नही पूछा, पर गुप्त रूप से मेरी गतिविधियो पर पैनी दृष्टि रखी। सेठ ने मूल्यवान रत्न दुकान मे जहाँ छिपा रखे थे, वहाँ से उन्हे निकाल कर दुकान के पीछे की गली मे जमीन खोदकर मैंने उन्हे छिपा दिया। इतना सब करते-करते प्रात काल हो गया, अत मैने ही हल्ला मचाया कि, अरे लोगो! दौडो, सेठ के यहाँ चोरी हो गई है।

नगर के लोग इकट्ठे हो गये, सेठजी भी आ पहुँचे। चौकीदार भी आये। बाजार मे कोलाहल मच गया। सेठ ने मुझसे पूछा—पुत्र वामदेव! क्या बात है? यह सब भीड इकट्ठी क्यो हो रही है?

मैंने कहा–पिताजी! हम मर गये। रात को दुकान मे चोरी हो गई। ऐसा कहकर मैंने सेठजी को खुली दुकान और भूमि मे रत्न रखने के गुप्त स्थान पर हुए खड्डे को दिखाया।

सेठ ने पूछा—पुत्र वामदेव! तुझे इसकी खबर कैसे और कब हुई?

मैंने कहा -पिताजी, आप तो मित्र के यहाँ चले गये, मै अकेला रह गया। आपके विरह मे मुझे नीद नही आई, सारी रात बिस्तर पर लोटता रहा। जब थोडी रात शेष रह गई तो मेरे मन मे विचार आया कि दुकान का बिस्तर पिताजी के स्पर्श से बहुत पवित्र हो चुका है, उस पर सोने से शायद मुझे नीद आ जायेगी। अन्य स्थान पर तो आयेगी नही। यही सोचकर मैं दुकान पर आया और देखा कि यहाँ चोरी हो गई है तब मैंने हल्ला मचाया।

मेरी बनावटी बात सुनकर चौकीदार लोग जो वही थे, सोचने लगे कि यह वामदेव वास्तव मे दुरात्मा है, हरामखोर है, पक्का चोर है । अहो इसका वाक्-जाल ! * वाचालता ! धूर्तता ! कृतघ्नता ! विश्वासघात ! और पापिष्ठता ! उन्होने सेठजी को आश्वासन दिया कि सेठ साहब ! आप मन मे तनिक भी चिन्ता न करे, आश्वस्त हो जावे, हमे चोर का पता लग गया है।

इस प्रकार कहकर उन्होने मेरी तरफ अर्थ-पूर्ण दृष्टि घुमाई जिससे मै भय-भीत हो गया । मैंने मन मे समझ लिया कि चौकीदारो ने मुझे पहचान लिया है । चौकीदारो ने मुझे माल सहित रगे हाथो पकडने का निश्चय किया और मेरे पीछे कुछ गुप्तचरो को लगा दिया । उस पूरे दिन मेरे मन मे सकल्प-विकल्प आते रहे । सन्ध्याकालीन अन्धेरा होते ही मैं दुकान के पीछे गया और छुपाये हुये रत्न निकाले । ज्योही मैं रत्न लेकर भागने को हुआ कि चौकीदारो ने मुझे माल सहित पकड लिया । हो-हल्ला होने से नगर के लोग पुन. वहाँ इकट्ठे हो गये । चौकीदारो ने मेरी सारी चालाकी लोगो के सामने प्रकट कर दी । लोगो को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ कि सेठ ने जिसे अपना पुत्र मान कर सारा धन उसे देने का निश्चय किया था, उसी ने विश्वासघात कर अपने ही घर मे चोरी की ।

चौकीदार मुझे नगर के राजा रिपुसूदन के पास ले गये । चोरी की सजा मृत्युदण्ड थी और मै तो माल सहित पकड़ा गया था, अत राजा ने मेरा वध करने की आज्ञा दे दी ।

जब सरल सेठ को पता लगा तो वे दौड़े हुये राजा के पास आये और राजा के पाँव पकडकर कहा—

देव ! यह वामदेव मेरा पुत्र है, उसके प्रति मेरा अत्यन्त स्नेह है, इसके विना मै जीवित नही रह सकूँगा, अत मुझ पर अनुग्रह/दया कर इस बालक को छोड़ दीजिये । आप चाहे मेरा सारा धन ले लीजिये, अन्यथा इसके अभाव मे मै मर जाऊँगा इसमे सशय नही है । [६७३-६७४]

राजा ने सोचा कि सरल सेठ वास्तव मे सरल ही है, बहुत भोला है । राजा ने दयाकर मृत्युदण्ड की आज्ञा को निरस्त कर दिया और सेठ का धन भी ग्रहण नही किया । किन्तु, उन्होने सेठ को कहा—सेठ ! इस तुम्हारे सुपुत्र को मेरे पास रखो । यह विपाकुर है, पक्का चोर है और लोगो को दु ख देने वाला है, अतः इसको अरक्षित/मुक्त छोड़ना उचित नही है । [६७५-६७७]

इधर मेरा पुण्योदय मित्र जो जन्म से ही मेरे साथ था और दिनोदिन दुर्बल हो रहा था, अब एकदम नष्टप्राय. हो गया था और मुझे छोड़कर चला गया था, क्योकि मेरा ऐसा दुश्चरित्र देखकर वह मुझसे ऊब गया था । [६७८]

---

* पृष्ठ ५४५

सरल सेठ ने राजाज्ञा को शिरोधार्य किया। मैं अन्य लोगो द्वारा तिरस्कृत होता हुआ दीन-हीन की भाँति राजमहल मे रहने लगा। मेरे अन्तरग भाई-बहिन स्तेय और बहुलिका यद्यपि मेरे शरीर मे ही निवास कर रहे थे तथापि भीषण राज्यदण्ड के भय से वे अपना प्रभाव नही दिखा रहे थे। ऐसा लगता था जैसे वे अन्दर ही अन्दर शात हो गये हो। भद्रे! फिर भी लोग तो मुझे शका की दृष्टि से ही देखते थे और अन्य किसी के चोरी करने पर भी मुझ पर सदेह करते थे। मेरे सच कहने पर भी लोग उसे नही मानते। मेरे वचन पर लोगो को विश्वास ही नही रहा। लोग मुझे धिक्कार की दृष्टि से देखते हुए कहते—बैठ जा, देख ली तेरी सत्यवादिता! जिस प्रकार काला सर्प दूसरे सभी सापो के लिये सताप का कारण होता है उसी प्रकार मै भी सबके उद्वेग का कारण हो गया था। हे अगृहीतसकेता! ऐसे सयोगो मे बहुत समय तक रहकर मै अनेक प्रकार की विडम्बनाये भोगता रहा।
[६७९–६८३]

हे भद्रे! एक बार किसी विद्यासिद्ध ने राजा के भण्डार मे चोरी की और उसमे से सभी रत्न अलकार आदि ले गया। विद्या के बल से वह अदृश्य होकर भीतर घुसा था और अदृश्य होकर ही वापस निकल गया था, इसलिये पकडा नही गया। उस चोरी का कलक मेरे सिर पर आया।* सब को याद था कि मैने पहले भी चोरी की थी और राजमहल मे मेरे सिवाय किसी का प्रवेश असभव था, अत सदेह के आधार पर मैं पकडा गया। अपराध मजूर करवाने के लिए मुझे बहुत मारा और अनेक प्रकार की यातनाये दी। राजा भी अत्यन्त क्रोधित होकर मुझे अनेक प्रकार से सताने लगा और अन्त मे मुझे मृत्युदण्ड दे दिया गया। हे विशालाक्षि! इस बार भी सरल सेठ ने आकर मुझे बचाने का बहुत प्रयत्न किया पर राजा नही माना और मुझे रोते-चिल्लाते एव विलाप करते हुए को फासी के तख्ते पर चढा दिया गया। [६८४–६८७]

संसारी जीव का पुनः भव-भ्रमण

जिस समय मुझे मृत्यु-दण्ड दिया गया उसी समय मेरी स्त्री भवितव्यता द्वारा पूर्व मे दी गई गोली जीर्ण हो गई थी, अत उसने मुझे दूसरी नवीन गुटिका दी जिसके प्रभाव से हे भद्रे! मैं पापिष्ठवास नामक नगर के अन्तिम उपनगर पाप-पिजर (सातवी नरक) मे उत्पन्न हुआ। यह स्थान अनन्त तीव्र दु.खसमूह से व्याप्त था। वहाँ मैने असख्यात काल तक अनेक प्रकार के महा दारुण दु.ख सहे। उसके बाद भवितव्यता ने मुझे पुन दूसरी गोली दी जिसके प्रभाव से मैं पचाक्षपशु सस्थान (पचेन्द्रिय तिर्यंच गति) मे आया। इस प्रकार नयी-नयी गुटिकाये देकर भवितव्यता ने मुझे अन्य अनेक स्थानो पर भटकाया। हे भद्रे! हे सुलोचने! असव्यवहार नगर के अतिरिक्त कोई स्थान नही बचा जहाँ मै कई-कई बार नही

* पृष्ठ ५४६

भटका होऊँ। बहुलिका (माया) के सम्पर्क से मैंने बहुत पाप किये थे इसलिए पंचाक्षपशुसस्थान मे भी मुझे कई बार स्त्रीयोनि मे उत्पन्न होकर विविध विडम्बनाये सहन करनी पडी। बहुलिका और स्तेय के ससर्ग से प्रेरित होकर मै निरन्तर पाप कर्म करता गया और असह्य दु.ख भोगता रहा। हे सुमुखि! जहाँ-जहाँ मैं गया, वहाँ-वहाँ वे दोनो मेरे साथ ही रहे। [६८८–६९४]

प्रज्ञाविशाला की रहस्य-विचारणा

संसारी जीव की आत्मकथा सुनकर प्रज्ञाविशाला के मन मे प्रबल सवेग उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगी कि, अहो! स्तेय मित्र तो अकल्पनीय दु.खदायक है। माया भी असीम भयकर है। यह बेचारा इन दोनो मे आसक्त रहा जिससे इसे इतना भटकना पडा और भयकर दु ख उठाने पडे। अहो! पहले तो इसने माया के वशीभूत होकर विमलकुमार जैसे महात्मा पुरुष को ठगा, फलस्वरूप वर्धमान नगर मे तृण जैसा तुच्छ बना। फिर कञ्चनपुर मे स्तेय के वश होकर वात्सल्यभाव धारक सरल सेठ के यहाँ चोरी कर उन्हे धोखा दिया, जिससे इसने घोर विडम्बनाये प्राप्त की। वामदेव के भव मे इसका सम्पूर्ण जीवन ही माया और स्तेय से घिरा हुआ दिखाई देता है। महाभाग्यशाली बुधसूरि का सम्पर्क और उनके उपदेशो का भी इस पर कोई प्रभाव नही हुआ, इसका कारण भी माया ही है। किसी व्यक्ति के पूर्ण सत्य बोलने पर भी उसकी बात पर विश्वास न हो और उल्टा सत्य बोलने वाले के प्रति तिरस्कार की भावना ही जागृत हो तो समझना चाहिये कि ऐसी विपरीत मति वाला व्यक्ति अवश्य ही माया के वश मे है। दूसरे व्यक्ति द्वारा किये गये अपराध का कलक भी ससारी जीव पर आया, इसका कारण भी माया और स्तेय ही है। वस्तुत माया और स्तेय अनन्त दोषो के भण्डार है, फिर भी दुरात्मा पापी लोग इन दोनो का सम्पर्क नही छोड़ते। [६९५–७०२]

भव्यपुरुष की दृष्टि में कल्पित वार्ता

ससारी जीव की आत्मकथा सुनकर भव्यपुरुष मन मे अति विस्मित हुआ।* वह सोचने लगा कि इस तस्कर ससारी जीव की कथा तो बडी विचित्र, अतिरजित, असभव जैसी और पूर्णरूप से अपूर्ण-सी लगती है। लोगो के प्रतिदिन के व्यवहार से यह असगत-सी लगती है। यद्यपि इसकी कथा हृदय को आकर्षित करती है तथापि मुझे तो बिलकुल अपरिचित जैसी, गहन भावार्थ वाली और तुरन्त न समझ में आने वाली लगती है। इसके द्वारा वर्णित कथा को सुनकर मन मे कई प्रश्न उठते है। जैसे—उसका असव्यवहार नगर मे एक कुटुम्बी के रूप मे रहना, वहाँ अपनी स्त्री भवितव्यता के साथ अनन्त काल तक रहना, फिर कर्मपरिणाम महाराजा की आज्ञा से वहाँ से बाहर निकलना। फिर एकाक्षपशुसस्थान और अन्य

---

* पृष्ठ ५४७

अनेको तथा भिन्न-भिन्न स्थानो मे अनन्त दु ख भोगते हुए भटकना। इसने यह भी बतलाया कि उसी की स्त्री भवितव्यता उसे अनन्त काल तक अनेक स्थानो मे भटकाती रही। उसी ने लीला से उससे नन्दीवर्धन मे रिपुदारण और वामदेव के नाम से रूप धारण करवाये। प्रत्येक भव के मध्य मे अनन्त काल व्यतीत हुआ, जिसके अन्तराल मे उसकी भार्या ने उससे अनेक नाटक करवाये, नये-नये रूप धारण करवाये, नाच नचवाये और असहनीय दु ख सहन करवाये। अधिक आश्चर्यजनक और विचित्र बात तो यह है कि ये सारे प्रयोग उसको गोलियाँ खिलाकर किये गये। इन गोलियो की इतनी अधिक शक्ति कैसे रही होगी ? फिर उसकी पत्नी ने ही उसे ये गोलिया खिलाई और इतने नाच नचवाये, यह बात तो लोक-विरुद्ध एव कल्पित-सी लगती है और मुझे तो कुछ समझ मे नही आती। [७०३-७१२]

क्या यह तस्कर पुरुष अनन्तकाल तक इसी स्थिति मे रहेगा ? या आगे जाकर यह भविष्य मे कभी अजर-अमर भी बन सकेगा ? हन्त ! यह कालस्थिति कौन है ? यह भवितव्यता नामक स्त्री कौन है ? यह अपने पति को ही इस प्रकार भटकाती है, यह तो पूर्णतया प्रतिकूल और नयी बात ही है। यह स्त्री अपने पति को बार-बार महा शक्तिशाली गोलिया तैयार करके देती है। इन गोलियो के प्रभाव से यह प्राणी वही होने पर भी अनन्त प्रकार के रूप धारण करता है। ये गोलियाँ कैसी है ? और भवितव्यता कैसे उन्हे अपने पति को देती है ? [७१३-७१५]

इस कथा मे अनेक नगर, अन्तरग मित्र, स्वजन-सम्बन्धी आदि के नाम आये है, वे कौन थे ? इसका मै निश्चय नही कर पा रहा हूँ। मुझे तो लगता है, यह ससारी जीव निद्रा मे अनुभूत स्वप्न की कोई कथा सुना रहा है। अथवा किसी सिद्ध पुरुष द्वारा फैलाये हुए इन्द्रजाल जैसी यह कपोल-कल्पित कथा है। मानो किसी प्रतिभाशाली पुरुष ने अपनी कल्पना से लोकरजन के लिए इस अद्भुत चरित्र की रचना की हो। यह जो प्रज्ञाविशाला सन्मुख बैठी हुई है इसकी मुखाकृति से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह समस्त वार्ता को हृदयगम कर चुकी है। इस प्रज्ञाविशाला ने पहले भी मुझे ससारी जीव का चरित्र बतलाया था, किन्तु अभी मै उसे भूल चुका हूँ। यदि अभी बीच मे ही मै कुछ पूछूगा तो मेरा पूछना अप्रासगिक होगा और अगृहीतसकेता आदि अन्य लोग जो यहाँ बैठे है, मुझे मूर्ख समझेगे।* अत अभी तो मै चुप बैठकर इस तस्कर ससारी जीव की बात सुनता रहूँ, बाद मे जब प्रज्ञाविशाला मुझे एकान्त मे मिलेगी तब उससे इसका रहस्य पूछ लूगा। यह सोचकर भव्यपुरुष ससारी जीव की कथा सुनता हुआ चुपचाप बैठा रहा। [७१६-७२२]

अगृहीतसकेता इस कथा को सुनकर विस्मित हो रही थी और बार-बार ससारी जीव के मुख की ओर देख रही थी, जिससे प्रतीत हो रहा था कि वह इस कथा के रहस्य को नही समझ पा रही है। [वह इस वास्तविकता को मात्र कथा

* पृष्ठ ५४८

ही समझ रही थी और अन्य कथाओं के समान ही उसका मूल्य आँक रही थी। श्रोता को वक्ता की बात समझ मे आ रही है या नही ? यह श्रोता के मुख के भावो से मालूम पड़ जाता है। तदनुसार अगृहीतसकेता का मुख भी यह बता रहा था कि वह कथा के गूढ रहस्य को नही समझ रही है।] [७२३]

सदागम का गाम्भीर्य

भगवान् सदागम तो ससारी जीव के समस्त वृत्तान्त को पहले से ही जानते थे, अत वे उसके आत्मवृत्त को सुनते हुए मौन ही रहे। [सदागम अर्थात् शुद्धज्ञान, उसका विषय तो जानना ही होता है, उससे कोई बात कैसे छिपी रह सकती है ? मात्र उपयोग लगाते ही उसे सब ज्ञात हो जाता है। सदागम का मौन अर्थसूचक था और उनके मुख की गम्भीरता उनके हृदय की गहनता को प्रकट करती थी।] [७२४]

ससारी जीव ने अपनी आत्मकथा को आगे बढाते हुए कहा—हे अगृहीत-सकेता! एक समय मेरी पत्नी भवितव्यता मुझ पर प्रसन्न हुई और मेरे किसी शुभ कर्म के कारण मुझ पर कृपालु होकर कहने लगी—

आर्यपुत्र! अब तुम्हे लोकविश्रुत आनन्द नगर जाना है और वहाँ आनन्द-पूर्वक रहना है।

मैंने कहा—देवि! आपकी इच्छानुसार करना मै अपना निश्चित कर्त्तव्य मानता हूँ, जैसी आपकी आज्ञा।

भवितव्यता ने उस समय मुझे अपना वास्तविक सच्चा पुण्योदय मित्र वापस सौपा और एक अन्य सागर नामक मित्र भी मेरी सहायता के लिये मुझे दिया। मेरी बुद्धिमती पत्नी समझ गई होगी कि अब मझे सागर मित्र की अवश्य ही आवश्यकता पडेगी। सागर को मुझे सौपते हुए उसने कहा—आर्यपुत्र ! यह तेरा मित्र सागर रागकेसरी राजा और मूढता रानी का प्रिय पुत्र है। मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि अब यह तुम्हारी सम्यक् प्रकार से सहायता करेगा। [७२५-७२६]

भवितव्यता ने मुझे नयी गुटिका प्रदान की जिसके प्रभाव से मै अपने अत-रग मित्र पुण्योदय और सागर के साथ आनन्दनगर के लिये प्रस्थान करने की तैयारी करने लगा। [७३०]
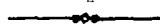
उपसंहार

ये घ्राणमायानृतचौर्यरक्ता, भवन्ति पापिष्ठतया मनुष्या. ।
इहैव जन्मन्यतुलानि तेषा, भवन्ति दु खानि विडम्बनाश्च ।। [७३१]

तथा परत्रापि च तेपु रक्ता:, पतन्ति ससारमहासमुद्रे ।
अनन्तदु खौघचितेऽतिरौद्रे, तेषा ततश्चोत्तरणं कुतस्त्यम् ? ।। [७३२]

जो प्राणी पापप्रिय होते है, वे घ्राणेन्द्रिय, माया/कपट और चोरी मे आसक्त होकर इस भव मे भी अनेक अतुलनीय दु.ख और विडम्बनाए प्राप्त करते है और परभव मे भी पापो से परिवेष्टित होने से अनन्त दु.खसमूह से परिपूर्ण महाभयकर ससार-समुद्र मे गहरे डूब जाते है। ऐसी अवस्था मे वे इस महाभयकर समुद्र को तैर कर कैसे पार उतर सकते है ?

जैनेन्द्रादेशतो व कथितमिदमहो लेशत: किञ्चिदत्र,
प्रस्तावे भावसार कृतविमलधियो गाढमध्यस्थचित्ता. ।
एतद्विज्ञाय भो ! भो ! मनुजगतिगता ज्ञाततत्त्वा मनुष्या:,
स्तेय मायां च हित्वा विरहयत यतो घ्राणलाम्पट्यमुच्चै. । [७३३]

इस प्रस्ताव मे जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित उपदेश को जो कुछ थोड़ा वहुत कथारूप मे गू था है, उसके आन्तरिक भाव को/गूढ रहस्य को समझने के लिये अपनी बुद्धि को निर्मल कर, अपने चित्त को पूर्णरूपेण मध्यस्थ कर कथा के आशय को समझने का प्रयत्न करे। हे मनुष्य गति मे विद्यमान मनुष्यो ! यदि आप तत्त्वज्ञ हैं, अर्थात् आपने इस कथा के रहस्य को सम्यक् प्रकार से समझा है तो आप स्तेय/चोरी, माया और घ्राणेन्द्रिय लम्पटता का सर्वथा त्याग करदे। [७३३]

इति उपमिति-भव-प्रपच कथा मे माया,
चोरी और घ्राणेन्द्रिय आसक्ति के
फल को प्रकट करने वाला
पाँचवा प्रस्ताव
समाप्त हुआ।
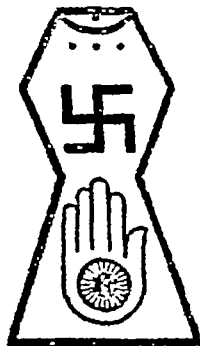
उपमिति-भव-प्रपंच कथा

६. षष्ठ प्रस्ताव

पात्र-परिचय

स्थल	मुख्य पात्र	परिचय	सामान्य पात्र	परिचय
आनन्दपुर (वहिरङ्ग)	केसरी	आनदपुर का राजा	कमल सुन्दरी	हरिकुमार की माता, राजा केसरी की मृतरानी
	जयसुन्दरी	राजा केसरी की रानी		
	हरिशेखर	आनदपुर का वणिक		
	वंधुमती	हरिशेखर की पत्नी		
	धनशेखर	कथानायक ससारी जीव, हरिशेखर-वंधुमती का पुत्र		
	पुण्योदय सागर (लोभ)	धनशेखर के अतरग मित्र		

स्थल	मुख्य पात्र	परिचय	सामान्य पात्र	परिचय
जयपुर नगर (वहिरङ्ग)	वकुल	जयपुर नगर का सेठ		
	भोगिनी	वकुल सेठ की पत्नी		
	कमलिनी	धनशेखर की पत्नी, वकुल सेठ की पुत्री		

स्थल	मुख्य पात्र	परिचय	सामान्य पात्र	परिचय
रत्नद्वीप (वहिरङ्ग)	हरिकुमार	आनदपुर के राजा केसरी की रानी कमल-सुन्दरी का पुत्र	धरण	सार्थवाह
	नीलकंठ	रत्नद्वीप का राजा, हरिकुमार का मामा	वसुमति	रानी कमल सुन्दरी की विश्वस्त सेविका
			वंधुला	तापसी

शिखरिणी	राजा नीलकंठ की रानी	**मन्मथ**	
मयूरमंजरी	हरिकुमार की पत्नी, राजा नीलकंठ की पुत्री	**ललित**	
		पद्मशेखर	हरिकुमार के अतरग मित्र
यौवन / **मैथुन**	कालपरिणति (अतरग) के अनुचर, धनशेखर के मित्र	**विलास**	
		विभ्रम	
		कपोल	
		सुबुद्धि	नीलकठ राजा का मन्त्री
		दमनक	मन्त्री सुबुद्धि का सेवक

शुभ्रचित्त नगर (अन्तरङ्ग)	**सदाशय**	शुभ्रचित्त नगर का राजा
	वरेण्यता	राजा सदाशय की रानी
	ब्रह्मरति	सदाशय–वरेण्यता की पुत्री, मैथुन की शत्रु
	मुक्तता	सदाशय–वरेण्यता की पुत्री, सागर की वैरिणी

मनुजगति (अन्तरङ्ग)	**कर्मपरिणाम**	मनुजगति का राजा, जगत्पिता		
	कालपरिणति	कर्मपरिणाम की रानी, जगन्माता		
	सिद्धान्त	परमपुरुष		
	अप्रबुद्ध	सिद्धान्त का शिष्य	**वितर्क**	अप्रबुद्ध का शिष्य

निकृष्ट अधम विमध्यम मध्यम उत्तम वरिष्ठ	कर्मपरिणाम के छह पुत्र	**महामोह, विषयाभिलाष, चारित्रधर्मराज, सद्बोध, मंत्री आदि**

(अन्तरङ्ग) औदासीन्य (राजमार्ग)	दृष्टि	विषयाभिलाष मत्री की पुत्री		
अध्यवसाय (महाह्रद)	अभ्यास	उत्तमकुमार का अनुचर	मैत्री	योगिनी देवियाँ
धारणा (महानदी)	वैराग्य	चारित्रधर्मराज प्रेषित अनुचर	मुदिता	योगिनी देवियाँ
धर्मध्यान (दण्डोलक, केडी)			करुणा	योगिनी देवियाँ
सबीजयोग (दंडोलक से विशालमार्ग)			उपेक्षा	योगिनी देवियाँ
शुक्लध्यान (दंडोलक, केडी)				
शैलेशी (अंतिम, महामार्ग)			शार्दूल	हरिकुमार का मित्र
निर्वृत्ति (महानगरी)				
समता (योगनलिका)				

१. धनशेखर और सागर की मैत्री

आनन्दनगर राजा-रानी

*इस मनुष्य लोक के बहिरग प्रदेश मे एक आनन्द नामक विशाल नगर था। इस नगर मे सतत आनन्द ही आनन्द रहता, दोष तो इससे कोसो दूर रहते। इस आनन्द नगर मे निवास करने वाले मनुष्य अनेक प्रकार के विलास, उल्लास, रूप-लावण्य और लीलाओ से देवताओ के साथ स्पर्धा करते थे, अर्थात् देवसुखो के भोक्ता थे। मात्र उनके पलक झपकते थे, जिससे प्रतीत होता था कि वे मनुष्य है देव नही, क्योकि देवताओ के पलक नही झपकते। इस नगर की स्त्रियाँ अपलक दृष्टि से पुरुषो को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी, पर वे आँख से कोई सकेत नही करती थी, अत ऐसा ज्ञात हो रहा था मानो इन्होने देवागनाओं का आकार धारण कर रखा हो। यहाँ के निवासी चित्र-विचित्र वस्त्र एव रत्नाभूषणो की किरणो से दैदीप्यमान होकर ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो इन्द्रधनुष की प्रत्यचा पर आकाश का एक भाग ही सुशोभित हो रहा हो। साराश यह है कि नगर-निवासी सुखी थे, नारियाँ सर्वांगसुन्दरियाँ थी और उनके रत्नाभूषण यह बता रहे थे कि वे सुखी और समृद्ध है। [१-४]

इस आनन्द नगर मे लोकविश्रुत केसरी नामक महाराजा राज्य करते थे। शत्रुओ के विशाल हाथियो के कुभ को विदीर्ण कर, ससार के बडे भाग को उत्साह एव उल्लास पूर्वक जीतकर अपने अधीन रखने मे वे चतुर थे। इस राजा के अनेक सुन्दरी-वृन्दो के मध्य मे अपने गुणो से जयपताका प्राप्त करने वाली अर्थात् सुन्दर नारियो मे सर्वश्रेष्ठ, कमल-पत्र जैसे नयन वाली, पतिपरायणा जय-सुन्दरी नामक महारानी थी। [५-६]

धनशेखर का जन्म

इस नगर मे एक हरिशेखर नामक व्यापारी रहता था। वह धनवान, नगर का आधारस्तम्भ और राजा केशरी का प्रिय पात्र था। यह हरिशेखर अपने दान-गुण से जनसमूह मे याचक-वृन्द रूपी धान्य मे श्रावण के बादल जैसा प्रसिद्ध हो रहा था, अर्थात् जैसे बादल वर्षा कर धरती मे बोये अनाज को कई गुणा बढा देता है वैसे ही वह अर्थिजनो को दान देकर उन्हे अपना बना लेता था। वह अपने उत्तम गुणो से अपने मित्रो को प्रफुल्लित करता था जैसे सूर्य कमल-वन को विकसित करता है। अर्थात् सेठ जैसा धनवान था वैसा ही उत्तम गुणवान भी था। [७-८]

---

* पृष्ठ ५४६

हरिशेखर सेठ की बन्धुमती नामक एक अत्यन्त प्रिय पत्नी थी। वह आर्य कुल मे उत्पन्न, लावण्य और अमृत के कुण्ड के समान परम पवित्र और हरिशेखर के हृदय मे बसी हुई प्रेममूर्ति जैसी ही थी। बन्धुमती ऐसी लगती थी मानो सौन्दर्य का भी सौन्दर्य हो, लक्ष्मी की साक्षात् मूर्ति हो और उत्तम शीलव्रत एव सदाचार का तो मानो आवास-स्थान ही हो, ऐसी पवित्र थी। वह पतिभक्ति मे तो साक्षात् मन्दिर जैसी लगती थी। [६-१०]

हे अगृहीतसकेता! मेरी आन्तरिक पत्नी भवितव्यता ने अब मुझे एक नयी गुटिका दी जिससे मैंने बन्धुमती की कुक्षि मे प्रवेश किया। माता की कुक्षि रूप यन्त्र मे अनेक प्रकार के कष्ट भोगने के बाद जब मेरा समय परिपूर्ण हुआ तो मैं बाहर आया और मुझे ऐसा लगा मानो मैं कोई नरक का जीव था और अब उस नरक से बाहर आ गया हूँ। मेरे आन्तरिक मित्र पुण्योदय और सागर (लोभ) भी मेरे साथ ही इस ससार मे आये। [११-१२]

बन्धुमती पुत्र-जन्म से अत्यन्त प्रसन्न हुई। हरिशेखर भी अति प्रमुदित हुआ और उन्होने धूमधाम से हर्षोल्लास पूर्वक पुत्र-जन्म महोत्सव मनाया। मेरे जन्म को १२ दिन होने पर मेरे माता-पिता ने विशाल महोत्सव पूर्वक मेरा नामकरण किया और मेरा नाम धनशेखर रखा। मेरे अन्तरग मित्र पुण्योदय और सागर भी मेरे शरीर मे समाये हुए मेरे साथ ही उत्पन्न हुए, किन्तु मेरे माता-पिता को उनके सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही थी, क्योकि वे मेरे आन्तरिक मित्र थे और मेरे शरीर मे ही समाये हुए रहते थे। हे भद्रे! इस प्रकार पुण्योदय और सागर के साथ सुखपूर्वक वर्धित होता हुआ * मैं क्रमश कामदेव के मन्दिर के समान युवावस्था को प्राप्त हुआ। तदनन्तर मुझे किसी कलाचार्य के पास भेजा गया, जिनके पास रहकर मैंने धर्मकला के अतिरिक्त सभी कलाओ का अध्ययन किया। [१३-१७]

सागर (लोभ) की महिमा

जैसे-जैसे मैं बड़ा हो रहा था वैसे-वैसे ही मेरे मित्र सागर (लोभ) के भी हौसले वढ रहे थे। अब सागर मेरे मन मे अपने शक्ति-पराक्रम से प्रतिक्षण अनेक प्रकार की विचार-तरगे उत्पन्न कर रहा था। जैसे समुद्र मे पवन-प्रेरित प्रतिक्षण लहरे उठती है वैसे ही मेरे मन मे मेरे मित्र सागर की प्रेरणा से अनेक विचार-तरंगे उठ रही थी। कैसी-कैसी तरगे उठ रही थी? इसका किञ्चित् दिग्दर्शन प्रस्तुत है। [१८]

इस जगत् मे धन ही वास्तविक सार है, धन ही वास्तविक सुख का स्थान है, लोग धन की ही प्रशसा करते हैं, धन के ही अधिकाधिक गुण गाये जाते है, धन ही विश्ववन्द्य है, धन ही सर्वोत्तम तत्त्व है, धन ही परमात्मा है और धन मे ही

---

* पृष्ठ ५५०

समस्त विश्व प्रतिष्ठित/समाहित है। यदि आप गहराई से परीक्षण करके देखेंगे तो मालूम होगा कि वस्तुत. विश्व मे धनहीन व्यक्ति तृण के समान, राख के ढेर के समान, शरीर के मैल के समान या धूल के समान है। अथवा यह कह सकते है कि धन के बिना वह कुछ भी नही है, अकिंचत्कर है। इस ससार मे राजा, देव या इन्द्र भी धन के चमत्कार से ही बनते है। पुरुषत्व एक समान होने पर भी एक दाता और एक याचक, एक स्वामी और एक सेवक आदि जो अन्तर दिखाई देते है वे सब धन के ही चमत्कार है, माया के ही नाटक है। इस सब का रहस्य यही है कि मनुष्य को कैसे भी प्रयत्नो द्वारा इस भव मे धन एकत्रित करना चाहिये, अन्यथा उसका मनुष्य जन्म ही निरर्थक है, ऐसा समझना चाहिये। [१६–२४]

इस बात को ध्यान मे रखकर चाहे अपने घर मे अपने पूर्वजो द्वारा कितना ही धन अर्जित किया हुआ क्यो न हो, फिर भी मुझे स्वयं अधिक धनार्जन करना ही चाहिये। जब तक मैं अपने स्वय के हाथो से जगमगाते रत्न और हीरे-माणक के ढेर पैदा कर अपने घर मे सग्रह नही करू तब तक मैं सुख से कैसे बैठ सकता हूँ? मेरे मन को शान्ति कैसे हो सकती है? अत अब मुझे किसी दूर-देशान्तरो मे जाकर सब प्रकार का प्रयत्न करना चाहिये। चाहे वह प्रयत्न/कर्म प्रशसनीय हो या निन्दनीय, किन्तु किसी भी प्रकार स्वय अपने हाथो से धन पैदा कर मुझे अपना घर रत्नो के ढेर से भरना ही चाहिये। [२५–२७]

हे अगृहीतसकेता! इस प्रकार मित्र सागर (लोभ) की तरगो से तरगित होते हुए व्याकुल होकर एक दिन मै अपने पिताजी के पास गया [२८] और उनसे निवेदन किया—

धनशेखर का विदेश-गमन

मै (धनशेखर)—पिताजी! मुझे धनोपार्जन हेतु परदेश जाने की प्रबल इच्छा हो रही है। मेरा विचार है कि मैं परदेश जाकर अपनी शक्ति का स्फुरण करूँ, मेरे पुरुषार्थ को बतलाऊँ। अत. आप मुझे विदेश-गमन की आज्ञा दीजिये। [२९]

हरिशेखर—पुत्र! अपने पास अपने पूर्वजो द्वारा एकत्रित इतना प्रभूत धन है कि तू कितना भी विलास कर, उपभोग कर, दान दे, खर्च कर, फिर भी अपनी कुल-परम्परागत पूजी कम नही होगी। हे वत्स! उसमे से तू अपनी इच्छानुसार खर्च कर या उसकी व्यवस्था कर, पर परदेश जाने की बात मत कर। तेरे विना मैं एक क्षण भी नही रह सकता। [३०–३१]

मैं (धनशेखर)– पिताजी! पूर्व-पुरुषो द्वारा अर्जित लक्ष्मी का उपभोग करने मे तो मनुष्य को लज्जा आनी चाहिये। मुझे तो इसमे नवीनता लगती है कि ऐसा करते हुए लोगो को शर्म क्यो नही आती? जैसे बच्चे बचपन मे माता का स्तन-पान करते हैं वैसे ही मूर्ख लोग पूर्वजो द्वारा अर्जित धन का उपभोग करते हैं।

बालिग होने के पश्चात् पूर्वजो द्वारा अर्जित धन का उपभोग तो बहुत ही शर्मनाक और तिरस्कार योग्य है। पिताजी! यदि इस कुल-परम्परागत धन का ही उपभोग किया जाता रहे तो* वह कितने दिन चलेगा? समुद्र मे से एक-एक बूंद पानी निकालने पर भी यदि उसमे नया पानी नही डाला जाय तो एक न एक दिन वह भी खाली हो जाता है। अर्थात् उपार्जन के विना तो कुबेर का भण्डार भी खाली हो सकता है, तब फिर अपनी पूंजी की तो गिनती ही क्या है? अत: हे पिताजी! मुझे धनोपार्जन करने की जो प्रवल इच्छा उत्पन्न हुई है, उत्साह जागृत हुआ है उसे आप भग कर मुझे निरुत्साहित न करें और मेरे वियोग को सहन करने की शक्ति स्वय मे जागृत करे। पिताजी! मेरे मन मे जो बात है, वह मैं आपको स्पष्टत. बता देना चाहता हूँ। बात यह है कि परदेश जाकर अपने भुजवल से जव तक लक्ष्मी पैदा न करूँ तब तक मेरे मन को शान्ति नही मिल सकती, मैं सुख की साँस नही ले सकता। अत मुझे तो किसी भी प्रकार से परदेश जाना ही है, मै यह वात अपने मन मे निश्चित कर चुका हूँ। फिर आप मेरे जाने मे अडचन क्यो पैदा कर रहे है? मुझे तो किसी भी प्रकार जाना ही है। [३२–३७]

मेरे पिताजी ने देखा कि पुत्र ने परदेश जाने का दृढ निश्चय कर लिया है और वह किसी भी प्रकार रुकेगा नही। अधिक खीचने से बात टूट जायेगी, अत उन्होने विचार कर कहा; किन्तु कहते हुए स्नेह से उनका हृदय गद्‌गद हो गया और आँखो मे आँसू झलक आये। [३८]

हरिशेखर—पुत्र! यदि तूने मन मे ऐसा ही दृढ निश्चय कर लिया है और तू रुक नही सकता तो स्वकीय विचारानुसार अपने मनोरथ (अभिलाषा) को पूर्ण कर। [३९] किन्तु, मेरी इतनी सी बात ध्यान मे रखना कि तेरा लालन-पालन सुखावस्था मे हुआ है, तू प्रकृति मे वहुत ही सीधा है। परदेश दूर है और मार्ग वहुत खतरनाक है। लोग कुटिल हृदय एव वक्र-प्रकृति के होते है, स्त्रियाँ पुरुषो को ठगने और रिझाने की कला मे कुशल होती है, नीच और दुर्जन पुरुष अधिक होते हैं और सज्जन पुरुष तो भाग्य से ही कही मिलते हैं। धूर्त लोग अनेक प्रकार के प्रयोग करने मे चतुर होते है, व्यापारी कपटी होते हैं, क्रयाणक आदि पदार्थों की रक्षा करने मे वहुत कठिनाइयाँ आती है, नवयौवन अनेक प्रकार के विकारो का घर होता है, स्वीकृत कार्य-पद्धति का प्रतिफल जानना दु शक्य होता है, पाप अथवा यम अनर्थ करवाने के लिये सर्वदा उद्यत रहता है और विना अपराध ही क्रोधित होने वाले चोर एव लुच्चे-लफगे निष्कारण ही उत्पीडित करने वाले होते है। अतएव जव जैसा प्रसग आये वैसा ही कभी पण्डित और कभी मूर्ख बन जाना। कभी उदार और कभी कठोर, कभी दयालु और कभी निर्दय, कभी वीर तो कभी डरपोक, कभी दानवीर तो कभी कजूस, कभी वकवृत्ति के समान मौन तो कभी चतुर वक्ता बन

* पृष्ठ ५५१

जाना और सर्वदा क्षीरसमुद्र के समान अगाध गाम्भीर्य और शान्त बुद्धि वाला बनकर रहना, ताकि कोई भी मनुष्य तेरा रहस्य न जान सके। परदेश मे तू ऐसा ही व्यवहार करना, यही तुझे मेरी शिक्षा है।

मैं (धनशेखर)—पिताजी! आपकी बडी कृपा है जो आपने मुझे इतनी सुन्दर व्यावहारिक शिक्षा दी है। अब आप मेरी बुद्धि और पुरुपार्थ की महत्ता देखियेगा। पिताजी! मै यहाँ से एक रुपया भी लेकर नही जाऊगा। आपकी पूजी मे से मैं एक फूटी कौडी भी साथ नही ले जाऊगा। मैं केवल मेरा पुरुषार्थ ही अपने साथ लेकर जाऊगा। यदि मैं इस पुरुषार्थ के बल पर ही धन एकत्रित कर, वापस घर लौटकर आऊ तब ही आप नि.सशय समझे कि मै आपका असली पुत्र हूँ और आपने जो मेरा नाम धनशेखर रखा है वह उचित एव सार्थक है। यदि मै धनोपार्जन न कर वापस न लौट सका तो आप समझ लेवे कि आपका पुत्र परदेश मे मर गया है, अत आप जलाजलि प्रदान करदे। कहा भी है: साथियो, धन, व्यापार की वस्तुए, सहयोगियो आदि के बल पर तो स्त्री भी पैसा पैदा कर सकती है। धन के साधनो से धन प्राप्त करने मे क्या विशेषता है? अच्छे संयोगो मे तरुण व्यक्ति अर्थ-सचय कर सके इसमे क्या नवीनता है? पिताजी? मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि पूर्वोक्त किसी भी प्रकार की विशेष सामग्री से रहित होकर भी मैं अपने पुरुषार्थ के बल पर आपका घर रत्नो के भण्डार से भर दूगा। [४०-४३]

इस प्रकार कह कर मैंने अपने पिताजी के चरण छुए। उस समय निकट मे खड़ी हुई मेरी माता बन्धुमती पुत्र-स्नेह से आँखो से आँसू टपकाती हुई यह सब बाते सुन रही थी, मैंने उनके भी चरण छुए। मा-बाप रोते रहे और मैं दृढ निश्चयी होकर एकदम पहने हुए कपडो से ही घर से बाहर निकल गया। मेरे शरीर मे अन्तर्हित* मेरे मित्र सागर और पुण्योदय मेरे साथ ही थे। [४४-४५]

जब मैं बाहर निकला तब कुछ धैर्य धारण कर मेरे पिता ने रोती हुई मेरी माता बन्धुमती से कहा—प्रिये! रुदन मत कर। यह तो हर्ष का प्रसग है, क्योकि जो स्त्री, प्रमादी, भाग्य को मानने वाला, साहस-शक्तिरहित, उत्साहरहित, निर्वीर्य पुरुषार्थहीन जैसे पुत्र को जन्म दे वह रोये तब तो बात अलग है, पर तूने तो ऐसे पुत्र को जन्म दिया है जो धीर, साहसी, कुलभूषण और पूर्ण उत्साही है, अत तेरे रुदन करने या दुःखी होने का तो कोई कारण ही नही है। अपना लडका व्यापार-धन्धे मे लग जाय, यह तो बहुत अच्छी बात है। यह तो अपना गुण ही है कि अपना प्रियपुत्र व्यवसाय-परायण हुआ है और व्यापार हेतु ही परदेश जा रहा है, अतः अब तू विषाद का त्याग कर। [४६-४८]

* पृष्ठ ५५२

२. धन की खोज में

[हे अगृहीतसकेता ! इस प्रकार मै अपने माता-पिता के साथ उपरोक्त वातचीत कर, पहने हुए कपडो से ही, बिना एक पाई भी साथ मे लिए, आनन्द नगर से निकल पडा। मेरे मन मे स्व-पराक्रम से पूर्वजो के धन की सहायता के बिना ही धनार्जन करने की इच्छा थी। इसी विचार से मैं आगे चल पडा।]

वहाँ से धन की खोज मे मैं दक्षिण दिशा की ओर समुद्र के किनारे-किनारे बढा। आगे जाकर समुद्र के तट पर एक जयपुर नामक सुन्दर नगर मे मै पहुँच गया। उस नगर के वाहर एक विशाल उद्यान था, जिसमे जाकर मैं विश्राम करने लगा और सोचने लगा :—

अब मुझे किसी भी प्रकार अगणित धन एकत्रित करना ही चाहिये, तो क्या मैं अति चपल लहरो से तरगित एव क्षुभित समुद्र को लाघ कर धन की खान रत्न-द्वीप जाऊ ? अथवा रणक्षेत्र मे प्रबल पराक्रमी वैभवसम्पन्न राजाओ को पराजित कर, मार कर उनकी लक्ष्मी छीन लू ? उनसे धन छीनना कोई बुरी बात तो नही है, उस धन पर उनका अधिकार ही क्या है ? अथवा धन प्राप्त करने का एक अन्य उपाय भी है, क्या मैं चण्डिका देवी की आराधना कर, उसे अपनी प्रचण्ड भुजाओ के मास और रुधिर से तृप्त कर, उसके प्रसन्न होने पर उससे धन की याचना करू ? अथवा अन्य सब काम छोड, रात-दिन एक कर रोहणाचल पर्वत को ही पाताल तक खोद दू, ताकि उसकी जड मे से मुझे विपुल धन प्राप्त हो जाय। या पर्वत की गुफा मे जाकर रसकूपिका मे से रस भर लाऊँ, जिससे उस रस के सयोग से धातुवाद के वल पर यथेच्छ स्वर्ण का निर्माण कर सकू । [४९–५३]

मेरे मित्र सागर (लोभ) के प्रभाव से मैं वहाँ बैठा-बैठा सकल्प-विकल्प मे डूबा हुआ धन प्राप्ति के अनेक मनोरथ बाधने लगा। मैं इस प्रकार के अस्त-व्यस्त विचारो मे गोते लगा रहा था कि, हे भद्रे ! एकाएक मेरी दृष्टि मेरे सन्मुख स्थित केसू के वृक्ष पर पडी। एक अन्य आश्चर्य यह था कि उस वृक्ष का एक पतला अकुर वृक्ष की शाखा से निकल कर नीचे भूमि की गहराई तक चला गया था। [५४–५५] किशुक वृक्ष और उसकी शाखा को देखते ही कुछ समय पूर्व ही सीखा हुआ धातुवाद (भूस्तर विद्या) याद आ गया। मैंने मन मे विचार किया कि इस वृक्ष के नीचे अवश्य ही धन होना चाहिये, क्योकि भूस्तर विद्या (मेटालर्जी एव मिनरेलोजी) मे वताया गया है कि :—

खन्यवाद (धातुवाद)

जिस स्थल पर क्षीरवृक्ष (जिसके तने मे छेद करने पर दूध जैसा सफेद पदार्थ निकले) उगा हो, उस स्थान पर थोडा या अधिक धन अवश्य ही मिलता है। जहाँ बेलपत्र या पलाश का वृक्ष हो वहाँ भी थोड़ा बहुत धन अवश्य होता है। यदि वृक्ष का तना मोटा हो तो धन अधिक होता है और पतला हो तो धन कम होता है। यदि ये वृक्ष रात मे चमकते हो तो धन अधिक होगा और यदि रात्रि मे सिर्फ गर्म ही होते हो तो धन कम होगा। केसू या वेल के वृक्ष के तने मे छेद करने पर यदि लाल रग का रस निकले तो उस स्थान पर रत्न है, यदि पीले रग का रस निकले तो सोना और सफेद रग का रस निकले तो चादी है, ऐसा समझना चाहिये। केसू के वृक्ष का तना ऊपर से जितना मोटा हो और यदि नीचे से भी* उतना ही मोटा हो तो उस स्थान पर प्रचुर निधान सुरक्षित है, ऐसा समझे। यदि उस वृक्ष का तना ऊपर से पतला, पर नीचे से मोटा हो तो उस स्थान पर भण्डार छुपा हुआ होना चाहिये, पर यदि उसका तना ऊपर से मोटा और नीचे से पतला हो तो उस स्थान पर कुछ भी धन छुपा हुआ नही है, ऐसा समझना चाहिये। [५७–६१]

मैंने जो उपरोक्त खनिजवाद (धातुवाद) सीखा था वह मुझे याद आ गया। मेरे सन्मुख जो पलाश (केसू) का वृक्ष था उसका मैने भलीभाति निरीक्षण किया। इस वृक्ष का तना ऊपर जाकर पतला हो रहा था, अत. मैंने सोचा कि इस स्थान पर विपुल धन होना चाहिए। फिर मैंने उसके तने मे अपना नाखून गडाया तो उसमे से पीले रग का रस निकला, जिससे मैंने सोचा कि यहाँ सोना होना चाहिये। उसी समय मेरे मित्र सागर (लोभ) ने मुझे प्रेरित किया जिससे मैं वृक्ष के नीचे का भाग खोदकर उसमे से सोना निकालने के लिए उद्यत हुआ। मैंने 'नमो धरणेन्द्राय, नमो धनदाय, नमो क्षेत्रपालाय' आदि मन्त्रो का उच्चारण करते हुए उस वृक्ष के नीचे का भाग खोदना प्रारम्भ किया। खोदते-खोदते स्वर्ण मोहरो से भरा हुआ एक ताबे का पात्र मुझे दिखाई दिया। यह देखकर मेरा मित्र सागर बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने भी उन मोहरो को गिना तो वे पूरी एक हजार निकली। वास्तव मे तो यह सब मेरे दूसरे मित्र पुण्योदय की शक्ति का प्रभाव था जो कि मेरे शरीर मे समाया हुआ था, पर महामोह के वशीभूत और सागर के प्रति पक्षपात होने से मैं यही मानता रहा कि मुझे इस धन की प्राप्ति मेरे मित्र सागर की कृपा से ही हुई है। इतना धन प्रारम्भ से ही प्राप्त होने पर मेरे मन में तनिक सतोष हुआ।

जयपुर में कमलिनी के साथ लग्न

उन एक हजार मोहरो को छुपा कर अपने शरीर पर बाधकर मैने जयपुर नगर मे प्रवेश किया। मै सीधा बाजार मे गया। बाजार मे बकुल नामक सेठ अपनी

---

* पृष्ठ ५५३

दुकान पर बैठा था। जिस समय उसने मुझे देखा उसी समय मेरे मित्र पुण्योदय ने उसके मन मे कुछ आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न की जिससे वह स्वय चलकर मुझ से मिलने आया, बातचीत की, प्रसन्न हुआ और प्रीति पूर्वक मुझे अपने घर पर चलने और रहने के लिए निमंत्रित किया। न मालूम किस कारण से मेरे प्रथम दर्शन से ही उसके दिल मे मेरे प्रति स्नेह उभर आया, मानो मुझे देखकर उसके स्नेह तन्तु विकसित हो गये हो। मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार किया, अत वे तुरन्त ही मुझे अपने घर ले गये। घर मे अपनी प्रिय पत्नी भोगिनी को बुलाकर उन्होंने उससे मेरा पूर्ण आदर-सत्कार करने के लिए आदेश दिया। फिर सेवको ने मुझे स्नान करवाया और सुकोमल रेशमी वस्त्र पहनने के लिए दिये। वस्त्र पहनकर मैं बाहर आया तो मुझे एक सुन्दर आसन पर बिठा कर, सेठ ने मेरे साथ ही बैठकर मनोहारी स्वादिष्ट भोजन किया। भोजन करके उठने पर मुझे पान-सुपारी दी गई।

भोजन के पश्चात् बातचीत चली। सेठ निश्चिन्त होकर मेरे पास बैठा और प्रेमपूर्वक 'मै कहाँ का निवासी हूँ ? मेरा कुल, जाति और नाम क्या है ?' आदि प्रश्न पूछने लगे। मैंने भी उन्हे सत्य-सत्य बतलाया। मेरा पूर्ण परिचय प्राप्त कर सेठ मन मे सोचने लगा कि यह तो कुल, शील, वय और रूप मे योग्य है, अपनी ही जाति का है और सुन्दर रूपवान है, अत अपनी पुत्री कमलिनी के यह सर्वथा योग्य है। कमलिनी सेठ की इकलौती पुत्री थी। वह रूप में कामदेव की पत्नी रति से भी सुन्दर और समस्त शुभ लक्षणो और गुणो से युक्त थी। सेठ ने अपनी पुत्री को पास बुलाया। दृष्टि-सम्मिलन से दोनो का परस्पर प्रेम देखकर, सेठ ने शुभ दिन देखकर उसका विवाह मेरे साथ कर दिया। तदनन्तर बकुल सेठ ने मुझ से कहा—वत्स धनशेखर ! यह घर तुम्हारा अपना ही है, ऐसा समझो। किसी भी प्रकार की उद्विग्नता से रहित होकर यहाँ रहो और मेरी पुत्री के साथ आनन्द करो।

मैंने उत्तर मे कहा—आदरणीय ! जब तक मै अपने भुजबल से रत्नो के ढेर एकत्रित नही करू तब तक मेरे लिए भोगलीला एक प्रकार की बिडम्बना मात्र ही है। मेरे विचार से तो ऐसा आनन्द तिरस्कार और धिक्कार के योग्य ही है। ऐसे भोग भोगने मुझे उचित नही लगते। अत· हे पूज्य ! भविष्य मे आप मुझे ऐसी आज्ञा न दे। मै घर पर नही रह सकता। मुझे आप कोई अच्छा साथ बताइये कि जिसके साथ मे रत्नद्वीप जाऊँ और वहाँ से अपने परिश्रम से रत्नो का सचय कर साथ लेकर आऊ। [६२-६३]

बकुल सेठ ने कहा—वत्स ! दुर्लंघ्य विशाल समुद्र लाघ कर इतनी दूर जाने की तुझे क्या आवश्यकता है ? मेरी पूजी लेकर उससे यही अपनी इच्छानुसार व्यापार करो और धन कमाओ। [६४]

मैंने सेठ के इस उदार प्रस्ताव पर न तो कुछ ध्यान दिया और न उसका आभार ही माना। उत्तर में मैंने इतना ही कहा—पूज्य श्री ! यदि आपका ऐसा

ही* आग्रह है कि मै अभी विदेश नही जाऊ तो ठीक है । मेरे पास जो थोडी पू जी है उसी से मै यहाँ रहकर अलग व्यापार करू गा, पर मै अपना मकान अलग लू गा और अपनी दुकान भी अलग खोलू गा । [६५]

बकुल सेठ ने मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकर किया, क्योकि वह चाहता था कि किसी प्रकार उसकी पुत्री उसकी दृष्टि के सामने ही रहे ।

धनशेखर द्वारा कर्मादानो (निम्नकोटि) का व्यापार

इसके पश्चात् मैने व्यापार करना प्रारम्भ किया । मेरा मित्र सागर (लोभ) मेरे भीतर रहकर बार-बार मुझे प्रेरित करता रहता था जिससे प्रतिक्षण धन पैदा करने के नये-नये तर्क-वितर्क और विचार-तरगे मेरे मन मे हिलोरे ले रही थी । (मेरा मन धन बढाने के भिन्न-भिन्न रास्तो पर बिना लगाम के घोडे की तरह सरपट भाग रहा था) । इससे मेरी धर्मबुद्धि भ्रष्ट हो रही थी । किसी भी प्रयत्न से धन बढाना बस यही मेरा लक्ष्य हो गया था, जिससे मेरी दयालुता भाग रही थी और सरलता तथा नम्रता का नाश हो रहा था । मेरी बुद्धि ऐसी कुण्ठित हो गई थी, इस कारण मुझे ऐसा लग रहा था कि इस ससार मे मात्र धन ही सार है, प्रधान है । व्यवहारी का मन रखने की स्वाभाविक उदारता भी मुझ मे घटती जा रही थी और मेरे हृदय से सतोष भी अदृश्य होता जा रहा था । फिर मैने अनाज लेना शुरू किया । अनाज, तेल और रुई बडे-बडे गोदामो मे भरने लगा । लाख का, गुड का और जीवो से सकुलित तेल निकलवाने का (घाणी का) धन्धा भी करने लगा । पूरे के पूरे जगल कटवा कर कोयले बनवाने का धन्धा भी करने लगा । (ये सभी कर्मादान है जिनसे महा आरम्भ होता है) । सच्चा झूठा करने लगा । सरल प्रकृति के लोगो को लेने-देने मे लूटने लगा । मुझ पर विश्वास रखने वालो को धोखा देने लगा । लेने-देने के झूठे तोल-माप रखकर अधिक लेने और कम देने लगा । धन-चिन्ता मे मै इतना तन्मय हो गया कि तेज प्यास लगने पर भी मुझे पानी पीने की और भूख से व्याकुल होने पर भी भोजन करने का समय नही मिलता । धन की लोलुपता मे मुझे रात को नीद भी नही आती । [मेरी अत्यन्त सुन्दर, सरल, पतिभक्ता, पद्म जैसी प्रियपत्नी कमलिनी से भी मिलने का, दो बाते करने का, उसके निकट बैठने का और सहवास का समय भी मुझे नही मिलता ।] पत्नी के सुन्दर दिव्य विकसित कमल जैसे आरक्त और मधुर अधरो पर भ्रमर की भाति रसपान करने का भी मुझे इस धन लोलुपता के कारण कभी समय नही मिला । [६६–६७]

हे कमलनेत्री अगृहीतसकेता ! इस प्रकार मैंने अनेक कष्ट सहे, दुख. उठाये और चिन्ता मे अपने को गलाया तब कही जाकर मेरी पू जी मे ५०० मोहरो की वृद्धि हुई । जैसे ही मेरे पास डेढ हजार मोहरे हुई वैसे ही मेरी इच्छा उन्हे दो हजार करने की हुई । हिसाजन्य अनेक निम्न व्यापार करने पर जब मेरे पास दो

---

* पृष्ठ ५५४

हजार मोहरे हो गयी तब मेरी इच्छा दस हजार मोहरे इकट्ठी करने की हो गई। फिर अधिक व्यापार करने और अनेक प्रकार के पापो का सेवन करने पर जब मेरी पूंजी दस हजार मोहरे हो गई तो तुरन्त ही मेरी इच्छा एक लाख मोहरे करने की हो गई। भद्रे! विविध प्रयत्नो से मैंने इसकी भी पूर्ति करली। मेरा सागर (लोभ) मित्र अन्दर बैठा हुआ मुझे प्रेरित करता ही रहता था और किसी भी प्रकार एक लाख मोहरों के स्थान पर दस लाख एकत्रित करने को उत्साहित करता रहता था। फिर मैंने अनेक व्यापार किये, तकलीफे उठाई, रात-रात भर जागा और महान प्रयत्नो के बाद अन्त मे मैं दस लाख मोहरे एकत्रित करने मे भी सफल हुआ। [६८–७१]

हे भद्रे! जब मेरी पूंजी दस लाख स्वर्ण मोहरो की हो गई तो मेरे मित्र सागर (लोभ) ने भीतर से बार-बार मुझे एक करोड़ मोहरे इकट्ठी करने के लिए उत्साहित किया। मैंने पहले जो-जो व्यापार किये थे उन सब को अधिक उत्साह से तथा अधिक बडे पैमाने पर किया, फिर भी दस लाख और करोड मे बहुत बडा अन्तर था इसलिए मेरी इच्छा पूरी न हो सकी। [७२–७३] अत मैने कोटिपति की मनोकामना पूर्ण करने के लिए अधिकाधिक विविध योजनाये बनाकर उनको कार्यरूप मे परिणत करना प्रारम्भ किया। परदेश मे जाकर व्यापार करने वाले अनेक गाडीवान बनजारो को नियुक्त किया। ऊटो के बडे-बडे टोलो पर वस्तुएं भरकर परदेश भेजी। बडे-बडे जहाजो पर माल भरकर देशान्तरो मे भेजा। गधो का विशाल झुण्ड एकत्रित कर उन पर माल लाद कर परदेश भेजा। चमड़े के व्यापारियो के साथ मिलकर व्यापार किया। राजाओ से मिलकर अमुक-अमुक देशो से व्यापार करने और कर वसूली के आज्ञा पत्र लिखवाये। बडी सख्या मे बैल पाल कर फिर उन्हे वधिया (नपुसक) बनाकर कृषको और गाडीवानो को बेचा। पैसा पैदा कर मुझे देने के लिए वेश्यागृह चलाया। जिन कामो मे स्पष्टत अत्यन्त अधमता दिखाई दे वे सभी काम मैं करने लगा। दारू, ताड़ी, शराब आदि बनाने के धन्धे भी मैंने खोल दिये। सुन्दर हाथियो के दात कटवाकर हाथी दात का व्यापार करने लगा। [ये सभी कर्मादान है]। अनेक प्रकार की खेती करवाने लगा और गन्ने का रस निकलवा कर उससे गुड और चीनी बनवाने के धन्धे भी चालू किये।

सक्षेप मे कहू तो इस ससार मे जितने भी व्यापार धन्धे है उनमे से एक को भी मैंने नही छोडा।* हे भद्रे! मेरे सागर मित्र की इच्छा तृप्त करने के लिए मैंने ऐसे-ऐसे धन्धे किये कि जिनकी कोई कल्पना भी नही कर सकता। न मै पाप से डरा, न मैंने क्लेश की परवाह की, न किसी प्रकार के सुख की इच्छा की और न जरा भी सतोष ही किया। मेरे सागर मित्र को सतोष देने के लिए मैने उसकी आज्ञानुसार मेरे से हो सके वे सभी व्यापार धन्धे किये। महान् पापजन्य कार्यों को करने पर बहुत समय पश्चात् कही जाकर अन्त मे मेरे पास एक करोड स्वर्ण मोहरे हुईं।

---

* पृष्ठ ५५५

यह सब कुछ मेरे अन्तर्निहित मेरे दूसरे मित्र पुण्योदय के प्रभाव से मुझे मिला था। [७४–७६]

करोड़ स्वर्ण मोहरे हो जाने पर भी मेरे आन्तरिक मित्र सागर को सतोष नही हुआ। उत्साहित करने की उसकी प्रवृत्ति बार-बार मुझे अन्दर से प्रेरित करती ही रहती थी। जब-जब अवसर मिलता तब-तब वह मुझ पर अपनी आज्ञा चलाता और मुझे विवश कर आगे बढाता। वह मुझे समझाता— 'देख, तूने मेरे परामर्श और सकेतानुसार काम किया तो मेरे प्रताप से तुझे एक करोड मोहरे प्राप्त हो गई। अब तू यदि पूर्ण उत्साह रखेगा तो करोडो रत्न पैदा करना भी तेरे लिए कुछ दुर्लभ या अशक्य नही होगा। पर, रत्न यहाँ नही मिलेगे, उसके लिए तो तुझे इस समुद्र को लाघकर रत्नद्वीप जाना पडेगा, यदि तू उत्साह रखेगा तो मेरे प्रताप से तुझे वे भी मिलेगे।' इस प्रकार सागर मित्र ने मुझे समुद्र लाघ कर रत्नद्वीप जाने के लिए प्रेरित किया और बार-बार की प्रेरणा से इस बात की मेरे मन पर ऐसी अमिट छाप डाल दी कि यदि कोई देव आकर भी मुझे इस कार्य से निवृत्त होने के लिए कहे तो भी मैं अपने निर्णय से पीछे न हटू। [७७–७९]

जब मैंने अपने मन मे रत्नद्वीप जाने का दृढ निश्चय कर लिया तब यह बात मैंने अपने श्वसुर बकुल सेठ को बतलाई।

सेठ महा विलक्षण व्यापारी थे, उन्होने दीर्घ-दृष्टि से मुझे उत्तर दिया— प्रिय वत्स! जैसे-जैसे मनुष्य को अधिकाधिक धन की प्राप्ति होती रहती है वैसे-वैसे और अधिक प्राप्त करने के उसके मनोरथ बढते रहते है। एक करोड रत्न प्राप्त हो जाय तो उससे अधिक प्राप्त करने की बलवती इच्छा होगी। धधकती हुई आग मे इन्धन डालने से क्या वह आग तृप्त हो जाती है? वत्स! तूने बहुत धन कमाया है, तुझे अब सतोष धारण करना चाहिये। जो धन कमाया है उसकी ठीक से व्यवस्था कर उसे बनाये रखना ही अधिक उचित है। अत अब सब प्रकार की व्याकुलता को छोडकर कुछ दिन आराम से बैठो और चित को स्थिर करो। [८०-८२]

मेरे श्वसुर के वचन सुनकर मैंने कहा—आदरणीय! आप इस प्रकार न बोले, कहा भी है कि—

जब तक यह प्राणी पुरुषार्थ नही करता, अपनी शक्ति को प्रस्फुटित नही करता, कार्य का आरम्भ नही करता तब तक लक्ष्मी उसकी तरफ पीठ फेर कर रहती है, वह कभी उसका वरण नही करती। पर, कार्य का आरम्भ कर देने पर लक्ष्मी उसकी तरफ प्रेमदृष्टि से देखती है। जैसे अपने प्रेमातुर प्रणयी को प्राप्त करने के लिए कुलटा स्त्री अपने धनहीन पुरुष को छोड देती है वैसे ही साहस और उत्साह रहित प्राणी को लक्ष्मी एक बार वरण करके भी छोड़ देती है। जो अपना सब कामकाज बन्द करके अपने चित्त को अन्यत्र लगाता है, जो अपने धनोपार्जन के कार्य को बन्द कर देता है, उसकी तरफ लक्ष्मी कुलवती स्त्री की भाति लज्जा

पूर्वक देखती तो है, पर उससे कोई प्रेम व्यवहार नही रखती। कितनी भी विषम परिस्थितियो मे भी जो प्राणी धनोपार्जन के उत्साह को नही छोडता, उसके वक्ष-स्थल पर लक्ष्मी विना किसी प्रेरणा के ही आ चिपकती है, वह उसका स्वय ही वरण करती है। जो धैर्यवान प्राणी अपनी बुद्धि का उपयोग कर पराक्रम या युक्ति से लक्ष्मी को बाधकर रखता है, उसकी लक्ष्मी प्रोषितभर्तृका की तरह प्रतीक्षा करती है। जो प्राणी थोडी सी लक्ष्मी प्राप्त होने पर सन्तोष धारण कर लेता है, उसकी तरफ यह लक्ष्मीदेवी बहुत ही उपेक्षा की दृष्टि से देखती है। ऐसे प्राणी को वह तुच्छ प्रकृति का मानती है और उसके यहाँ वह किञ्चित् भी नही बढती। जो प्राणी अपने धनोपार्जन के गुणों से लक्ष्मी देवी को प्रसन्न नही कर सकता, उसके साथ इस देवी का प्रेम-सम्बन्ध होने पर भी वह लम्बे समय तक नही चल सकता। इसीलिये समझदार लोग धनोपार्जन के विषय मे कभी सतोष नही करते। अत. हे माननीय ! आप मुझे रत्नद्वीप जाने की आज्ञा प्रदान करे। [८३–६०]

बकुल सेठ ने मेरे इस लम्बे भाषण का सक्षेप मे ही उत्तर दिया—प्राणी पाताल मे जाय या मेरु पर्वत के शिखर पर चढे, रत्नद्वीप जाये या घर मे रहे, चाहे जितना पुरुषार्थ करे या बिना उद्यम बैठा रहे, पर उसने पूर्व मे जैसे बीज बोये होगे उसके अनुसार ही उसे फल की प्राप्ति होगी।* तथापि तुम्हारा परदेश जाने का इतना अधिक आग्रह है तो जाओ, मेरी आज्ञा है, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ। [६१–६२]

श्वशुरजी का उत्तर सुनते ही मैने उनके प्रति अपना आभार प्रकट किया।

धनशेखर का रत्नद्वीप-गमन

अब मैने रत्नद्वीप जाने की तैयारी प्रारम्भ की। अनेक प्रकार का किराणा मैने एकत्रित किया। जहाज तैयार करवाये, उसमे खलासी, मिस्त्री, चालक आदि का प्रबन्ध किया। जाने के दिन का मुहूर्त निकलवाया, लग्न शुद्धि का विचार किया, निमित्त (शकुन) की खोज करने लगा। श्रुतिया की गई, अर्थात् ज्योतिषियो से पता लगवाया गया कि अमुक दिन अमुक दिशा मे जाना ठीक होगा या नही ? इष्ट देवता का स्मरण किया गया, समुद्र देव की पूजा की गई, विशाल श्वेत ध्वज फहराये गये, जहाजो मे बडे-बडे कूपक (मध्य स्तम्भ) खडे किये गये, प्रवास हेतु आवश्यक ईंधन लिया गया, जल की टकिया भरवाई गई। अन्य जो कुछ भी सामान यात्रा मे आवश्यक हो उसे और युद्ध के लिए आवश्यक सर्व प्रकार की सामग्री जहाजो मे चढाई गई। समुद्र-मार्ग से व्यापार करने वाले और विशेषकर रत्नद्वीप जाकर व्यापार करने वाले व्यापारियो को साथ मे लिया।

इस प्रकार सब तैयारियाँ पूर्ण होने पर मैं अन्य धनवान व्यापारियो के साथ रत्नद्वीप जाने के लिये तैयार हुआ और मेरी पत्नी को मैने उसके पिता के घर

---

* पृष्ठ ५५६

भिजवा दिया। जब मुहूर्त का शुभ दिन और समय आया तब समस्त प्रकार के मांगलिक कृत्य कर मै ठीक समय पर जहाज पर चढा। मेरे आतरिक मित्र सागर और पुण्योदय भी मेरे साथ ही थे। [९३-९४]

जब हमारे जहाजो का लगर उठाने का समय हुआ तो शहनाइया बजने लगी, शख बजने लगे, मगल गीत गाये जाने लगे, चपल वटुक ब्रह्मचारी स्वस्ति पाठ करने लगे और वृद्ध लोग आशीर्वाद देते हुए वापस नगर की ओर जाने लगे। छोडी हुई पत्नी दीन अवला जैसी लगने लगी। मित्रो मे कुछ प्रसन्न हुए और कुछ खिन्न हुए और सज्जन लोग मन ही मन अनेक प्रकार के मनोरथ करने लगे।

इस प्रकार याचको के मनोरथ पूर्ण करते हुए, अवसर योग्य उत्सव करते हुए, पवन के अनुकूल होने पर हम सब यात्रीगण जहाजो मे जाकर बैठ गये। [९५] पश्चात् जहाजो के लगर उठाये गये और उन पर पाल चढाये गये। जहाज एक के बाद एक श्रेणीबद्ध चलने लगे। चालक बराबर ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने लगे। इस प्रकार हमारे जहाज मार्ग पर चल पडे। मन के अनुकूल पवन भी चल रहा था। तीव्र पवन के वेग से समुद्र मे उठती उत्ताल तरगो से उद्वेलित बडे-बडे मत्स्यो के पूछ के आघात से उत्पन्न भीषण ध्वनि से जलजतु भयभीत होकर दूर भाग रहे थे। उत्ताल तरगो के जहाजो से टकराने पर दूर-दूर तक सफेद फैन के पहाड दृष्टिगोचर हो रहे थे और कछुए आदि अनेक प्राणी नष्ट हो रहे थे। ऐसे मार्ग पर हमारे विशाल जहाजो का बेडा चलने लगा। अति विस्तृत महासमुद्र मे हमारे जहाज आगे बढे। बीच-बीच मे अनेक छोटी-वडी घटनाएँ होती रही और अन्त मे हम सभी थोडे समय बाद सकुशल रत्नो से परिपूर्ण रत्नद्वीप पर आ पहुँचे। हम सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। यात्रा सकुशल समाप्त हुई इसलिये हमने अपने आपको भाग्यशाली माना।

व्यापारी जहाजो से उतरे। जो-जो वस्तुए दिखाने योग्य थी उन्हे साथ लिया। वहाँ के राजा से मिलकर उन्हे नजराना (भेट) अर्पित किया। राजा ने भी हमारे प्रति प्रेम प्रदर्शित किया। कर चुकाया गया और बिक्री की वस्तुओ की गिनती की गई। व्यापारी एक दूसरे को हाथ देने लगे (रुमाल ढक कर अगुलियो के इशारे से भाव तय करने का एक तरीका)। सभी ने अपनी-अपनी इच्छानुसार वस्तुए (माल) बेची, उसके बदले मे अपने देश ले जाने योग्य वस्तुए खरीद कर भरी, लोगो को इनाम दिये। तदनन्तर मेरे साथ आये हुए दूसरे व्यापारी तो वापस अपने देश जाने के लिये तैयार हुए और चले भी गये। परन्तु मुझे तो मेरे मित्र सागर ने प्रेरित करते हुए कहा —'मित्र! जिस देश मे नीम के पत्तो के बदले रत्न मिलते हो ऐसे देश को छोडकर शीघ्रता से वापस क्यो लौट रहा है?' [९६] मेरे मित्र के परामर्श से मैने वही दुकान खोल दी और रत्न खरीदने का व्यापार प्रारम्भ कर दिया।

३. हरिकुमार की विनोद गोष्ठी

[मेरे साथ आये हुए सभी व्यापारी विदा हो गये, अपना बिक्री-खरीद का व्यापार पूरा कर अपने देश वापस लौट गये। पर, सागर मित्र की प्रेरणा से मै रत्नो के ढेर एकत्रित करने के लिये रत्न द्वीप मे ही रह गया और वही अपना व्यापार प्रारम्भ कर दिया। मेरा सम्पूर्ण समय सागर की प्रेरणा से धनोपार्जन के उपायो को सोचने मे और उन्हे क्रियान्वित करने की योजना वनाने मे व्यतीत हो जाता था। हे अगृहीतसकेता! उसके पश्चात् एक और घटना घटित हुई जिसे सुन।]*

हरिकुमार का पूर्व-वृत्तान्त

एक दिन एक बुढिया मेरे पास आई और कहने लगी—'पुत्र! मुझे तुम्हारे साथ कुछ बात करनी है।' मैंने जब उसे अपनी बात सुनाने को कहा, तब वह वोली—'वत्स! तुझे यह तो पता ही है कि आनन्दपुर मे केसरी नामक राजा राज्य करता है। उस राजा के दो रानिया हैं—एक जयसुन्दरी और दूसरी कमलसुन्दरी। कमलसुन्दरी के साथ क्या घटना घटित हुई, यह बताती हूँ।

इस केसरी राजा की राज्य पर अत्यधिक आसक्ति थी और उसे सदा यह भय बना रहता था कि यदि उसके पुत्र होगा तो वह उसे मार कर स्वय राजा बन जायेगा, अत. जैसे ही कोई पुत्र जन्म लेता वह उसे मार देता। इस प्रकार उसने तुरन्त के जन्मे कुछ बच्चो को तो स्वर्गधाम पहुँचा ही दिया। कमलसुन्दरी को इस बात का पता लग गया। एक बार वह फिर गर्भवती हुई। गर्भ मे रहे हुए बालक पर माता का स्वाभाविक स्नेह रहता ही है, इसीलिये एक दिन कमलसुन्दरी पुत्र-मोह से मुझे (वसुमती) साथ लेकर अन्धकारमयी रात्रि मे राजमहल से भाग निकली। आगे जाकर एक विशाल और भयकर जगल आया। कमलसुन्दरी बहुत सुकोमल थी और उसे कभी पैदल चलने का काम नही पड़ा था, इसलिये उसे बहुत दु ख उठाना पडा। जब पौ फटने का समय हुआ तब रानी के नितम्ब विकसित होने लगे और नाभि (सुण्डी) मे दर्द उठने लगा। पेट मे दारुण शूल उठने से उसके चरण आगे वढने से रुक गये। उसका पूरा शरीर टूटने लगा और हृदय जोर से धडकने लगा। आँखे मिच गई और उबासी पर उबासी आने लगी। तब रानी ने कहा—सखि वसुमति! अब तो मैं एक कदम भी नही चल सकती। मेरे शरीर मे वहुत अधिक पीडा हो रही है और मेरा समस्त शरीर अत्यधिक व्यथित हो गया है। उस समय मैने विचार किया कि इसको एकाएक क्या हो गया है? तभी मुझे

---

* पृष्ठ ५५७

ध्यान आया कि रानी के प्रसव का समय निकट आ गया लगता है। फिर मैंने रानी को धैर्य बंधाया और प्रसूति के लिये आवश्यक स्थान की व्यवस्था करने लगी। तभी मेरी स्वामिनी वेदना से व्याकुल होकर पछाड खाकर जमीन पर गिर पडी और तीव्र करुण स्वर से हाय-हाय करने लगी। तत्काल ही उसने पुत्र को जन्म दिया किन्तु उसी क्षण उस सुकोमल कमलसुन्दरी के प्राण पखेरु भी उड गये।

ऐसी अप्रत्याशित भयकर घटना को देखकर मुझ मन्दभागिनी पर तो वज्र ही गिर गया। मै अत्यन्त भयभीत हो गई, मानो मेरा सर्वनाश हो गया हो! मुझे मूर्छा आने लगी, मानो मै स्वय भी मर रही होऊँ! मानो मुझे किसी ग्रह ने ग्रस लिया हो! इस प्रकार मै मन्दभाग्य वाली एकदम शून्य हृदय हो गई और मुझे यह भी नही सूझ पडा कि अब मुझे क्या करना चाहिये? मैं केवल जोर-जोर से विलाप करने लगी।

हे देवि! तू बोल, मुझ से बात कर। प्रिय सखि! तू मुझ से बात क्यो नही करती? देख, सुलोचने! मेरी स्वामिनि! तूने कितने सुन्दर पुत्र को जन्म दिया है! हे राजीवनयनि देवि! जरा अपनी आँख खोल कर अपने सुन्दर पुत्र को तो देख ले! जिस पुत्र के लिये तूने विशाल राज्य का त्याग किया, प्रिय पति का त्याग किया और महान् दु ख उठाये, उस पुत्र की तरफ एक बार तो दृष्टिपात कर ले! अहा! भाग्य भी हृदय को चीर डालने वाली कैसी-कैसी विचित्र घटनाए घटित करता है। जिस भाग्य ने ऐसा सुन्दर पुत्र दिया उसी भाग्य ने इस देवी को जमीन पर पछाड़ कर उसके प्राण पखेरु उडा दिये। अरे बालक! तेरी रक्षा करने मे तत्पर और ममत्व से लबालब भरी हुई माता का जन्मते ही तूने प्राणहरण कर लिया, यह तो ठीक नही किया। अरे पुत्र! इस बेचारी ने पुत्र-सुख को प्राप्त करने के लिये पति का त्याग किया और राजमहल से बाहर निकली, पर पुत्र! तूने तो इस बेचारी को उस सुख से भी वचित कर दिया। [९७-१०१]

इस प्रकार विलाप करते-करते रात्रि व्यतीत हुई और सूर्योदय हुआ। भाग्य से उस समय उसी मार्ग से कोई सार्थ (वनजारो का समूह) निकल रहा था। इस सार्थ के सार्थवाह ने जब मुझे रोते और विलाप करते देखा तब मुझे धैर्य बधाया। * उसने विस्मित होकर मुझ से सब घटना पूछी और मैंने सक्षेप मे उसे सब बात बतादी। मैंने सार्थवाह से पूछा कि आपका सार्थ किस तरफ जा रहा है? तब उसने बताया कि उनका सार्थ यहाँ से समुद्र के किनारे तक जाएगा और वहाँ से जहाजो द्वारा रत्नदीप जाएगा। उसका उत्तर सुनकर मैंने विचार किया कि मेरी जानकारी के अनुसार रत्नद्वीप मे नीलकण्ठ राजा राज्य करता है जो कमलसुन्दरी का सगा भाई है, अत यह बालक नीलकण्ठ राजा का भाणेज होता है। इसलिये इस बालक को वही ले जाकर इसके मामा को सौप देना चाहिये जिससे कि वहाँ इसका उचित पालन-पोषण और रक्षण हो सके। अच्छा ही हुआ कि यह सार्थ मार्ग

---

* पृष्ठ ५५८

पर मिल गया। फिर धरण सार्थवाह से आज्ञा लेकर मै उसके साथ यहाँ रत्नद्वीप पहुँच गई। इस बालक पर मेरा अत्यधिक स्नेह होने से मेरे स्तनो मे दूध भर आया और उसे पी कर ही यह नवजात बालक यात्रा मे जीवित रह सका। रत्नद्वीप पहुँच कर मैंने बालक को महाराजा नीलकण्ठ को दिखाया और कमलसुन्दरी सम्बन्धी सब घटना उन्हे कह सुनाई। नीलकण्ठ राजा को बहिन की मृत्यु पर शोक हुआ, पर साथ ही भाणजे के सकुशल पहुँचने की प्रसन्नता भी हुई। उन्होने बालक का नाम हरि रखा। वह भाणेज अनुक्रम से बडा होने लगा और वह राजा नीलकण्ठ को अपने प्राण से भी अधिक प्यारा लगने लगा। [१०२] फिर उसे कलाविज्ञान की शिक्षा दिलवाई गई। अभी वह कुमार युवा हो गया है और देवकुमार जैसे रूप और आकृति को धारण कर अपने मामा के राज्य मे आनन्द कर रहा है। मैंने उसे सब वास्तविकता बतलादी है। अभी-अभी उसे समाचार प्राप्त हुए है कि आप भी आनन्दपुर के रहने वाले है और वही से यहाँ आये है। आप कुमार के देश के है, इसलिये कुमार आपको अपने देश का जानकर आपसे मिलना चाहते है। अत. पुत्र ! आप उनके पास चलने की कृपा करे।

हरिकुमार से परिचय

हरिकुमार की माता की दासी और कुमार की धात्री (धायमाता) उस वसुमती वृद्धा के वचन सुनकर मैंने उसके साथ जाना स्वीकार किया और तत्काल ही मैं उसके साथ हरिकुमार के पास गया। वहाँ जाकर मैंने देखा कि हरिकुमार अपने मित्रो के मध्य बैठा है। मैंने जाकर हरिकुमार को नमस्कार किया। धात्री वसुमती (वृद्धा) ने कुमार से मेरा परिचय करवाया। मुझ से मिलकर कुमार बहुत प्रसन्न हुआ। प्रेम से अपने नेत्र अर्धनिमीलित करते हुए उत्साहपूर्वक मुझे हृदय से लगाकर उसने मुझे अपने आधे आसन पर बिठाया। फिर कुमार बोला— भद्र ! मुझे पहिले ही माजी (वसुमती धाय) ने बताया था कि हरिशेखर मेरे पिताजी के प्रिय मित्र हैं और लोगो के कथनानुसार मुझे मालूम हुआ है कि आप हरिशेखर के पुत्र हैं, अत भाई ! आप तो मेरे सच्चे भाई ही हैं। आप तो मेरे शरीर और प्राण ही है। आप यहाँ आये यह बहुत ही अच्छा हुआ। [१०३-१०५]

राजकुमार हरि से इतना अधिक आदर पाकर मै पुलकित हो गया। फिर मैंने कहा- देव ! माजी ने मुझे सब घटना बतला दी है। इस सेवक का आप इतना अधिक आदर सत्कार करे, यह किसी प्रकार उचित नही है। जैसे मेरे पिताजी आपके पिता श्री केसरी महाराज के अनुजीवी (सेवक) हैं, वैसे ही मै भी आपका सेवक आपकी सेवा मे उपस्थित हूँ, इस विषय मे आप तनिक भी सदेह न करे। मेरे उत्तर को सुनकर कुमार अत्यधिक प्रसन्न हुआ और अपने मित्रो से मेरा परिचय करवा कर मित्रो के साथ आनन्दोत्सव मनाने लगा। मित्र के मिलाप को अति उज्ज्वल प्रसग मानकर कुमार मेरे साथ मित्र जैसा व्यवहार करने लगा और सम्बन्ध भी

मित्रता का ही रखा । कुमार के साथ आनन्द करते-करते मेरे कई दिन व्यतीत हो गये । [१०६–१०९]

कुछ समय पश्चात् कामदेव को उद्दीप्त करने वाली, प्राणियो के आनन्द मे वृद्धि करने वाली और उद्यानो के लिए आभूषण जैसी बसन्त ऋतु * आई । उस समय हरिकुमार मुझे साथ लेकर अपनी मित्र-मण्डली सहित उद्यान की शोभा देखने के लिए घूमने निकला । घूमते हुए कोकिलाओ की कुहु-कुहु से कूजित रमणीय आनन्ददायी आम्रवन मे पहुँच कर हम सब बैठे । [११०–११२]

चित्रपट का प्रभाव

उस समय दूर से हमे आशीर्वाद देती हुई एक तपस्वनी वहाँ आ पहुँची । वह वृद्धावस्था के कारण जीर्ण-शीर्ण शरीर वाली और रौद्राकृति की धारक थी । उसे देखते ही कुमार ने उसका स्वागत किया, उसे प्रणाम किया और वार्तालाप द्वारा उसे प्रसन्न किया । प्रसन्नचित्त होकर उस तपस्विनी ने एक कन्या का चित्र कुमार को दिखलाया । चित्र कुमार के हाथ मे देकर, वह तपस्विनी सहज विकार और उत्कठा को छिपाते हुए कुमार के मुख की ओर एकटक देखने लगी, यह जानने के लिए कि चित्र देखकर कुमार के मुख पर क्या भाव प्रकट होते है ? चित्र देखकर कुमार के मन पर जोरदार चोट लगी है, उसकी आखो मे विकार भाव उभरे है और उसका मन चित्र के प्रति विशेष आकर्षित हुआ है, यह देखकर वह 'मै जा रही हूँ' कहते हुए शीघ्र ही वहाँ से चली गयी । [११३–११६]

चित्र मे चित्रित कन्या की छवि देखते ही कुमार विकार से ऐसा दिङ्मूढ-सा हो गया मानो उसे कामदेव ने अपने बाण से विद्ध कर दिया हो । उसकी इस अवस्था को मित्रो ने भाप लिया । क्योकि, वह कभी तो हूँ शब्द करता, कभी सिर धुनता, कभी नीद मे से उठ रहा हो ऐसी प्रवृत्ति करता, कभी चुटकी बजाता, कभी समझ मे न आने वाली बाते बोलता, कभी गहरा गर्म नि श्वास छोडता, कभी हाथ हिलाता, कभी चित्रलिखित कन्या को बार-बार देखता, कभी हसने जैसा मुंह बनाकर आखे बडी-बडी करता और कभी पलके बिना झुकाये ही मन्द-मन्द मुस्कान पूर्वक स्नेह पूर्ण दृष्टि से इधर उधर देखता । [११७–१२०]

हरिकुमार की ऐसी अवस्था होने पर उसके पास बैठी हुई मित्र-मण्डली उससे कहने लगी—

मन्मथ –(मुह पर मुस्कान ला कर) अरे भाई ! हृदयस्थित अनेक प्रकार के भिन्न-भिन्न रसो का अनुभव करते हुए भी, बाहर से इन्द्रियो को या हाथ-पाँव को बिना चलाये ही यह अन्तर्नाद (अन्तरग नृत्य) क्या चल रहा है ?

ऐसा एकदम सीधा प्रश्न सुनकर हरिकुमार ने अपने आपको सभाला और फिर मन्मथ से बोला—अहा ! इस चित्रकार की प्रवीणता को देख कर मै बहुत

---

* पृष्ठ ५५९

प्रसन्न हुआ हूँ। मित्र! तू देख तो सही, चित्र की प्रत्येक रेखा स्पष्ट और भूल रहित है। इसमे जो आभूषण पहनाये गये हैं वे सुन्दरी के शरीर से बिलकुल मेल खा रहे है। इसमे रग और छाया का सयोजन उचित अनुक्रम से हुआ है। चित्रित कन्या के मुख पर भाव इतने स्पष्ट झलक रहे है मानो वह मुंह से बोल रही हो! चित्र मे भावो की स्पष्टता प्रकट करना बहुत ही कठिन काम है। चतुर परीक्षको की दृष्टि मे चित्रकला-परीक्षण का मुख्य मुद्दा ही भावो की स्पष्टता है। इस चित्र मे चित्रित कन्या के अगोपागो और मुखाकृति की रेखाओ से उसके भाव प्रकर्षता के साथ बहुत ही स्पष्ट झलक रहे है। मेरे इस प्रकार कहने का कारण यह है कि चित्रलिखित कन्या ऐसी लग रही है मानो वह बचपन को पार कर तरुणाई के द्वार पर खडी हो और कामदेव उस पर अपना प्रभाव व्यक्त कर रहा हो। चित्र मे ये भाव इतने सुन्दर और स्पष्ट ढग से प्रकट किये गये हैं कि एक छोटा-सा बच्चा भी चित्र को देखकर इन भावो को समझ सकता है, तब फिर विद्वानो को ऐसा लगे तो इसमे नवीनता ही क्या है? देखो :—

चित्रित कन्या के स्तनो का अग्रभाग उद्भिन्न होता हुआ दिखाया गया है जो यह प्रकट कर रहा है मानो वह अपने लावण्य रस को बाहर निकाल रही हो। अगोपाग की रचना से वह अपने प्रस्फुटित प्रोद्दाम यौवन को स्पष्टत· बता रही है। ऊंची चढी हुई भौंहे और लीला मे अर्ध-निमीलित नेत्र मानो यह प्रकट कर रहे है कि यह कन्या वाणी द्वारा मन्द-मन्द निमन्त्रण दे रही हो। कपोलो पर असाधारण रूप से स्फुरित और हसता हुआ रमणीय मुखकमल तथा अति चपल और तिरछे नयन यह बता रहे है कि मानो यह कन्या मदन को अपने साथ ही लेकर घूम रही हो। [१२१-१२३]* ऐसी सुन्दर कन्या का चित्र स्पष्ट भावो और योग्य आकर्षण के साथ चित्रित कर चित्रकार ने मेरा मन मुग्ध कर लिया है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इतनी स्पष्टता से सब भावो को प्रकट करने की ऐसी कुशलता ससार मे अन्य किसी भी चित्रकार मे शायद ही हो! क्योकि, ऐसी कुशलता मैंने पहले कभी कही नही देखी है।

मन्मथ—(पद्मकेसर की ओर उन्मुख होकर)—क्यो भाई पद्मकेसर! कुमार जो कह रहे हैं क्या यह बात सच्ची है?

पद्मकेसर—मित्र! यह बात तो सच ही है। पर प्राणियो की चित्तवृत्ति भी विचित्र प्रकार की होती है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि चित्रकार से भी चित्र-लिखित कन्या अधिक सुन्दर और अधिक योग्य है।

ललित—मित्र! क्या इस चित्रित कन्या ने कोई विशेष कार्य किया है? क्या तुमने इस चित्र मे कोई आश्चर्यजनक बात देखी है? या कभी तुमने ऐसा कोई चित्र देखा है?

---

* पृष्ठ ५६०

पद्मकेसर—हाँ, अच्छी तरह देखा है।

विलास—मित्र पद्मकेसर ! इस चित्रित कन्या ने क्या विशेष कार्य किया है ? उसका वर्णन तो तू हमारे समक्ष कर।

पद्मकेसर—देख भाई ! इस कुमार का मन कामदेव से आतुर अन्य किसी भी स्त्री से आज तक दुर्गम ही रहा, जीता नही गया। जिस मन का उल्लघन आकाश मे चलने वाली विद्याधरी भी नही कर सकी, जिस मन को किन्नरिया भी हरण नही कर सकी, जिस मन को देवागनाए भी साध्य नही कर सकी, जिसे गंधर्व जाति की स्त्रिया भी नही जीत सकी, जिस मन मे सर्वदा सत्वगुण ही प्रधान रूप से प्रवर्तित होता हो, जो मन राजसी और तामसी विचारो का निरन्तर तिरस्कार करता हो, ऐसे महावीर्यवान कुमार के मन को इस चित्रलिखित कन्या ने चित्र मे रह कर ही जीत लिया है, यह वास्तव मे आश्चर्यजनक बात ही है। यह वास्तविकता केवल मैंने ही देखी हो ऐसी बात नही, आप सबने भी अभी-अभी स्पष्ट रूप से यह बात देखी है।

विभ्रम—भाई ! यह तो सचमुच आश्चर्य हुआ, ऐसा कह सकते है। पर, इसमे चित्र ने क्या किया ?

पद्मकेसर—अरे मूर्ख शिरोमणि ! चित्र शब्द के दो अर्थ होते है, चित्र याने छवि, चित्र याने आश्चर्य। यह चित्र वास्तविक चित्र ही है। अर्थात् यह छवि आश्चर्यजनक है।

कपोल—आपने कैसे जाना कि चित्रलिखित कन्या ने कुमार के मन को जीत लिया है ? क्या आपके पास इसका कोई प्रमाण है ?

पद्मकेसर—वाह रे मूर्खों के सरदार ! क्या तू इतना भी नही देख सकता ? देख, मन रूपी सरोवर जब तक भीतर से अत्यधिक क्षुब्ध न हुआ हो तब तक इस प्रकार के स्पष्ट हुकार आदि नही निकलते और न अनेक प्रकार की मन की तरगे ही उत्पन्न होती है। इस पर भी यदि तुझे मेरे कथन पर विश्वास न हो तो तू स्वय कुमार को पूछ देख, तुझे वास्तविकता का पता लग जायगा और सारी बात स्पष्ट हो जायेगी।

हरिकुमार—मित्र पद्मकेसर ! अब बिना प्रसग की इस बेकार की बातचीत को बन्द करो। कुछ चातुर्य-पूर्ण आनन्ददायक प्रश्नोत्तर चलाओ, जिससे कि कुछ आनन्द की प्राप्ति हो।

पद्मकेसर ने हसते हुए उत्तर दिया—जैसी कुमार की आज्ञा। फिर मित्रो मे निम्नलिखित विद्वद्गोष्ठी/प्रश्नोत्तरी चली—

प्रश्नोत्तर गोष्ठी

पद्मकेसर ने प्रश्न किया— (१)

पश्यन् विस्फारिताक्षोऽपि, वाचमाकर्णयन्नपि।
कस्य को याति नो तृप्ति, किंच ससारकारणम्॥१२५॥

भावार्थ—विस्फारित नेत्रो से देखता हो और वाणी को सुनता हो, फिर भी किसे, क्यो सतोष नही होता, शान्ति नही मिलती और इस ससार का कारण क्या है ?

हरिकुमार ने प्रश्न तो सुना पर उसका मन तो चित्र में चित्रित कन्या ने हरण कर लिया था, जिससे उसने मात्र हुकारा ही दिया। पद्मकेसर ने मन मे सोचा कि कुमार ने मेरा प्रश्न बराबर सुना नही है अत. इसे फिर से अधिक स्पष्टता से एक बार और बोलू जिससे कि यह श्लोक उसके ध्यान मे आ जावे। इस विचार मे पद्मकेसर ने उपरोक्त प्रश्न वाला श्लोक दुबारा बोला, पर उसके उत्तर मे भी कुमार ने सिर्फ धीरे से हुकारा ही भरा। इससे पद्मकेसर को पूर्ण विश्वास हो गया कि चित्रलिखित कन्या ने कुमार के हृदय को बिलकुल शून्य बना दिया है,* अत वह थोडा हँस पडा। दूसरे मित्र भी परस्पर हसी करने लगे और एक दूसरे का मुह देखने लगे। यह देखकर हरिकुमार का मन कुछ ठिकाने आया। उसे लगा कि उसके मित्रो ने उसकी मानसिक दशा को जान लिया है और यह ठीक नही हुआ है। इससे उसके मन मे अभिमान जागृत हुआ और उसने अपने मन मे कन्या के सम्बन्ध मे जो सकल्प-विकल्प हो रहे थे, उनको दबा दिया तथा ध्यानपूर्वक सुनने लगा। उसके मन मे कुछ विचार आये और वह बोला—अरे मित्र ! तू हँस क्यों रहा है ? मेरी हँसी उडाने की आदत छोड दे। तेरा प्रश्न एक बार फिर से बोल। इस पर पद्मकेसर ने उपरोक्त श्लोक को पुन पढा। इस समय कुमार का प्रश्न पर ध्यान था, अत जैसे ही प्रश्न पूरा हुआ उसके मन मे उत्तर भी आ गया और उसने तत्क्षण उत्तर दिया—"ममत्व"।

[यहाँ कुमार के उत्तर को समझ लेना चाहिये। प्रश्न था खुली आँखो से देखने पर और वाणी को सुनने पर भी किसे किसलिये शाति नही मिलती ? उत्तर है 'ममत्व' मेरापन। यह मोह राजा का ससार को अधा करने वाला मत्र है। पूरी दुनिया को नचाने वाला, भटकाने वाला, फसाने वाला यह मत्र प्राणी को बिलकुल विचित्र बना देता है। आँख से देखते हुए और कान से सुनते हुए भी ममत्व की वस्तु के प्रति कभी तृप्ति होती ही नही, कभी अघाता ही नही, उसे कभी शाति नही मिलती। चाहे जितना देखे और सुनें पर अभी और अधिक सुनने और देखने की उसकी इच्छा कभी पूरी नहीं हो पाती, इस सब का कारण ममत्व/अभिमान/मेरापन है। दूसरा प्रश्न है—ससार का कारण क्या है ? इसका उत्तर भी ममत्व ही है। ससार-भ्रमण, भवपरिपाटी, चक्रपर्यटन का कारण भी ममत्व ही है। मोह राजा का स्थान और उसके अधिकारो का वर्णन इस ग्रन्थ को पढने वाले पाठक भली प्रकार जानते है, अत इस सम्बन्ध मे अधिक विवेचन करना व्यर्थ है। इस प्रकार दो पक्ति के प्रश्न का उत्तर कुमार ने तीन अक्षरो मे दे दिया।]

---

* पृष्ठ ५६१

(२)

पद्मकेसर ऐसा सक्षिप्त किन्तु सही उत्तर सुनकर अतिशय विस्मित हुआ। फिर उसने दूसरा प्रश्न किया—

कस्या बिभ्यद्भीरुर्न भवति सग्रामलम्पटमनस्कः।
वाताकम्पितवृक्षा निदाघकाले च कीदृक्षाः ।।१२६।।

भावार्थ—युद्ध करने में जिसका मन लगा हो वह किससे अधिक भयभीत नहीं होता ? ग्रीष्म मे पवन से काप रहे वृक्ष कैसे लगते हैं ?

कुमार ने पद्मकेसर को प्रश्न पुन बोलने के लिये कहा। श्लोक दुबारा सुनने पर थोडे से विचार के पश्चात् कुमार ने उत्तर दिया—"दलनाया.।"

पद्मकेसर ने उत्तर स्वीकार किया।

[यहाँ प्रथम प्रश्न यह था कि जिस योद्धा का मन सर्वदा युद्ध मे रमा रहता है, वह किससे अधिक भयभीत नही होता ? उत्तर मे कहा गया है कि ऐसा योद्धा 'दलना' अर्थात् सेना से नही डरता। जिसको युद्ध करने जाना है और जिस योद्धा का मन सदा युद्ध में ही लगा रहता है, वह बड़ी से बडी सेना को देखकर भी, कभी अधिक तो क्या तनिक भी भयभीत नही होता। दूसरा प्रश्न हैं ग्रीष्म मे पवन से काप रहे वृक्ष कैसे लगते हैं ? उत्तर वही है कि वृक्ष पत्ररहित होने से ठू ठ जैसे लगते हैं। ग्रीष्म में वृक्ष के पत्ते सूख कर गिर जाते हैं और फिर नये पत्ते बसत के आगमन पर ही आते है अतः वह 'दल-न-आय' दलनाया' अर्थात् जिसमे पत्ते (दल) नही आते हो ऐसा वृक्ष ठू ठ ही लगता है। इस प्रकार पूर्ण श्लोक के दो प्रश्नो का सक्षिप्त और सही उत्तर यहाँ भी केवल चार अक्षरो मे दिया गया है।]

(३)

इसके पश्चात् अर्हद् दर्शन (जैनमत) की ओर अभिरुचि वाले विलास नामक मित्र ने कहा—कुमार! मैंने भी एक प्रश्न मन मे सोच रखा है। कुमार के यह कहने पर कि प्रश्न बोलो, उसने निम्न श्लोक बोला—

कीदृग्राजकुल विषीदति ? विभो! नश्यन्ति के पावके ?
बौध्य काननमच्युताश्च बहव. काले भविष्यन्त्यलम् ?।
कीदृक्षाश्च जिनेश्वरा ? वद विभौ! कस्यै तथा रोचते ?
गन्धः कीदृशि मानवे जिनवरे भक्तिर्न सम्पद्यते ? ।।१२७।।

भावार्थ—किस प्रकार का राजकुल (राज्य) अन्त मे विषाद (नष्ट) को प्राप्त होता है ? अग्नि मे कौन नष्ट होता है ? ज्ञातव्य को जाग्रत करने वाला उद्यान कौन-सा है ? ऐसा कौन है जो अपने स्थान से भ्रष्ट न हो और वह अल्प समय मे परिपूर्ण दशा को प्राप्त हो ? जिनेश्वर कैसे होते हैं ? हे प्रभो! कहो, गन्ध किस को प्रिय लगती है और किस प्रकार के मनुष्य के मन में जिनेश्वर भगवान् पर भक्ति जागृत नही होती ?

एक ही श्लोक में ऐसे सात प्रश्नों को सुनकर कुमार बोला--भाई ! तुम्हारे प्रश्न तो व्यस्त-समस्त है, अर्थात् एक-दूसरे के विपरीत अटपटे और वहुल समास युक्त है। अत. दुबारा अधिक स्पष्ट रूप से वोलो जिससे कि प्रत्येक प्रश्न अच्छी प्रकार से ध्यान मे आ सके। कुमार की इस माग पर विलास ने श्लोक को धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से दुहरा दिया। सोचकर हरिकुमार ने हसते हुए उत्तर दिया—सुन भाई ! तेरे प्रश्नो का उत्तर है "अकुशलभावनाभावितमानसे"

[उपरोक्त श्लोक मे सात प्रश्न एक साथ पूछे गये हैं, जिनका उत्तर उपरोक्त एक ही शब्द मे किस प्रकार दिया गया है, इसके कला-कौशल का नमूना भी देखिये :—

१. किस प्रकार के राज्य का अन्त मे नाश होता है ? उत्तर में से चार अक्षर लीजिये 'अकुशल' अप्रवीण। अर्थात् राज्यनीति को न समझने वाले राज्य का अन्त मे नाश होता है।

२. अग्नि मे कौन जलते है ? पहले के दो अक्षर छोड़कर उत्तर मे तीन आगे वाले अक्षर लीजिये उत्तर आयेगा 'शलभा' याने पतगे अग्नि मे जलते है।

३. ज्ञातव्य को जाग्रत करने वाला उद्यान कौनसा है ? उत्तर मे पहले के चार अक्षर छोड़कर आगे के तीन अक्षर लीजिये, उत्तर आयेगा 'भावना'। अर्थात् भावना रूपी उद्यान से जानने योग्य को जानने की इच्छा जाग्रत होती है।

४ अपने स्थान से भ्रष्ट न हो और जो अल्प समय मे पूर्ण दशा को प्राप्त हो, ऐसा कौन है ? इसके उत्तर मे पहले के छ: अक्षर को छोडकर आगे के तीन अक्षर लीजिये, उत्तर आयगा–'नाभावि'। अर्थात् न अभावि जो अभव्य न हो याने जो भव्य हो। भव्य जीव अपने स्थान से च्युत नही होते और समय बीतने पर अन्त मे मोक्ष मे जाते है, परिपूर्ण दशा को प्राप्त होते है।

५. जिनेश्वर कैसे होते है ? उत्तर मे पहले के आठ अक्षर छोडकर आगे के तीन अक्षर लीजिये, उत्तर आयेगा 'वितमा' याने विगत तम. येषा ते' जिनका अज्ञान रूपी अन्धकार सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है, ऐसे केवलज्ञानी जिनेश्वर होते है।

६. गन्ध किसको प्रिय है ? उत्तर है 'मानस'। सुगन्ध मन को प्रिय लगती है।

७. किस प्रकार के मनुष्य के मन मे जिनेश्वर भगवान् पर भक्ति जागृत नही होती ? उत्तर मे पूरा ही पद ले लीजिये 'अकुशलभावनाभावितमानसे' जो अच्छी भावना नही रखते, उनकी जिनेश्वर पर भक्ति जागृत नही होती।

(४)

हरिकुमार के उत्तर को सुनकर विभ्रम वहुत हँसा। जब हरिकुमार ने पूछा कि, भाई क्यो हँस रहे हो ? तव उसने कहा—कुमार। आपने विलास को प्रश्न

का उत्तर देकर इसका गर्व उतार दिया, यह बहुत अच्छा किया। यह भाई हम सब को यह प्रश्न बार-बार पूछता था, पर हममे से किसी को भी इसका उत्तर नही सूझता था, जिससे इसका दिमाग सातवें आसमान पर चढ गया था।

विलास—अरे! कुमार ने मेरा गर्व उतारा सो तो ठीक, पर आज तो वे तुम सब का गर्व उतारने पर तुले हुए है, तुम सब ने अपने मन मे जो भी प्रश्न सोच रखे हो उन्हे बोलो तो सही, आज वे तुम्हारा अभिमान भी अवश्य ही उतार देंगे।

मन्मथ—कुमार! मैंने भी दो समस्याये (प्रश्न) सोच रखी है।

कुमार—प्रसन्नता से बोलो, मै उत्तर दू गा।

मन्मथ—सुनो, मेरी दोनो समस्याये (प्रश्न) है—

दास्यसि प्रकट तेन, गृह्णामि न करात्तव।
भिक्षामित्युदिता काचिद् भिक्षुणा लज्जिता किल ॥१२८॥
करोऽतिकठिनो राजन्नरीभकटघट्टनम्।
विधत्ते करवालस्ते निर्मूला शत्रुसहतिम् ॥१२९॥

भावार्थ—तू प्रकट रूप से मुझे देती है, इसलिये तेरे हाथ से भिक्षा नही लू गा। भिखारी के ऐसा कहने पर दान देने वाली स्त्री शर्मा गई।

भिखारी ऐसा क्यो बोलेगा? और उसके इस वचन से देने वाली क्यो लज्जित होगी? स्पष्टत. विरोधी बात दिखाई दे रही है।

दूसरे श्लोक को भी साधारण तौर पर पढने से यह अर्थ निकलता है—हे राजन्। तेरी कठोर तलवार शत्र के समूह को मूल से नष्ट करती है और शत्रुओ के हस्तिसमूह के गडस्थलो को भेद देती है।

हरिकुमार—(हसकर) देख, भाई! तेरे प्रथम श्लोक मे जो स्पष्ट विरोध है उसका भग इस प्रकार होगा। श्लोक के प्रथम शब्द 'दास्यसि' का सन्धि विच्छेद करना पडेगा, जैसे 'दासी असि'। फिर इस श्लोक का अर्थ होगा—हे बहिन! तू प्रकट ही दासी/गणिका है,* अत मै तेरे हाथ से भिक्षा नही लू गा। भिखारी के ऐसा कहने पर देने वाली स्त्री (दासी) लज्जित हो गई। दासी यदि नीच जाति की हो तो उसके हाथ से भिक्षा लेना भिक्षु पसद नही करेगा तब वह स्त्री अवश्य लज्जित होगी ही, इसमे कोई विरोधाभास नही है।

दूसरे श्लोक मे 'करोऽतिकठिन' शब्द का 'कर+अतिकठिन =करोऽतिकठिन' सधि-विच्छेद करना होगा। सन्धि-विच्छेद करने पर अर्थ होगा, हे राजन्! तेरा अति कठिन हाथ शत्रुओ के हस्ति समूह के गडस्थल को भेद देता है और तेरी तलवार शत्रुओ के समूह को मूल से नष्ट कर देती है।

इस प्रकार सन्धि-विच्छेद करने से अर्थ पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है और विरोधाभास का भग हो जाता है, बस यही तेरे प्रश्न का उत्तर है।

---

* पृष्ठ ५६२

(५)

मन्मथ—वाह कुमार ! आपके बुद्धि-चातुर्य का क्या कहना ? चाहे कितने ही अटपटे सवाल पूछे जाये, पर उत्तर तो आपकी जिह्वा पर ही रहते है । धन्य हो आपकी कुशाग्र बुद्धि को !

उस समय मैने (धनशेखर ने) एक ऐसा श्लोक सोचा जिसका अन्तिम पद गूढ (छुपा हुआ) हो । मैंने कुमार से कहा—मैने एक गूढ चतुर्थ पाद (जिसका चतुर्थ चरण गूढ हो) श्लोक सोच रखा है, यदि आज्ञा हो तो पूछू ? इस श्लोक के तीन पद मैं बताऊगा, चौथा पद आपको ढूढना होगा ।

कुमार के हा भरने पर मैने अपने श्लोक के ३ पद बोले—

विभूतिः सर्वसामान्या, पर शौर्य त्रपा मदे ।
भूत्यै यस्य स्वतः प्रज्ञा, ... ॥१३०॥

साधारण तौर पर इसका अर्थ यह होगा कि—जिसकी सपत्ति सब के लिये उपयोग मे आती हो, जिसमे उत्कृष्ट वीरता हो फिर भी जो गर्व करने से शर्माता हो, जिसकी बुद्धि स्वभाव से ही परोपकार के लिये हो ... ...

उपरोक्त तीनो पद सुनकर कुमार सोचने लगा, फिर अपने मन मे उसका उत्तर सोचकर सन्तुष्ट हुआ और बोला—अरे भाई धनशेखर ! तू तो बहुत चतुर निकला, तूने अत्यधिक महत्व के चतुर्थ गूढ पाद की योजना कर रखी है ।

सब ने एक साथ पूछा—क्यो, कुमार ! क्या हुआ ? क्या चौथा पद मिल गया ? हमको भी तो सुनाओ भाई !

कुमार बोला—अच्छा तो सुनिये, इसका चौथा पद बनता है "पात्रभूतः स भूपतिः ।" उत्तर सुनकर सभी मित्र विस्मित हुए ।

उपरोक्त चतुर्थ पद को पहले कहे गये श्लोक मे जोडने पर पूरे श्लोक का यह अर्थ निकलता है —

जिस राजा की सम्पत्ति सब के हित के काम मे आती हो,जो राजा महापराक्रमी हो फिर भी अभिमान नही करता हो और जो अपनी बुद्धि का उपयोग प्रजा की भलाई के लिये ही करता हो, वही राजा वास्तव मे राजा है, अर्थात् भू (पृथ्वी) का सच्चा स्वामी (पति) है । भूपति शब्द के तीनो अक्षर प्रथम तीनो पदो मे प्राप्त हैं ।

(६)

इसी समय कपोल नामक मित्र ने कहा—कुमार ! मैने भी एक गूढ चतुर्थ-पाद वाला श्लोक सोच रखा है, सुनो—

न भाषणः परावर्णे, य समो रोषवर्जितः ।
भूताना गोपको ऽत्रस्तः, ... ॥१३१॥

साधारण तौर पर इसका अर्थ होगा—जो दूसरो की निन्दा नही करता, जो साम्यभाव वाला और क्रोध रहित है, जो स्वय अभय है और जो प्राणियो की रक्षा करता है, ... ।

श्लोक के तीन पद सुनते ही कुमार ने चौथे चरण की पूर्ति तत्काल ही करदी—"स नरो गोत्रभूषण. ।"

उत्तर सुनकर कपोल ने कहा—वाह भाई । मेरे जैसे को तो ऐसी पूर्ति करने मे बहुत समय लग जाय । मुझे तो श्लोक के तीन पद तैयार करने मे भी बहुत समय लगा, फिर भी कुमार ने तत्काल पादपूर्ति कर उत्तर दे दिया । अहो ! कुमार का बुद्धि-वैभव तो अप्रतिहत शक्तिसपन्न है, असाधारण है । वस्तुत. कुमार तो बुद्धि-निधान है । सब मित्र-मण्डली ने स्वीकार किया कि कपोल ने जो बात कही है वह नि.सदेह सत्य है ।

उपरोक्त श्लोक के तीन पदो मे चौथा पद जोडने पर पूरे श्लोक का यह अर्थ निकलता है कि—

जो प्राणी दूसरो की निन्दा नही करता, जो समान स्थिति वाला है और क्रोध नही करता, जो स्वय भय रहित है और अन्य प्राणियो की रक्षा करता है, ऐसा मनुष्य कुल का आभूषण है ।

इस श्लोक मे भी शब्दालकार है । चौथे पद का अन्तिम शब्द 'भूषण' के सभी अक्षर प्रथम के तीन पदो मे मिल जाते है ।

इस प्रकार जितने समय तक प्रश्नोत्तर गोष्ठी होती रही तब तक हरिकुमार का ध्यान चित्रलिखित कन्या से हट गया, उतने समय तक वह उसे भूल गया । [१३२]

सयोगवश उसी समय उस स्थान पर एक कबूतर और कबूतरी प्रेम-लीला कर रहे थे । कबूतर का कबूतरी को चूमना, उसके चारो तरफ चक्कर काटना, उसके साथ मस्ती करना, इत्यादि देखते ही कुमार को वह विस्मृत हुई चित्रकन्या पुन. स्मृति मे आ गई । [१३३]

हरिकुमार का ध्यान पुनः चित्र की ओर चला गया और मित्रो की बातचीत से ध्यान हट गया । फिर तो पवन के झकोरो से जैसे दीपक की स्थिति होती है, पानी के कुण्ड मे शिला पड़ने से पानी के सतह की जो स्थिति होती है, कुटुम्ब के भरण-पोषण की चिन्ता मे दरिद्रो के मन की जैसी स्थिति होती है, दूसरो से पराभव पाकर अभिमानी मनुष्य की जैसी मन स्थिति होती है और अविरति सम्यक् दृष्टि की जैसे ससार के भय से मन.स्थिति होती है वैसी ही स्थिति कुमार के मन की हो गई । स्मृतिपटल पर बार-बार कन्या का चित्र उभरने लगा और कुमार इधर-उधर झूमने लगा । जैसे एक योगी बाह्य वस्तु के व्याक्षेप से मुक्त होकर अपने ध्येय के प्रति तन्मय होकर ध्यानारूढ हो जाता है वैसे ही कुमार को बाह्य विषयो

से मुक्त होकर चित्रलिखित कन्या के लक्ष्य पर अपना ध्यान लगाते हम सभी ने देखा। [१३४]

उस समय मैंने (घनशेखर) कुमार से पूछा—कुमार! क्या बात है?

कुमार ने उत्तर में कहा—भाई घनशेखर! कल रात मे मेरा सिर दर्द कर रहा था जिससे नीद नही आई। उसके असर से अभी भी मेरा सिर दर्द कर रहा है और चक्कर आ रहे है।* अतः ये मन्मथ आदि मित्र यदि जाना चाहे तो जाये, यदि रहना चाहे तो यहाँ घूमे फिरे। तू अकेला मेरे साथ रह। चल, अपन पास मे ही चन्दन लतागृह मे चले ताकि वहाँ मैं थोडी देर शान्ति से सो सकू।

कुमार की इस इच्छा को जानकर और सकेत को स्वीकार कर मन्मथ आदि सभी मित्र वहाँ से विदा हुए। केवल मैं कुमार के साथ रहा।

४. हरिकुमार की काम-व्याकुलता : आयुर्वेद

सभी मित्रो के विदा होने पर मै और कुमार लतामण्डप मे प्रविष्ट हुए। ठण्डे सुकोमल पत्तो को एकत्रित कर मैंने एक बिछोना कुमार के लिये बनाया। कुमार उस पर बैठे। पर, उस ठण्डे बिछोने पर भी कुमार इस तरह तड़फने लगे, जैसे तपती रेत मे पडी हुई मछली तडफती हो। उन्हे तनिक भी शान्ति प्राप्त नही हुई। फिर मैंने उनके बैठने के लिये कोमल आसन का प्रबन्ध किया और कुमार को उस आसन पर बिठाया। जैसे सूली पर चढाये हुए चोर को सुख नही मिलता वैसे ही कुमार को इस आसन पर भी चैन नही मिला। फिर वह मेरे कन्धे से लगकर इधर-उधर भूमने लगे। फिर भी उनके हृदय का अन्तस्ताप लेशमात्र भी कम नही हुआ।

काम का प्राबल्य

फिर कुमार कभी सोये, कभी बैठे, कभी खडे हुये, कभी इधर-उधर घूमे, पर जैसे नरकगति के दु.खपीड़ित जीव को नारकी मे सुख नही मिलता वैसे ही उन्हे भी सुख या शान्ति नही मिली। जितने भी सुख-शान्ति पहुँचाने के उपाय हो सकते थे वे सब मैंने प्रयुक्त किये, पर उनसे कुमार की वेदना उलटी बढती ही गई। इस प्रकार कामाग्नि से जलते हुए कुमार पर्याप्त समय तक उस शीतल लता-गृह मे रहे परन्तु उनकी कामाग्नि का ताप शान्त नही हुआ। [१३५–१३६]

* पृष्ठ ५६३

मन्मथ आदि मित्र कुतूहल के कारण कुमार की दशा को देखकर गये नही थे, प्रत्युत कुमार न देखे वैसे प्रच्छन्न रूप से छुपकर देख रहे थे और परस्पर इशारों से कुमार का उपहास कर रहे थे। [१३७]

उसी समय मध्याह्न का शख बजा, मानो मनुष्यो के शरीर मे कामाग्नि भड़काने के लिये वह कामदेव की पुकार हो ! शख बहुत जोर से बहुत समय तक बजता रहा और दूर से उसकी ध्वनि कुमार के कान मे भी पडी। इसी समय कुमार को घर ले जाने के लिये मन्मथ आदि सभी मित्र लतागृह मे आये। सभी कुमार से कहने लगे—देव ! अब दोपहर हो गयी है, आप घर पधारे। वहाँ जाकर देव-पूजा आदि नित्यकर्म से निवृत्त होकर दिवसोचित अन्य कार्य सम्पन्न करे।

[१३८–१४०]

उत्तर मे कुमार बोले—मित्रो ! धनशेखर को मेरे पास छोडकर आप सब घर जाइये। मेरा सिर-दर्द कुछ कम होने पर मैं भी धनशेखर के साथ घर चला जाऊगा। अभी तो मेरे सिर मे चीसे उठ रही है, शरीर मे गर्मी बढ रही है, अत. कुछ और देर तक इस शीतल लतागृह मे रहने की मेरी इच्छा है। [१४१–१४२]

कुमार के हृदय मे अन्तस्ताप की गर्मी थी और वह अन्तस्ताप किस कारण से था यह भी सभी समझ गये थे, तथापि वह राजकुमार था अतः उन्हे सीधा नही कहा जा सकता था। फलत. धूर्तता से वे परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे कि उसे कुमार भी सुन ले। इस प्रकार की बातचीत से उनका आशय क्या है, यह कुमार भी समझ गया [१४३]

आयुर्वेद

अरे कपोल। तू आयुर्वेद मे बहुत प्रवीण है, तो बता न कुमार के शरीर मे क्या विकार हुआ है ? उसका कारण क्या है और उसे शान्त करने का क्या उपाय है ?

कपोल ने उत्तर दिया—

मित्रो ! वैद्यक शास्त्र मे कहा है कि वात, पित्त और कफ ये तीन शारीरिक दोष है तथा राजस् और तमस् दो मानसिक दोष है। इन दोनो प्रकार के दोषो से शरीर मे व्याधि उत्पन्न होती है जो भाग्य और युक्ति पूर्वक किये गये औषधोपचार से शान्त होती है, अर्थात् योग्य पुरुषार्थ और अनुकूल भाग्य हो तो शारीरिक दोष मिटते है। ज्ञान, विज्ञान,* धैर्य, स्मृति और समाधि से मानसिक दोष ठीक होते है।

[१४४-१४५]

इन शारीरिक दोषो मे से वात रुक्ष, ठण्डा, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, चलता-फिरता, स्वच्छ या कठिन होता है। जैसा वात हो उससे विपरीत वस्तुओ का प्रयोग करने से वह शान्त हो जाता है। [जैसे रुक्ष वायु स्निग्ध पदार्थो के प्रयोग से, शीत वायु गरम

---

* पृष्ठ ५६४

पदार्थों के प्रयोग से, सूक्ष्म वायु भारी पदार्थों से और चल वायु दही जैसे स्थिर द्रव्यो से तथा कठिन वायु नरम पदार्थों के प्रयोग से शान्त होती है।] (१४६)

पित्त स्निग्ध, तिक्त, खट्टा, तरल और गरम होता है। यह भी इससे विपरीत गुणो वाले पदार्थों के प्रयोग से शान्त होता है। [जैसे स्निग्ध पित्त के लिये रूखे पदार्थों का प्रयोग, गरम के लिये शीतल पदार्थ, तिक्त के लिये फीके पदार्थ, तरल के लिये ठोस पदार्थ और खट्टे के लिये कडुवे पदार्थों के उपयोग से पित्त शान्त होता है।] [१४७]

कफ · भारी, शीतल, नर्म, स्निग्ध और मधुर होता है। यह भी विपरीत पदार्थो के प्रयोग से शान्त होता है। [जैसे भारी के लिये हलके पदार्थ, ठण्डे के लिये गरम, नरम के लिये कठोर, स्निग्ध के लिये रूखे और मीठे कफ के लिये कडुवे पदार्थों का उपयोग करने से कफ शान्त होता है।] [१४८]

वैद्यक शास्त्र मे छ. प्रकार के रस बताये गये है :—मीठा, खट्टा, नमकीन, तिक्त, कडुआ और कषायला। इन छ: मे से मीठा, खट्टा और नमकीन रस कफ को उत्पन्न करने वाला और बढाने वाला होता है। तिक्त, कडुवा और कषायला रस वायु को उत्पन्न करने वाला और बढाने वाला होता है। तिक्त, खट्टा और खारा रस पित्त को उत्पन्न करने वाला और बढाने वाला होता है। मीठा, खट्टा और नमकीन रस वायु को शान्त करता है। मीठा, कडुआ और कषायला रस पित्त को शान्त करता है। कषायला, तिक्त, और कडुवा रस कफ को शान्त करता है। [१४९-१५१]

अजीर्ण चार प्रकार का होता है। आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण विष्टब्धाजीर्ण और रसशेषाजीर्ण। ये अजीर्ण के चार प्रकार है जिनकी पहचान पहले समझ लेनी चाहिये। आमाजीर्ण मे खायी हुई वस्तु की गन्ध डकार मे आती है, क्योकि इसमे खायी हुई वस्तु का रस ही नही बन पाता। विदग्धाजीर्ण की डकार मे धुए की गन्ध आती है। विष्टब्धाजीर्ण मे शरीर टूटता है, आलस्य आता है और उवासिये आती है। रसशेषाजीर्ण मे खाना अच्छा नही लगता, खाने की तनिक भी इच्छा नही होती, भोजन के प्रति अरुचि या विरक्ति हो जाती है। [१५२]

यह निश्चित करने के पश्चात् कि कौन से प्रकार का अजीर्ण है, यदि आम अजीर्ण हो तो वमन (उल्टी) करवाकर पेट साफ करवाना चाहिये। यदि विदग्ध अजीर्ण हो तो छाछ पिलानी चाहिये। यदि विष्टब्ध अजीर्ण हो तो गर्म पानी से सेक करना चाहिये और यदि रसशेष अजीर्ण हो तो आराम से सोकर नीद लेना चाहिये। चारो प्रकार के अजीर्ण की पहचान और उसके दूर करने के उपाय ऊपर बताये गये हैं, क्योकि सब प्रकार के रोग अजीर्ण से ही होते है अत इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। [१५३-१५४]

मालूम होता है कि कुमार को अन्तर्ज्वर (नाडी ज्वर) और अजीर्ण का विकार हुआ है। इन्हे विदग्ध अजीर्ण हुआ लगता है, क्योकि इसी के कुपित होकर

इनके वायु और पित्त दोनो मे एकाएक वृद्धि हुई है। वायु और पित्त दोनो ने मिलकर भीतरी ज्वर उत्पन्न किया है, इसी से सिर मे शूल (दर्द) भी है। शास्त्र में कहा है—

भुक्ते जीर्यति जीर्णेऽन्ने जीर्णे भुक्ते च जीर्यति।
जीर्णे जीर्यति भुक्तेऽन्ने दोषैर्नाभिभूयते ।। [१५५]

खाये हुए अनाज के पच जाने पर खाने से, अजीर्ण होने पर नही खाने से, और पचे हुए अनाज के एकदम पच जाने पर खाने से मनुष्य को किसी प्रकार की व्याधि नही सताती।

विक्रम बोला—मित्र कपोल ! अभी तू बीमारी का निदान नही कर पाया है। वैद्य का कर्त्तव्य है कि बीमार को देखने पर रोग के मूल कारण का पता लगावे। बीमार की विशेष प्रकृति कैसी है, इसका सूक्ष्मता से अन्वेषण करे। उसके शरीर मे बल किस प्रकार का और कितना है, इसका विचार करे। शरीर मे किस प्रकार की कमी है, इसकी जानकारी के लिये शरीर के प्रत्येक अग की ठीक से जाच करे और उसके अनुकूल कौनसी वस्तु है तथा वह पथ्य का सेवन कर सकता है या नही, यह ज्ञात करे। इसमे धैर्य है या नही, कितना धैर्य है, खाने और पचाने की कितनी शक्ति है, व्यायाम करने या चलने-फिरने की शक्ति है या नही और उसकी उम्र कितनी है, यह सब जानना आवश्यक है।

जो रोग के सचय, प्रकोप, प्रसार, स्थान और व्यक्ति भेद की भी जानकारी रखता है वही श्रेष्ठ वैद्य है। यदि रोग को सचय की अवस्था मे ही रोक दिया जाय तो उसका प्रकोप नही हो सकता, पर यदि उसका प्रसार होने दिया जाय तो वह अधिक बलवान हो जाता है। [१५६–१५७]

भाई कपोल ! तुमने तो कुमार की कुछ भी जाच नही की, मात्र उनका मुह देखकर ही 'शरीर मे विकार हैं' अपने पोपले मुह से बड-बड कर बोल गए हो।*

उत्तर मे कपोल ने कहा—भाई विभ्रम ! कुमार की प्रकृति आदि और उसके रोग का सचय आदि सब स्थितियाँ मेरे ध्यान मे हैं।

ग्रीष्म ऋतु मे दिन, रात्रि और अवस्था के अन्त मे जब अजीर्ण होकर समाप्ति की ओर हो तब वायु का प्रकोप होता है। ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ मे, रात्रि के प्रारम्भ मे, दिन के प्रारम्भ मे, उम्र के प्रारम्भ मे (बचपन मे) और अजीर्ण के प्रारम्भ मे कफ का प्रकोप होता है। ग्रीष्म ऋतु के मध्य मे, दिवस के मध्याह्न मे, अर्ध-रात्रि मे और अजीर्ण के मध्य में पित्त का प्रकोप होता है। शरद् ऋतु मे भी पित्त अधिक बलवान होता है, ग्रीष्म ऋतु मे वायु का सचय होता है, वर्षा मे उसका प्रकोप होता है और शरद् ऋतु मे वह शान्त हो जाता है। वर्षा मे

* पृष्ठ ५६५

पित्त का सचय होता है, शरद् ऋतु मे उसका प्रकोप होता है और हेमन्त मे वह शान्त हो जाता है। शिशिर ऋतु मे कफ का सचय होता है, वसन्त मे उसका प्रकोप बढता है और ग्रीष्म मे वह शान्त हो जाता है। [१५८-१५९]

हेमन्त और शिशिर ऋतु प्रायः समान ही है, पर शिशिर मे हेमन्त की अपेक्षा कुछ ठण्ड अधिक बढ जाती है, बादल रहते है और वर्षा की ठण्डी और शुष्क हवा चलती है जो आदानकारी है। [१६०]

यह सब मैने मन मे पूर्ण रूप से सोच-समझ लिया है, पर इस विषय मे अधिक विचार करने से क्या लाभ ? मेरे विचार से तो कुमार को अजीर्ण का रोग ही है।

अहा ! यह कपोल अपने को आयुर्वेद मे बहुत पारगत समझता है, पर वास्तव मे यह कितना मूर्ख है। ऐसा सोचकर कुमार थोडा हँसा। उसकी हँसी को देखकर सभी मित्रो ने एक साथ पूछा—मित्र ! क्या हुआ ? आप क्यो हँसे ?

उत्तर मे कुमार बोला—मैं कपोल की मूर्खता पर सोच रहा था। मैंने अपनी हँसी को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, पर मैं हँसी को रोकने मे सफल न हो सका।

पद्मकेसर ने समयानुसार चुटकी ली, कुमार ! आपकी बडी कृपा हुई। हमे जो काम सिद्ध करना था वह पूर्ण रूप से सिद्ध हो गया। कुमार ! आपके मन के आन्तरिक ताप की शान्ति के लिये और विनोद के लिये ही हम सब ने मिलकर यह हास्य-विनोद और भाषण प्रारम्भ किया था। अर्थात् हम सब कोई गम्भीर वार्ता नही कर रहे थे। [१६१]

कहा भी है कि—

चित्तोद्वेगनिरासार्थं, सुहृदा तोषवृद्धये।
तज्ज्ञा प्रहसन दिव्य, कुर्वन्त्येव विचक्षणा ॥ [१६२]

मित्रो के चित्त के उद्वेग को दूर करने और उसकी सन्तोष एव शान्ति वृद्धि के लिये विचक्षण विद्वान् उच्च प्रकार का हास्य-विनोद करते ही है।

वस्तुत आपके विकार को समूल नष्ट करने की औषध तो वह सन्यासिनी ही जानती है और वह ही इसको सम्पादित (पूर्ण) कर सकती है, अन्य कोई भी आपकी सहायता कर सके ऐसा नही लगता। अत , हे कुमार ! उसको ढु ढवाकर शीघ्र ही बुलवा ले, यही अच्छा है। अब व्यर्थ का विलम्ब करने से क्या लाभ ?

कुमार—भाई पद्मकेसर ! यदि तू जानता है तो फिर अपनी इच्छानुसार उपाय कर।

पद्मकेसर—मित्र ! तो फिर उस तपस्विनी को खोजकर बुलाने किसे भेजू ?

कुमार को अन्य मित्रो पर विश्वास नही था, अत उसने उस तपस्विनी को बुलाने के लिये मेरा (धनशेखर का) नाम प्रस्तावित किया।

मैं वहाँ उपस्थित था ही । मैंने तुरन्त ही कुमार की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया और कहा—'आपकी बडी कृपा ।' ऐसा कहकर मैं तत्काल ही तपस्विनी को बुला लाने के लिये निकल पडा ।

५. निमित्तशास्त्र : हरिकुमार-मयूरमंजरी सम्बन्ध

[लतामण्डप मे हरिकुमार को छोडकर, उसकी इच्छानुसार तपस्विनी को ढूढकर लाने के लिये निकला हुआ धनशेखर (ससारी जीव) अपनी कथा को आगे चलाते हुए सदागम के समक्ष अगृहीतसकेता से कहता है ।]

मैं जिस समय लतामण्डप से बाहर निकला और नगर की तरफ बढा, उसी समय मुझे रास्ते मे वह तपस्विनी दिखाई दे गई । मैंने उसे प्रणाम किया और पूछा—भगवति ! उस चित्रपट की क्या कथा है ? उसमे किस कन्या की छवि है ? आप इतनी शीघ्र वहाँ से क्यो चली आईं ?

परिव्राजिका का स्पष्टीकरण

तपस्विनी ने मेरा प्रश्न सुनकर कहा—सुनो, आज प्रात. उषाकाल मे मैं भिक्षा के लिये निकली थी । तुम्हे ज्ञात ही है कि रत्नद्वीप के महाराजा नीलकण्ठ की शिखरिणी नामक एक महारानी है । मैं भिक्षा के लिये उसी के राजमहल मे प्रविष्ट हुई तो मैंने देखा कि महारानी शिखरिणी बहुत चिन्ताग्रस्त है और उसकी चिन्ता से पूरा परिवार उद्विग्न है । सभी कुमारियाँ शोकाकुल, सभी कचुकी घबराये हुए और वृद्ध स्त्रियाँ आशीर्वादातुर दिखाई पडी । यह देखकर मैंने सोचा कि इतनी चिन्ता और शोक का क्या कारण हो सकता है ?* इतने मे ही शिखरिणी रानी स्वय चलकर मेरे पास आई । मैंने उसे आशीर्वाद दिया और उसने मुझे सिर झुका कर प्रणाम किया । मुझे एक सुन्दर आसन पर बिठाकर महारानी बोली—भगवति बन्धुला ! आप जानती ही है कि मेरी पुत्री मयूरमजरी मुझे प्राणो से भी अधिक प्यारी है । उसके आनन्द मे मेरी शान्ति, उसकी क्रीडा मे मेरा वैभव और उसके सुख मे मेरा जीवन है । न जाने किस कारण से आज प्रात से ही वह चिन्ताग्रस्त है । उसके मन मे किसी प्रकार की व्यग्रता है जिससे वह घबराई हुई और विकारग्रस्त सी लग रही है । वह ऐसी लग रही है जैसे वह शून्यचित्त हो गई हो । उसके मुह से ऐसा लग रहा है मानो उसे तीव्र ज्वर आया हो । राजकन्या के

* पृष्ठ ५६६

करने योग्य सभी कार्यों का उसने त्याग कर दिया है। वात यहाँ तक वढ गई है कि वह जो नियमानुसार प्रतिदिन देव-गुरु को नमस्कार करती थी, आज उसने वह भी नही किया है। उसने रात के पहने हुए कपड़े भी नही बदले हैं, प्रतिदिन प्रातः पहनने के आभूषणो को छुआ भी नही है, न विलेपन किया है और न पान ही खाया है। स्वनिर्मित अपने बाल उद्यान की देखभाल स्वय प्रतिदिन करती है वह भी आज भूल गई है। अपनी सहेलियो को साधारण मान भी नही देती, अपने पाले हुए तोता मैना की देखभाल भी नही करती और गेद क्रीडा भी नही करती। मात्र विद्याधरो के जोडो का चित्र बनाती है, सारसो के जोड़ो को देखती है, वार-वार द्वार की तरफ दौडती है और बार-बार अस्फुट शब्दो मे आत्मनिन्दा करती है। सखियो पर विना कारण क्रोध करती है तथा कुछ पूछने पर उत्तर ही नही देती, मानो सुना ही न हो। मै उसके बारे मे अधिक क्या बताऊ? मानो यह पागल हो गई हो, शून्यचित्त हो गई हो या उसे भूत लग गया हो। मानो यह मयूरमजरी न होकर कोई अन्य लडकी हो। [१६३] आज प्रात. से ही उसके व्यवहार में इतना बडा अन्तर आ गया है। उसकी ऐसी अवस्था देखकर मेरा मन न जाने कैसा-कैसा हो रहा है। भगवति देवि! आप तो निमित्तशास्त्र मे अतिनिपुण है, आप देखकर वताये कि यह किस विषय मे सोच रही है? साथ ही यह भी बतावे कि यह जिस विपय मे सोच रही है, वह उसे प्राप्त होगी या नही? यदि प्राप्त होगी तो कव तक?

निमित्त-शास्त्र

मैने उत्तर मे रानी से कहा—मै देखकर बता रही हू। भाई घनशेखर! फिर मैने लग्न निकालने प्रारम्भ किये। प्रथम मगल के लिये सिद्धि पद लिखा, फिर विशेषमंगल के लिये देवी सरस्वती का मुख कमल बनाया, फिर ध्वजा आदि आठो आयो को बनाया, साथ ही स्त्री हृदय की कुटिलता को प्रकट करने वाली तीन गोमूत्रिकाये (आडी-टेढी लकीरे) खीची। गणना करके आठो आयो को उनके स्थान पर रखा। गणना मे जो बचा उसके अनुसार तीन-तीन अक लिखे, (इन अको के अनुसार ही फलादेश प्राप्त होता है)। इस प्रकार सर्वगणना करने के साधनो को प्रयुक्त कर मैने महारानी से कहा—

निमित्तशास्त्र मे ध्वज, धूम्र, सिह, श्वान, वृषभ, खर, हस्ति और वायस, ये आठ प्रकार की आये होती हैं। इन आठ आयो के आठ प्रकार के बल होते है जैसे काल, दिवस, समय (अवसर), मुहूर्त, दिशा, नक्षत्र बल, ग्रहबल और निसर्गबल। हे महादेवि! प्रस्तुत प्रयोजन मे यहाँ जो आये बनी है, उनके परिणामस्वरूप ध्वज, खर और वायस आय प्राप्त हुई है, इनका फल मै बताती हूँ। निमित्तशास्त्र कहता है कि इन तीन मे से पहली आय यह बताती है कि चिन्ता किस विषय मे है, दूसरी आय से उसके अच्छे-बुरे फल का पता लगता है और तीसरी आय से परिणाम कव फलित होगा, इसका पता लगता है। [१६४-१६७]*

---

* पृष्ठ ५६७

प्रथम आय मे यदि श्वान, ध्वज या वृषभ आये तो चिन्ता किसी जीवित प्राणी के सम्बन्ध मे है, ऐसा समझना चाहिये । यदि प्रथम आय मे सिंह या वायस आये तो चिन्ता मूल स्थान (किसी नगर, ग्राम आदि) के बारे मे है और यदि प्रथम आय मे धूम्र, हस्ति या खर आये तो चिन्ता किसी धातु के सम्बन्ध मे है ऐसा समझना चाहिये । [१६८]

यहाँ प्रथम आय मे ध्वज आया है अत. मयूरमजरी किसी जीवित प्राणी के सम्बन्ध मे सोच रही है, ऐसा प्रतीत होता है । उस आय के काल और समय आदि की गणना करने से वह प्राणी पुरुष होना चाहिये । मेरी गणना के अनुसार वह राजपुत्र है और उसका नाम हरि है । यहाँ धूम्र पर खर आय आई है अत उस पुरुष की प्राप्ति अवश्य होगी, क्योकि निमित्तशास्त्र मे कहा गया है कि ध्वज पर खर आवे तो स्थान बनाता है, धूम्र पर खर आवे तो अवश्य ही लाभ की प्राप्ति होती है और सिंह पर खर आवे तो नाश होता है । अन्य किसी भी आय पर खर आने से मध्यम फल की प्राप्ति होती है । [१६९]

लाभ कितने समय मे मिलेगा, इसका पता तीसरी आय से चलता है । यहाँ तीसरी आय मे वायस है, अत· मेरी गणनानुसार लाभ की प्राप्ति आज ही होनी चाहिये । निमित्तशास्त्र के अनुसार यदि तीसरे पद मे ध्वज या हस्ति की आय हो तो फल प्राप्ति एक वर्ष मे होती है, वृषभ या सिंह की आय हो तो एक माह मे, श्वान या खर की आय हो तो एक पक्ष मे और धूम्र या वायस की आय हो तो एक दिन मे (उसी दिन) फल मिलता है । [१७०]

भाई ! मेरी बात सुनते ही रानी की चिन्ता दूर हुई । उसे मेरी बात पर विश्वास हुआ और समझ गई कि इच्छित जामाता (जवाई) का लाभ शीघ्र ही प्राप्त होगा । अत· मेरे पाँव छूकर रानी शिखरिणी बोली—भगवति ! आपने मुझ पर बडी कृपा की । आपने जो कहा वह सत्य है । मेरी पुत्री मयूरमजरी की प्रिय सखी लीलावती अभी-अभी कह रही थी कि आज प्रात हरिकुमार लीलासुन्दर उद्यान की ओर अपने मित्रो के साथ जा रहा था तब मजरी ने उसे देखा था । मजरी काफी समय तक उसे एक-टक देखती रही, पर किसी भी सयोग से कुमार की दृष्टि मयूरमजरी पर नही पडी, अर्थात् कुमार ने उसे नही देखा । लीलावती यह भी कह रही थी कि कुमार के प्रति उसके मन में प्रेमाभिलाषा जाग्रत हुई, पर यह प्रेम पूरा हो सकेगा या नही ? इसी चिन्ता मे उसकी यह अवस्था हुई है । अब आपने अपने ज्ञान चक्षु से जो कुछ देखा है, वैसा ही इन दोनो का मिलन भी हो जाये, ऐसा करने की कृपा भी आप ही करे ।

भाई ! मैने रानी से कहा कि कुमार का क्या अभिप्राय है इसका मुझे पहले पता लगाने दे । इस पर रानी बोली कि आप तो सब जानती हैं, इस विषय मे आपको अधिक क्या कहूँ ? फिर मैने चित्रपट पर मयूरमजरी की छवि चित्रित की । वह चित्र लेकर मै लीलासुन्दर उद्यान में आई । वहाँ हरिकुमार को देखकर

वह चित्रपट मैने उसे दिया और उसके मुख पर कैसे भाव आते है, यह देखती रही। मुझे लगा कि इसके मन मे भी मजरी के प्रति प्रेमाभिलाषा जाग्रत हुई है। फलत मेरा कार्य पूर्ण (सिद्ध) हो गया। तत्पश्चात् महारानी को यह सवाद देने तथा इस सम्बन्ध मे और क्या करना चाहिये यह पूछने के लिये मै तुरन्त ही वहाँ से लौट आई। मैंने महादेवी से कहा—'हरिकुमार तो अब मेरी मुट्ठी मे है, अब इस विषय मे और क्या करना चाहिये वह बताओ।' शुभ सवाद सुनकर महारानी बहुत प्रसन्न हुई और अपनी पुत्री से कहने लगी—'पुत्रि मयूरमंजरी! भगवती तपस्विनी ने जो कुछ कहा वह तू ने सुना या नही? अब तुझे अपना * हृदयवल्लभ अवश्य मिलेगा।' मयूरमजरी ने बात सुनी पर उसे पूर्ण विश्वास नही हुआ, अत. वह लजाती हुई बोली—'ओ माताजी! क्यो बिना सिर-पैर की बात कर मुझे ठग रही है।' महारानी समझ गई कि मयूरमजरी को अभी विश्वास नही हुआ है। अब समय नष्ट करने मे कुछ सार नही है ऐसा विचार कर वह शीघ्र ही महाराजा नीलकण्ठ के पास गई और उन्हे सब समाचारो से अवगत कराया। मयूरमजरी के साथ हरिकुमार का सम्बन्ध हो यह बात महाराजा को भी पसन्द आई। इस विवाह-सम्बन्ध को बिठाने और कुमार को यहाँ लाने के लिये ही राजा-रानी ने मुझे अभी-अभी भेजा। हे भाई! यही चित्रपट का वृत्तान्त है। चित्रालेखित राजकन्या मयूरमजरी ही है और मैं इसी प्रसग मे प्रयत्नशील हूँ।

मयूरमंजरी आलेखित चित्रपट-द्वय

फिर मैंने तपस्विनी से पूछा—देवि! आपने हाथ मे क्या ले रखा है?

उत्तर मे तपस्विनी बन्धुला ने कहा—मंजरी के हाथो से चित्रित ये दो चित्र हैं।

मैंने पूछा—यह तो ठीक है, पर चित्र साथ मे लाने का क्या प्रयोजन है?

तपस्विनी ने स्पष्ट उत्तर दिया—सभव है कुमार को मेरे वचन पर विश्वास न हो तो उसकी शका को दूर करने के लिये मजरी के मनोभावो को प्रकट करने वाले ये चित्र हैं। अर्थात् कुमार की शका को दूर करने के लिये ही मैं इन्हे साथ लायी हूँ। यदि आवश्यकता होगी तो उनका उपयोग करूंगी।

मैंने कहा—भगवती देवी ने सब काम बहुत ही सुन्दर किया है। आपने अपनी व्यवस्था से कुमार को जीवन दान दिया है।

फिर मै तपस्विनी के साथ उद्यान में हरिकुमार के पास आया। तपस्विनी बन्धुला ने इस विषय मे राजाज्ञा को कह सुनाया। तपस्विनी ने मुझे जो विस्तृत वर्णन सुनाया था वह भी मैंने कुमार को सुना दिया, किन्तु उसे फिर भी विश्वास नही हुआ। उसे लगा कि उसकी चिन्ता दूर करने के लिये ही यह सब कृत्रिम नाटक

* पृष्ठ ५६८

रचा गया है। तब उसके मन मे विश्वास जमाने के लिए तपस्विनी ने कपडे पर कपड़े मे लिपटे हुए वे चित्र उसे दिखाये। कपडा हटाकर कुमार चित्र देखने लगा। प्रथम चित्र मे एक अति सुन्दर समान लम्बाई और समान वय वाले विद्याधर-दम्पत्ति को उज्ज्वल रगो मे चित्रित किया गया था। वस्त्रावृत अग के उन्नत-अवनत अवयवो की रमणीय सयोजना और उचित प्रकार से पहनाये गये आभूषण इतने स्पष्ट थे कि बारीक से बारीक रेखा भी स्पष्ट झलक रही थी। इस युगल के अवयवो की रचना छोटे-छोटे बिन्दुओ से ऐसी विलक्षण बनाई गई थी कि नूतन प्रेमरस की उत्सुकता स्पष्टत झलकती थी। विद्याधर-दम्पत्ति प्रेम से एक-दूसरे को हर्षोत्फुल्ल दृष्टि से इस प्रकार देख रहे थे मानो अत्याकर्षक प्रेम का साम्राज्य उनकी आँखो मे समा गया हो, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता था। चित्र के नीचे द्विपदी छन्द में लिखित निम्न कविता को भी कुमार ने पढा :—

प्रियतमरतिविनोदसम्भाषणरभसविलासलालिता.।
सततमहो भवन्ति ननु धन्यतमा जगतीह योषित: ।।१७१।।

अभिमतवदनकमलरसपायनलालितलोललोचना:।
सुचरितफलमनर्घ्यमनुभवति शमियमम्बरचरी यथा ।।१७२।।

अपने हृदयवल्लभ प्रियतम के साथ प्रेमरति, विनोद, भाषण, प्रेमोत्साह और विलास से सतत लालित स्त्रियाँ इस ससार मे वास्तव मे विशेष भाग्यशालिनी होती हैं। इस विद्याधरी की भाँति ऐसी स्त्रियाँ स्वकीय मनपसन्द पुरुष को अपने मुखकमल के रस का पान करवाकर अपनी आँखो को तृप्त करती हुई पूर्व-पुण्य के फलस्वरूप अमूल्य सुख का अनुभव करती हैं।

प्रथम चित्रपट को देखने के पश्चात् कुमार दूसरा चित्र देखने लगा। इस दूसरे चित्र मे एक राजहसिनी चित्रित की गई थी। वन मे लगे दावानल मे दग्ध वनलता जैसी, अत्यन्त हिमपात से काली पडी हुई कमल के डठलो जैसी, प्रभात के सूर्योदय से लुटी हुई कान्तिहीन चन्द्रकला जैसी, टूटी और कुमलायी हुई आम्रमजरी जैसी, सर्वनाश-प्राप्त कृपण स्त्री जैसी, सर्व प्रकार की कान्ति और तेज से रहित, अत्यन्त शोक के कारण समस्त अवयवो से दुर्बल बनी हुई और कण्ठ तक प्राण आ गये हो ऐसी यह राजहसिनी दिखाई दे रही थी। इस चित्र के नीचे भी द्विपदी खण्ड (निम्न कविता) लिखी थी :—*

इयमिह निजकहृदयवल्लभतरदृष्टवियुक्तहसिका ।
तदनुस्मरणखेदविधुरा बत शुष्यति राजहसिका ।।१७३।।

रचितमनन्तमपरभवकोटिषु दु:सहतरफल यया।
पापमसौ नितान्तमसुखानुगता भवतीदृशी जन ! ।।१७४।।

---

* पृष्ठ ५६६

जैसे अपने प्रिय के वियोग में प्रिया उसे बार-बार स्मरण कर अधिकाधिक शोक करती हुई सूख जाती है वैसे ही यह राजहसिनी अपने हृदय में बसे हुए प्रिय को एक बार देखने के पश्चात् उसके वियोग मे सूख कर काटा हो रही है। हे मानवो ! अन्य करोड़ो भवो मे जिसके फल को सहन करना पडे ऐसे अनन्त पाप करने वाले मनुष्य को ही ऐसी दु खद अवस्था प्राप्त होती है।

ये दोनो चित्र देखकर और उनके नीचे लिखे छन्दो को पढकर हरिकुमार के मन मे यह बात घर कर गई कि, अहो ! राजकुमारी बहुत ही कुशल और रसिक जान पडती है। अहो ! इसके चातुर्य से लगता है कि इसमे रहस्य के सार को ग्रहण करने की अद्भुत शक्ति है। अहो ! अपना सद्भाव अन्त करण-पूर्वक अर्पण करने की शुद्ध बुद्धि भी उसमे स्पष्ट दिखाई देती है। सच ही ऐसा लग रहा है कि उसके मन मे मेरे प्रति दृढ प्रेम है। इसका कारण यह है कि इसने प्रथम चित्र मे विद्याधर-दम्पत्ति को चित्रित कर उसने अपने अन्त करण की गहनतम अभिलाषा को अभिव्यक्त कर दिया है और दूसरे चित्र मे विरही राजहसिनी को चित्रित कर उसके माध्यम से उसने यह प्रकट कर दिया है कि अभिलषित वस्तु के न मिलने पर उसकी दशा कैसी दीन हो सकती है। इसने चित्रो मे ही उक्त भाव इतनी सुन्दरता से अकित कर दिये है कि इससे उसके मनोभाव स्पष्टत: व्यक्त हो जाते है। फिर चित्र के नीचे छन्द लिख कर तो उसने उन भावार्थो को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है।

तत्पश्चात् कुमार ने अपने पास बैठे हुए मन्मथ आदि मित्रों को चित्र दिखाये। मित्र तो उसके मन की वात पहले ही जानते थे, अत· वे एकदम बोल पडे—अरे कुमार ! मित्र !! उठ, उठ !! शीघ्र जाकर उस बेचारी राजहसिनी को धैर्य बंधा, उसमे शान्ति आप्लावित कर और उसे उसकी धारणा मे स्थिर कर। किसी मृत्यु को प्राप्त होने वाले व्यक्ति की उपेक्षा करना ठीक नही है।

उत्तर मे कुमार ने मात्र इतना ही कहा—अच्छा, ऐसी बात है तो चलो ऐसा ही करे।

परिणय

उसके पश्चात् सभी राजभवन में गये। नीलकण्ठ महाराज ने बहुत मानपूर्वक अपनी प्रिय पुत्री मयूरमजरी हरिकुमार को अर्पित की। उसके पश्चात् शुभ लग्न पर हरिकुमार और मयूरमजरी का लग्न महोत्सव बहुत आडम्बरपूर्वक मनाया गया।

इस उत्सव के अवसर पर अनेक मनुष्य मधुर रसपान से मस्त होकर लस्तपस्त हो गये। अनेक लोगो को उनकी इच्छा के अनुसार दान मे धन दिया गया। यह लग्न इतना सुन्दर हुआ कि देवता भी इससे अत्यन्त विस्मय और आनन्द को प्राप्त हुए। लोग उस समय नाचने और खाने-पीने मे अत्यन्त मग्न हो गये।

फिर बहुत आडम्बरपूर्वक देव-गुरु की पूजा की गई। सामन्तो को सन्मानित किया गया, परिजन, प्रेमीवर्ग को पहरावणी (वस्त्राभूषण) दी गयी, राज्य कर्मचारियो को प्रसन्न किया गया, प्रधान वर्ग अथवा प्रजाजनो को सन्तुष्ट किया गया और ऐसे अन्य सभी करणीय कृत्य किये गये। इस प्रकार विवाह का आनन्द चारों ओर प्रसरित हो गया।

६. मैथुन और यौवन के साथ मैत्री

नीलकण्ठ राजा को मयूरमजरी अपने प्राणो से भी अधिक प्यारी थी। इस सर्वांगसुन्दरी प्रेमनिपुणा मयूरमंजरी को अपनी पत्नी के रूप मे प्राप्त कर हरिकुमार अपनी मित्र-मण्डली के साथ अपना समय आनन्दपूर्वक व्यतीत करने लगा। उस समय रत्नद्वीप मे उसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। नीलकण्ठ के पुत्र नही था अत: पूरा परिवार और सम्बन्धीजन कुमार पर मुग्ध थे। कुमार के अनेक गुण उन्हे आनन्दित करते थे, अत सभी उसके प्रति विशेष आकर्षित होते गये। यहाँ तक कि समग्र अन्त.पुर, नगर निवासी और राज्यमण्डल भी कुमार पर मुग्ध होने लगा, उसके नाम से सतोष प्राप्त करने लगे और उसके लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर हो गये। [१७६–१७९]

हे अगृहीतसकेता ! इधर कुमार मुझ पर इतना अधिक स्नेह रखता था कि मे एक क्षण भर भी उसे छोड नही सकता था और उसे भी मेरा पलभर का वियोग भी सहन नही होता था। मुझ पर सद्भावपूर्वक सच्चा स्नेह रखने वाला मेरा अन्तरग मित्र भाग्यशाली पुण्योदय मेरे साथ था, उसी के प्रताप से मेरा कुमार के साथ इतना प्रगाढ स्नेह-बन्धन हो गया था। [१८०–१८१] इसी पुण्योदय के प्रताप से कुमार के साथ रहकर मुझे अनुपम विषय सुख भोगने को मिल रहे थे, देवताओ को भी दुर्लभ विलास के साधन प्राप्त हो रहे थे, उत्तमोत्तम पुरुष भी जिसकी कामना करे ऐसी सत्सगति प्राप्त हो रही थी* और मेरे ज्ञान एव बुद्धि मे वृद्धि हो रही थी। लोगो मे मेरे यश का डका बज रहा था और मेरे गौरव मे सचमुच वृद्धि हो रही थी।

धनशेखर के संकल्प-विकल्प

हे भद्रे ! मुझे सब प्रकार की अनुकूलताए होते हुए भी सागर (लोभ) मित्र की प्रेरणा से मेरे मन मे अनेक नये-नये सकल्प-विकल्प होते रहते थे।

* पृष्ठ ५७०

[१८२] मैं सोचता कि हरिकुमार से मेरी मित्रता मेरे धन कमाने के काम मे विघ्न पैदा करने वाली है। मेरे ग्रह अच्छे नही लगते। जान-बूझकर मैंने यह व्यर्थ का अनर्थ खड़ा किया है। इस कुमार ने तो मुझे बिना पैसे का नौकर बना लिया है। मै यहाँ रत्न एकत्रित करने आया था, पर अपनी इच्छानुसार रत्न एकत्रित नही कर सका। यह तो लोकप्रसिद्ध जनश्रुति (कहावत) मेरे ऊपर ही घटित हो गई है—"गधे को समस्त सुख देने वाला स्वर्ग तो मिल गया पर वहाँ भी हाथ मे रस्सी लिए एक धोबी उसे मिल ही गया।" ('भाग्य दो कदम आगे चलता है' वाली कहावत चरितार्थ हुई।) मैं तो बिना किसी विघ्न के यहाँ रत्न एकत्रित करने आया था, पर यहाँ भी मुझे उक्त गधे के समान विघ्नरूप यह कुमार मित्र मिल गया। [१८३–१८४]। अब मै इसको एकाएक छोड़ भी नही सकता, क्योकि यह राजपुत्र है, शक्तिशाली है और यदि यह मेरे ऊपर क्रुद्ध हो गया तो मेरा सर्वनाश कर देगा। अतः अब मुझे कभी-कभी इससे दूर रहना चाहिये, कभी-कभी पास रहना चाहिये, कभी-कभी साधारण मिलन नमस्कार और कभी-कभी उसके मन को अनुरंजित करने वाले कार्य करने चाहिये। मुझे अब किसी भी प्रकार रत्न इकट्ठे करने हैं, इस कार्य मे मेरी एकनिष्ठता और मेरे स्वार्थ मे विघ्न न पडे ऐसा ही व्यवहार मुझे कुमार के साथ करना चाहिये। [१८५–१८६]

मैंने अपने मन में धन एकत्रित करने की जो उपरोक्त धारणा बनाई उसे मैंने कार्यरूप मे भी परिणत किया। बहुत प्रयास के पश्चात् मैं रत्नो का प्रचुर सग्रह करने मे सफल हुआ। इन रत्नो पर मुझे इतनी गाढासक्ति और उसके प्रति इतना मोह बढा कि मेरी चेष्टाये और व्यवहार को देखकर विवेकी पुरुष हंसने लगे। इस रत्न-राशि पर अत्यन्त मूर्छाग्रस्त होकर इन रत्नो को कभी मैं आँखे फाड़-फाड कर बार-बार देखता, कभी उन पर हाथ फेरता, कभी हाथ मे लेकर उछालता और कभी छाती से चिपका कर प्रसन्नता से खिल उठता। कभी गड्ढा खोदकर उसमे गाड देता और उस पर सैकडो प्रकार के निशान बनाता। फिर सोचता कि मुझे यहाँ रत्न गाडते हुए किसी ने देख तो नही लिया? इस शका से रत्नो को फिर उस गड्ढे मे से निकालकर दूसरे स्थान पर गाड़ता और फिर उसके ऊपर दूसरे प्रकार का निशान बनाता। समय-समय पर बार-बार जाकर उन निशानो का निरीक्षण करता। मुझे किसी का विश्वास न होता। अविश्वास के कारण रात मे नीद नही आती और दिन मे चैन नही पडता। हे भद्रे! सागर मित्र के दोष के कारण मुझे धन पर ऐसी मूर्छा, गाढ आसक्ति, राग और मोह हो गया। अब मै कभी-कभी समय निकाल कर कुमार के पास चला जाता और उसके मन को आनन्दित कर लौट आता। शेष अधिक समय घर पर ही रहकर अधिकाधिक रत्न इकट्ठे करने की योजना बनाता रहता। रत्नोपार्जन करने मे मै इतना लोलुप बन गया कि मेरी पूरी लगन उसी ओर लग गई और मै उसी के सपने देखने लगा। मैं सोचने लगा कि रत्नद्वीप मे जितने रत्न हैं उन सब रत्नो को इकट्ठे कर उन्हे अपने देश ले जाऊ। [१८७–१९३]

यौवन और मैथुन के साथ मैत्री

भद्रे ! मै जब रत्नद्वीप मे था तब एक और अप्रत्याशित घटना घटित हुई, वह सुनाता हूँ, सुनो । तुम्हे स्मरण होगा कि कर्मपरिणाम महाराजा की त्रिभुवन मे प्रसिद्ध कालपरिणति नामक महारानी है ।* उसके अत्यन्त रसिक दो विशेष दास हैं जिनके नाम यौवन और मैथुन हैं । उन दोनो मे एक बार निम्न वार्तालाप हुआ । [१६४–१६६]

यौवन–मित्र मैथुन ! ससारी जीव इस समय अपने वश मे है । तुम्हारे ध्यान मे होगा कि इस समय वह घनशेखर के नाम और रूप से जाना जाता है । मुझे लग रहा है कि अब तुम्हारा भी उसके पास जाने का समय आ गया है । अभी अच्छा अवसर है, अत: चलो हम उसके पास चले । [१६७–१६८]

मैथुन–भाई यौवन ! यदि ऐसी बात है तो वह घनशेखर जहाँ पर है वहाँ मुझे ले चल और उसके साथ मेरा परिचय करवादे । मुझे तेरे साथ चलने मे बहुत आनन्द आयेगा । [१६६] ।

यौवन–मित्र ! मैं पहले भी उसके पास गया था, उस समय उसने मेरा योग्य सन्मान किया था और मेरी सेवना भी की थी । मै अवश्य ही तुझे उसके पास ले चलूगा और उससे तेरा परिचय करा दूगा । यह घनशेखर ऐसी प्रकृति का है कि इसके साथ सम्बन्ध जोडने मे आनन्द आयेगा । [२००]

इस प्रकार बातचीत कर वे दोनो अन्तरग मित्र यौवन और मैथुन मेरे पास आ पहुँचे । फिर यौवन मुझसे बोला—भाई घनशेखर ! आज मै अपने साथ अत्यन्त प्रेमालु एक मित्र को लाया हूँ । यह बहुत अच्छा है और मित्रता करने योग्य है । मेरे समान ही समझ कर तुम इसके साथ मित्रता करो । मेरी उपस्थिति मे इस मित्र के आने पर तुझे बहुत ही आनन्द प्राप्त होगा । मेरा यह मित्र बहुत सुख देने वाला और लहर मे मस्त करने वाला है । अथवा बछड़े वाली दुधारू गाय के इतने अधिक गुण गाने की आवश्यकता ही क्या है ? [२०१–२०३]

मित्र यौवन, जिसे मै पहले से ही जानता था, उपरोक्त बात कह कर चुप हो गया । हे भद्रे ! वास्तविकता तो यह थी कि ये दोनो मित्र महाभयकर अनन्त दु:खो के खड्डे मे धकेलने मे कारणभूत थे, परन्तु मोहराजा के दोष से बँधा हुआ विपरीत विचारो से प्रतिबद्ध मै उस समय यह नही समझ सका । सागर के साथ मेरी मित्रता करवाकर भाग्य चुप नही हुआ, मेरी विडम्बना कुछ बाकी थी उसे पूर्ण करने के लिए अब मेरी मैत्री मैथुन से करवाई गई । कहावत है कि "जब ऊट भार से दबकर मुख से बूम मार रहा हो तब भी उस समय यदि अधिक भार उसकी पीठ पर न समा सके तो थोडा बोझ उसके गले मे भी बाँध दिया जाता है । [२०४–२०६]

---

* पृष्ठ ५७१

हे भद्रे ! यौवन की वात सुनकर मै मोह-विह्वल हो गया, मन मे उनके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ और मैने दोनो को अपने विशेष मित्रो के रूप मे स्वीकार कर लिया तथा उन्हे भी सूचित कर दिया कि अब मै उनके प्रति सच्ची प्रीति रखू गा। मेरे अन्तरग राज्य के स्वान्त नामक भवन के स्थान पर उसके अधिपति के रूप मे मैने मैथुन मित्र की स्थापना कर उसे आश्रय दिया और स्वान्त नामक महल के पास ही गात्र नामक (शरीर) महल के स्थान पर यौवन मित्र को स्वामी के रूप मे नियुक्त किया। [२०७-२०९]

यौवन और मैथुन का प्रभाव ? कुकर्मों में प्रवृत्ति

उसके पश्चात् ये दोनो मेरे शरीर के भीतर अपने-अपने स्थान पर रहकर, मेरे द्वारा लालित-पालित होकर अपने शौर्य का मुझ पर प्रभाव दिखाने लगे। हे भद्रे ! यौवन मुझ मे क्रीड़ा, विलास, प्रहसन, हास्य, चुटकले और वीरता आदि मन को हरण करने वाले अनेक गुण उत्पन्न करने लगा। हे भद्रे ! मैथुन ने मेरे पर ऐसा प्रभाव डाला कि मै सैकडो स्त्रियो के साथ भोग-विलास करू तब भी मेरा मन नही भरे। जैसे दावानल मे कितनी ही लकडी डालने पर भी उसका पेट नही भरता वैसे ही कितनी ही स्त्रियो के साथ मैथुन सेवन करने पर भी मुझे तृप्ति नही होती।* फिर मैथुन मित्र ने मुझे नगर की सब से सुन्दर वेश्या के साथ भोग भोगने के लिये प्रेरित किया, पर मेरा पुराना अन्तरग मित्र सागर जो धन का लोभी था, मुझे समझाता रहा कि ऐसा नही करना, क्योकि ऐसा करने से धन की हानि होगी और एकत्रित पूजी विनाश को प्राप्त होगी। इस प्रकार एक तरफ मैथुन मुझे विलास करने की आज्ञा देता तो दूसरी तरफ सागर मुझे धन का लोभ दिखला कर रोकता। मै बहुत नाजुक स्थिति मे आ गया, "एक तरफ नदी तो दूसरी तरफ व्याघ्र" वाली मेरी दशा हो गयी। मै घबरा गया। हे भद्रे ! सागर मित्र पर मुझे अधिक प्रेम था, वह मुझे सब से प्यारा था, उसके प्रति मेरा अधिक आकर्षण था, पर साथ ही मैथुन की आज्ञा का उल्लघन करने मे भी मै असमर्थ था। अन्त मे दोनो के दबाव मे आकर मै एक अप्रत्याशित दारुण कर्म कर बैठा, क्योकि मेरी इच्छा दोनो की आज्ञा मानने की थी। [२१०-२१६]

दोनो मित्रो को प्रसन्न रखने के लिए मैने सोचा कि कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे मेरी मैथुन-सेवन की इच्छा भी तृप्त हो और धन भी खर्च न करना पड़े। इसके लिए मै बाल-विधवा, परित्यक्ता, प्रोषितभर्तृका (जिसका पति परदेश गया हो), भक्त-स्त्रियो या बिना पैसा लिए अथवा नाम मात्र का पैसा लेकर वश मे होने वाली स्त्रियो के साथ भोग भोगने का विचार करने लगा। सागर मित्र के भय से और मैथुन की आज्ञा मानने के लिए मैने न तो कार्य-अकार्य का विचार किया और न लोकलाज से ही डरा तथा बिलकुल पागल की तरह ऐसी

* पृष्ठ ५७२

स्त्रियो को ढू ढ-ढू ढ कर उनके साथ मैथुन सेवन करने लगा । इस प्रकार के व्यवहार से मैने अपनी मर्यादा का त्याग कर दिया और निर्लज्ज होकर ढेढणी और भंगिन जैसी ओछी स्त्रियो में भी सगम की कामना से भटकने लगा । मुझ से मैथुन सेवन किये विना रहा नही जाता और उसके लिए पैसे भी खर्च नही करने थे, अत. मै जघन्य कुकर्म मे प्रवृत्त हो गया । हे भद्रे ! इस प्रकार अग्राह्य और नीच स्त्रियो मे भटकने से मेरी बहुत निन्दा हुई और उन स्त्रियो के सम्बन्धियो ने मेरा बहुत अपमान किया, मुझे वहुत मारा और समाज मे मेरी बहुत अपकीर्ति हुई । मै हरिकुमार का मित्र था और उस समय तक मेरा अन्तरग मित्र पुण्योदय मेरे साथ था इसलिये उन स्त्रियो के सम्बन्धियो ने मुझे जान से नही मारा और न मुझे दण्ड ही दिलाया । परन्तु, इस मैथुन मित्र के प्रसग से मै समाज मे अत्यन्त तिरस्कृत और विवेकवान शिप्टजनो का निन्दापात्र बना । फिर भी हे सुलोचने ! मै मूढचित्त यह मानता रहा कि यह मैथुन मित्र मुझे महान सुख देने वाला है, निष्कामवृत्ति से प्रेम रखने वाला है और आनन्द की मस्ती मे झुलाने वाला है । उस समय मुझे निश्चित रूप से यही लगता था कि इस ससार मे जिसे मैथुन नही मिला उसका जीवन ही क्या है ! अथवा उसका जीना और नही जीना वराबर है । जीवित भी वह मुर्दा ही है । उस समय मुझे मैथुन पर इतना अधिक प्रेम था और मै उस पर इतना आसक्त था कि मुझे वह गुणों का पुञ्ज ही दिखाई देता था, उसमे एक भी दोष दिखाई नही पडता था । ऐसी विपरीत बुद्धि के कारण मुझे मैथुन पर वहुत प्रेम था । वह मेरा अत्यन्त प्यारा मित्र था । फिर भी उससे भी अत्यधिक मेरा प्रिय मित्र तो सागर ही था ।

[२१७–२२६]

हे पापरहित अगृहीतसकेता ! उस समय मै यही समझ रहा था कि सागर मित्र की कृपा से ही देवो को भी अप्राप्य माणक रत्नो के ढेर मुझ गरीब को मिले है, अत· वह धन्यवाद का पात्र है । सागर और मैथुन मुझे ऐसी कई दु.खपूर्ण पीडाए पहुँचाते फिर भी मै मूर्खता के कारण उनमे आनन्द मानता था और यह समझ कर कि मेरे जैसा दूसरा कोई नही है । मै रत्नद्वीप मे ही रहता रहा । [२२७–२२८]

७. समुद्र से राज्य-सिंहासन

[हरिकुमार निर्दोष आनन्द-विलास करता हुआ, समय-समय पर मेरी मित्रता का लाभ लेता हुआ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहा था। मैं सागर के प्रताप से रत्न इकट्ठे कर रहा था और मैथुन के असर से स्त्रियो मे भटक रहा था। सागर का मुझ पर अधिक प्रभाव था, पर विलास मे मुझे आनन्द आता था। लोभवश धन नही खर्च करता था जिससे नीच स्त्रियो के प्रसग मे पडकर अपयश का भागी बन रहा था। कुमार मे मेरी जैसी विलासप्रियता या लोभ नही था।]

हरिकुमार की ख्याति : नीलकण्ठ की दुश्चिन्ता

हरिकुमार मे सब प्रकार की सादगी और स्नेहवृत्ति होने से महाराजा नीलकण्ठ का सम्पूर्ण राज्यवर्ग, राजा का अन्तःपुर और पूरा राज्य उस पर मुग्ध था। उसके गुणो से सभी प्रसन्न थे और सभी उसके प्रति प्रेम रखते थे। हरिकुमार जैसे-जैसे उम्र मे बढ रहा था वैसे-वैसे उसके राज्यकोष और राज्यवैभव मे भी वृद्धि हो रही थी। यह बात प्रसिद्ध ही है कि "जनता के अनुराग से सपत्ति मे वृद्धि होती है।"* जब वह हरिकुमार मयूरमञ्जरी के साथ हाथी पर सवार होकर, मित्रो और राजपुरुषो से परिवेष्टित होकर, श्वेत छत्र से शोभित होकर घूमने निकलता तो उनकी शोभा इन्द्र-इन्द्राणी जैसी लगती। नगर-निवासी उसकी तरफ एक-टक देखते रहते और उसे वास्तव मे भाग्यशाली मानते। [२२९–२३२]

कुमार पर जनता के अतिशय अनुराग को देखकर महाराजा नीलकण्ठ को द्वेष होने लगा। वे सोचने लगे कि कुमार के मन मे अवश्य ही मेरे प्रति दूषित भाव होगे।' ऐसे कलुषित विचारो से महाराजा का मन मलिन हो गया। वे सोचने लगे–मैं वृद्ध हो गया हूँ, पुत्रहीन हूँ, मेरे पास इस समय मेरा कोई पक्षधर नही है और इस कुमार ने मेरे सम्पूर्ण राज्य कर्मचारियो और सम्बन्धियो को अपने वश मे कर लिया है। सक्षेप मे मेरा समग्र राज्यतन्त्र इसने सभाल लिया है और मेरे मत्री भी उसके प्रति आकर्षित है। इस प्रकार वर्धित प्रताप और महाबली यह कुमार कभी मेरे सम्पूर्ण राज्य को भी हडप सकता है, इसमे मुझे तनिक भी सदेह नही है। अतः अब इसके सम्बन्ध मे मुझे अनदेखी नही करनी चाहिये। नीति एव व्यवहार कुशल मनुष्य कह गये है कि, "आधा राज्य हडप करने वाले नौकर को यदि मारा न जाय तो एक दिन स्वय को उसके हाथ से मरना पड़ता है।" [२३३–२३६]

---

* पृष्ठ ५७३

अतएव मैं अपने विशेष मन्त्री सुबुद्धि से परामर्श कर, उसका सहयोग प्राप्त कर कुमार का वध करवा डालू, ऐसा राजा ने अपने मन मे विचार किया।

तत्पश्चात् राजा नीलकण्ठ ने शीघ्र ही सुबुद्धि मत्री को एकान्त मे अपने पास बुलवाया और अपना गूढ अभिप्राय उसे बतलाया। सुबुद्धि मत्री कुमार को भली प्रकार जानता था और उसके पवित्र सद्‌गुणो से रजित होकर उससे प्रेम रखता था। राजा का निर्णय सुनकर उसके हृदय पर वज्र गिरने जैसा झटका लगा, पर राजा का निर्णय स्पष्ट और टाला न जा सकने वाला समझकर उसने राजा की हाँ मे हाँ मिला दी। मत्री ने राजा से कहा—'हे देव ! आपके मन मे जैसा ठीक लगे वैसा ही करिये। महान पुरुष बुद्धि को अयोग्य लगे ऐसे कार्य मे कभी भी प्रवृत्ति नही करते।' फिर हरिकुमार को मारने का दृढ निश्चय कर राजा और मत्री अपने-अपने स्थान पर गये। [२३७–२४१]

मन्त्री सुबुद्धि की दक्षता

पवित्र बुद्धि वाला, वयोवृद्ध, अनुभवी सुबुद्धि मत्री राजा की आज्ञा को सुनकर जब घर आया तो सोचने लगा कि राजा की भोग सुख की आसक्ति को धिक्कार है। उसके इस अज्ञानजनित निर्णय को भी धिक्कार है। ऐसी राज्य-लम्पटता भी सचमुच निन्दनीय एव धिक्कार योग्य है। राज्य के सम्बन्ध मे अनेक अच्छे बुरे विचार आते ही रहते है, यह सत्य ही है। एक समय हरिकुमार इन महाराजा को प्राणो से भी अधिक प्यारा था। यह सर्वगुणनिधान होते हुए भी महाराजा का जवाई है और उनकी सगी बहिन का एक मात्र पुत्र/भाणेज भी है। इनके आश्रय मे रहने वाला कुमार आज बिना कारण राजा का द्वेषभाजन हो गया है। राजा की दृष्टि मे यह उनका महान शत्रु और वध योग्य हो गया है। अहा ! भोग और तृष्णा की कामनाओ से जो अन्धापन आता है, वही ऐसी भयकर परिस्थितियो का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त और कोई कारण नही। अहा ! ऐसा महान पवित्र, विनयशील, अलोभी, शुद्धात्मा हरिकुमार जो पाप से डरने वाला है, क्या वह कभी स्वप्न मे भी राज्य-हरण का विचार कर सकता है ? राज्य के लोभ से महाराजा नीलकण्ठ इस समय मूर्ख, बुद्धिविकल और विचारहीन बन गये हैं, इसमे कुछ भी सदेह नही। इस पवित्र शुद्धात्मा रत्न जैसे उज्ज्वल हरिकुमार का अब किसी भी उपाय से मुझे रक्षण करना चाहिये। [२४२–२४७]

मत्री ने अपने हृदय मे कुमार के रक्षण का सकल्प कर अपने एक विश्वासी भृत्य दमनक को सब बात अच्छी तरह समझाई। राजा के साथ जो बात हुई वह सब और भविष्य मे क्या होने वाला है वह सब समझाकर गुप्त रूप से कुमार के पास दमनक के द्वारा ये समाचार भिजवा दिये* और यह भी कहलाया 'कुल-

* पृष्ठ ५७४

भूषण कुमार ! हम पर कृपा कर आप यह देश छोडकर शीघ्र ही चले जाये, इसमे तनिक भी विलम्ब न करे।' [२४८-२४६]

हरिकुमार की प्राणरक्षा पलायन

दमनक ने आकर कुमार को सब समाचार कहे। सुनकर कुमार के पेट का पानी भी नही हिला। मामा का या मौत का उसे किचित् भी भय नही हुआ। फिर भी उसके मानस मे वृद्ध मत्री सुबुद्धि के प्रति बहुत आदर था, अत उसके आग्रह को ध्यान मे रखकर, समुद्र पार कर स्वदेश जाने का उसने तुरन्त निश्चय कर लिया। हे भद्रे ! निर्णय करते ही हरिकुमार ने मुझे अविलम्ब एकान्त मे बुलवाया और अत्यन्त विश्वासपूर्वक मेरे सामने सब वृत्तान्त कह सुनाया कि राजा ने बिना कारण उस पर द्वेष किया है और मत्री के परामर्श एव निर्देश के अनुसार वह इसी समय समुद्र पार कर भारतवर्ष/स्वदेश लौट जाना चाहता है। मित्र धनशेखर ! मै तेरा विरह क्षण भर भी सहन नही कर सकता, अत. तुम भी मेरे साथ चलने के लिये तैयार हो जाओ। [२५०-२५३]

कुमार का निर्णय सुनकर मैंने अपने मन मे विचार किया कि बड़े आदमी के साथ मैत्री करने का यह फल है। मै तो यहाँ रत्न राशि एकत्रित करने आया था मगर जब से इसकी मित्रता हुई तब से इस काम मे विघ्न ही पडा। अब इसके साथ इतनी गहन मित्रता हो गई है कि छोडते भी नही बनता। मुझे उसके साथ जाना ही पड़ेगा। अन्य कोई बहाना नही चलेगा। [२५४]

ऐसा सोचकर मैंने प्रकट मे कुमार से कहा—भाई ! आपकी जैसी इच्छा, इसमे मुझे क्या कहना है।

मेरा उत्तर सुनकर कुमार प्रसन्न हुआ। फिर वह बोला—मित्र ! कोई सुदृढ जहाज जो तैयार हो और अभी रवाना होने वाला हो तो उसका पता लगाओ। मैंने रत्न का वहुत वडा भण्डार इकट्ठा किया है उसको लेकर शीघ्र ही जहाज मे बैठ जाये।

मैंने कुमार के निर्णय को शिरोधार्य किया। तुरन्त ही मै समुद्र के किनारे गया और सर्व सामग्री से सम्पन्न और अत्यधिक सुदृढ दो बडे जहाज ढू ढ निकाले। एक जहाज मे कुमार के रत्न भर दिये और दूसरे जहाज मे मैंने मेरे रत्न भर दिये।

यह सव तैयारी गुप्त रूप से चल रही थी तभी सध्या हो गई। अन्धेरा होने पर किसी परिजन को सदेह न हो इस प्रकार चुपचाप मयूरमजरी और वसुमती को साथ लेकर हरिकुमार और मै समुद्र किनारे पहुँचे। वहाँ हमने जहाजो और उनके कर्मचारियो की खूब अच्छी तरह से जाच की। रात्रि का प्रथम प्रहर वीतने पर रमणी के कपोल जैसा पाण्डुरग का चन्द्र आकाश मे उदित हुआ। उसी समय समुद्र मे खलवली मची, जल-जन्तुओ के शोर के साथ ही समुद्र मे ज्वार आ गया। कुमार

अपनी पत्नी के साथ अपने जहाज मे बैठा और मै अपने जहाज मे बैठने जा ही रहा था कि कुमार बोला—भाई धनशेखर ! तुम भी मेरे जहाज मे ही आ जाओ, मुझे तुम्हारे विना एक क्षण भी नही सुहाता, अर्थात् तुम्हारे बिना एक पलभर भी मै अकेला नही रह सकता ।

मित्र हरिकुमार के आग्रह से मै भी कुमार के जहाज मे बैठ गया । जहाज मे प्रवेश करने के बाद मागलिक शकुन किये गये । चालको ने अपने स्थान ग्रहण किये । पाल खोले गये और उसमे हवा भरते ही हमारे जहाज चलने लगे । जहाज चलते-चलते आगे बढ रहे थे । इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए और हमने भारत की तरफ जाने का अधिक भाग समुद्र मार्ग से पार कर लिया ।

धनशेखर का हरिकुमार को समुद्र में फेंकना

हे अगृहीतसकेता ! जिस समय हमारी यात्रा आनन्दपूर्वक चल रही थी उसी समय मेरे दोनो पापी अन्तरग मित्र सागर और मैथुन एक साथ उपस्थित होकर मुझे अन्दर से प्रेरित करने लगे । पहले पापकर्मी सागर ने अपना रोब जमाया । उसने मुझे उकसाया कि ऐसा रत्नो से भरा हुआ जहाज कभी दूसरो के हवाले किया जा सकता है ? पाप-प्रेरक सागर की आतरिक प्रेरणा से मेरे मन मे विचार आया कि, अहा ! मेरे भाग्य तो वस्तुतः अतिशय प्रबल है । मेरा एक जहाज तो रत्नो से भरा हुआ है ही, अब यह रत्नो से भरा हुआ कुमार वाला* दूसरा जहाज भी मुझे मिल जाय तो मेरे मन के समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाये । [२५५–२५७]

उसी समय मेरे दुरात्मा मित्र मैथुन ने भी मुझे आन्तरिक प्रेरणा दी । मेरे मन मे धन सम्बन्धी पाप तो पहले से ही भरा था उसमे इस दुष्ट बुद्धि ने और वृद्धि की । उसने मुझे उकसाया कि इस अत्यन्त पृथुस्तनी, विशाल नेत्रो वाली, पतली कमर वाली, सुकोमला, मोटे नितम्ब वाली, गजगामिनी, लावण्यामृत से ओत-प्रोत, महास्वरूप वाली मयूरमजरी की तुलना मे दूसरी स्त्री इस विश्व मे मिलना असभव है । जब तक तूने उसके साथ कामसुख नही भोगा तब तक तेरा जन्म व्यर्थ है, तेरा जीवन निष्फल है । अतः इस आकर्षक नेत्रो वाली ललना को तुझे सब से अधिक बहुमूल्य मानना चाहिये और किसी भी प्रकार उसे अपने वश मे करना चाहिये । [२५८–२६१]

मैथुन की इस प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने सोचा—एक तो रत्नो से भरा हुआ कुमार वाला जहाज मुझे प्राप्त करना है और दूसरे मयूरमजरी को अपनी अकशायिनी बनाना है । इस प्रकार करने से मुझे धन प्राप्ति के साथ स्त्री-सभोग का आनन्द भी प्राप्त होगा । परन्तु, जब तक हरिकुमार जीवित है तब तक मुझे इन

---

* पृष्ठ ५७५

दोनो मे से एक भी वस्तु प्राप्त नही हो सकती, अत: इन दोनो को प्राप्त करने का एक ही उपाय है कि मै किसी भी प्रकार कुमार को अपने मध्य मे से समाप्त कर दू, इस काटे को निकाल दू । इस प्रकार सागर और मैथुन मित्रो के वशीभूत होकर इन विचारो के परिणामस्वरूप पाप-परिपूर्ण होकर मैंने अपने मन मे निश्चय किया कि किसी को भी सशय न हो इस प्रकार युक्तिपूर्वक कुमार का मै वध कर दू । [२६२–२६३]

मैंने जब उपरोक्त निर्णय लिया तब यह नही सोचा कि कुमार मेरे प्रति कितना अगाध प्रेम रखता है । मैने न उसकी स्नेह रसिकता का विचार किया, न मित्रद्रोह के महापाप को सोचा और न कुल मे लगने वाले राज्यद्रोह के बड़े भारी कलक का ही विचार किया । मैं दीर्घकालीन उसकी मित्रता को भूल गया, उसके शुद्ध व्यवहार को भी भूल गया, अथवा उसके विशुद्ध जीवन को भी भूल गया। उसने मुझे अनेक बार सन्मानित किया था उसे भी मैने ताक पर रख दिया और सच्चे पुरुषार्थ का नाश कर न्याय के मार्ग से भटकने का मैंने निर्णय ले लिया ।

अन्यदा मै दुष्कर्म प्रेरित होने के कारण रात्रि मे उठा और कुमार को जहाज के किनारे पर ले गया तथा उसे वहाँ लघु-शका करने को प्रेरित किया । वह सोच ही रहा था कि मै उसे ऐसा क्यो कह रहा हूँ तब तक तो वह मेरे धक्के को सहन न कर, एक हृदयभेदी चीत्कार के साथ समुद्र मे गिर पडा । [२६६–२६७]

समुद्र देव द्वारा रक्षण

चीत्कार के साथ जहाज मे से कुछ समुद्र मे गिरने के छपाके की आवाज सुनते ही लोग जाग गये और चारो तरफ कोलाहल होने लगा । मयूरमजरी को बहुत भय लगा और मैं तो मूर्ख जैसा शून्य मनस्क होकर वहाँ का वहाँ खड़ा रह गया । मेरे ऐसे अति भयकर पाप कर्म को देखकर समुद्र का अधिपति देव मुझ पर अत्यन्त क्रोधित हुआ । कुन्द के फूल अथवा चन्द्रमा जैसे कुमार के निर्मल गुणो से वह उस पर बहुत प्रसन्न था अत तुरन्त ही महाभयकर आकृति धारण कर धमाधम करता हुआ जहाज के निकट आया । उस देव ने सब से पहले उसी क्षण अत्यन्त आदरपूर्वक हरिकुमार को समुद्र के जल मे से निकाल कर जहाज पर रखा । [२६८–२७१]

हे अगृहीतसकेता ! तुझे याद होगा कि मेरे जन्म से ही मेरा अन्तरग मित्र पुण्योदय मेरे साथ था और उसका सहयोग मुझे सर्वदा मिलता रहता था । उसका मेरे प्रति अभी भी प्रेम था । यद्यपि कुछ समय से वह क्षीण होता जा रहा था, पर मेरे इस अत्यन्त अधम कृत्य को देखकर तो वह मुझ पर बहुत ही क्रोधित हुआ और वह सदा के लिए मुझे छोड़कर मेरे से दूर चला गया । [२७२]

समुद्र देव का कोप

जिस समुद्र देव ने कुमार को वापस जहाज पर रखा था उसके तेज से दशो दिशाए बिजली की तरह चमकने लगी और चारो तरफ प्रकाश ही प्रकाश हो गया। उस देव ने अब महा भयकर रूप धारण कर मेरे सामने आकर गरजते हुए अति कठोर/क्रूर स्वर मे कहा—'अरे महापापी ! दुर्बुद्धि ! कुलनाशी ! निर्लज्ज ! मर्यादाहीन ! अधम ! हिंजड़े ! मन से तू ऐसा घोर और अतिरौद्र कर्म कर रहा था फिर भी अभी तक तेरे टुकड़े-टुकडे क्यो नही हो गये ?' ऐसे भयकर शब्द बोलते हुए अपने होठो को दातो से दबाकर महा भीषण भृकुटी चढाकर वह मेरे पास आया। उसे देखते ही मैं थर-थर कापने लगा और उसी अवस्था मे मुझे उठाकर वह आकाश मे * खडा हो गया। [२७३–२७६]

उस समय हरिकुमार मेरे पक्ष मे आया। मैंने उसे मारने का प्रयत्न किया था, उसे भूलकर, पूर्व के स्नेह को ध्यान मे रखकर उसने अपनी सज्जनता बतलाई। तुरन्त ही देव को मस्तक झुकाकर उसके पैरो पडा और हाथ जोडकर मेरे लिए प्रार्थना करने लगा—हे देव ! आपके पैरो मे गिरकर प्रार्थना करने वाले मुझ पर यदि आपकी सच्ची दया है तो आप मेरे मित्र को छोड दे। हे देव ! आपने तो मुझे काल के मुह से बचाया है। अब आप मुझ पर इतनी कृपा और करे और मेरे इस प्रिय मित्र को न मारें। देव ! इसके बिना मुझे अपना जीवन बिताना कठिन होगा। इसके बिना मेरा सुख, मेरा धन और मेरा शरीर भी व्यर्थ है, अत आप कृपा कर किसी भी प्रकार इसे छोड दें। [२७७–२८०]

कुमार मेरा समग्र चरित्र जानता था। मैंने उसके विरुद्ध जो भयकर षड्यन्त्र रचकर उसे समुद्र मे धकेला था, उसे भी वह जानता था। फिर भी उस महाभाग्यवान नरश्रेष्ठ ने मेरे प्रति इतना प्रशस्ततम व्यवहार किया था। सच है, "साधु पुरुष किसी भी प्रकार के विकारो से रहित ही होते हैं।" हरिकुमार की इस विचित्र एवं अप्रत्याशित याचना को सुनकर देव मुझ पर अत्यधिक क्रोधित होकर कुमार से कहने लगा—हे महाभाग्यशाली कुमार ! तू तो वास्तव मे ही भद्रजन और सरल स्वभावी है, तुझे जिस स्थान पर जाना है वहाँ जा। इस दुष्ट घातकी को तो मैं इसकी दुष्टता का अच्छा फल चखाऊगा। [२८१–२८३]

यो सज्जन को सज्जनता का उत्तर देकर देव ने आकाश मे मुझे प्रबल वेग से घुमाया और फिर जोर से उछाल कर समुद्र मे फेक दिया। मुझे देव ने इतने जोर से फेका कि उस समय समुद्र मे बहुत जोरदार धमाका हुआ और मैं समुद्र की तलहटी मे पहुँच गया। अन्धकार से काले समुद्र तल मे मैं थोड़ी देर तक नरक के जीव की स्थिति का अनुभव करता रहा और भद्रे ! फिर अपने पाप कर्मो को

---

* पृष्ठ ५७६

भोगने के लिए समुद्र के ऊपर आ गया। 'मैं डूब गया हूँ या मर गया हूँ' यह सोचकर देव वापस चला गया। उस समय पवन अनुकूल होने से हरिकुमार दोनो जहाजो को लेकर भारतवर्ष के समुद्र तट पर पहुँच गया। [२८४–२८६]

हरिकुमार को राज्य-प्राप्ति

समुद्र तट पर उतरते ही हरिकुमार ने लोगो के मुख से सुना कि, 'उसके पिता आनन्दनगर के राजा केसरी मृत्यु को प्राप्त हो चुके है।' समाचार सुनकर शीघ्र ही हरि अपने राज्य की तरफ गया और बिना किसी क्लेश या लड़ाई के पैतृक राज्यगद्दी पर स्वय बैठ गया। [२८७–२८८] कुमार की धाय माता वसुमती ने उस समय कमलसुन्दरी की सब घटना विस्तार से बतलाकर समस्त पारिवारिक बान्धवजनो और राज्यपुरुषो के समक्ष यह सिद्ध कर दिया कि हरिकुमार केसरी राजा का पुत्र ही है। कमलसुन्दरी का पुत्र की रक्षा हेतु भागने से लेकर आज तक का सारा घटनाचक्र सुनकर सब लोग कुमार के प्रति अत्यधिक आकर्षित हुए और राज्य का वास्तविक अधिकारी उन्हे मिला है यह जानकर सारी प्रजा ने सतोष प्राप्त किया।

इस प्रकार हरिकुमार अपने प्रबल पुण्य के प्रताप से राजा बना और अन्त मे विशाल भूमण्डल का अधिपति बना। कुमार ने अपनी सज्जनतावश मेरे पिता हरिशेखर को बुलाकर रत्नो से भरा हुआ मेरा जहाज उन्हे सौप दिया।

८. धनशेखर की निष्फलता

धनशेखर की दुर्दशा

देव ने मुझे समुद्र तल मे फेक दिया था। जब मै ऊपर आया तो पर्वत जैसी विकट ऊची-ऊची खारे पानी की लहरे मुझे थपेडे मार रही थी, बडे-बडे मगरमच्छ मुझ पर अपनी पूछो से आघात कर रहे थे, अनेक तन्तु जैसे जलजन्तुओ द्वारा मैं बाधा जा रहा था, सफेद शखो के समूहो मे पछाड़ा जा रहा था, परवाल (समुद्री घास) के सघन वनो मे गुम हो रहा था, अनेक प्रकार के मगरमच्छो, जल मनुष्यो, सर्पो और नक्रो (शार्को) द्वारा भयभीत किया जा रहा था। कछुओ की कठोर पीठ के काटो से लहुलुहान, गले तक प्राण आ गये हो ऐसी मृतप्राय स्थिति मे सात दिन और सात रात्रि तक उस महासमुद्र मे अनेक प्रकार के दुख उठाते हुए

अन्त मे मैं किनारे पर लगा। ज्वार ने मुझे किनारे पर फेक दिया था, पर मैं उस समय मूर्छित था। शीतल पवन के झकोरो से मुझ मे कुछ चेतना आयी।*

चेतना आने पर मुझे बहुत जोर की भूख और प्यास लगी। मैं फल और पानी की खोज मे इधर-उधर भटकने लगा। मेरा पुण्योदय समाप्त हो गया था, अत: अब मैं कुछ भी प्रवृत्ति करू उसमे मुझे असफलता ही मिलती थी। अनेक स्थानों पर भटकते हुए मुझे एक जगल दिखाई पडा, पर वह भी पुष्प-फल रहित मरुभूमि के उजाड प्रदेश जैसा था। सात दिन का भूखा-प्यासा और अनेक प्रकार के दु:खो से उत्पीड़ित मेरी उस समय कैसी दशा हो रही थी, यह तो सहज अनुमान का विषय था। इतने पर भी अभी मुझे बहुल पाप का फल भोगना बहुत बाकी था और मेरे हाथ से नये पाप होने शेष थे इसलिये इस घोर दु ख मे भी ऐसे सयोग मिल ही गये जिससे कि मेरी प्राण रक्षा हो गई। जैसी-तैसी तुच्छ वस्तुए खाकर मैं अपना जीवन चलाने लगा। [२८९–२९०]

वहाँ से भटकते हुए मैं आगे बढने लगा। अनेक गावो, नगरो और देशो मे घूमते हुए अन्त मे मैं वसन्त देश मे पहुँचा। न खाने का ठिकाना, न रहने का ठिकाना, न पीने का ठिकाना, ऐसी भयंकर स्थिति मे मैं अनेक स्थानो पर घूमा, पर अपने अभिमान के कारण मैं अपने पिता के घर आनन्दपुर नही गया। मेरा पुण्योदय मित्र मुझे छोड चुका था। मात्र सागर और मैथुन अन्तरग मित्रो को साथ लेकर पुन. धनोपार्जन की कामना से मैं अनेक देशो मे घूमता रहा। [२९१–२९२]

कार्यों में निष्फलता

भिन्न-भिन्न देशो मे जाकर मैंने अनेक नये-नये कार्य धन कमाने के लिये किये, पर पुण्य के अभाव मे धन की प्राप्ति तो नही हुई, किन्तु जो भी कार्य किया उसमे रुपये की अठन्नी जरूर हो गई। मैंने कैसे-कैसे काम किये, इसका सक्षिप्त वर्णन सुनाता हूँ—

मैंने खेती का कार्य किया तो उस वर्ष उस स्थान पर वर्षा ही नही हुई और सारे देश मे अकाल पडा।

फिर मैंने अत्यन्त विनयपूर्वक नीचा मु ह करके राजा की नौकरी स्वीकार की। बहुत ध्यान लगाकर राज्य सेवा सच्चे दिल से करने लगा, किन्तु उसमे भी ऐसे प्रसग आने लगे कि राजा अकारण ही मुझ पर क्रोधित होने लगा और अन्त मे मुझे नौकरी छोड़ देनी पड़ी।

राज्य-सेवा को छोडकर अब मैंने सेना मे नौकरी करली, पर मेरे सेना मे भर्ती होते ही एक बडा युद्ध प्रारम्भ हो गया और मुझे युद्ध के मोर्चे पर जाना पडा। युद्ध मे अपना कर्त्तव्य और सेनापति की प्रसन्नता के लिए मुझे अनेक शस्त्रास्त्रो की

---

* पृष्ठ ५७७

मार सहन करनी पड़ी, जिससे मेरे शरीर मे अनेक घाव हो गये और दु:खी मन से मुझे सेना की नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

फिर मैंने बैलगाडी खरीदी और भाड़े से एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल और यात्रियो को ले जाने लगा, पर कुछ ही दिनो के बाद मेरे बैलों को तिलक (खरवा) रोग लग गया जिससे मेरे सारे वैल मर गये।

तव मैंने कुछ गधे खरीदे और उन पर माल लाद कर बनजारे का कार्य प्रारम्भ किया। मेरी इच्छा एक देश से दूसरे देश के साथ व्यापार चलाने की थी। इसी कामना से जव मैंने वनजारों के समूह को इकट्ठा कर व्यापार करना प्रारम्भ किया तव चोरो ने हमारे समूह पर धावा बोला और हमारा सर्वस्व लूटकर हमारे व्यापार को चौपट कर दिया।

अपनी निष्फलताओ से तंग आकर अन्त मे मैंने किसी गृहस्थ के घर मे नौकर का कार्य स्वीकार किया और अनेक प्रकार से उसकी सेवा करने लगा, पर मेरी सेवा के वदले मे मेरा मालिक मुझ पर कुपित होता रहता और निश्चित वेतन भी नही देता। तग आकर मुझे यह नौकरी भी छोड देनी पडी।

हे सुमुखि! फिर मैंने किसी व्यापारी के जहाज पर नौकरी की। परदेश के साथ व्यापार करने के लिए जहाजो मे माल भरा गया और वे जहाज परदेश जाने के लिए समुद्र मे चलने लगे, पर मेरे कर्म-सयोग से वे जहाज तूफान मे घिर गये और समुद्र मे डूब गये। जहाजो मे भरी हुई व्यापार की सब वस्तुएं भी समुद्र-तल मे समा गईं। मेरे हाथ मे एक लकडी का तख्ता आ गया था जिसे पकड़ कर मैं वडी कठिनाई से किनारे लगा, और अपने प्राण बचा सका।

तख्ते के साथ तैरता-तैरता मैं रोघनद्वीप के किनारे पर लगा था। मैंने सुन रखा था कि इस द्वीप मे अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ जमीन मे से निकलते है, अत. वहुत परिश्रम कर मैं जमीन खोदने लगा, पर भाग्य की विडम्बना थी कि मेरे हाथ धूल के सिवाय कुछ भी नही लगा।

इसके पश्चात् मैं एक राजा से मिला और उसकी आज्ञा लेकर मैंने रसायनो से सोना, चादी आदि वनाने के धातुवाद के कार्य द्वारा धन कमाने का प्रयत्न किया। पत्थरों पर, पेडो की जडो पर, मिट्टी पर पारे को शोध कर कई प्रकार के प्रयोग किये और इन प्रयोगो के पीछे अपने जीवन का अमूल्य समय नष्ट किया, पर मेरे हाथ तो सोने के वदले नमक ही लगा। मुझे किसी प्रकार का लाभ नही हुआ और परिश्रम भी व्यर्थ गया।

फिर, धन कमाने की इच्छा से द्यूतकला सीखकर मैं अनेक प्रकार का जुआ खेलने लगा, पर उसमें भी जुआरियो ने मुझे जीत लिया और मुझे बाधकर इतना मारा कि मेरी हड्डी-पसली एक हो गई। वडी कठिनता से मैं जुआरियो के फदे से छूटा।

फिर मुझे एक महात्मा पुरुष मिले । उनके पास से मैने रसकूपिका कल्प की विधि सीखी । रससिद्धि की पुस्तक को लेकर मै रात मे रसकूपिका वाली पहाड की गुफा मे गया और उसमे से रस निकालने का जैसे ही प्रयत्न करने लगा वैसे ही एक सिह अपनी मोटी पूंछ उछालता और भयकर गर्जन करता वहाँ पहुँच गया । मै भयभीत होकर वहाँ से भागा* और बडी कठिनाई से अपनी जान बचा पाया । [२६३-३०६]

हे अगृहीतसकेता ! तुझे क्या-क्या बतलाऊ ? उस समय मैंने धन प्राप्त करने की इच्छा से न मालूम कौन-कौन से पाप-कर्म नही किये । अनेक व्यापार किये पर पुण्योदय मेरे साथ नही था इसलिये जो भी काम करता वह उलटा ही पडता और प्रत्येक काम मे मुझे लाभ के बदले कठिनाइयो मे ही फसना पड़ता । पुण्योदय के बिना मेरी ऐसी दशा हुई कि बहुत जोर की भूख लगने पर मैंने भीख भी मागी तब भी मुझे भीख नही मिली । मेरी ऐसी दुर्दशा हो गई । जब मुझे इस प्रकार प्रत्येक काम मे असफलता ही हाथ लगने लगी तब मै वहुत ही निराश हो गया और मैंने यह निश्चय कर लिया कि अव मै कुछ भी काम नही करू गा । इस प्रकार मै हाथ पर हाथ रखकर पैर पसार कर बैठ गया । [३०७-३०६]

सागर का उपदेश : अनुसरण और निष्फलता

जब मैं इस प्रकार निराश होकर बैठ गया तब मेरे अन्तरंग मित्र सागर ने फिर मुझे प्रेरित किया और मुझे उत्साहित करने के लिए हितोपदेश देने लगा-- प्रिय धनशेखर ! मैं तुझे तेरे लाभ की वात कहता हूँ, तू ध्यानपूर्वक सुन—

न विषादपरैरर्थ., प्राप्यते धनशेखर. ।
अविषाद· श्रियो मूल, यतो धीरा प्रचक्षते ।।३११।।

हे धनशेखर ! जो प्राणी निराश हो जाते है उन्हे कभी धन की प्राप्ति नही हो सकती, इसीलिए विद्वान् मनुष्य कहते हैं कि किसी भी काम मे निराश नही होना चाहिये, यही धन एकत्रित करने का मूल मत्र है ।

इसलिये पुरुषार्थी मनुष्य को निराशा छोड़कर, भाग्य के विपरीत होने पर भी परिश्रम कर धनोपार्जन करने का प्रयत्न करना चाहिये । यही सच्चा पौरुष है और इसी से लाभ मिल सकता है । आलसी बनकर बैठे रहने से या अन्य किसी प्रकार से लाभ प्राप्त नही हो सकता । तुझे कितना कहूँ, धन तो अवश्य प्राप्त करना चाहिये । वह चाहे झूठ बोलकर, दूसरे के धन को चुराकर, मित्र-द्रोह कर, अपनी सगी माता को मार कर, पिता का खून कर, सगे भाई का घात कर, सगी वहिन का नाश कर, स्वजन-सम्बन्धियो का विनाश कर और समस्त प्रकार के पापाचरण

* पृष्ठ ५७८

करके भी किसी भी प्रकार से धन इकट्ठा करना ही चाहिये। धन की महिमा इस ससार मे कुछ और ही प्रकार की है।

धनवान मनुष्य कितना भी पाप करे तब भी धन की महिमा के कारण वह लोगो मे पूजा जाता है, लोग उसकी सेवा करते है, सगे-सम्बन्धी उसके चारो तरफ फिरते है, भाट चारण उसकी महिमा गाते हैं, बड़े-बडे विद्वान् एव पडित लोग भी उसका सन्मान करते है और अत्यन्त विशुद्ध धर्मात्मा मनुष्य से भी अधिक धर्मात्मा उसे माना जाता है। धन की ऐसी स्थिति है। इसीलिये हे धनशेखर ! तू सर्व प्रकार के विपाद का त्याग कर, धैर्य धारण कर और फिर से द्विगुणित उत्साह-पूर्वक धन कमाने के कार्य मे परिश्रम प्रारम्भ करदे। तू मेरी शक्ति को बराबर समझ ले और जैसा मै उपदेश/परामर्श दे रहा हूँ वैसा कर।

हे सुन्दरागी अगृहीतसकेता ! इस दुरात्मा सागर मित्र के परामर्श, पाप पूर्ण उपदेश और प्रेरणा से प्रेरित होकर मैने पुन अनेक प्रकार के पातकी कार्य प्रारम्भ किये। अर्थात् उसने नये-नये प्रकार के पाप करने और नये-नये व्यापार करने के लिये मेरी बुद्धि को प्रेरित किया और उकसाया जिससे मै दुर्बुद्धि अनेक प्रकार के पाप कर्म करने लगा। यह सागर मुझे जो आज्ञा देता उस पर मैं बिना विचार किये जैसा वह कहता वैसे सब धन्धे करता, व्यापार करता। इस प्रकार उसमे होने वाले समस्त पापो को मैं अपनाने लगा। इस प्रकार मैंने अनेक पाप कर्म किये, मगर मुझे एक फूटी कौडी भी मिली नही, क्योकि मेरा मित्र पुण्योदय तो कभी का रुष्ट होकर मेरे से दूर चला गया था। इसीलिये हे सुन्दरि ! पुण्योदय-रहित और मिथ्याभिमान के वश होकर मैं अपने श्वसुर बकुल के यहाँ भी नही गया। [३१२-३१५]

मेरी ऐसी विषम दशा हो गई थी और मै ऐसी असहनीय स्थिति से गुजर रहा था, फिर भी मेरा मित्र मैथुन अपने अन्य मित्र यौवन के साथ मेरा पीछा नही छोड रहा था। वह मुझे बार-बार प्रेरित करता, उकसाता रहता था। परन्तु, मे तो एकदम निर्धन गरीब हो गया था और मेरा पुण्योदय मित्र भी मुझ से विदा हो गया था जिससे कोई अच्छी स्त्री तो मेरे सामने देखती भी नही थी। सुन्दरी तो क्या पर कोई कानी कुबडी स्त्री भी मेरी तरफ नही झाकती थी। इस प्रकार मैथुन सेवन की इच्छा और प्रेरणा तो अविरत चलती रहती, पर अभीष्ट स्त्री-सयोग नही मिलता, जिससे मेरा मन अन्दर ही अन्दर निरन्तर जलता रहता।* किन्तु पुण्योदय बिना मेरी इच्छा कभी पूरी नही हो सकी। [३१६-३१८]

इस प्रकार धन की इच्छा और मैथुन की प्रेरणा से मैने अनेक देशो मे भटकते हुए अनेक प्रकार के दु खो को सहन किया। सभी जगह मुझे निराशा और निष्फलता ही हाथ लगी और मेरी अभिलाषाएँ पूरी नही हुई। [३१९] □

---

* पृष्ठ ५७९

६. उत्तमसूरि

उत्तमसूरि का पदार्पण

अन्यदा अनेक गुणरत्नो की खान आचार्य उत्तमसूरिजी महाराज आनन्दनगर मे पधारे। उनके साथ मे अनेक सत्साधुओ का बडा भारी सघ आया था और वे सभी नगर के बाहर मनोरम उद्यान मे ठहरे थे। आचार्य के आगमन के समाचार मिलने पर राजा हरिकुमार बहुत प्रसन्न हुआ और समस्त राज्यवृन्द से परिवृत होकर बडे आडम्बर/उत्सव के साथ उनकी वन्दना करने उद्यान मे गया। आचार्य श्री की विधि-पूर्वक वन्दना कर, सभी साधुओ को नमस्कार कर, सुखसाता पूछकर वह शुद्ध जमीन पर बैठा और उनके साथ ही समस्त राज परिवार भी आचार्यदेव की धर्मदेशना सुनने के लिये उत्सुक होकर भूमि पर बैठा। आचार्य महाराज ने सब के योग्य सब को समझ मे आ सके, ऐसा अमृत स्वरूप उपदेश दिया। [३२०-३२३]

हरिशेखर की जिज्ञासा · समाधान

महाराजा हरिकुमार भी उपदेश सुनकर अपने मन मे बहुत आनन्दित हुए और उनका चित्त प्रसन्न हो गया। राजा को ज्ञात हुआ कि आचार्य श्री का ज्ञान सूक्ष्म पदार्थो को भी भली-भाति जान लेता है, दूर रहे हुए अथवा व्यवधानयुक्त पदार्थो के बारे में भी वे जान जाते हैं, भूतकाल मे घटित घटनाओ के विषय मे और भविष्य काल मे घटित होने वाली घटनाओ के विषय मे भी वे जान सकते है। जब राजा को इस बात का विश्वास हो गया तब वे सोचने लगे कि धनशेखर मेरा प्रिय मित्र था, फिर भी उसने मुझे समुद्र मे क्यो धकेला ? पहले तो वह मेरा इष्टमित्र था फिर एकाएक उसके विचार परिवर्तित कैसे हुए और उसने ऐसा कुव्यवहार क्यो किया ? वह देव कौन था ? कहाँ से आया था ? उसने रुष्ट होकर धनशेखर को समुद्र मे क्यो फैंक दिया ? मेरा मित्र धनशेखर अभी जीवित है या मर गया ? आदि-आदि अनेक प्रश्न और वह समग्र घटना हरि राजा को याद आ गई। [३२४-३२८]

अभी राजा यह सब बातें अपने मन मे सोच ही रहे थे कि आचार्य उत्तम-सूरि ने उनके मन के सब भाव मन पर्यव-ज्ञान द्वारा जान लिये और कहने लगे—राजन्! तुम्हारे मन मे यह प्रश्न उठा है कि तेरा मित्र तुझ पर बहुत प्रेम रखता था फिर भी उसने तुम्हे समुद्र मे क्यो फैंक दिया ? सुनो, इसका उत्तर यह है कि, इस धनशेखर के सागर और मैथुन नाम के दो अन्तरग मित्र है। सारा अपराध इन दोनो मित्रो का है। उस बेचारे का तो इसमे कुछ भी दोष नही है। यह धन-शेखर अपने स्वभाव से तो अच्छा है, भला है और सुन्दर है, पर इसके ये पापी मित्र

उसके व्यवहार को पलट देते हैं। उसके लुच्चे मित्र मैथुन ने तेरी पत्नी मयूरमजरी के साथ भोग भोगने की दुर्बुद्धि उसमे उत्पन्न की और सागर मित्र ने तेरा रत्नो से भरा हुआ जहाज हडप जाने की प्रेरणा दी। इस प्रकार इन दोनो मित्रो ने उसके मन मे दुर्बुद्धि उत्पन्न की जिसके फलस्वरूप घनशेखर ने तुम्हे समुद्र मे फेंक दिया। उन पापी-मित्रो से प्रेरित घनशेखर के इस अति अधम कृत्य से समुद्र का देव कुपित हुआ। उसने तुम्हारी रक्षा की और घनशेखर को समुद्र मे डुबो दिया। उसके भाग्य से वह मरा नही और तैर कर ऊपर आ गया। सागर और मैथुन मित्र अब भी उसे अनेको देशो मे भटका रहे है और अनेक प्रकार की विपदाओ और दु.खो मे फसा रहे हैं। [३२९–३३६]*

हे भद्र! चार ज्ञान से युक्त आचार्यश्रेष्ठ उत्तमसूरि के मुखारविन्द से मेरे दुष्ट चरित्र के सम्बन्ध मे इतनी स्पष्टता से जानकर हरि राजा के मन मे आचार्य प्रवर के अपूर्व ज्ञान के प्रति अत्यधिक श्रद्धा जाग्रत हुई। स्वय विशाल हृदय वाला होने से उसके मन मे मेरे दुष्ट चरित्र के प्रति तनिक भी क्रोध नही आया, अपितु बेचारा घनशेखर दु ख-जाल मे फस गया जानकर व्यथित हुआ। सद्‌बुद्धि और करुणाप्लावित मानस होने से हरि राजा ने पुन भक्तिपूर्वक प्रणाम कर पूछा—भगवन्! मेरा मित्र घनशेखर कब इन दोनो पापी मित्रो से छुटकारा पा सकेगा? वह पूर्णतया सुखी कब होगा? यह बतलाने की कृपा करे।

[३३७–३४०]

हरि राजा का प्रश्न सहेतुक और स्पष्ट था। उत्तमसूरि ने तुरन्त ही मधुर वाणी मे उत्तर दिया—राजन्! तेरे प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर दे रहा हूँ, अपनी विशद बुद्धि से उसे समझ लेना। शुभ्रचित्त नगर मे त्रिभुवन को आनन्द देने वाले सतता-नन्दी सदाशय नामक राजा राज्य करते है। इनकी लोक-प्रसिद्ध वरेण्यता नामक महारानी और ब्रह्मरति तथा मुक्तता नाम की दो कन्याये है। वे दोनो कन्याये अत्यन्त सुन्दर, रूपवान, अनुपम लोचन वाली और गुण की भण्डार है। इन दोनो के सम्पूर्ण गुणो का वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है? [३४१–३४३]

हे राजेन्द्र! इन दोनो मे से सर्वांगसुन्दरी ब्रह्मरति इतनी प्रतापिनी है कि वह पवित्र साध्वी यदि सानन्द दृष्टि से किसी प्राणी को देख लेती है तो वह प्राणी पवित्र हो जाता है। यही कारण है कि सभी उसे पवित्र' कहकर पुकारते है। यह ब्रह्मरति स्थूल आनन्द से दूर रहती है, सर्व प्रकार के गुणो की आधार है और बडे-बडे योगीजन भी उसे नमस्कार करते हैं। ससार मे ऐसा प्रसिद्ध है कि यह राज-कन्या अनन्तवीर्य पुज को प्रदान करने वाली है। ससार मे मैथुन के नाम से प्रसिद्ध घनशेखर के अन्तरग मित्र की यह प्रबल शत्रु है और उसका नाश करने वाली है।

* पृष्ठ ५८०

ब्रह्मरति और मैथुन मे स्वभाव से ही शत्रुता है, अत: ये दोनो कभी एक साथ नही रह सकते। ऐसी सर्वगुणसम्पन्न योगीवन्द्य यह राजकन्या सतत आनन्दकेलि मे रमण करती रहती है। [३४४-३४६]

हे राजन्! दूसरी मुक्तता नामक कन्या भी नि.सन्देह सर्व गुण सम्पन्न और सर्व दोषो का नाश करने वाली है, अतः स्वभाव से ही धनशेखर के महापापी इष्ट मित्र सागर के साथ उसका जन्मजात विरोध है। इन दोनो के बीच सर्वदा लडाई चलती रहती है। परिणामस्वरूप यह पापात्मा सागर ज्यो ही शुद्ध धर्म से परिपूर्ण इस मुक्तता कन्या को देखता है त्यो ही वह उसे दूर से ही देखकर तुरन्त भाग खडा होता है। [३४७-३४९]

अतएव जब ये दोनो कन्याये तेरे मित्र धनशेखर को प्राप्त होगी तब उसका इन दोनो पापी मित्रो से नि सन्देह छुटकारा होगा। जब इन दोनो कन्याओ के साथ धनशेखर का लग्न होगा और वह उनके साथ अत्यन्त आनन्द पूर्व क्रीडा करेगा, सुख भोगेगा, लहर करेगा तब वह अनन्त आनन्द को प्राप्त करने मे समर्थ होगा। [३५०-३५१]

हरि राजा को यह जानकर कि कभी न कभी तो धनशेखर को आनन्द प्राप्त होगा ही, बहुत प्रसन्न हुआ। पर, उन कन्याओ की प्राप्ति उसे कैसे होगी? यह बात वह नही समझ सका। इसलिये उसने हाथ जोड मस्तक झुकाकर अत्यन्त भावपूर्वक नमस्कार कर आचार्य प्रवर से पुन. पूछा—भगवन्! आपने सर्व गुण-सम्पन्न जिन दो कन्याओ के बारे मे अभी बतलाया, वे पापी-मित्रो का नाश करने वाली दोनो कन्याये धनशेखर को कैसे प्राप्त होगी? यह भी बतलाने की कृपा करे। [३५२-३५३]

विनीत राजा का प्रश्न सुनकर उत्तमसूरि ने कहा—नरेन्द्र! तेरे जैसे बुद्धि-मान व्यक्ति को तो अपने शौर्य से त्रिभुवन को वश मे रखने वाले अन्तरग के महा-राजा कर्मपरिणाम के बारे मे मालूम होगा ही। यदि भविष्य मे कभी ये महा पराक्रमी महाराजा* अपनी कालपरिणति महारानी के साथ तेरे मित्र धनशेखर पर प्रसन्न हो जाये तो वे अपने अधीनस्थ शुभ्रचित्त नगर के राजा सदाशय को कहकर उनसे उनकी दोनो पुत्रियो को तेरे मित्र को दिला सकते है। भविष्य मे किसी समय ऐसा हो सकेगा। अर्थात् कर्मपरिणाम राजा के प्रसन्न होने पर भविष्य मे कभी तेरे मित्र को ये दोनो कन्याये प्राप्त होगी। इन दोनो राजकन्याओ के प्राप्त होने पर तेरा मित्र परमसुख को प्राप्त करेगा और वह सर्व गुण सम्पन्न बनेगा। राजन्! कन्याओ को प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय नही है, अत अब इस सम्बन्ध मे आप आकुलता का त्याग करे। [३५४-३५६]

---

* पृष्ठ ५८१

उत्तमसूरि के उत्तर को सुनकर हरि राजा मेरे विषय की चिन्ता से मुक्त हुआ। इसके पश्चात् उन्होने आचार्य से एक बहुत ही अर्थसूचक प्रश्न पूछा। [३५७]

महाराज ! आपने अभी बतलाया था कि धनशेखर ने ऐसा जो भयकर दूषित काम किया और पापाचरण किया वह उसने अपने पापी सागर और मैथुन मित्रो की प्रेरणा से किया। वैसे धनशेखर स्वरूप (अन्तरग दृष्टि) से बहुत अच्छा है, भद्रिक है। फलत. मेरे मन मे यह जानने की जिज्ञासा हो रही है कि यदि प्राणी स्वरूप से निर्मल है तब वह दूसरो के दोष से दुष्ट कैसे बन सकता है ?

सूरि महाराज ने उत्तर मे कहा—नरेश ! प्राणी स्वय निर्मल होने पर भी दूसरो के दोषो से भी दुष्ट बन जाता है। इसका कारण सुनो—लोक दो प्रकार का है—एक अन्तरग और दूसरा बाह्य। बहिरग लोक के दोष तो प्राणी को लग भी सकते हैं और नही भी लग सकते, किन्तु अन्तरग लोक के दोष तो अवश्य ही लगते है। हे राजेन्द्र ! अन्तरग लोक के दोष कैसे होते है और किस प्रकार लगते है ? इस सम्बन्ध मे मै तुम्हे एक कथा सुनाता हूँ जिससे तुम सब बात अच्छी तरह से समझ सकोगे। मै जो कथा सुना रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो। [३५८]

कथा सुनने से अपनी शका का समाधान होगा और आचार्य श्री की वाणी सुनने का लाभ भी प्राप्त होगा, यह सोचकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और आचार्य श्री को कथा सुनाने की प्रार्थना की।

१०. सुख-दुःख का कारण : अन्तरंग राज्य

उत्तमसूरि हरि राजा को कथा सुनाने लगे - राजन् ! यह तो तुम्हे ज्ञात ही है कि कर्मपरिणाम महाराजा और कालपरिणति के अनेक पुत्र है, पर उन्हे किसी की दृष्टि न लग जाये इसलिये अविवेक आदि मत्रियो ने उन्हे भुवन मे छुपा कर गोपनीय रूप से रखा है और ससार मे यह बात फैला रखी है कि वे बाझ है। इन महाराजा के पास एक सिद्धान्त नामक परम सत्पुरुष है जो विशुद्ध सत्यवादी है एव समस्त प्राणी समूह के लिए हितकारी है। यह सभी प्राणियो के भाव और स्वभावो को जानने वाला, कर्मपरिणाम एव कालपरिणति के समस्त गोपनीय रहस्य-स्थानो तथा भेदो का सूक्ष्म ज्ञाता है। सिद्धान्त का विनय सम्पन्न शिष्य अप्रबुद्ध है। एक दिन उनमे निम्न वार्तालाप हुआ :—

सुख-दु·ख का हेतु अन्तरंग राज्य

अप्रबुद्ध—भगवन् ! इस ससार मे प्राणी को क्या प्रिय है और क्या अप्रिय है ?

सिद्धान्त—भद्र ! प्राणी को सुख अति प्रिय और दुःख अप्रिय है। इसलिये सभी प्राणी सुख प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते है और दुःख से दूर भागते है।

अप्रबुद्ध—फिर इस सुख और दु·ख का कारण क्या है ?

सिद्धान्त—सुख का कारण राज्य है और दु.ख का कारण भी राज्य ही है।

अप्रबुद्ध—राज्य सुख और दुःख दोनो का कारण कैसे हो सकता है ? इसमे तो स्पष्टतः विरोध प्रतीत होता है।

सिद्धान्त—वस्तुत. इसमे विरोध नही है, क्योकि यदि राज्य का पालन भली प्रकार किया जाय तो वह सुख का कारण है और यदि उसका पालन गलत ढग से किया जाय तो वह दुःख का कारण है।

अप्रबुद्ध—क्या सुख-दुःख का एकमात्र कारण राज्य ही है ? अन्य कोई कारण नही है ?

सिद्धान्त—हाँ, भाई ! एकमात्र राज्य ही सुख-दु ख का कारण है, अन्य कुछ नही।

अप्रबुद्ध—महाराज ! * यह बात तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। ससार मे बहुत थोडे प्राणियो को राज्य प्राप्त होता है, किन्तु सुख-दु·ख का अनुभव तो सभी जीव करते है, ऐसा दृष्टिगोचर होता है।

सिद्धान्त—भद्र ! सुख-दु ख का कारण बाह्य राज्य नही, अन्तरग राज्य है। ससार के सभी जीवो को वह अन्तरग राज्य अवश्य प्राप्त होता है। यदि जीव अन्तरग राज्य का पालन उचित पद्धति से करता है तो सुख प्राप्त करता है और यदि दुष्पालन करता है तो दुःख का अनुभव करता है। अतएव इसमे किसी प्रकार का प्रत्यक्ष विरोध नही है।

अप्रबुद्ध—भगवन् ! यह अन्तरग राज्य एकरूप वाला/एक समान है या भिन्न-भिन्न प्रकार का है ?

---

* पृष्ठ ५८२

सिद्धान्त—सामान्य तौर पर यह एकरूप है, एक समान है, किन्तु विशेष प्रकार से देखे तो अनेक रूप वाला और भिन्न-भिन्न है।

अप्रवुद्ध—यदि ऐसा ही है तव इस सामान्य राज्य का राजा कौन है ? उसका कोष और सेना कितनी है, उसके अधिकार मे कौन सी भूमि और कौन-कौन से देश है और उसके पास अन्य किस प्रकार की राज्य सामग्री है ? यह मै सुनना चाहता हूँ, जानना चाहता हूँ।

सामान्य राज्य-वर्णन

सिद्धान्त—भद्र ! सुनो– सामान्य राज्य का राजा ससारी जीव है। इस समस्त राज्य का राज्य भार इसी पर है तथा सब का आधारभूत भी यही है। समता ज्ञान, ध्यान, वीर्य आदि अनेक स्वाभाविक रत्नो से इस महाराज्य का भण्डार भरा है। इस विशाल राज्य मे त्रिभुवन को आनन्ददायी और क्षीरसमुद्र के सदृश अत्यन्त निर्मल चतुरगी सेना है। इसकी चतुरगी महा सेना मे गम्भीरता, उदारता, शूरवीरता आदि वड़े-बड़े रथ है। यशस्विता, सौष्ठवता, सज्जनता, प्रेम आदि बडे-वडे हाथी है। वुद्धिचातुर्य, वाक्पटुता, निपुणता आदि घोडे है। अचपलता, प्रसन्नता, प्रशस्तता, मनस्विता और दाक्षिण्य आदि पैदल सैनिक है। ससारी जीव महाराजा के हितकारी चतुर्मुखधारी चारित्रधर्मराज नामक प्रतिनायक भी है। इस प्रतिनायक के सम्यग्दर्शन सेनापति और सद्बोध मन्त्री है। इस चारित्रधर्मराज के यतिधर्म और गृहस्थधर्म नामक दो पुत्र भी है। इसके सतोष तन्त्रपाल (प्रधान) है और शुभाशय आदि बहुत से योद्धा है। ससारी जीव राजा ने अपने सुराज्य मे ऐसी चतुरगी सेना बना रखी हैं। इस विशाल चतुरगी सेना का वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है ? यह महासेना अनन्त गुण-समूह से परिपूर्ण है। राजा स्वय जव निर्मल होता है तब उसे देख/समझ सकता है।
[३५६–३६३]

इस महाराज्य की भूमि चित्तवृत्ति नामक महा अटवी मे स्थापित की गई है जो चित्तवृत्ति के नाम से विख्यात है और सब का आधार इसी पर है। [३६४] इस चित्तवृति नामक अटवी मे सात्त्विक-मानसपुर, जैनपुर, विमलमानस, शुभ्रचित्त आदि अनेक छोटे-मोटे नगर है और इन नगरो से जुडे हुए अनेक ग्राम तथा खाने है।

इस महाराज्य की भूमि मे घातिकर्म नाम के अनेक* डाकू है, इन्द्रिय नामक चोर है, कषाय नामक जल्लाद घूमते है और नौ-कषाय नामक लुटेरे घूमते-फिरते है। इसमे परीषह नामक उपद्रव-कर्त्ता चारो तरफ भ्रमण करते रहते है, उपसर्ग नामक महा भयकर सर्प और प्रमाद नामक लम्पट रहते है। इन सब के दो नायक/नेता है—एक कर्मपरिणाम और दूसरा महामोह, ये दोनो भाई हैं।

---

* पृष्ठ ५८३

ये दोनो नायक राज्य-ऋद्धि से पूर्ण, अत्यन्त अभिमानी, वीर और अपनी स्वतन्त्र चतुरगी सेना से युक्त है। इनके अधीनस्थ करोडो योद्धा हैं। ये दोनो इतने घमडी है कि अपने आपको ही राजा समझते है। ये समझते है कि संसारी जीव कौन होता है? चारित्रधर्मराज की क्या हस्ती है? यह चित्तवृत्ति अटवी और यह राज्य तो उनका और उनके बाप का है। अन्य किसी का शक्ति-सामर्थ्य नही कि वह इस राज्योपभोग मे उनका सामना कर सके। इन सब चोर-लुटेरो ने कर्मपरिणाम को अपना राजा बना लिया है और अपने राज्य का विस्तार कर रहे है।

[३६५-३६७]

इन्होने भीलपल्ली जैसे राजसचित्त, तामसचित्त और रौद्रचित्त आदि अनेक नगर बसा रखे है और महामोह को उसका राजा बना रखा है। अपनी चतुरगी सेना भी महामोह राजा को सौप रखी है और अपनी इच्छानुसार राज्य नीति का निर्धारण कर रखा है। राज्यधुरा का समस्त भार महामोह को सौप रखा है। स्वयं कर्मपरिणाम महाराजा और कालपरिणति रानी तो मात्र मनुजगति नगरी मे बैठे-बैठे ससार नाटक को देखते रहते है।

कर्मपरिणाम राजा, ससारी जीव महाराजा के शक्ति-सामर्थ्य को जानता है, चारित्रधर्मराज के बल को भी पहचानता है, महामत्री सद्बोध की तन्त्रशक्ति और सेनापति सम्यग्दर्शन के सैन्यबल को भी लक्ष्य मे रखता है और सतोष तन्त्रपाल का चातुर्य और शुभाशय आदि योद्धाओ के युद्धोत्साह की प्रबलता को भी जानता है। अत वह ससारी जीव के प्रति अत्यन्त उपेक्षा-भाव नही रखता, किन्तु उसका भविष्य देखता रहता है, चारित्रधर्मराज आदि का अनुकरण करता है, उनके साथ एकात्मकता प्रकट करता है, प्रेम बढाता है और उनके लिए सुयोग्य प्रयोजनो की योजना करता है। इसीलिये चारित्रधर्मराज और उनके अधीनस्थ सभी राज्य कर्मचारी भी कर्मपरिणाम राजा को मध्यस्थ मानते है। उनकी तटस्थता के कारण ही उन्हे अपना स्वामी मानते हैं और उनके साथ सरल व्यवहार करते हैं। इसीलिए ससारी जीव के महाराज्य मे कर्मपरिणाम राजा को बडा और परामर्श लेने योग्य माना जाता है। यही कारण है कि चारित्रधर्मराज भी उन्हे सन्मान देते है।

चोरो का सरदार महामोह अपने बाहुबल के अभिमान मे ससारी जीव या चारित्रधर्मराज और उनके सैन्यबल को तृण जैसा भी नही समझता। वह तो अपने आपको ही सर्वोपरि मानता है। ससारी जीव महाराजा जब तक अपने आत्मीय स्व-राज्य को नही पहचानता और यह नही जानता कि उसके पास भी महाबलवान चतुरगी सेना है, अनन्त धन भण्डार और भूमि है, स्वय मे परमेश्वरत्व की सत्ता है, तब तक उस अवसर का लाभ उठाकर चोरो का सरदार महामोह सदल-बल ससारी जीव की अधीनस्थ भूमि पर आक्रमण करता है, घेरा डालता है, उसके सारे नगर,

ग्राम, खाने आदि अपने अधीन कर लेता है, स्वेच्छानुसार विलास करता है* और ससारी जीव को एकदम अकिंचित्कर/निर्माल्य कर देता है। वह महामोह ससारी जीव के महत्तम बल को नही के समान निर्वीर्य बना देता है और ससारी जीव के महाराज्य का स्वय को ही प्रभु समझता है।

किसी समय यदि ससारी जीव को मालूम पडता है कि उसका राज्य महामोह ने दबा रखा है। जब उसे अपने बल-वीर्य, समृद्धि एव अपने स्वरूप का भान होता है, तब वह महामोह से लडने को उद्यत होता है, अपने बल और कोप की वृद्धि करता है। युद्ध मे कभी ससारी जीव विजयी होता है और कभी महामोह विजयी होता है। जितना-जितना ससारी जीव महामोह पर विजय प्राप्त करता है उतना-उतना वह सुख प्राप्त करता है और जितने अश मे वह महामोह से हारता है, उतना ही वह दु खी होता है।

हे भद्र ! धीरे-धीरे सग्राम का अभ्यास करते हुए जब वह अपने भीतर रहे हुए अतुलनीय बलवीर्य को प्रकट करने मे समर्थ होता है तब महामोह आदि शत्रुओ को मूल से नष्ट कर निष्कटक राज्य प्राप्त करता है और अपने प्रशस्त महाराज्य को प्राप्त कर, चित्तवृत्ति का त्याग कर निरन्तर आनन्द सुख और स्वाभाविक सुख को प्राप्त होता है। इसीलिये अतरग राज्य ही उसके सुख तथा दु.ख का कारण है। यह नि सदेह है कि यदि अन्तरग राज्य का पालन समुचित पद्धति से किया जाय तो वह ससारी जीव के सुख का कारण होता है, अन्यथा वही उसके दु ख का कारण हो जाता है। हे भद्र ! सामान्य अन्तरग राज्य जो ससारी जीव के सुख-दुःख का कारण है उसकी सघटना/रचना इसी प्रकार की कही गई है। [३६८–३७२]

अप्रबुद्ध—भगवन् ! वर्तमान मे ससारी जीव का सुराज्य है या कुराज्य ?

सिद्धान्त—भद्र ! अभी तो ससारी जीव का कुराज्य ही है। अभी तो वह यह भी नही जानता कि वह इतने बडे राज्य का स्वामी है। न तो उसे अपने बल, कोष और समृद्धि का पता है और न वह अपने स्वरूप को ही जानता है। अभी तो वह ससारी जीव बाह्य प्रदेश मे ही भटक रहा है, दु ख-समुद्र मे डूबा हुआ है और मैथुन एव सागर मित्र उसे बराबर भटका रहे है। बेचारे की चारित्रधर्मराज अधीनस्थ सेना भी महामोह राजा आदि द्वारा घिरी हुई है और वह अपनी शक्ति का प्रयोग न कर सके ऐसी स्थिति मे पडा हुआ है।

अप्रबुद्ध—सामान्य अन्तरग राज्य ससारी जीव के सुख-दु ख का कारण है, यह तो समझ मे आया किन्तु विशेष रूप से देखने पर यह अन्तरग राज्य अनेक रूपो

* पृष्ठ ५८४

मे विभक्त हो ऐसा प्रतीत होता है। अत मै इसका स्वरूप जानना चाहता हूँ, कृपा कर बतलावे।

सिद्धान्त—भद्र! सुनो—महाराजा ससारी जीव ने समस्त कार्यो मे पूर्व-वर्णित कर्मपरिणाम राजा को प्रमाणभूत माना है। कर्मपरिणाम राजा इच्छानुसार अपने पुत्रो को भिन्न-भिन्न रूप मे अपना परिपूर्ण राज्य बाँटकर उसका अधिपति बना देता है। इस प्रकार अनन्त राजाओ के भेद से यह अन्तरग राज्य भी अनन्तरूप है। प्रत्येक जीव अपने राज्य का राजा होता है और जीव अनन्त है इसलिये पात्र-विशेष के कारण राज्य भी अनन्त प्रकार के है। [३७३—३७६]*

हे भद्र! यही कारण है कि कर्मपरिणाम के अनन्त राजपुत्रो मे से किसी को यह सुख का कारण होता है तो किसी को दु ख का कारण। सुख-दु ख भी अनेक प्रकार के होने से यह अतरग राज्य भी अनेक प्रकार का है।

अप्रबुद्ध—भदन्त! कर्मपरिणाम राजा के पुत्र जब राज्य कर रहे थे, तब प्रत्येक की क्या स्थिति रही? यह जानना चाहता हूँ।

कर्मपरिणाम के छ. पुत्र

सिद्धान्त— भद्र! मैने अभी बतलाया था कि कर्मपरिणाम राजा के अनन्त पुत्र है। यदि एक-एक के स्वरूप का वर्णन करने लगू तो कभी इस कथा का अन्त ही नही आ सकता। तथापि तुझे सुनने जानने का कौतूहल है अतएव सब पुत्रो की स्थिति का एक सर्वग्राही रूप तुझे बतलाता हूँ।

अप्रबुद्ध—महती कृपा होगी, बतलाइये।

सिद्धान्त—इस कर्मपरिणाम के पुत्र छ प्रकार के है, १ निकृष्ट, २ अधम, ३. विमध्यम, ४, मध्यम, ५ उत्तम और ६ वरिष्ठ। कर्मपरिणाम महाराजा से प्रार्थना कर मै एक ऐसी योजना बनाता हूँ कि वे प्रत्येक प्रकार के पुत्रो को एक-एक वर्ष का राज्य प्रदान करे। फिर तुम अपने अन्तरग कर्मचारी वितर्क को यह देखने के लिये भेजना कि ये छहो पुत्र अपने राज्य का पालन/उपभोग किस प्राकर करते है? वितर्क प्रदत्त विवरण के आधार पर तेरी समझ मे आ जायगा कि कर्मपरिणाम का विशेष राज्य किस प्रकार अनेक रूप और भिन्न-भिन्न है।

अप्रबुद्ध के स्वीकार करने पर सिद्धान्त आचार्य ने पूर्वोक्त निर्धारित योजनानुसार कर्मपरिणाम राजा के छ प्रकार के पुत्रो को अलग-अलग एक-एक वर्ष का राज्य दिलवाया और अप्रबुद्ध ने अपने कर्मचारी वितर्क को उनके राज्य-सचालन का सूक्ष्मता से अध्ययन करने भेज दिया।

---

* पृष्ठ ५८५

११. निकृष्ट-राज्य

वितर्क ने मनुष्य गति मे छ वर्ष बिताये और वहाँ से लौटकर अप्रबुद्ध को उन छः प्रकार के राज्यो का अपना अनुभव सुनाया । वह बोला—

देव ! यहाँ से प्रस्थान कर मैंने उनके अन्तरग राज्य मे प्रवेश किया । उस समय नगर-नगर, ग्राम-ग्राम मे मनुष्यभव-आवेदन नामक पटह बजाकर घोषणा की जा रही थी । उद्घोषक कह रहा था—पूर्व-परम्परा के अनुसार यहाँ प्रथम राजा निकृष्ट का राज्य प्रारम्भ हो गया है । हे लोगो ! आप काम करें, खायें-पिये और मौज करे । [३७६]

इस उद्घोषणा को सुनकर राजमण्डल विचार मे पड गया कि यह नया राजा न जाने कैसा होगा ? सारे राज्य मे खलबली मच गयी । मनुष्य-जन्म-प्रदेश के अनेक छोटे राजा, विद्वान् और कुटुम्बीजन चिन्तित एवं क्षुब्ध होकर अपने-अपने स्थानो पर परस्पर मन्त्रणा करने लगे कि, न जाने यह नया निकृष्ट राजा कैसा होगा ?

[३७७–३७९]

निकृष्ट का स्वरूप

पूर्वोक्त चोर-लुटेरे भी सगठित होकर अपने सरदार महामोह की ससद मे पहुँचे और उनके साथ विचार-विमर्श करने लगे । उस समय विषयाभिलाष मन्त्री ने महामोह नरेन्द्र के समक्ष अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—

यह जो नया निकृष्ट नामक राजा बना है, यह कैसा होगा ? क्या करेगा ? * यह हम सब नही जानते, इसलिये हम सब चिन्तातुर हो गये है । परन्तु, देव ! यह हमारा विषाद अकारण है, निर्हेतुक है । हम व्यर्थ ही आकुल-व्याकुल हो गये है । मेरे इस प्रकार कहने का प्रयोजन/कारण यह है कि महाराजा कर्मपरिणाम ने इस निकृष्ट को बनाया ही ऐसा है कि वह हमारा उत्पीडन करने मे कभी समर्थ नही हो सकता, अपितु वह तो सदा हमारे वश मे रहने के लिए ही निर्मित हुआ है । हमारा ही नही, हमारे सैनिको का भी वह आज्ञापालक/किंकर बनकर कार्य करेगा । हम यह मानकर चले कि कर्मपरिणाम ने इस राज्य पर जो इसकी नियुक्ति की है, उसके इस राज्य के वास्तविक राजा तो हम ही रहेगे । अत अब हमारा यह राज्य निष्कटक हो गया है । फलत हमे आनन्द मनाना चाहिये । विपाद करने की क्या आवश्यकता है ? [३८०–३८६]

---

* पृष्ठ ५८६

मोह-राज्य में प्रसन्नता

महामोह—हे आर्य ! कर्मपरिणाम ने इस निकृष्ट को कैसा बनाया है ? विस्तार से शीघ्र ही बतलाओ। [३८७]

विषयाभिलाप—देव ! सुनिये—निकृष्ट एकदम कुरूप, भाग्यहीन, महा-निर्दय, परलोकज्ञान से पराङ्मुख, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष से दूर, गुरु-निन्दक, महापापी, देव-द्वेषी और विशुद्ध अध्यवसाय की गन्धमात्र से रहित है। वह संसार को उद्विग्न करने वाला, साक्षात् विषांकुर और दोष-समूह का घर है। गम्भीरता, उदारता, पराक्रम, धैर्य, शक्तिस्फुरण आदि गुण तो इस निकृष्ट से पलायन कर दूर ही दूर रहते है। अधमाधम, अपने समग्र आत्मिक पराक्रम से शून्य ऐसा निर्बल पुरुष इस राज्य गद्दी पर आया है। ऐसा कापुरुष हमारा क्या बिगाड सकता है ? आप क्यो घबराते है ? इस बेचारे को तो अभी यह भी मालूम नही कि उसे राज्य प्राप्त हुआ है। वह स्वयं अनन्त बल-वीर्य और समृद्धि से पूर्ण है, इसका भी उसे भान नही। बेचारा तत्त्वतः यह भी नही जानता कि वह कौन है और उसका स्वरूप क्या है ? हमारे चोर-लुटेरे भाई इसके राज्य को दबा कर इसके आत्मधन को लूटने वाले है, इसका भी इसे पता नही है। वह तो हमे अपना हितेच्छु, सम्बन्धी और बन्धु ही मानता है। इतना ही नही, वह तो हमे अपना स्वामी और अपने से श्रेष्ठ समझता है। अतः हे देव ! यदि आपके मन मे किंचित् भी व्याकुलता हो तो उसे निकाल दीजिये और राज्य मे उत्सव मनाने की आज्ञा दीजिये जिससे कि हमारे सभी लोग प्रसन्न हो। [३८८–३९५]

विषयाभिलाष मन्त्री की बात सुनकर महामोह राजा को अत्यानन्द हुआ और सभा मे उपस्थित सभी लोगो को भी आनन्द हुआ। महामोह राजा ने प्रसन्न होकर चारो तरफ उत्सव मनाने की आज्ञा दे दी। विषयाभिलाष मन्त्री कथित निकृष्ट राज्य के वृत्तान्त को सुनकर महामोह राज्य के समस्त अनुचर नाचने-गाने और आनन्दातिरेक से अपने हर्ष को विविध भाति प्रकट करने लगे। हर्षित होकर बधाइया बाटने लगे। कहने लगे—जिस राजा ने अनन्त रत्नो से परिपूर्ण राज्य प्राप्त किया है वह तो हमारे हाथ मे है, हमारे वश मे है* वह तो और अपने लोगो को जानता भी नही। अतः हे भाइयो ! यह तो बहुत अच्छा हुआ। इस निकृष्ट राजा का राज्य तो हमारे लिए अत्यन्त सुखदायक हुआ। इस खुशी मे आओ, हम सभी आज अत्यन्त आनन्द से खाये, पिये, गाये और नाचे। [३९६–४००]

महामोह राजा के सभी नगर और गावो मे, जो भीलो की बस्तियो जैसे थे, प्रसन्नता की लहर फैल गयी। बधाइयाँ बाटी जाने लगी। लोग अपनी दुकाने सुन्दर ध्वज-पताकाओ से सजाने लगे। घातीकर्म नामक चोर अपने मन मे यह जानकर

---

* पृष्ठ ५८७

अत्यन्त उल्लसित हुए कि अब हमारा शासन चलेगा । इन्द्रिय चोरो को सतोष हुआ कि अब वे राज्य का सर्वस्व अपहरण कर अपना घर भरेगे । कषाय लुटेरे भी यह जानकर प्रमुदित हुए कि अब उन्हे अधिक लूट का मौका मिलेगा । नो-कषाय डाकू भी हर्षित हुए कि अब वे अधिक डाका डाल सकेंगे । परीषह नामक दुष्ट योद्धागण लोगो को दु ख मे डुबा देने के विचार से आनन्दित हो रहे थे । उपसर्ग रूपी भयकर सर्प भी प्रसन्न थे कि अब उन्हे अधिक लोगो को डसने का अवसर मिलेगा । मद्य आदि प्रमाद भी अब लोगो को अधिक पागल बनाने के विचार से प्रमुदित थे ।

महामोह राजा का पूरा परिवार वैसे भी अभिमान से अन्धा और मदमस्त था, अब निकृष्ट राजा के राज्य मे तो वह क्या-क्या नही करे ? अर्थात् वह जो करे वह थोडा था । [४०१]

चारित्रधर्मराज की मन्त्रणा

इधर चारित्रधर्मराज के राज्य और सेना मे भी महामोह राजा द्वारा स्थापित निकृष्ट राजा के राज्य की घोषणा से जो प्रतिक्रिया हुई उसे भी बतलाता हूँ । 'निकृष्ट राजा होगा' यह घोषणा सुनकर चारित्रधर्मराज के राज्य मे भी विचार-चर्चा प्रारम्भ हुई कि यह निकृष्ट कैसा है और किस पद्धति से राज्य सचालन करेगा ? [४०२-४०३]

सद्बोध मत्री ने विचार कर कहा—देव ! वह निकृष्ट समस्त प्रकार से दुरात्मा एव अत्यन्त कुरूप है, ऐसा हमे मालूम हुआ है । वह दुरात्मा न तो अपने राज्य का नाम जानता है और न हम सब को पहचानता ही है, प्रत्युत वह हमे शत्रु मानकर हमारे साथ शत्रु जैसा व्यवहार करता है । हमारे बडे शत्रु मोह राजा के प्रति उसका इतना अधिक पक्षपात है कि वह मोह के साधनो को ही बढा रहा है और अपने स्वराज्य, देश या लोगों की तो कोई खबर ही नही लेता, बात भी नही पूछता । हम तो अभी दोहरी विपत्ति/मुसीबत मे आ फसे है । पहले से ही हम लोग मोह राजा द्वारा पराजित है दूसरा उस पर ऐसा निकृष्ट राजा हमारा स्वामी बना है । सचमुच भाग्य भी दुर्बल को ही मारता है । भाग्य के दोष से अभी जो निकृष्ट का राज्य हुआ है वह तो हमारे विनाश का ही समय है । मुझे लगता है कि सचमुच अब हमारा प्रलय-काल आ गया है । [४०४-४०८]

महामत्री के उपरोक्त वचन सुनकर चारित्रधर्मराज, उनके पास खडे सभी छोटे राजा और समस्त परिवार निस्तेज हो गया । सभी का मुख उतर गया । जैसे घर मे किसी प्रियजन की मृत्यु होने पर सारा परिवार शोक-ग्रस्त हो जाता है, हताश हो जाता है, दीनता से विकल हो जाता है, दारुण व्यथा से व्यथित हो जाता है वैसे ही निकृष्ट राजा के सम्बन्ध मे सद्बोध मन्त्री के मुख से विवरण सुनकर चारित्रधर्मराज के पूरे परिवार मे महाशोक छा गया । चारित्रधर्मराज के अधीनस्थ सात्विकपुर आदि अनेक नगरो और ग्रामो मे भी शोक फैल गया ।*

* पृष्ठ ५८८

निकृष्ट की राज्य-प्राप्ति के समाचारो से चारित्रधर्मराज के सभी प्रदेशो के लोग आनन्द, हर्ष, उत्सवरहित होकर शोकमग्न हो गये एव पूर्णत दु खी हो गये। [४०६-४१३]

अन्तरंग राज्य पर मोह राजा का आधिपत्य

एक ही घटना से एक तरफ मोहराज की सेना मे आनन्द फैल गया तो दूसरी तरफ चारित्रधर्मराज की सेना मे शोक फैल गया, यह देख कर मुझे ऐसे निकृष्ट राजा और उसके गुणो को देखने का कुतूहल पैदा हुआ। मैंने अपने मन मे सोचा कि जिसके ऐसे गुण है वह निकृष्ट राजा कैसा होगा ? मुझे अवश्य ही देखना चाहिये। इन्ही विचार-तरगो मे मैंने निर्णय किया कि जब वह अपना राज्य ग्रहण करने राज्य मे प्रवेश करेगा तव उसे देखू गा। यही विचार कर मैं उसके राज्य मे जाकर उसे देखने के लिये उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा, किन्तु निकृष्ट राजा जब अपने राज्य मे प्रवेश करने के लिये आया तो महामोह आदि तस्करो ने उसे राज्य मे प्रवेश ही नही करने दिया। इसके विपरीत महामोह आदि ने निकृष्ट राजा की सारी भूमि पर अधिकार कर लिया और चारित्रधर्मराज की सेना को घेरकर, नाश कर उस पर भी विजय प्राप्त कर ली तथा निकृष्ट राजा को उसके राज्य के बाहर धकेल दिया। हे देव ! इस प्रकार महामोहराज आदि तस्करो ने निकृष्ट राजा को बाहर निकाल कर, अन्तरग राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। [४१४-४१८]

बहिरंग राज्य का निरीक्षण

अन्तरग राज्य की यह उथल-पुथल एव दुर्दशा देखकर, हे देव ! बहिरग प्रदेश का अवलोकन करने की अभिलाषा से मैं बाह्य प्रदेश मे आ गया। हे देव ! वहाँ मैने देखा कि अपने राज्य से भ्रष्ट निकृष्ट राजा यहाँ अत्यन्त दु खी और दयनीय स्थिति मे है। वह नराधम पाप-कर्मों मे आसक्त, अत्यन्त दीन, अत्यन्त क्रूर, लोगो का निन्दापात्र, अपने पुरुषार्थ से भ्रष्ट और अन्य पर आधारित नपु सक जैसा दिख रहा था। उसके शरीर पर फफोले और घाव दिख रहे थे, पूरा शरीर मैल से भरा हुआ था, पाप के ढेर जैसा लग रहा था और दूसरो का आज्ञापालक, परवश, दीन-दु खी, लाचार, दयापात्र, नौकर जैसा लग रहा था। अपने राज्य से भ्रष्ट होकर वह निकृष्ट लोगो की दृष्टि मे भी दुर्भागी लग रहा था। यह तो सब ही जानते हैं कि "जो व्यक्ति अपने ही घर मे पराभव प्राप्त करता है वह बाहर तो पराभूत होता ही है।" अब वह निकृष्ट घास या लकडी बेचकर, हल चलाकर, पशु-पक्षियो को मारकर, पत्रवाहक बनकर और अनेक प्रकार के निन्दनीय कार्य कर तथा सैकडो प्रकार के आक्रोश सहन कर बडी कठिनाई से अपना पेट भरता था। जो अत्यधिक दु खी हो, अत्यन्त पापी हो क्रूर कर्म करने वाला हो, ढेढ-चमार जैसा हो वैसा ही वह राज्य भ्रष्ट होकर ढेढ-चमार जैसा लग रहा था। फिर भी उसे महामोह आदि

चोरो पर बहुत प्रेम था और उन्हे अपना हितेच्छु मानता था। चारित्रधर्मराज और उनके अधीनस्थ राजाओ का तो वह नाम भी नही जानता था। यह स्थिति देखकर कर्मपरिणाम राजा उस पर बहुत क्रोधित हुए और 'तुझे राज्य का पालन करना नही आता' यह कहकर वेचारे निकृष्ट को भवचक्र के पापीपिजर नामक अति भयकर स्थान पर भेज दिया, जहाँ उसे अनेक बार अनन्त पीड़ाये दी गई और महादु खी किया गया, ऐसा मैने सुना। [४१९-४३०]

निकृष्ट राज्य पर चिन्तन

अपने स्वामी अप्रबुद्ध को निकृष्ट के बारे मे बतलाते हुए वितर्क ने आगे कहा—अहा ! एक तो वेचारा निकृष्ट अपने राज्य मे प्रवेश ही नही कर सका।* उसके प्रवेश के पहिले ही तस्करो ने उसके सम्पूर्ण राज्य का हरण कर लिया और उसकी अति उत्तम सेना भी घिर गई। परिणाम स्वरूप बेचारे ने यहाँ भी अनेक दु ख पाये, राज्य से भ्रष्ट हुआ और दूसरा नारकी मे जाकर वहाँ भी अनेक प्रकार के त्रास निरर्थक ही सहे। उस दुरात्मा निकृष्ट को यह सब दु खो का समूह और पीडा अज्ञान के कारण ही हुई है, क्योकि वह पापी अधमाधम जीव अपने राज्य को भी नही पहचान सका। यदि उसे पता होता कि उसका राज्य रत्नो से पूर्ण एव अति सुन्दर है और यदि उसे चारित्रधर्मराज की सेना का पता होता तो वह अपने सच्चे मित्रो को मित्र रूप मे ग्रहण करता और महामोहराज तथा उसकी सेना को अपना शत्रु समझता, जिससे उसे इतनी दु ख-परम्परा प्राप्त नही होती। यदि उसने सत्य को सम्यक् प्रकार से समझा होता तो अपनी शक्ति और नीति का भलीभाति उपयोग कर, चोर लोगो की सेना को भगा कर अपने राज्य पर निष्कटक राज्य करता। [४३१-४३६]

जो होना था वह तो हुआ ही। मुझे चिन्ता करने से क्या ? अब मुझे तो आपकी आज्ञानुसार दूसरे अधम के राज्य मे जाकर पता लगाना था, अत वहाँ जाकर मैने क्या अनुभव किया ? वह आपको सुनाता हूँ। [४३७]

---

* पृष्ठ ५८६.

१२. अधम-राज्य : योगिनी दृष्टिदेवी

वितर्क अपने स्वामी अप्रबुद्ध से बोला—हे देव। द्वितीय वर्ष के प्रारम्भ मे भी उसी प्रकार पटह (ढोल) बजाकर उद्घोषणा की गई कि अरे लोगो ! इस वर्ष अधम का राज्य हुआ है, अत: खाओ, पिओ और मौज करो। इस बार भी मोह राजा और चारित्रधर्मराज की सेनाओ मे प्रथम वर्ष की भाति अधम राजा कैसा होगा, इस सम्बन्ध मे विचार-विमर्श हुआ। मोह राजा की राज्यसभा मे महामोहराज के मत्री विषयाभिलाष ने अधमराजा के स्वरूप और गुणों का जो विस्तार से वर्णन किया, उसे मै बतलाता हूँ। [४३८–४४०]

मंत्री विषयाभिलाष कहने लगा—देखो, अधम के पिता ने इस अधम राजा को कैसा बनाया है ? इस अधम का स्वरूप विस्तार से बतलाता हूँ .—

अधम का स्वरूप

यह अधम इस लोक (भव) मे गाढासक्त है। सर्व प्रकार के आनन्द भोगने का इच्छुक है। इस भव को ही सब प्रकार से पूर्ण मानता है। परलोक से विमुख है। धर्म और मोक्ष के प्रति इसको द्वेष है। अर्थ और काम पुरुषार्थ मे तल्लीन है। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श मे अत्यन्त लुब्ध है। तप, दया, दान, शील, ब्रह्मचर्य आदि गुणो की हसी उडाने वाला विदूषक है। अत वह हमारा तो अत्यधिक प्रिय ही है। उसे भी हमारे प्रति प्रेम है। वह हमारा आज्ञापालक है। वह चारित्रधर्मराज और उसकी सेना का द्वेषी है, उनका एकान्तत: शत्रु है। उसे अभी तक अपने स्वराज्य का ज्ञान ही नही है। अपने बल, वीर्य और स्वरूप को भी वह नही जानता है। हम वास्तव मे चोर-लुटेरे हैं, यह भी वह नही जानता। इसलिये मुझे लगता है कि, हे देव ! इसमे तनिक भी सदेह नही कि अधम का राज्य वस्तुत. हमारे हित के लिये ही निर्मित हुआ है। हमें केवल इतना ध्यान रखना है कि वह किसी भी प्रकार अपने राज्य मे प्रवेश न कर सके, क्योकि एक बार यदि यह अपने राज्य मे प्रविष्ट हो गया तो हमारी चेष्टाओ को जानकर हमे पहचान लेगा। इस दुरात्मा अधम मे तनिक वीर्य, पराक्रम, शक्ति है, इसलिये इसे राज्य से बाहर ही रखना चाहिये। इसका राज्य मे प्रवेश हमारे लिये हितकर नही है। [४४१-४४७]

महामोह महाराजा ने पूछा–आर्य ! दुरात्मा अधम * अपने राज्य मे प्रवेश न कर सके और बाहर ही बाहर रहे इसके लिये कोई मार्ग हो तो विस्तारपूर्वक बतलाओ।

* पृष्ठ ५६०

विषयाभिलाष—देव ! मैने अभी बताया था कि अधम अर्थ और काम मे अधिक आसक्त है, इसलिये हम सभी को मिलकर उसे बाह्य प्रदेश मे धन बटोरने और विषय सेवन मे इतना व्यस्त रखना चाहिये कि वह अपने अन्तरग राज्य मे प्रवेश ही न कर सके ।

महामोह ने आज्ञा दी कि, 'आर्य ! ऐसा ही करो । यह योजना सेना को बतला दो, जिससे अधम प्रतिपल धन और विषयो में डूबा रहे और अन्तरग मे झांक भी न सके ।' आज्ञा सुनते ही समस्त सैन्य योजना-पूर्ति मे सलग्न हो गया । [४४८-४५१]

योगिनी दृष्टिदेवी की नियुक्ति

विषयाभिलाष मत्री की एक दृष्टि नामक पुत्री जो अत्यधिक चतुर, परम-योगिनी, अतिस्वरूपवान, विशालाक्षी एव आकर्षक थी और सभा मे बैठी थी, उसने महाराजा से कहा—देव । आपने तो देवता, दानवो और मनुष्यो को पहले ही जीत रखा है, फिर आपके समक्ष अधम की शक्ति भी कितनी सी है जो उस अकेले को जीतने के लिये आप सब तैयार हुए हैं । महाराज ! आप आज्ञा दे तो मैं अकेली ही उसे वश मे कर सकती हूँ, इसमे क्या बडी बात है । आप सब व्यर्थ मे क्यो चिन्तित हो रहे है ? हे देव ! मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि थोडे ही समय मे मैं उसे राज्य-भ्रष्ट कर दू गी, उसके अन्तरग राज्य से उसे दूर रखू गी और आपका आज्ञा-कारी बना दू गी । मै ऐसा उपाय करू गी कि वह न केवल अपने बल और सेना से बेखबर रहे अपितु सदा अपनी सेना से रुष्ट रहे । हे देव ! मेरे इस कथन मे आप तनिक भी सशय नही करे । हे स्वामिन् ! यह तो आप मानते ही है कि मै जहाँ जाती हूँ वहाँ स्पर्श आदि भाई-बहिन मेरे सहचारी रूप मे मेरे साथ ही रहते है और ये स्पर्श आदि अपने ही व्यक्ति हैं । मैं जिस किसी पुरुष को वशीभूत करने जाती हूँ उस समय भाव से आप सब लोगो का सामीप्य भी मुझे प्राप्त होता है । आपको स्मरण होगा कि गत वर्ष निकृष्ट राजा तो धन और विषय लोलुपता से रहित था, उसे भी मैंने आपके सान्निध्य मे राज्य-भ्रष्ट कर पापीपिंजर नरक में पहुँचा दिया था । अत इसे अपने अंतरंग राज्य मे जाने से रोकने मे तो कठिनता ही क्या है ? हे स्वामिन् ! अब आप विलम्ब न कर मुझे शीघ्र आज्ञा प्रदान करे ताकि मैं उस अधम राजा को उसके राज्य मे प्रवेश ही न करने दू ।

महामोह राजा ने दृष्टि देवी को विश्वासपात्र और योग्य समझ कर अधम राजा को वश मे करने की आज्ञा दे दी और दृष्टि देवी तत्क्षण ही बाह्य प्रदेश मे अधम राजा के पास पहुँच गई । [४५२-४६०]

इधर चारित्रधर्मराज के मण्डल में भी अधम राजा के राज्य के समाचारो से खलबली मच गई, समस्त मण्डल त्रस्त और भयभीत हो गया । जैसे गत वर्ष निकृष्ट के राजा बनने पर विचार-विमर्श हुआ था और सारे प्रदेश में शोक फैल

गया था वैसे ही इस समय भी अधम राज्य के सवादो से समस्त साधु-मण्डल शोक-ग्रस्त हो गया। [४६१–४६२]

दृष्टिदेवी का प्रभाव

दृष्टिदेवी ने योगबल से सूक्ष्म रूप धारण किया और गुप्त रूप से अधम राजा की आँखो मे समा गई। दृष्टि के प्रभाव से अधम राजा स्त्रियो के रूप-सौन्दर्य के निरीक्षण मे अधिक लोलुप हो गया और सौन्दर्य अवलोकन के अतिरिक्त ससार मे सुख का अन्य कोई कारण नही है, ऐसा वह मानने लगा। स्त्रियो के कटाक्ष, तिरछी नजर, इगितादि चेष्टाये, अगोपाग, हाव-भाव, लावण्य, हास्य, लीला, क्रीडा आदि को आखे फाड़-फाड़ कर देखने में ही उसे आनन्द आने लगा। मूर्ख अधम राजा स्त्रियो के नेत्रो को नीलकमल, मुख को चन्द्रमा,* स्तनो को स्वर्णकलश और प्रत्येक अगोपाग मे सौन्दर्य की कल्पना करने लगा। वह स्त्रियो के विलास, लास्य, चपलता, नखरे, हाव-भाव देखने मे रस लेने लगा और रूपवती ललनाओ का नाटक देखकर प्रसन्न होने लगा। सुन्दर चित्र, आकर्षक वस्तुए और विशेषकर सुन्दर स्त्रियो को देखकर वह अति हर्षित होता। सौन्दर्य-दर्शन के ऐसे प्रसगो पर वह सोचता था—'अहो! मुझे तो अतिशय सुख है, मुझे तो यहाँ स्वर्ग मिल गया है! मैं पुण्यशाली हू कि मुझे निरन्तर आश्चर्योत्पादक रूप और सौन्दर्य के दर्शन प्राप्त होते है।' इस प्रकार वह अधम रात-दिन सौन्दर्य-दर्शन मे इतना लुब्ध हो गया कि सोच ही न सका कि वह कौन है? कहाँ से आया है? और क्या कर रहा है? [४६३-४७०]

दृष्टिदेवी के साथ ही उसके भाई-बहिन स्पर्शन आदि, स्वय महामोह राजा और उसकी सेना भी अपना-अपना काम कर रही थी। परिणामस्वरूप अधम राजा मे जो थोडा बहुत ज्ञान था वह भी नष्ट हो गया। यो अधम राजा धन और विषय सुख मे तल्लीन होकर बाह्य प्रदेश मे ही भटकता रहा। सारे समय रूप-दर्शन, धन बटोरना और इन्द्रियो के विषयो को भोगने मे ही उसने सुख और कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली। अपने राज्य, अपनी सेना, अपनी अखूट सम्पत्ति और अपने स्वय के राजा होने का तो उसे भान ही न रहा। दृष्टिदेवी, महामोह राजा और उसकी सेना को वह अपना हितेच्छु और मित्र मानने लगा और उन्ही का पूरा विश्वास करने लगा। इस प्रकार अधम को अपने विश्वास मे लेकर तस्कर सैन्य ने धीमे-धीमे उसका समस्त राज्य हडप लिया और अधम को अपना वशवद बनाकर, उसके समस्त समर्थको को मार-मार कर भगा दिया। [४७१–४७५]

इस प्रकार अधम राजा अपने राज्य से भ्रष्ट हुआ, अपने सच्चे हितैषियो से रहित हुआ और अपने शत्रुओ से घिरकर हतपराक्रम हुआ। दूसरो के अधीनस्थ रहने मे वह सुख मानने लगा। शब्दादि इन्द्रिय विषय जो दु ख रूप हैं और दु ख को उत्पन्न करने वाले हैं, उसे अज्ञानवश प्राणी सुख रूप मानता है। अर्थात् वास्तविक

---

* पृष्ठ ५६१

सुख क्या है और कहाँ है, इसे न जानने से विपरीतमति के कारण इन्द्रिय सुख को ही वह वास्तविक सुख मानने लगता है। वह अधम बाह्य प्रदेश मे ऐसा भटक गया कि उसकी तुलना राज्य कर्मचारी, अभिनेता, भाट, चारण या जुआरी से की जा सकती है। स्वय राजा होते हुए भी वह ससार मे सर्वत्र अभिनेता और जुआरी के रूप मे पहचाना जाने लगा। महामोह राजा की सेना के प्रभाव मे वह दुनिया मे व्यभिचारी, महापापी, विवेकीजनो की दृष्टि मे दयापात्र, नास्तिक, मर्यादाहीन और धर्मानुष्ठानो का द्वेषी बन गया। धर्म करने वालो को वह हास्य पूर्वक ढोगी, भोगहीन और भाग्यहीन कहने लगा और अर्थ तथा काम में तल्लीन लोगो को विद्वान् मानने लगा। वह समझने लगा कि जिसकी स्त्री अपने वश मे हो, जिसे नित्य नूतन सौन्दर्य दर्शन प्राप्त होता हो और जिसके पास अगणित धन हो उसे यही मोक्ष प्राप्त है, वही सच्चा सुखी है, अन्य सब तो व्यर्थ ही विडम्बना मात्र है। इस प्रकार अधम राजा ने बाह्य प्रदेश मे ही भटकते हुए अपना सर्वस्व खो दिया, अच्छे विचारो से वचित रहा और ऐसी निकृष्ट दशा में ही आनन्द मानने लगा। [४७६-४८२]

अन्यदा अधम को एक रूपवती चाण्डालिन स्त्री दिखाई दी और दृष्टिदेवी के प्रभाव से वह उस पर आसक्त हो गया। उसे अपनी कुल मर्यादा, लोकलज्जा, कलक, अपयश, पाप या भविष्य का भी विचार न हुआ। न तो उसे लोकनिन्दा का भय हुआ और न ही उसने कार्य-अकार्य का विचार किया।* उस चाण्डालिन स्त्री के रूप-सौन्दर्य का लम्पट बनकर वह उसी की तरफ निर्निमेष दृष्टि से एकटक देखने लगा और अन्य समस्त व्यवहार भूल गया। अधम का ऐसा अति विपरीत लोकनिन्द्य तुच्छ व्यवहार देखकर सब लोग उसकी निन्दा करने लगे, तिरस्कार करने लगे और उसे फटकारने लगे। अर्थात् अन्तरग राज्य से भ्रष्ट होकर वह बाह्य प्रदेश मे भी जन-समूह से निन्दित हुआ। सब लोगो ने इकट्ठे होकर उस महान् अकार्य करने वाले अधम को राज्य से निकाल दिया, क्योकि "गुणो की ही सर्वत्र पूजा होती है।" फिर बाह्य प्रदेश मे भी अति भयंकर दुःखो को सहन कर निकृष्ट की तरह अधम को भी कर्मपरिणाम राजा ने रुष्ट होकर, यह कहकर कि 'तुमने राज्य बहुत गलत ढग से किया, तुम्हे राज्य करना नही आता' पापीपिंजर नामक महा भयानक स्थान मे डाल दिया। यहाँ भी उसे अनन्तविध दुःख प्रदान किये गये। [४८३-४९०]

वितर्क कहने लगा कि, उस समय मेरे मन मे विचार आया कि निकृष्ट की तरह अधम राजा भी राज्य मिलने पर भी ऐसी दुरावस्था को प्राप्त हुआ, वह अपने राज्य, अपनी सेना और अपने बल-वीर्य को नही जान सका, इसका भी एकमात्र कारण उसका अज्ञान ही था अन्य कोई कारण नही। [४९१]

---

* पृष्ठ ५९२
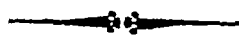
१३. विमध्यम-राज्य

वितर्क तृतीय वर्ष के राजा का वर्णन करते हुए कहता है—देव ! तीसरे वर्ष मे विमध्यम को अन्तरग राज्य सौपा गया। गत दो वर्षों मे जिस प्रकार घोषणा की गई थी उसी प्रकार इस बार भी की गई। गत वर्षो की भाति इस बार भी महामोह और चारित्रधर्मराज की सभाओ मे इस नये राजा के विषय मे विचार-विमर्श हुआ। [४६२-४६३]

महामोह राजा ने अपने मत्री विषयाभिलाष से पूछा—आर्य ! अन्तरग राज्य के इस नये राजा के गुणो के सम्बन्ध मे क्या जानते हो ? सुनाओ। [४६४]

उत्तर मे विषयाभिलाष बोला—महाराज ! यह नया राजा वैसे तो हमारे प्रति प्रेम दृष्टि रखने वाला होने से हमे प्रिय तो है, पर कभी-कभी यह चारित्रधर्म-राज की तरफ भी देख लेता है। यद्यपि वह अपने हृदय से हमे अपने भाई के समान ही मानता है तथापि चारित्रधर्मराज की सेना से भी अपेक्षा रखता है। इसका प्रेम एव पक्षपात हमारे प्रति अधिक है और चारित्रधर्मराज के प्रति आदर-सन्मान कम है। इसकी इस लोक के प्रति जैसी आसक्ति है वैसे ही वह परलोक के प्रति भी वांछा करता है, दृष्टि रखता है। इसका मन मुख्यत धन बटोरने और काम भोगो मे आसक्त है, पर कभी-कभी सहज धर्मकार्य भी करता रहता है। यह प्रकृति से सरल, सभी देव-गुरुओ एव तपस्वीजनो की स्तुति करने वाला, दान देने वाला, शील पालन करने वाला और सत्शास्त्र पर किसी प्रकार का दूषण नही लगाने वाला है। हे देव ! यह हमारे लिये बहुत अच्छा नही है, क्योकि चारित्रधर्मराज की सेना के स्वरूप को भी सामान्यत. जानता है। इस वर्ष हमे अधिक सावधान रहना पडेगा। जैसे भी हो वैसे इसे भी अन्तरग राज्य मे प्रविष्ट होने से रोकना पडेगा। यदि हमने थोडी सी भी भूल की तो अतरग राज्य मे प्रवेश करते ही यह अपनी सेना को पहचान लेगा और उसका * पालन-पोषण करेगा, तथा हमारी सेना के लिये बाधाये खडी कर देगा, यह नि सदेह है। यह बाह्य प्रदेश मे रहकर ऊपर-ऊपर से स्वय की सेना का परिपालन करता रहे तो हमारे लिये अत्यन्त बाधक नही बन पायेगा। जैसे हमने पहले दृष्टिदेवी के सहयोग से अधम को उसके राज्य मे प्रवेश करने से रोका था, वैसे ही इसे भी रोकना पड़ेगा। अतएव हे स्वामिन् ! अब आप अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिये अविलम्ब आज्ञा प्रदान कीजिये, जिससे कि विमध्यम अपने राज्य मे प्रवेश कर अधिकार प्राप्त न कर सके।

---

* पृष्ठ ५६३

यह सुनकर महामोह ने विमध्यम को उसके अन्तरग राज्य मे प्रवेश करने से रोकने की आज्ञा दे दी। [४९५-५०६]

विमध्यम का राज्य

आज्ञा मिलते ही मोह राजा के तस्कर सैनिको ने दृष्टिदेवी के सहयोग से विमध्यम को अपने अन्तरग राज्य में प्रवेश करने से रोक दिया और उसके राज्य पर अपना आधिपत्य जमा लिया। पर, इस वार चारित्रधर्मराज की सेना को अधिक पीडित नही किया और किंचित् उस सैन्य की अपेक्षा भी रखी। परिणाम-स्वरूप वह राज्य से वहिर्भूत होने पर भी आत्मीय राज्य और सेना का भी कभी-कभी मान-सन्मान के साथ पालन-पोषण करने लगा। विमध्यम ने रात-दिन के समय को तीन भागो मे वाट दिया था। वह समयोचित कुछ समय धर्म-कार्य करता, कुछ समय धनोपार्जन करता और कुछ समय विषय सेवन मे बिताता। वह धर्म, अर्थ और काम तीनो मे प्रवृत्ति करता था जिससे चारित्रधर्मराज आदि भी सतुष्ट थे और गत वर्षो की तरह शोक-मग्न भी नही थे। विमध्यम राजा की तुलना त्रिवर्ग (अर्थ, काम, धर्म) साधक सदाचारी ब्राह्मण या प्रजापालक राजा से की जा सकती है। इस पद्धति से वह विमध्यम लोगो मे भाग्यशाली और पुण्यवान के रूप मे प्रशसित भी हुआ। विमध्यम का पिता कर्मपरिणाम महाराजा भी अपने पुत्र की राज्यपालन पद्धति से कुछ प्रसन्न हुआ। फलस्वरूप उसने कभी विमध्यम को सुख पूर्ण सयोग वाले पशुसस्थान मे भेजा तो कभी सुख-साधन युक्त मानवावास मे और कभी सुख से भरपूर विबुधालय (देवलोक) मे भी भेजा था, ऐसा मैंने सुना। [५०७-५१६]

१४. मध्यम-राज्य

विमध्यम का राज्य समाप्त होने पर चौथे वर्ष मध्यम नामक चौथे पुत्र का राज्य प्रारम्भ हुआ। गत वर्षो की भाति इस बार भी उसकी नियुक्ति की घोषणा पटह बजाकर की गई। महामोह और उसके मत्री के बीच भी गत वर्षो की ही तरह इस नये राजा के विषय मे विचार-विमर्श हुआ। महामोहराज द्वारा मध्यम के गुण और स्वरूप के सम्बन्ध मे पूछने पर विपयाभिलाष मत्री ने कहा :—

महाराज ! यह मध्यम राजा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पुरुपार्थो मे पूरे समय भाव-पूर्वक प्रयत्न करने वाला है। वह इन चार पुरुषार्थों

मे मोक्ष को ही सच्चा परमार्थ स्वरूप मानता है। वह यह भी जानता है कि मोक्ष रूपी साध्य को प्राप्त करने का वास्तविक साधन धर्म ही है, अत. वह अर्थ और काम मे अधिक आसक्त नही होता। यद्यपि वह धन और काम भोगो के दोषो को भली भाति जानता है, तथापि स्वय मे अत्यन्त विशाल पराक्रम के अभाव मे वह उसको परमार्थ से बन्धन/दोष स्वरूप ही समझता है ! फिर भी इन बन्धनो को तोड़ने मे अभी वह अपने आपको असमर्थ पाता है। उसका चिन्तन सदा मोक्ष लक्ष्य की ओर ही रहता है, अर्थात् वस्तु स्वरूप को बराबर समझता है।* फिर भी यह नरपति आवश्यक सामर्थ्य के अभाव मे बन्धु, पुत्र, कलत्रादि इन भाव-बन्धनो को तोड़ने मे अक्षम है। [५१७–५२२]

वितर्क कहता है कि विषयाभिलाष मन्त्री ने महामोहराज आदि के सन्मुख मध्यम के स्वरूप गुणो का चित्रण किया वैसा ही मध्यम का स्वरूप-वर्णन मैंने जनता के मुख से भी सुना।

अप्रबुद्ध—वितर्क ! तुमने मध्यम के सम्बन्ध मे लोगो के मुख से और क्या-क्या सुना ?

वितर्क—देव ! सुनिये। सिद्धान्त गुरु ने जो बाते आपको पहले बतलाई थी उन्ही सिद्धान्त गुरु से इस मध्यम राजा की भी पहचान थी। सिद्धान्त गुरु ने एक बार मध्यम राजा को उद्देश्यपूर्वक समझा दिया था जिससे वह अपने आत्मिक अन्तरग राज्य को भी थोड़ा बहुत जान गया था। उनके उपदेश से वह अपनी ऋद्धि-समृद्धि और वास्तविक स्वरूप को तथा चारित्रधर्मराज के योद्धाओ को भी पहचान गया था। सिद्धान्त के वचनो से वह यह भी जान गया था कि महामोह आदि शत्रु कितने प्रबल तस्कर है। फलस्वरूप मध्यम राजा ने अपने वीर्य (वल) को थोडा-थोडा प्रकट कर अन्तरग राज्य की आधी भूमि को अपने अधीन कर लिया। मध्यम राजा के सहायक चारित्रधर्मराज और उसके योद्धा भी इससे प्रसन्न हुए और मोह राजा आदि चोर-लुटेरे घबराये। महामोह आदि तस्कर भी मध्यम राजा की शक्ति को जान गये, अत. अब उन्होने भी उसके राज्य को अधिकार मे करने के विचार का त्याग कर दिया और राजा के अनुचर जैसे वन-कर उससे डरते हुए, भय खाते हुए उसके आस-पास ही मडराने लगे। चारित्रधर्म-राज आदि राजा, सेना एव वान्धवजन भी अपने स्वामी की इतनी सामर्थ्य को देखकर मन मे किंचित् प्रसन्न हुए और दृष्टिदेवी जो पिछले राजाओ को वश करने मे समर्थ हुई थी वह भी मध्यम राजा के मार्ग मे अत्यन्त वाधक नही वन सकी, अर्थात् उसका कुछ भी नही बिगाड सकी। [५२३–५३२]

इस प्रकार मध्यम राजा ने अपने मण्डल को थोड़ा जीत लिया था और धीरे-धीरे अपने राज्य का विस्तार करने की प्रतीक्षा करने लगा। वाह्य प्रदेश मे मध्यम

---

* पृष्ठ ५६४

राजा की बहुत प्रशसा हुई। लोग कहने लगे कि यह राजा सचमुच भाग्यवान और पुण्यवान है, इसको सत्य मार्ग प्राप्त हुआ है, यह धन्य है। [५३३–५३४]

अधिक क्या ? जैनेन्द्र-शासन मे प्रवृत्त जिन जीवों ने सत्य मार्ग प्राप्त किया है, जिनके मन मे सच्ची शुद्ध श्रद्धा जाग्रत हुई है, जो जीव, अजीव आदि तत्त्वो के जानकार है, जो अपनी शक्ति के अनुसार पाप से पीछे हटे हुए है, जो अपनी विशुद्ध लेश्या वैचारिक प्रवृत्ति से ससार के सभी प्राणियो को आह्लादित करते है, ऐसे प्राणी जिस प्रकार का आचरण करते है ठीक वैसा ही आचरण मध्यम राजा ने अपने राज्य को भोगते समय किया। तत्त्व को समझ कर परलोक और मोक्ष के लिये प्राणी जिस प्रकार का पुरुषार्थ करता है उसी प्रकार का उद्यम करने वाला मध्यम राजा भी था। [५३५–५३८]

मध्यम राजा का पिता सार्वभौम नरपति कर्मपरिणाम महाराजा * अपने पुत्र की इस प्रवृत्ति से प्रसन्न हुआ और उसका राज्य-काल पूरा होने पर उसे असख्य सुखो से भरपूर विबुधालय (देवलोक) मे भेज दिया। [५३९–५४०]
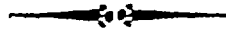
१५. उत्तम-राज्य

वितर्क अप्रबुद्ध से कह रहा है—निकृष्ट, अधम, विमध्यम और मध्यम इन चार प्रकार के राजाओ का भिन्न-भिन्न चरित्र और राजतन्त्र का अवलोकन करने के पश्चात् 'पाचवा उत्तम क्या करेगा और किस प्रकार राज्य का पालन करेगा ?' इस सम्बन्ध मे मुझे जानने की उत्सुकता जाग्रत हुई। गत वर्षो की भाति इस वर्ष भी उत्तम राजा के राज्यारभ की घोषणा देश के सभी नगरो और ग्रामो मे हुई। घोषणा सुनकर अन्तरग राज्य के अधिपति चारित्रधर्मराज और महामोहराज की सभाओ मे भी इस नये राजा के विषय मे ऊहा-पोह एव विचार-विमर्श हुआ।
[५४१-५४३]

सद्बोध मत्री ने सेना मे शांति तथा धैर्य बनाये रखने के लिए चारित्रधर्म-राज के समक्ष उत्तम राजा के स्वरूप और गुणो का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा—

भाइयो ! इस नये राजा से आप लेशमात्र भी न घबराये। यह राजा बहुत अच्छा, हमारे प्रति प्रेम रखने वाला और हमारे आनन्द मे विशिष्ट वृद्धि करने

* पृष्ठ ५६५

वाला है । यह राजा जानता है कि उसका यह राज्य अनेक अमूल्य रत्नो से समृद्ध है । यह हमारी सेना के प्रत्येक नायक को उसके नाम और गुणो से जानता है और उन गुणो का स्वय उसके साथ क्या सम्बन्ध है उसे भी जानता है । पुनः हमारी सेना कैसी है ? कितनी है ? सेनापतियो के क्या-क्या गुण है ? हमारे कौन से स्थान, ग्राम, नगर, प्रदेश आदि है तथा अन्तरग राज्य मे कौन-कौन चोर है और कौन शुद्धाचरण वाले है ? इसे भी वह जानता है । इस राज्य मे किस प्रकार की परि-स्थिति उत्तम है ? इस समस्त वस्तुस्थिति को भी उत्तम भूपति समझता है । इतना ही नही, समझी हुई बात को क्रियान्वित करने के लिए भी सर्वदा तत्पर रहता है, जिससे हमारी सेना की बल-शक्ति मे वृद्धि होती है और हमारे यश तथा तेजस्विता मे भी वृद्धि होती है । वह महामोह आदि हमारे शत्रुओ को पहचानता है तथा उनको दबाकर रखने वाला और उनका नाश करने वाला है । एक राजा के योग्य सभी गुणो से अलकृत होने के कारण यह राजा हमारे लिए श्रेष्ठ है और इसका राज्य परमार्थ से हमारा राज्य हो गया है, ऐसा आप समझे । देव ! इस सम्बन्ध मे सदेह की कोई गुंजाइश नही है । [५४४–५५०]

सद्बोध मत्री के उपरोक्त वचन सुनकर चारित्रधर्म आदि राजाओ के मुख-कमल प्रफुल्लित हो गये । फिर उन्होने आनन्दित होकर आश्चर्यजनक हर्ष-महोत्सव मनाया और परस्पर अभिनन्दन किया तथा बधाईया बाटने लगे । सभी राजा आनद रस मे लीन होकर गाने लगे—

अहो ! इस उत्तम राजा के प्रकर्ष-पूर्ण प्रबल राज्य मे समग्र तस्कर-समूह के बल का दलन (हनन) कर दिया जायेगा । अल्प समय मे ही यह राज्य उत्तम/श्रेष्ठ प्रकार का हो जायेगा और विशेष रूप से इसका राज्य साधुजनो को अतिशय आनन्द प्रदान करने वाला हो जायेगा । [५५१–५५३]

इधर उत्तम-राज्य की स्थापना के समाचार सुनकर महामोह राजा की सेना तो हताश हो गई । 'अरे मर गये !' कहते हुए वे सचमुच अधमरे से हो गये । वे सोचने लगे कि, अब कहाँ जाये ? कहाँ भागे ? जीवन-रक्षा कैसे करे ? क्या करे ? इन्ही विचारो मे आकुल-व्याकुल होकर वे घबराने और दुःखी होने लगे ।
[५५४–५५५]

अपने पिता कर्मपरिणाम महाराजा से राज्य प्राप्त कर उत्तम राजा पहले सिद्धान्त गुरु के पास गया और उनसे आन्तरिक राज्य की गुप्त स्थिति के बारे मे पूछा । उत्तम ने कहा—महाराज ! इस अति दुर्गम राज्य मे मुझे कैसे प्रवेश करना चाहिये ?* महा प्रचण्ड चोरो का नाश कैसे करू ? किस नीति से राज्य करने पर यह विशाल राज्य मेरे वश मे होगा ? मेरी पौरुष-शक्ति का उपयोग मुझे कहाँ करना चाहिये ? पूज्यवर ! आप विधिवेत्ता है, आप सब कुछ उपाय/मार्ग जानते हैं,

* पृष्ठ ५९६

अतः मुझे ऐसा मार्ग बताइये जिससे मेरा राज्य निष्कटक हो और मुझे अन्य किसी से भी त्रास प्राप्त न हो सके। [५५६–५५९]

उत्तर मे सिद्धान्त गुरु ने उत्तम से कहा— वत्स ! तू सचमुच राज्य करने के योग्य है, यह निःसन्देह है। क्योकि, तुझे मोक्ष-प्राप्ति की प्रबल इच्छा है और उसी के लिये तू धर्म की साधना करता है। तू विरत होकर ससार से दूर होता जा रहा है। तू अर्थ और काम से पराङमुख होता जा रहा है। ये सभी योग्य लक्षण हैं। मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होने वाले को आनुषगिक रूप से जो यश और सुख प्राप्त होता है उसमे वह मोहित/लुब्ध नही होता, इसीलिए वे बन्ध के कारण नही बनते। मै तुझे भी ऐसा ही देख रहा हूँ। इस ससार का सभी प्रपच तुझे स्पष्टतः दिखाई दे रहा है। उसके रहस्य और विषमता को तूने समझ लिया है, इसीलिये पिता द्वारा सौंपे गये राज्य को भी तूने पहचान लिया है। हे नरोत्तम ! इस राज्य मे प्रवेश करने की विधि बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। [५६१–५६४]

राज्य-प्रवेश का उपाय

राजन् ! अन्तरग राज्य मे प्रवेश करने से पहले गुरु महाराज से पूछना। गुरु महाराज जो उपदेश दे/मार्ग बतावे उस पर सम्यक् प्रकार से आचरण करना। वेद मत्रो से मत्रित अग्नि की जिस प्रकार अग्निहोत्री रक्षा करता है उसी प्रकार गुरु महाराज की सेवा/उपासना करना। धर्मशास्त्रो का मननपूर्वक अभ्यास कर तलस्पर्शी ज्ञाता बनना। उनमे वर्णित सिद्धान्तो/रहस्यो का गहन-चिन्तन करना और उन्हे समझकर हृदय को उन पर दृढ करना। धर्मशास्त्रों मे बताई हुई क्रियाओ/अनुष्ठानो का पालन करना। सत महात्माओं की पर्युपासना/सेवा करना। दुर्जन मनुष्यो से सर्वदा दूर रहना और उनके परिचय का त्याग करना। १. सर्व प्राणी अपने समान ही है, ऐसा समझ कर उनकी रक्षा करना, उन्हे प्राणदान देना, २. सर्व प्राणियो को हितकारी, मधुर, अवसर योग्य और सोच-समझ कर सत्य वचन बोलना, ३. दूसरे के धन का तिल मात्र भी बिना स्वामी की आज्ञा के नही लेना, ४. समस्त स्त्रीवर्ग के साथ सभाषण, स्मरण, कल्पना, प्रार्थना, वार्तालाप आदि नही करना, उनके सामने एकटक नही देखना और ५. बाह्य तथा अन्तरग सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग करना। आत्म-सयम मे विशेष उपकारी साधुवेष को धारण करना। नव कोटि विशुद्ध आहार, उपधि, शैय्या आदि से अपने शरीर का निर्वाह करना और ग्राम-नगर आदि मे निःस्पृह होकर अप्रतिबद्ध विहार करना। तद्रा, ऊघ, निराशा, आलस्य और शोक को निकट आने का अवसर भी नही देना। सुकोमल स्पर्श पर मूर्छित न होना, स्वादिष्ट रस का लोलुप न बनना, सुगन्धित पदार्थों पर मोहित न होना, कमनीय रूप सौन्दर्य पर आसक्त न होना और मधुरध्वनि पर लुब्ध न बनना। कर्कश शब्दो के प्रति उद्वेग न करना, बीभत्स रूप को देखकर जुगुप्सा न करना, अमनोज्ञ रस को देख कर द्वेष न करना, दुर्गन्धित

पदार्थों की निन्दा न करना और अरुचिकर स्पर्श की गर्हा न करना। प्रत्येक क्षण अत्यन्त विशुद्ध भाव-जल से धोकर आत्मा को स्वच्छ रखना। सर्वदा मन मे समस्त प्रकार से सतोष रखना, विचित्र प्रकार का* तप करना, पाच प्रकार का स्वाध्याय करना, सर्वदा अन्त: करण को परमात्मा मे स्थापित करना और पाच समिति एव तीन गुप्ति से पवित्र मार्ग पर निरन्तर चलना। क्षुधा, प्यास आदि २२ परिषहो को सहन करना, देव-मनुष्यादि कृत उपसर्गों को सहन करना, बुद्धि, धैर्य तथा स्मृति के बल मे यथाशक्य वृद्धि करना और जिन शुभ योगो की प्राप्ति न हुई हो उन्हे प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करना।

उक्त मार्ग का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करने से अन्तरग राज्य मे प्रवेश हो सकता है, तुझे भी इसी मार्ग पर चलकर राज्य मे प्रवेश करना चाहिये।

उत्तम राजा बोले—जैसी भगवन् की आज्ञा।

अंतरंग राज्य का मार्ग

इसके पश्चात् सिद्धात गुरु ने अपना उपदेश आगे चलाया—वत्स! उपरोक्त पद्धति से अन्तरग राज्य मे प्रवेश करते समय तुम अभ्यास नामक व्यक्ति को अपने अगरक्षक (विशेष सहायक) के रूप मे अवश्य साथ रखना। ऐसा करने पर चारित्रधर्मराज की सेना का वैराग्य नामक योद्धा भी सहयोगी के रूप मे तेरे साथ आ जायेगा। इन दोनो अभ्यास और वैराग्य को साथ मे लेकर तुम अन्तरग राज्य मे प्रवेश करना। महामोह राजा की सेना के किसी भी व्यक्ति को बाहर मत आने देना। यदि कोई बलात्कारपूर्वक बाहर आने का प्रयत्न करे तो उसे देखते ही मार देना (मोह के उदय को निष्फल कर देना)। चारित्रधर्मराज की सारी सेना को धैर्य बधाना और चित्तवृत्ति राज्य-भूमि को स्थिर करना। मैत्री, मुदिता, करुणा, और उपेक्षा नामक चार महादेवियो को इस राज्य भूमि मे प्रवर्तित करना और उनके प्रसार को अधिकाधिक बढाकर उनसे राज्यपालन मे सहायता लेना। जब यह सब सामग्री तैयार हो जाये, तब तू पूर्व दिशा के द्वार से अन्तरग राज्य मे प्रवेश करना। इस अन्तरग भूमि के उत्तर दिशा की (बायी) ओर महामोह राजा की सेना के आधारभूत उपयोग मे आने वाले ग्राम, नगर, घाटी, नदी, पर्वत आदि है। दक्षिण की (दायी) तरफ चारित्रधर्मराज की सेना से सम्बन्धित ग्राम, नगर आदि हैं। इन दोनो सेनाओ की आधारभूमि तो चित्तवृत्ति महाटवी ही है। इस चित्तवृत्ति अटवी के अन्त मे पश्चिम दिशा मे निर्वृत्ति नामक नगरी है। चित्तवृत्ति अटवी को पार करने के बाद सामने ही निर्वृत्ति नगरी है। जब तू निर्वृत्ति नगरी मे पहुचेगा तब तेरे सारे मनोरथ पूर्ण होगे और तुझे अन्तरग राज्य-प्राप्ति का वास्तविक फल प्राप्त होगा, अत इस नगरी मे पहुचने का तू यथाशक्य पूर्ण प्रयत्न करना। चित्त-वृत्ति अटवी के मध्यभाग मे होकर औदासीन्य नामक एक अतिसुगम राजमार्ग जाता

* पृष्ठ ५९७

है । यह मार्ग चारित्रधर्मराज की सेना को अत्यन्त प्रिय है । इस मार्ग को महामोह राजा की सेना स्पर्श भी नही कर सकती । इस मार्ग पर अनवरत चलकर तू निर्वृत्ति नगरी की ओर जाना । इस मार्ग पर तुझे पहले अध्यवसाय नामक विशाल सरोवर मिलेगा । इस सरोवर की विशेषता यह है कि जब यह गदा होता है तब स्वाभाविक रूप से महामोह राजा की सेना का पोषण करता है और चारित्रधर्मराज की सेना को उत्पीड़ित करता है, किन्तु जब यह स्वच्छ होता है तब प्रसन्नतापूर्वक स्वाभाविक रूप से चारित्रधर्मराज के सैन्य को पुष्ट करता है और महामोह राजा के सैन्य को * दुर्बल बनाता है । यही कारण है कि महामोह की सेना अपने हित के लिये इसे दूषित करती रहती है और चारित्रधर्मराज की सेना अपने उपकारार्थ इसे स्वच्छ करती रहती है । तू इस अध्यवसाय महासरोवर को स्वच्छ करने के लिये मैत्री, मुदिता, करुणा, उपेक्षा महादेवियो को नियुक्त कर देना; क्योकि ये चारो देविया इस सरोवर को निर्मलतम/स्वच्छतम बनाने मे अत्यन्त चतुर है । इस सरोवर को स्वच्छ करने से चारित्रधर्मराज की सेना अधिक बलवान होगी, जिससे तेरे अधीनस्थ राजा भी पुष्ट होगे और महामोह राजा की सेना बलहीन हो जायेगी, तब ही तू आगे प्रयाण कर सकेगा । आगे जाकर तुझे इसी सरोवर मे से निकली हुई धारणा नामक महानदी मिलेगी । तब तू अपने आसन को स्थिर कर, हलन-चलन को रोक कर, श्वासोच्छ्वास को बन्द कर, सकल इन्द्रियो के व्यापार को रोक कर, अति वेग से चलकर नदी मे प्रवेश कर जाना । इस समय महामोह आदि भयकर शत्रु नदी मे सकल्प-विकल्प की उत्ताल तरगे पैदा करेगे, पर तू अत्यन्त सावधानी पूर्वक इन तरगो को उठते ही शात कर देना । जब तू धारणा नदी को पार कर आगे बढ़ेगा तब तुझे धर्म-ध्यान नामक दण्डोलक (पगडण्डी) मिलेगी । इस पगडण्डी से आगे बढने पर तुझे सबीजयोग नामक बडा रास्ता मिलेगा । इस रास्ते पर चलते हुए तेरे महामोहादि समग्र शत्रुओ का प्रतिपल नाश होता जायगा और उनके निवास स्थान भी सब अस्त-व्यस्त होकर विनाश की अवस्था को प्राप्त होते जायेगे । इस मार्ग पर चारित्रधर्मादि अनुकूल मित्र अधिक बलवान होगे । तेरी सम्पूर्ण अन्तरग राज्य-भूमि अधिकाधिक स्वच्छ और विशुद्ध होती जायेगी । पहले उसमे जो राजस् और तामस् वृत्तिया थी, उनका अब नामो-निशान भी नही रहेगा । इस मार्ग से आगे बढने पर एक ओर शुक्ल ध्यान नामक दण्डोलक आयेगा । दण्डोलक से चलकर आगे बढने पर तुझे विशुद्ध केवलालोक की प्राप्ति होगी, जिससे तू सभी वस्तुओ और भावो को यथावस्थित शुद्ध आकार मे देख सकेगा । यह दण्डोलक आगे जाकर निर्बीजयोग नामक बडे मार्ग से मिल जायेगा । इस मार्ग पर चलते हुए भयकर शत्रुओ का शमन करने के लिये तुझे केवली-समुद्घात नामक कठिन प्रयत्न करना पडेगा । ऐसा करके तू योग नामक तीन दुष्ट वैतालो का नाश कर सकेगा ।

---

* पृष्ठ ५६८

योगो के नष्ट होने के पश्चात् शैलेशी मार्ग आयेगा, इस मार्ग पर चलना। इस पर चलकर ही तू अन्त मे निर्वृत्ति नगरी पहुँच सकेगा। यह नगरी सर्वदा स्थिर रहती है और यहाँ किसी प्रकार की रुकावट या पीडा नही होती, इसीलिये इसका नाम निर्वृत्ति नगरी रखा गया। यदि तू उदासीनता नामक राज्य मार्ग को छोडकर इधर-उधर नही भटकेगा तो तुझे उपरोक्त सभी स्थान क्रमश· प्राप्त होते जायेगे। इस मार्ग पर चलते हुए तू अपने पास समता नामक योगनलिका (दूरबीन) अवश्य रखना और इस योगनलिका के प्रयोग द्वारा तू दूर के पदार्थो की स्थिति भी बराबर देखते रहना। फिर तू स्वय ही सभी वस्तुओ के यथावस्थित सत्य स्वरूप को देख सकेगा और प्रत्येक अवसर पर आवश्यक एव समयोचित कदम उठा सकेगा। अर्थात् इस समता योगनली द्वारा तू स्वय ही सब कुछ निर्णय कर सकेगा। इसलिये अब तुझे अधिक उपदेश देने की आवश्यकता नही है।

हे वत्स ! इस निर्वृत्ति नगरी मे तो सर्वदा आनन्दोत्सव चलते ही रहते है, अत. यहाँ पहुंचकर ही तू अन्तरग * राज्य-प्राप्ति का वास्तविक फल और लाभ का भोक्ता बन सकेगा। उस समय तुझे किसी भी प्रकार की बाधा-पीडा नही रहेगी। सम्पूर्ण शत्रु-समूह के नाश से तू निर्भय हो जायगा। हे भाग्यशालिन्। वहाँ तू सर्वदा आनन्द की लहरो मे मग्न रहेगा। तेरे साथ जो अन्तरग राज्य के राजा है उन्हे भी समृद्धि प्राप्त होगी और तुझ मे लय होकर वे भी तेरे साथ आनन्द का भोग करेंगे। [५६५-५६७]

वत्स ! तू यह भी लक्ष्य मे रखना कि अन्तरग राज्य मे प्रवेश करते ही तू पहले तेरे शत्रुओ का नाश करने वाले पराक्रमी योद्धा वैराग्य को प्रमुख बना देना और मार्गो के जानकार अभ्यास को अपने साथ रखकर उसके मार्ग-दर्शन मे ही आगे बढना। हे महाभाग ! इन दोनो की सहायता से राज्य मे प्रवेश करने के पश्चात् पद-पद पर तेरी समृद्धि मे वृद्धि होगी। अधिक क्या कहूँ ? सक्षेप मे तुझ से यही कहना है कि तू इस राज्य मार्ग का कभी त्याग मत करना, अपने अन्तरग शत्रुओ का नाश करते रहना, बाह्य सपत्ति या आकर्षणो के प्रति आसक्त मत होना, चारित्र-धर्म आदि तेरे हितेच्छुओ का सम्यक् प्रकार से पालन-पोषण करना और मेरे उपदेश को बारम्बार स्मरण करते रहना। हे वत्स ! यदि तू इस प्रकार करेगा तो तेरा सब प्रकार से कल्याण होगा। वत्स ! अब तू जा और निर्मल राज्य कर। तुझे सिद्धि, लाभ और राज्यफल प्राप्त होगे और मेरा परिश्रम/प्रयत्न भी सफल होगा। [५६८-५७२]

"जैसी भगवान् की आज्ञा" कहते हुए उत्तम राजा ने प्रस्थान किया।

उत्तम का उपदेशानुसार अनुष्ठान

महात्मा सिद्धान्त गुरु के उपदेश के अनुसार ही बुद्धिशाली उत्तम राजा ने अन्तरग राज्य मे प्रवेश किया और उनके मार्ग-दर्शनानुसार ही अपने सभी कर्त्तव्य पूर्ण किये। [५७३-५७४]

* पृष्ठ ५६६

हे देव ! महामोह आदि शत्रुओं ने पहले की ही भांति उत्तम राजा को वश मे करने की कामना से योगिनी दृष्टिदेवी को नियुक्त किया, किन्तु वह उसे वश मे करने मे असमर्थ रही, प्रत्युत उत्तम राजा ने ही उसे अपने वश मे कर लिया। इतना ही नही, अन्त में महामोह आदि समस्त शत्रुओ पर उसने विजय प्राप्त करली। [५७५–५७६]

तदनन्तर उत्तम ने धीमे-धीमे समस्त शत्रुवर्ग का नाश कर दिया और निष्कण्टक तथा दिन-प्रतिदिन वर्धमान, प्रताप/समृद्धि सम्पन्न सुन्दर राज्य को प्राप्त कर अपनी सेना का भली प्रकार पालन करते हुए समस्त प्रजा को आह्लादित करने लगा। उसने निर्वृत्ति नगरी के मार्ग को नही छोडा, इधर-उधर नही भटका, इसलिये वह लोगो मे श्लाघा/प्रशसा को प्राप्त हुआ। लोग बारम्बार उसका गुण-गान करने लगे कि, उत्तम राजा धन्य है, कृतकृत्य है। यह महाभाग्यवान् कर्त्तव्य-पालक नरश्रेष्ठ उत्तम पुण्यवान् महात्मा है, जिसने अपने पुण्य-कर्मो के माध्यम से राज्य का बहुत अच्छे ढंग से पालन किया। [५७७–५७९]

फिर तो देवता, दानव, मनुष्य, इन्द्र और चक्रवर्ती भी उसकी अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे। निष्कटक मुक्ति-मार्ग की ओर प्रयाण करते हुए उसने सर्वोच्च सन्मान/पूजा प्राप्त की। अनेक सुखो से परिपूर्ण त्रिभुवन प्रसिद्ध अन्तरग राज्य का पालन करता हुआ, सिद्धान्त गुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करता हुआ वह निर्वृत्ति नगरी के निकटतर पहुँचने लगा। औदासीन्य मार्ग से चलता हुआ तथा वैराग्य और अभ्यास की सहायता से उपरोक्त सरोवर, रास्तो, पगडण्डियो और नदियो को पार करता हुआ, निरन्तर प्रगति करता हुआ वह आगे बढता रहा। आत्मविकास की सारी प्रक्रियाओ को क्रमश सम्पन्न करता हुआ वह सर्वदा आनन्दोत्सव से ओत-प्रोत निर्वृत्ति नगरी मे पहुँच गया और* अन्तरग राज्य के सर्वोत्तम फल को प्राप्त कर उसको भोगने मे समर्थ हुआ। [५८०–५८३]

हे देव ! मैंने तो यहाँ तक सुना है कि इस निर्वत्ति नगरी मे न मृत्यु है, न वृद्धावस्था है, न पीडा है, न शोक है, न उद्वेग है, न भय है, न क्षुधा है, न तृषा है और न किसी प्रकार का उपद्रव ही है। वहाँ तो स्वाभाविक, बाधा-पीडारहित, स्व-स्वाधीन, अनुपम अनन्त सुख ही सुख है। मोक्ष का सुख वर्णनातीत और तर्करहित है। इस उपमातिग सुख का अनुभव तो किसी सम्पूर्ण ज्ञानी या विशिष्ट महायोगी को ही हो सकता है। [५८४–५८५]

इस प्रकार राज्य का पालन करने से उत्तम भूपति निर्वृत्ति नगरी को प्राप्त कर सका और इस नगरी मे पहुँचकर वह चिन्तारहित बन गया। तत्पश्चात् उसने उसको राज्य प्रदान करने वाले अपने पिता कर्मपरिणाम महाराजा को पराजित कर, विजयश्री प्राप्त करली। फलस्वरूप उसे ढोक (कर, चौथ) देने की भी

---

* पृष्ठ ६००

आवश्यकता नही रही । वह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो गया और अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन से परिपूर्ण होकर, समस्त क्रियाओ से रहित होकर निरन्तर रमण करने लगा । चित्तवृत्ति महाराज्य का सफलतापूर्वक पालन/रक्षण करने के फलस्वरूप उसे अनन्त काल तक निर्वृत्ति नगरी मे निवास करने का सुयोग मिला । [५८६–५९०]

हे देव ! इस प्रकार अपने राज्य का विधिपूर्वक पालन कर वह उत्तम महीपति निर्वृत्ति नगरी मे पहुँचा । [५९१]
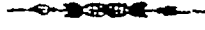
१६. वरिष्ठ-राज्य

कर्मपरिणाम राजा ने छठे वर्ष मे अपने छठे पुत्र वरिष्ठ को राज्य के सिंहासन पर स्थापित किया । गत वर्षों की भाति इस वर्ष भी नये राजा के स्थापित किये जाने की घोषणा ढोल बजाकर की गई । महामोहराज और चारित्र-धर्मराज की राज्यसभा मे भी उनके मन्त्रियो ने नये राजा के गुणो के विषय मे विस्तृत जानकारी दी । महामोहराज आदि तस्कर तो इस नये राजा के विषय मे सुनकर आनन्दहीन, निस्तेज और अभिमानरहित होकर मृतप्राय हो गये । चारित्र-धर्मराज की सेना अत्यन्त हर्षित हुई । सम्पूर्ण साधु-मण्डल अतिशय प्रमुदित हुआ और उन्होने पूरे देश मे बधाइयाँ भेजी । उत्तम राजा ने राज्य-साधन मे जो कुछ किया था वही इस वरिष्ठ राजा ने भी किया, अत उसका फिर से वर्णन करना अनावश्यक है । इस राजा की विशेषता यहाँ बतला रहा हूँ । [५९२–५९६]

इस राजा का सिद्धान्त गुरु से पहले कई वार परिचय हो चुका था और वह स्वय भी बुद्धिशाली होने से उसने सिद्धान्त गुरु के वचनो/निर्देशो का अनुसरण किया था । अत. अभी राज्य-प्राप्ति के समय उसे सिद्धान्त गुरु से पूछने की आवश्यकता नही रही थी । 'राज्य क्या है और उसे प्राप्त करने के साधन क्या है ?' इस विषय मे भी उसे मार्ग-निर्देश/उपदेश की आवश्यकता नही रही, क्योकि यह महाभाग्यशाली वरिष्ठ सम्पूर्ण राज्य-परिस्थिति को पहले से ही जानता था, उसके हेतु और साधनो को भी जानता था और सम्पूर्ण अन्तरग राज्य-मार्ग को देख सकता था । वरिष्ठ महाराजा अपनी स्वय की शक्ति से राज्य पर स्थापित हुए थे, अत अनेक बहिरग राज्य के महात्मा उनकी पदाति सेना मे भर्ती हो गये । वरिष्ठ की सेना मे प्रविष्ट महात्मा भिन्न-भिन्न गणो/समुदायो मे बाह्य

प्रदेश में होने से * उन गणो का सचालन करने से वे गणधर कहलाये। वरिष्ठ राजा स्वय सिद्धान्त के ज्ञाता थे, परन्तु परोपकार की दृष्टि से उन्होने अपने गणधरो को सिद्धान्त का उपदेश दिया। राजा की आज्ञा से सिद्धान्त को आदरपूर्वक प्राप्त कर गणधर सिद्धान्त के शरीर को सुन्दर बनाते है, परिष्कार करते हैं। पश्चात् ये गणधर सम्यक् प्रकार से निर्णय और सस्कार कर सिद्धान्त के अग और उपागों की स्थापना करते हैं। यद्यपि परमार्थ की दृष्टि से तो सिद्धान्त अजर-अमर ही है, फिर भी लोक मे तो यही प्रसिद्ध हुआ कि इसकी रचना वरिष्ठ राजा ने की है। राज्य-साधन मे वरिष्ठ का कोई उपदेष्टा नही था। उसने तो स्वय के ज्ञान-बल से ही राज्य-साधन किया था। वह वरिष्ठ भूपति किसी के सहयोग की अपेक्षा नही रखता था, महाभाग्यशाली था, स्वकीय शक्ति-पराक्रम से युक्त था, परापेक्षी नही था और स्वय ज्ञानी था। [५९७–६०७]

वरिष्ठ राजा का स्वरूप

वरिष्ठ राजा के सम्बन्ध मे जो लोकवार्ता चल रही थी उसी को सुनकर मैं जान पाया कि कर्मपरिणाम पिता ने वरिष्ठ राजा को कैसा बनाया? वही मैं आपसे निवेदन करता हूँ।

यह नरेश्वर वरिष्ठ भगवान् सर्वदा परोपकार के लिये आतुर रहते। अपने स्वार्थ को तो उन्होने तिलाजलि दे रखी थी। वे सर्वदा उचित क्रिया मे तत्पर रहते, देव और गुरु का बहुमान रखते और किसी भी प्रकार की दीनता से रहित एव ओजस्वी हृदय वाले थे। वे कार्य प्रारम्भ से लेकर अन्तिम सफलता तक दीर्घ-दृष्टि से देखने वाले, कृतज्ञ, परमैश्वर्य युक्त, किसी पर पूर्व-वैर से शत्रुता न रखने वाले और धीर-गम्भीर आशय वाले थे। वे परीषहो की अवज्ञा करने वाले, उपसर्गों से निर्भय, इन्द्रियसमूह के प्रति निश्चित, महामोहादि शत्रुओ को तृणवत् समझने वाले, चारित्रधर्मराज आदि अपने सैन्यबल पर आत्मभाव रखने वाले और सम्पूर्ण लोक का उपकार करने की अत्यधिक अभिलाषा रखने वाले थे।

चोरो को हटाकर वरिष्ठ महाराजा द्वारा अपने राज्य मे प्रवेश करते ही लोगो मे अत्यन्त आनन्द छा गया। उसी समय उनका राज्य दिव्यराज्य मे परिणत हो गया। पश्चात् निरतर आनदोत्सव से परिपूर्ण राज्य को भोगते हुए महाराजा का वहिरग ऐश्वर्य कैसा था? वर्णन करता हूँ, सुनो! जिनके जगमग करते मुकुट, वाजूवन्द, हार और कुण्डलो से चारो दिशाएँ प्रकाशित होती है। ऐसे इन्द्र इन महाराज के पदाति होकर रहते है। तीनो लोक के देवता, मनुष्य और असुर महाराज के अनुचर ही हो ऐसा आचरण करते हैं। स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक की समस्त समृद्धि इनके चरणो मे निवास करती है। फिर भी वे तो सर्व प्रकार से पूर्णतया नि स्पृह है। [६०८–६१३]

---

* पृष्ठ ६०१

वरिष्ठ महाराज जिस मार्ग से निर्वृत्ति नगर जाने के लिये निकले, उस मार्ग को वे गुप्त नही रखते, उसे सर्व प्राणियो के समक्ष प्रकट करते है और सब को उस मार्ग पर चलने का उपदेश देते है। इसीलिये देव, असुर और मनुष्य उनके प्रति भक्तिरस से झूमते हुए, अति गहन प्रेम से जिस प्रकार उनकी सेवा-भक्ति करते है, वह बतलाता हूँ। इन महाराजा के उपदेश देने के लिये देवता एक अति सुन्दर निर्मल समवसरण की रचना करते है* जिसके तीन प्राकार/कोट चादी, सोने और रत्नो द्वारा बनाये जाते हैं।

[महाराजा की सर्वोत्कृष्टता प्रकट करने के लिये निम्न आठ महा प्रातिहार्यों की रचना देवताओ द्वारा की जाती है।]

१. चारो तरफ उडते भंवरो की मधुर झकार/गुजारव ध्वनि युक्त, मनोज्ञ, सुकोमल पल्लव विभूषित प्रशस्ततम अशोक वृक्ष की रचना करते है।

२ भ्रमर झकार युक्त मनोहर पच वर्ण के अनेक प्रकार के पुष्पो की वृष्टि सुरासुर अपने हाथो से निरन्तर करते रहते है जिससे दसो दिशाये सुगन्धमय हो जाती है।

३. वरिष्ठ महाराज के समवसरण मे बैठकर धर्मोपदेश देने के समय देवता आनन्ददायक सुन्दर सुमधुर दिव्य निर्घोष करते है।

४ कमल-नाल के सुन्दर तन्तुओ जैसे स्वच्छ, उज्ज्वल और सुन्दर आकार वाले चामर जगत् प्रभु के दोनो तरफ अनवरत ढुलाते रहते है।

५ समवसरण के मध्य मे अशोकवृक्ष के नीचे चार विशाल सिंहासनो की रचना की जाती है जो अनेक प्रकार के रत्नो की शोभा से जगमगाते रहते है, जिस पर बैठकर प्रभु चार मुखो से उपदेश देते है। [भगवान् स्वय पूर्वाभिमुख बैठते हैं, अन्य तीन तरफ देवता उनके प्रतिरूप/प्रतिबिम्ब की रचना करते है।]

६ भगवान् के पीछे भामण्डल की रचना की जाती है जो आकाश मण्डल को प्रकाशित करता है और सूर्य के आकार को धारण कर भगवान् के शरीर और कान्ति को उल्लसित करता है।

७. प्रभु के आगमन और उनकी परोपकारिता को प्रदर्शित करते हुए देव किन्नर आकाश मे रहकर सुमधुर ध्वनि से देव-दुन्दुभि बजाते हैं, जिसकी ध्वनि कर्णप्रिय, अत्यन्त मधुर और लोगो के हृदय को उल्लसित करने वाली होती है।

८. एक के ऊपर एक ऐसे तीन छत्र प्रभु के सिर के ऊपर सुशोभित रहते हैं जो प्रभु के त्रैलोक्यपति और वरिष्ठ होने की सूचना देते है।

---

* पृष्ठ ६०२

हे देव ! इस प्रकार देव और दानव अष्ट महाप्रातिहार्यो की रचना करते है। इससे यह महाभाग्यशाली वरिष्ठ राजा अधिक सुशोभित होता है। [६१४-६२५]

देवताओ द्वारा रचित प्रातिहार्यो के अतिरिक्त स्वय वरिष्ठ राजा का शरीर अति सुगन्धित होता है, मल, स्वेद और रोगरहित होता है। इनके शरीर का मास और रक्त गाय के दूध जैसा या मोती के हार जैसा धवल होता है। इनका आहार और नीहार चर्मचक्षु से नही दिखाई देता। श्वासोच्छ्वास कमल जैसा सुगन्धित होता है। ये चारो गुण जन्म से ही इन्हे प्राप्त होते हैं। [६२६-६२७]

प्रभु के उपदेश प्रदान करने हेतु देवता एक योजन मात्र के समवसरण की रचना करते है, किन्तु प्रभु के अतिशय से उसमे करोड़ो मनुष्य और देवता बैठ सकते है, तनिक भी भीड-भाड नही होती। प्रभु अर्धमागधी भाषा में उपदेश देते है, किन्तु सुनने वाले सभी मनुष्य, तिर्यञ्च और देवता उसे अपनी-अपनी भाषा मे समझ लेते है। एक योजन मे बैठे हुए सभी प्राणियो को प्रभु की वाणी सम्यक् प्रकार से सुनाई देती है। प्रभु के विचरण-स्थानो के चारो ओर पूर्वोत्पन्न वैर-विरोध, महामारी, ईति आदि का उपद्रव और बीमारिया स्वत ही शांत हो जाती है और उनके प्रताप से भविष्य में कुछ समय तक उत्पन्न नही होती। उपरोक्त भूमि मे सौ योजन तक दुर्भिक्ष (अकाल), अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चोर-डाकुओ का भय और स्वचक्र एव परचक्र का भय नही रहता।

महामोहादि शत्रुओ का विनाश हो जाने से सद्गुण स्वतः ही वरिष्ठ राजा मे उत्पन्न हो जाते है।

प्रभु जहाँ विचरण करते है वहाँ धर्मचक्र, छत्र, ध्वज, रत्न-जडित चामर एव सिंहासन साथ चलते है। देवनिर्मित नव कमलो पर भगवान् चरण रखते हुए विचरण करते है। ये नव कमल क्रमशः पीछे से आगे आते रहते है एव उनके प्रभाव से काटो के मुह उल्टे हो जाते हैं। प्रभु के नाखून, रोमावली, सिर के केश और दाढी आदि नही वढते। शब्द, रूप, रस, गध और स्पर्श मनोहारी हो जाते है। छहो ऋतुए पुष्पादि से युक्त अनुकूल हो जाती है। विहार/विचरण भूमि सुगंधित जलसिक्त और पुष्पाच्छादित हो जाती हैं* और निरन्तर पंचवर्णी सुगन्धित पुष्प-वर्षा से समवसरण की भूमि जाघो तक भर जाती है। पक्षी भी भगवान् की प्रदक्षिणा करते हैं। सदा काल अनुकूल पवन चलता है। वृक्ष भी भक्तिरस से पूर्ण होकर प्रभु के समक्ष नत हो जाते है। कम से कम एक करोड देवता भगवान् की सेवा में निरन्तर उपस्थित रहते है।

ये सभी अतिशय भक्ति से पूर्ण देवताओ द्वारा रचे जाते है जो वरिष्ठ राजा को अपने राज्यभोग के समय प्राप्त होते हैं। हे देव ! वरिष्ठ राजा की

* पृष्ठ ६०३

कल्याण-सदोहमयी इन अद्‌भुत विभूतियो/समृद्धियो का वर्णन वाणी द्वारा करना अशक्य है। [६२८–६३९]

त्रिभुवनस्थ समग्र प्राणियो के नेत्रो को तृप्त करने वाले, सब को आनन्द देने वाले, महासुखदायी, निर्वृत्तिनगरी का मार्ग बतलाने वाले और अनेक लोगो को निर्वृत्ति नगरी पहुचाने वाले ये वरिष्ठ महाराज ही है। [६४०]

हे देव ! इस प्रकार का राज्य करते हुए अन्त मे महाप्रतापी वरिष्ठ राजा स्वय भी निर्वृत्ति नगरी मे पहुच गये। पूर्व प्रकरण मे वर्णित उत्तम राजा ने जिस प्रकार शत्रुओ का नाश किया उसी प्रकार इन्होने भी अपने समस्त शत्रुओ को नष्ट कर दिया, ऐसा नि.सशय समझ ले। [६४१–६४२]

हे स्वामिन् ! परमयोगिनी दृष्टिदेवी ने भी अपनी शक्ति का भरपूर उपयोग इन वरिष्ठ राजा पर किया, पर उसका सब प्रयत्न व्यर्थ गया, वह इनका कुछ भी बिगाड न सकी। वरिष्ठ राजा ने उसे सत्वहीन बनाकर उसको उसके साथियो से अलग कर दिया, जिससे वह मूढ और शक्तिहीन होकर अन्त मे नष्ट हो गई। इस प्रकार वरिष्ठ महाराज सर्व प्रकार से कृत-कृत्य होकर, बाधा-पीड़ा रहित होकर, नित्य शात, सम्पूर्ण आनन्द मे मग्न होकर सदाकाल के लिये निर्वृत्ति नगरी मे निजगुणो मे रमण करते हुए विराजित है। [६४३–६४५]

वितर्क अप्रतिबुद्ध से कह रहा है कि, आपने उपरोक्त छ राज्यो का सूक्ष्मता से अवलोकन कर, ब्योरेवार विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करने की जो आज्ञा प्रदान की थी, वह अब पूर्ण हुई। मैंने छहो राजाओ का वर्णन आपके समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। [६४६]

---

१७. हरि राजा और धनशेखर

वितर्क से छ राजाओ के विषय मे सुनकर अप्रबुद्ध अपने मन मे सोचने लगा कि, अहो ! महात्मा सिद्धान्त ने मुझे पहले जो बात बतलाई थी वह पूर्णरूपेण सत्य सिद्ध हो रही है। उनकी कथित वाणी मे तनिक भी अन्तर या विरोध दृष्टि-गत नही होता। सिद्धान्त महात्मा ने पूर्व मे कहा था कि सुख और दुख दोनो का कारण अन्तरग राज्य है, वह ठीक ही है। राज्य तो एक ही है, पर पात्र-विशेष के कारण जैसा उसका पालन होता है वैसा ही वह सुख और दु.ख का कारण होता

है। वितर्क ने स्वय अपनी आँखो से निरन्तर छः वर्ष तक इसका अनुभव करके मुझे बतलाया है। सिद्धान्त गुरु द्वारा कही हुई बात गलत भी कैसे हो सकती है?
[६४७-६५०]

वितर्क के वर्णनानुसार निकृष्ट और अधम को यह राज्य दुःख का कारण हुआ, क्योकि उन्होने राज्य का दुष्पालन किया और वे उस राज्य को पहचान भी नही सके। विमध्यम को अल्पसुख का कारण हुआ, क्योकि वह प्राय. बाह्य प्रदेश मे ही रहा और राज्य-पालन बहुत मद गति से किया। मध्यम को यह राज्य * लम्बे समय तक सुख का कारण हुआ, क्योकि उसने राज्य के अन्दर प्रवेश कर किचित् आदरपूर्वक उसका पालन किया। उत्तम राजा और वरिष्ठ राजा को वही राज्य समस्त प्रकार के सुखो का कारण हुआ, क्योकि उन्होने उसका बहुत ही उत्तम पद्धति से पालन किया था। मैने तो इन छहो के एक-एक वर्ष के राज्य-पालन से सारी परिस्थिति को समझ लिया है। मनीषियो ने कहा है—'जिस मनुष्य ने सूक्ष्म अवलोकन द्वारा एक वर्ष देखा हो और इच्छानुसार उसको भोगा हो तो समझना चाहिये कि उसने सारी दुनिया को देख लिया है।' कारण यह है कि ससार के भाव घूम-घूम कर, बदल-बदल कर, भिन्न-भिन्न सम्बन्धो मे इसी प्रकार घटित होते रहते है। सिद्धान्त महात्मा की कृपा से सुख-दु.ख के हेतु क्या है? वे कहाँ रहते है और प्राणी पर किस प्रकार घटित होते है? यह मेरी समझ मे आ जाने से मेरी अप्रबुद्धता नष्ट हो गई, अब मैं प्रबुद्ध हो गया। [६५१-६५७]

इन राज्यो का विचार बार-बार करते हुए भूपति प्रबुद्ध की अन्तरात्मा को अत्यन्त आनन्द हुआ, सतोष हुआ। उस पर पर्यालोचन करते हुए तथा पृथक्करण करते हुए निश्चिन्त हुआ और अत्यन्त हर्षित होकर, निरातुर होकर अपूर्व शाति को प्राप्त किया। [६५८]

कथा का रहस्य

उत्तमसूरि हरि राजा को उपदेश देते हुए आगे कहते है—हरिराज! प्रसगानुसार तुझे उपरोक्त वार्ता कही। अब इस पर से तुझे इसका रहस्य समझना चाहिए। निष्कर्ष/रहस्य बतलाता हूँ—

जिस प्रकार महामोहादि शत्रु और दृष्टिदेवी निकृष्ट और अधम राजा के लिए भयकर दोष और त्रास का कारण बने और उन्हे महा अधम गति मे पहुचाया उसी प्रकार परमार्थ ज्ञानरहित प्राणियो को अन्य अन्तरग शत्रु त्रास देते है और उन्हे अवर्णनीय नीच स्थिति मे डाल देते है। पुन 'रखड़ता हुआ घनशेखर भी अपने पापी अन्तरग मित्रो के कारण पीडित हो रहा है', सुनकर इस विषय मे तूने प्रश्न किया था कि क्या प्राणी दूसरो के दोषो से भी पीड़ित हो सकता है और तदनुसार

* पृष्ठ ६०४

धनशेखर भी मित्र दोषो के कारण पीडित हो रहा है ? इसका उत्तर यह है कि ऐसे अन्तरग मित्रो के कारण ही धनशेखर इस प्रकार की निकृष्ट चेष्टा करता है। [६५९–६६४]

शका का निराकरण

हरि राजा—भगवन् ! इस विषय मे अब मेरा सशय दूर हुआ, किन्तु एक सदेह और शेष रह गया है, कृपया उसे भी दूर कीजिये। आपने कर्मपरिणाम महाराजा के छः पुत्र बतलाये; उनके विदा होने के बाद क्या होता है ? क्या इन छः के पश्चात् दूसरे राज्य नही होते या पुन.-पुन यही राज्य होते हैं ? [६६५–६६७]

उत्तमसूरि—इस ससार मे भिन्न-भिन्न रूपो मे चर-अचर जितने भी प्राणी है, वे सभी वस्तुत. कर्मपरिणाम महाराजा के ही पुत्र हैं और उनका समावेश निःसन्देह उपरोक्त छः प्रकार के पुत्रो मे हो जाता है। उनके चले जाने पर उनके जैसे अन्य पुत्रो को वह राज्य सौप दिया जाता है। नये आने वाले पुत्रो के नाम भी उपरोक्त निकृष्ट, अधम आदि छः प्रकार के होते हैं और उनके नाम-गुण के अनुसार ही वे क्रमश· सुखासुख के कारण उत्पन्न कर सुख-दु ख भोगते है।* राजेन्द्र ! अन्य की बात छोडिये। देखिये, मैं स्वय भी कर्मपरिणाम राजा का एक पुत्र हूँ। यह आपके ध्यान मे होगा कि कर्मपरिणाम ने अपने उत्तम नामक पुत्र को एक वर्ष के लिये राज्य दिया था। उस उत्तम ने सिद्धान्त गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर वैराग्य और अभ्यास के साथ चलकर, पूर्व-वर्णित कर्त्तव्यो का पालन करते हुए अन्तरग राज्य मे प्रवेश किया था। उसने राज्य मे प्रवेश कर महामोहादि शत्रुवर्ग का नाश किया था तथा चारित्रधर्मराज की सेना का पोषण/सवर्धन किया था। वह मैं ही हूँ। उत्तम प्रकार के राज्य का उपभोग करते हुए ही मैं मेरे सहायक इन साधुओ के साथ यहाँ आ पहुँचा हूँ। पाँचवे भूपति उत्तम राजा की वार्ता मे उसके जिन गुणो सुखो, विभूतियो और चेष्टाओ का वर्णन किया था, हे राजन् ! वे सभी गुण, सभी सुख, विभूतियाँ और चेष्टाये इस समय मुझ मे नि.सन्देह रूप से विद्यमान है, अन्त-र्निहित है। इस समय मैं अन्तरग राज्य कर रहा हूँ और भक्तिभाव से विनम्र देवता बारम्बार "मैं गुणगणो का भण्डार हूँ" कहते हुए धन्यतापूर्वक मेरी स्तुति कर रहे है। मुझे इस समय ऐसा स्वसवेदनसिद्ध आत्मिक सुख का अनुभव हो रहा है जो इस राज्य का पालन करते हुए ही प्राप्त होता है। उस सुख का विवेचन वर्णनातीत है। मेरे पास आत्मिक रत्नो का भण्डार है और मेरी अन्तरग चतुरगी सेना सख्यातीत (इतनी वडी) है कि उसकी गिनती भी नही हो सकती। सिद्धान्त महात्मा ने उत्तम राजा की वार्ता मे जिन चेष्टाओ/कर्त्तव्यो का वर्णन किया है, मेरी चेष्टाये, अनुष्ठान और प्रवृत्ति भी अभी वैसी ही है। जैसे मैं कर्मपरिणाम का उत्तम नामक पुत्र विद्यमान हूँ वैसे ही निकृष्ट आदि पुत्र भी इस ससार मे नि सशय रूप से जन्मे हुए

* पृष्ठ ६०५

ही है। राज्य एक प्रकार का है और प्राणी अनेक प्रकार के हैं, अत राज्य के प्रवाह को किसी भी प्रकार विभक्त किये बिना एक साथ सभी प्राणी अपनी-अपनी योग्यतानुसार राज्य भोगते है। अर्थात् नदी के प्रवाह की भाति अन्तरग राज्य का प्रवाह अविच्छिन्न रूप से चलता रहता है और प्रत्येक प्राणी एक ही समय मे एक ही साथ उसे भोगते रहते है। [६६८—६८३]

हरि राजा की दीक्षा

आचार्य के वचनो के भावार्थ को हृदयगम करते हुए हरि राजा ने पूछा—भगवन्! परमार्थ दृष्टि से ससार मे भ्रमण करने वाले सभी देहधारी प्राणी कर्मपरिणाम राजा के पुत्र है और वह सभी को चित्तवृत्ति नामक अन्तरंग भूमि का राज्य सौपता है। यद्यपि यह भूमि एक ही प्रकार की है फिर भी पात्र-विशेष के कारण अनेक रूपात्मक भिन्न-भिन्न आकार धारण करती है और पात्रानुसार सुख-दु ख का अनुभव होता है। यदि ऐसा ही है तब तो मै स्वय भी कर्मपरिणाम राजा का पुत्र हूँ और मैं भी उपरोक्त छ. मे से किसी एक प्रकार का राज्य इस समय भोग रहा हूँ।

उत्तमसूरि—राजन्! आपने वस्तुस्थिति को ठीक ही समझा है। यह अन्तरग राज्य सभी को प्राप्त होता है और आप भी इस समय विमध्यम नामक राज्य का पालन कर रहे है, किन्तु आप इस राज्य के स्वरूप को पहचान नही पा रहे है। आप रात-दिन धर्म, अर्थ और काम की साधना कर रहे है, पर इनकी साधना इस प्रकार कर रहे है कि जिससे परस्पर कोई विरोध नही होता। विमध्यम के सभी लक्षण आप मे घटित हो रहे है। पूर्व मे मैने विमध्यम राज्य के जो लक्षण बताये थे, क्या वे लक्षण अब आपके ध्यान मे नही आ रहे है ?*

हरि राजा—मुझे यह विमध्यम राज्य नही चाहिये। भगवन्! आपने जो आत्मीय उत्तम राज्य का वर्णन किया है, वही मुझे भी प्रदान कीजिये।

उत्तमसूरि—राजन्! आपके विचार अत्युत्तम है। हे नरोत्तम! जैसे इन साधुओ को यह राज्य प्राप्त हुआ है वैसे ही आपको भी हो सकता है। इस राज्य को प्राप्त करने का प्रव्रज्या के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नही है। जब इन साधुओ को पूर्व-वर्णित अत्यन्त मनोहारी स्वराज्य प्राप्त करने की आपके समान प्रबल स्पृहा/अभिलाषा हुई थी तब मैंने इनके लाभ के लिये इन्हे बताया था कि भागवती दीक्षा लिये बिना अन्तरग भूमि के उत्तम राज्य की प्राप्ति नही हो सकती। तब इन्होने सर्व पापहारी दीक्षा ग्रहण की। परिणामस्वरूप इन्होने नि शेष सुख के हेतुभूत इस उत्तम महाराज्य को प्राप्त किया। राजेन्द्र! यदि आपको भी उत्तम राज्य प्राप्ति की इच्छा है तो आप भी भागवती दीक्षा ग्रहण करे। [६८४—६८८]

---

* पृष्ठ ६०६

हरि राजा—महाराज ! यदि इतने मात्र से इतना बड़ा महासुखदायी राज्य मिल जाता हो तो फिर विलम्ब क्यों किया जाये ? शुभ कार्य मे देरी क्यो की जाये ? हे भदन्त ! आप मुझे अविलम्ब भागवती दीक्षा प्रदान करने की कृपा कीजिये । [६८६–६६०]

राजा के उपरोक्त वचन सुनकर सूरि महाराज के नेत्र आनन्द से विकसित हो गये । वे बोले—राजन् ! आपने अत्युत्तम बात कही । यह महान् राज्य सर्वोच्च और महासुख-परम्परा का दाता है तथा दीक्षा लेने से प्राप्त हो सकता है । इस वास्तविकता को जानकर कौन बुद्धिमान व्यक्ति इस कार्य से पीछे हटेगा ? थोडे के लिए अधिक को खोने की बात कौन बुद्धिमान व्यक्ति स्वीकार करेगा ? आप तो नि.सदेह रूप से भगवान् के मत की दीक्षा लेने के सचमुच योग्य हैं । योग्यता बिना हम इस सम्बन्ध मे प्रयत्न भी नही करते । आप योग्य है, अत प्रसन्नतापूर्वक दीक्षा ग्रहण कीजिये और अक्षय आनन्द को प्राप्त कीजिये । [६६१–६६३]

गुरु महाराज के वचनो को उसी प्रकार शिरोधार्य करते हुए हरि राजा ने अपने महाविवेकी मत्री और सेनापति के साथ मत्रणा की और अपने शार्दूल नामक पुत्र को राज्य गद्दी पर स्थापित कर दिया । पश्चात् जिनेश्वर भगवान् के मन्दिर मे आठ दिन तक बडे ठाठ-बाट से महोत्सव मनाया, अभिलाषियो को अर्थदान दिया, गुरु महाराज का पूजा-सम्मान किया, बडो को सम्मानित किया, सम्पूर्ण नगर के सभी लोगो के आनन्द में सभी प्रकार से वृद्धि की और उस समय करने योग्य सभी क्रियाएं पूर्ण की । आवश्यक कार्य और कर्त्तव्य पूर्ण कर, अपनी प्रिय पत्नी मयूर-मजरी, अनेक प्रमुख राजाओ और प्रधानों के साथ नगर से बाहर निकल कर, उन सब ने विधिपूर्वक उत्तमसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की । हरि राजा ने निरन्तर आनन्द देने वाले सर्वोत्कृष्ट सुन्दर राज्य को प्राप्त किया और आनन्द मे लीन होकर अपने आत्मिक स्वराज्य मे वृद्धि करते हुए पृथ्वी पर विहार करने लगे ।

[६६४–६६८]

लोभ से धनशेखर की मृत्यु

ससारी जीव अपनी आत्मकथा को आगे बढाते हुए अगृहीतसकेता से कह रहा है—हे अगृहीतसकेता ! मेरे मित्र मैथुन और सागर मुझ से चिपटे रहे । मैं उन्हे नही छोड़ सका । परिणामस्वरूप उन्होने मुझ से अनेक नाटक करवाये । धन का लोभी होने से मैं कई देशो मे भटकता फिरा और अनेक प्रकार के क्लेश प्राप्त किये । अनेक नगरो और ग्रामो मे भटकते हुए मैं एक बार एक बीहड जगल मे आ पहुँचा । थका होने से मैं एक बेल के वृक्ष के नीचे आराम करने बैठ गया । वहाँ ऊपर दृष्टि करते ही मैंने देखा कि बेल वृक्ष की एक शाखा से* अकुर फूट कर नीचे जमीन तक आया हुआ है । लक्षणो के अनुसार मैंने निर्णय किया कि इस वृक्ष के

* पृष्ठ ६०७

नीचे धन अवश्य छिपा हुआ होना चाहिये। हे भद्रे! उस समय अन्दर से मेरे सागर मित्र ने उस धन को निकालने की प्रेरणा की कि, 'धनशेखर! शीघ्र ही इस निधान को खोदकर बाहर निकाल।' थका होने पर भी मित्र की प्रेरणा से मैने जमीन खोदी। गहरा खोदने पर मैंने देखा कि दैदीप्यमान रत्नो से भरा एक विशाल घडा रखा है। ये रत्न इतने पानीदार थे कि इनकी आभा से चारो तरफ प्रकाश ही प्रकाश फैल रहा था। हे सुलोचने! ज्यो ही मै प्रसन्नचित्त होकर सागर की आज्ञा से रत्न-पूरित कुम्भ को ग्रहण करने के लिये बढा त्यो ही महाभीषण नाद से दिशाओ को बधिर करता हुआ जमीन मे से काल जैसा भयकर वैताल बाहर निकल आया। उसकी आँखो से ज्वाला निकल रही थी और मुह से फट्-फट् की भीषण आवाज निकल रही थी, लम्बी दाढे बाहर निकली हुई थी और उसका मुह यमराज से भी अधिक भयकर था। हे भद्रे! देखते ही देखते उसने रोते-चिल्लाते हुए मुझे बलपूर्वक अपने मुह रूपी कोटर मे ठूस लिया और कडकड करते हुए चबा गया।
[६६६–७०८]

धनशेखर के भव मे आते हुए भवितव्यता ने मुझे जो गोली दी थी वह उसी समय घिस-घिस कर पूर्ण हो गई, अत. भवितव्यता ने तत्काल ही मुझे नई गुटिका प्रदान की। उस गुटिका के प्रताप से मैं फिर पापिष्ठ निवास नगरी के सातवे मोहल्ले मे चला गया। हे सुमुखि! यहाँ अनेक प्रकार के भयकर दुःखो का अनुभव करके जब मैं वहाँ से बाहर निकला तो भवितव्यता की प्रबलता से मै फिर अनन्त काल तक अनेक स्थानो पर भटका। हे पापरहिता! मेरे दु खो का क्या वर्णन करू? सक्षेप मे ससार का कोई ऐसा स्थान नही रहा जहाँ मै न गया हूँ और सर्व प्रकार के दु·ख न भोगे हो।

इस प्रकार अनेको दु ख सहन करने के पश्चात् मेरे कुछ शुभ कर्मों के प्रताप से मेरी पत्नी भवितव्यता ने पुन· एक बार मुझ से कहा— नाथ! आर्य पुत्र!! एक साह्लाद नामक पत्तन है जो बहुत सुन्दर है, अत्यन्त प्रसिद्ध है और बाह्य प्रदेश मे स्थित है। आप पहले जैसे अन्य नगरो मे गये है वैसे ही अब इस नगर मे जाकर रहे। [७०६–७१३]

मुझे तो मेरी पत्नी की आज्ञा माननी ही थी, क्योकि उसके समक्ष मेरा कुछ भी वश नही चलता था अत मैंने देवी की आज्ञा शिरोधार्य की। इस समय भी देवी ने मेरे साथ पुण्योदय नामक एक सहचर भेजा और मुझे एक नयी गोली बनाकर दी। उस गोली के प्रताप से अपने सहायक के साथ मैंने साह्लाद नगर जाने के लिये प्रस्थान किया।

उपसंहार

यदिदमसुलभ भो ! लब्धमेभिर्मनुष्यै-
र्बहुविघभवचारात्यन्तरीणैर्नरत्वम् ।
तदपि नयनलोलामैथुनेच्छापरीता,
लघुधनलवलुब्धा नाशयन्त्येव मूढा: ।।७१४।।

अनेक प्रकार के सांसारिक भ्रमणो के पश्चात् बडी कठिनाई से यह मनुष्य जन्म प्राप्त होता है, जिसे मूर्ख प्राणी रूप-सौन्दर्य का लोभी बनकर, मैथुन की अभिलाषाओ मे डूबकर और थोडे से धन मे लुब्ध होकर यो ही गवा देता है, व्यर्थ ही नष्ट कर देता है । [७१४]

विगलितास्त इमे नरभावत ,
प्रबलकर्ममहाभरपूरिता ।
सततदु खमटन्ति पुन पुन ,
सकलकालमनन्तभवाटवीम् ।।७१५।।

इस प्रकार कठिनाई से प्राप्त मनुष्य भव से भ्रष्ट होकर प्राणी दुष्कर कर्मो का विशाल बोझ धारण कर बहुत लम्बे समय तक अनन्त ससार अटवी मे महा भयकर दु ख भोगता हुआ भटकता रहता है । [७१५]

तदिदमत्र निवेदितमञ्जसा,
जिनवचो ननु भव्यजना ! मया ।
इदमवेत्य निराकुरुत द्रुत,
नयनसागरमैथुनलोलताम् ।। ७१६ ।।

भव्य प्राणियो ! यहाँ मैंने सक्षेप मे जिनेश्वर भगवान् के वचनो का प्रतिपादन किया है । उसकी वास्तविकता को आप समझे तथा रूप, लोभ और मैथुन की समस्त प्रकार की आसक्ति को शीघ्र ही दूर करे ।। ७१६ ।।

उपमिति-भव-प्रपञ्च कथा का लोभ,
मैथुन और चक्षुरिन्द्रिय विपाक
वर्णन का यह छठा
प्रस्ताव सम्पूर्ण हुआ ।

उपमिति-भव-प्रपंच कथा

७. सप्तम प्रस्ताव

प्रस्ताव सातवां

पात्र-स्थानादि परिचय

स्थल	मुख्य पात्र	परिचय	सामान्य पात्र	परिचय
साह्लाद नगर (बहिरंग)	**जीमूत**	साह्लाद नगर का राजा, घनवाहन का पिता	**सिद्धार्थ**	ज्योतिषी
	लीलादेवी	जीमूत राजा की पटरानी, घनवाहन की माता	**प्रियंकरी**	बधाई देने वाली दासी
	घनवाहन	कथानायक, ससारी जीव	**नीरद**	जीमूत राजा का छोटा भाई, अकलक का पिता
	मदनमंजरी	घनवाहन की रानी	**पद्मा**	नीरद की पत्नी, अकलक की माता
	अकलंक	घनवाहन का मित्र, घनवाहन के चाचा का पुत्र		
बुधनंदन (उद्यान)	**प्रथम मुनि**	लोकोदर में आग देखकर वैराग्य पाने वाला		
	द्वितीय मुनि	मदिरालय देखकर वैराग्य पाने वाला		
	तृतीय मुनि	अरघट्ट यत्र देखकर वैराग्य पाने वाला		
	चतुर्थ मुनि	सन्निपात/उन्माद देखकर वैराग्य पाने वाला		
	पचम मुनि	चार व्यापारी का कथानक सुनकर वैराग्य पाने वाला चारु, योग्य, हितज्ञ, मूढ } वसतपुर निवासी व्यापार हेतु रत्न-द्वीप गये हुए चार मित्र व्यापारी		
	छठा मुनि	ससृति नगर के बाजार को देखकर वैराग्य पाने वाला		
	कोविंद	मुनिवृन्द के आचार्य	**सदागम**	चारित्रधर्मराज प्रेरित उपदेशक
(अंतरंग)	**परिग्रह**	रागकेसरी का ५वा पुत्र, सागर का मित्र	**महामोह**	चित्तवृत्ति अटवी का महाराजा

	संज्ञा	परिग्रह की पत्नी	ज्ञानसंवरण	आठ कर्मों मे से पहला कर्मराजा
			चारित्र-धर्मराज	चित्तवृत्ति में घिरा हुआ राजा
			सद्बोध	चारित्रधर्मराज का मत्री
			सम्यग्दर्शन	चारित्रधर्म-राज का सेनापति
			गृहिधर्म	चारित्रधर्म-राज का छोटा लडका

क्षमातल नगर	स्वमल-निचय	क्षमातल नगर का राजा		
	तदनुभूति	स्वमलनिचय की रानी		
	कोविद	राजा का पुत्र (कोविद और कोविदाचार्य एक ही हैं)		
	बालिश	राजा का पुत्र		
	श्रुति	कर्मपरिणाम की कन्या		
	संग	दासी-पुत्र, श्रुति का अग्र-गामी और सयोग मेलापक	गधर्व मिथुन	किन्नर युगल

शोक	महामोह का अनुचर	मकरध्वज, हास, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा	मोहराज का परिवार और उनके छोटे सेना-पति
सागर	महामोह का अनुचर, परिग्रह का मित्र		
बहलिका	माया		
कृपणता	सागर की सहचारिणी	विद्या	चारित्रधर्मराज की मानसिक कन्या

			निरीहता चारित्रधर्मराज और विरति की पुत्री
साकेतपुर (बहिरंग)	**अमृतोदर**	नन्दसेठ और धनसुन्दरी का पुत्र	**सुदर्शन** उपदेशक, अमृतोदर का उपकारी
मानवावास जनमन्दिरपुर	**बंधु**	बन्धुदत्त और प्रियदर्शना का पुत्र, द्रव्यसाधु	**सुन्दर** बन्धु का उपदेशक
	विरोचन	आनन्द और नन्दी का पुत्र, ससारी जीव	**धर्मघोष** विरोचन का उपदेशक गुरु
			सम्यग्दर्शन चारित्रधर्मराज का सेनापति
मानवावास	**कलंद**	आभीर मदन और रेणा का पुत्र, ससारी जीव	
काम्पिल्यपुर	**वासव**	वसुबन्धु और धरा का पुत्र, ससारी जीव	**शांतिसूरि** वासव को बोध देने वाले आचार्य
सोपारक	**विभूषण**	शालिभद्र और कनकप्रभा का पुत्र, ससारी जीव	**सुधाभूत** विभूषण के गुरु, आचार्य
भद्रिलपुर	**विशद**	स्फटिकराज और विमला का पुत्र, ससारी जीव	**सुप्रबुद्ध** विशद का उपदेशक, मुनि

१. घनवाहन और अकलंक

घनवाहन का जन्म

*त्रैलोक्य को आश्चर्यान्वित करने वाला, दु:खो को दूर करने वाला और सम्पूर्ण जगत् को आह्लादित करने वाला साह्लाद नामक एक विशाल नगर है। जहाँ स्त्री-पुरुषो के युगल परस्पर अन्त:करण के प्रेम से और अपने रूप एव शक्ति से काम-लीलाये करते हुए कामदेव एवं रति का भ्रम उत्पन्न करते थे। इस साह्लाद नगर मे जीमूत नामक राजा राज्य करता है, जिसने अपने समस्त शत्रुओ को समूल नष्ट कर दिया है। जो स्वय महारथी है और उसके प्रताप-तेज से अजित होकर समस्त सामन्तवर्ग मानपूर्वक नमस्कार करता है। इस राजा के लीलादेवी नामक कार्यकुशल एव रति के समान आनन्दायिनी महारानी हैं जिसे राजा ने अपने अन्त - पुर की पटरानी बना रखा है। [१–४]

हे अगृहीतसकेता! भवितव्यता द्वारा दी हुई नई गोली के प्रभाव से और उसके आदेशानुसार मैंने लीलादेवी की कोख मे प्रवेश किया। नौ माह से कुछ अधिक दिन तक नारकीय पीड़ा को सहन करने के पश्चात् उचित समय पर मैं उसकी कुक्षि से बाहर आया। [५–६]

मेरे जन्म से मेरी माता लीलादेवी बहुत प्रसन्न हुई। प्रेमाश्रुओ से पूरित उसके नेत्र आनन्द से चपल हो गये और पुत्ररत्न की प्राप्ति से वह अत्यन्त हर्षित हुई। मेरे साथ ही उसी समय मेरे अन्तरग मित्र पुण्योदय का भी जन्म हुआ, किन्तु वह मेरे अन्तरग (गुप्तरूप से शरीर मे समाया) होने से उसे कोई भी नही देख सका। मेरी माता की प्रियकरी नामक दासी ने मेरे जन्म की राजा को बधाई दी, जिसे सुनकर राजा भी अत्यन्त हर्षित हुआ। राजा ने सन्तुष्ट चित्त होकर उसे महादान देकर उसका दासीपन समाप्त कर दिया। नगर भर मे जन्मोत्सव मनाया गया, जेल से कैदियो को छोडा गया, स्थान-स्थान पर नौबत और शहनाई बजने लगी, घर-घर मे आनन्दोत्सव, नृत्य, गायन, खानपान और दान आदि होने लगे। चारो तरफ राज्य के सभी लोग मेरे जन्मोत्सव से आनन्दित हुए।

ज्योतिष-शास्त्र

जन्मोत्सव मनाने के पश्चात् मेरे पिताजी ने सिद्धार्थ नामक प्रसिद्ध ज्योतिषी को बुलाकर मेरे जन्म समय के ग्रह-नक्षत्रो के भावफल के सम्बन्ध मे पूछा। ज्योतिषी ने कहा कि, देव! जैसी आज्ञा। सुनिये—

---

* पृष्ठ ६०८

अभी आनन्द नामक सवत्सर (वर्ष) चल रहा है, शरद् ऋतु है, कार्तिक मास की द्वितीया तिथि है, गुरुवार है, भद्रा है, कृत्तिका नक्षत्र है, वृषभ राशि है, घृतियोग है, लग्न सौम्य घर का है, उर्ध्वमुखी होरा कुण्डली है,* सभी ग्रह उच्च स्थान मे बैठे है, सभी पाप ग्रह ११वे घर मे बैठे है। हे राजन् ! कुमार का ऐसी सुन्दर राशि मे जन्म हुआ है कि उसे समस्त प्रकार की अपार सपत्ति प्राप्त होगी, इसमे कोई सदेह नही है। [७–१३]

राजा—आर्य ! राशियाँ कितने प्रकार की होती है और प्रत्येक के क्या-क्या गुण-दोष है ? मै सुनना चाहता हूँ।

सिद्धार्थ—देव ! सुनिये—राशियाँ १२ प्रकार की होती है। उनके नाम मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, घन, मकर, कुम्भ और मीन हैं। प्रत्येक राशि के गुण इस प्रकार है —

१ मेप—इस राशि मे जन्मे व्यक्ति की आँखे चपल होती है, झपकती रहती है, रोगरहित रहता है, धर्म कार्य मे कृतनिश्चय होता है, जाघें विशाल होती हैं, कृतज्ञ होता है, पराक्रमी होता है, राजपूजित होता है, कामिनियो के हृदय को आनन्दित करने वाला होता है, पानी से निरन्तर डरने वाला होता है, आवेश से कार्यारम्भ करने वाला और अन्त मे नरम पडने वाला होता है। इसका १८वे या २५वें वर्ष मे दुर्घटना से कुमरण होता है। यदि इस घात से बच जाय तो वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है। मगलवार चतुर्दशी की अर्धरात्रि मे कृत्तिका नक्षत्र मे इसकी मृत्यु होती है। [१४–१७]

२. वृषभ—इस राशि मे जन्मा व्यक्ति निम्न गुणो से युक्त होता है :—वह भोगी होता है, दानी होता है, पवित्र होता है, दक्ष/प्रवीण होता है। इसका गण्डस्थल स्थूल होता है, महाबली होता है, तेजस्वी होता है, अधिक रागासक्त होता है, कण्ठरोगी होता है, इसके पुत्र अच्छे होते हैं, चाल मे विलासिता झलकती है, सत्यवक्ता होता है, इसके कन्धे और गण्डस्थल पर चिह्न होते है। यदि २५ वर्ष तक कोई दुर्घटना न हो तो वह १०० वर्ष तक जीवित रहता है। बुधवार, रोहिणी नक्षत्र में किसी चौपाये पशु द्वारा इसकी मृत्यु होती है। [१८–२०]

३. मिथुन—इस राशि मे जन्मे व्यक्ति का शरीर पुष्ट, आँखे चन्चल, मन विषय भोग मे अत्यन्त आसक्त, घनवान, दयावान, लोकप्रिय, कण्ठरोगी, गायन एव नाट्यकला मे कुशल, कीर्तिमान, अधिक गुणवाला, गौरवर्ण, लम्बा और वाक्-कुशल होता है। १६वे वर्ष मे पानी मे डूब कर मरने का भय रहता है। इससे बच जाय तो ८० वें वर्ष मे पौष माह मे पानी या अग्नि से मृत्यु होती है। [२१–२३]

४. कर्क—इस राशि मे जन्मा हुआ कार्यकुशल, घनवान, वीर, धर्मिष्ठ, गुरु-वत्सल, सिरदर्दवाला, बुद्धिशाली, दुबला, कृतज्ञ, यात्रा-प्रिय, क्रोधी, बचपन मे

* पृष्ठ ६०६

दु:खी, कुछ वक्र प्रकृति वाला, अच्छे मित्र और नौकर चाकरो से परिपूर्ण होता है। २०वे वर्ष मे गिर पडने की दुर्घटना से बच जाय तो ८० वर्ष तक जीवित रहता है। इसकी मृत्यु भी मिगसर या पौष के शुक्ल पक्ष की रात मे होती है। [२४-२६]

५ सिंह—इस राशि मे जन्मा हुआ क्षमावान, मनस्वी, कार्यकुशल, मास-मद्य प्रेमी, यात्रा-प्रिय और विनयी होता है। इसे सर्दी का भय बना रहता है, बात-बात मे क्रोधित हो जाता है, पुत्र एव परिवार बड़ा होता है, माता-पिता को प्रिय होता है और लोगो मे व्यसनी के नाम से प्रसिद्ध होता है।* इसकी मृत्यु ५०वे वर्ष मे होती है, यदि बच जाय तो १०० वर्ष तक जीवित रहता है। शनिवार, मघा नक्षत्र, चैत्र माह मे अच्छे पुण्य क्षेत्र मे इसकी मृत्यु होती है। [२७-२९]

६. कन्या—इस राशि वाला अधिक विलासी, वेश्यागामी, धनवान, दान-दाता, दक्ष, कवि, वृद्धावस्था मे धर्मपरायण, लोकप्रिय, नाट्य-गायन-प्रेमी और प्रवासप्रिय होता है। यह अपनी स्त्री से दु खी रहता है। ३०वे वर्ष मे शस्त्र या पानी द्वारा मृत्यु होती है, इससे बच जाय तो ८०वे वर्ष मे वैशाख माह, मूल नक्षत्र, बुधवार को इसकी मृत्यु होती है। [३०-३२]

७. तुला—इस राशि मे जन्मा व्यक्ति बिना कारण क्रोधित होता है, स्वय दु खी होता है, स्पष्ट वक्ता होता है, क्षमाशील होता है, चपल नेत्र वाला होता है, अस्थिर लक्ष्मी वाला होता है, अपने घर मे ताकत बताने वाला होता है, व्यापार-कुशल होता है, देव-पूजक होता है, मित्र-स्नेही होता है, यात्रा प्रिय होता है, सुहृदो मे प्रिय होता है। २०वे वर्ष मे दीवार के नीचे दबकर मृत्यु की सभावना होती है, इससे बच जाय तो ८०वे वर्ष मे जेठ माह, अनुराधा नक्षत्र, मगलवार को मृत्यु होती है। [३३-३५]

८. वृश्चिक—इस राशि मे जन्मा व्यक्ति छोटी उम्र मे अधिक यात्रा करता है। क्रूर प्रकृति, वीर, पीली आँखो वाला, परस्त्री मे आसक्त, अभिमानी और स्वजन-परिजनो के प्रति निष्ठुर हृदय होता है। इसे साहस करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है। यह अपनी माता के प्रति भी दुष्ट बुद्धिवाला, धूर्त और चोर होता है। अनेक कार्य प्रारम्भ करता है, पर एक को भी पूरा कर फल प्राप्त नही कर पाता। इसकी १८वे वर्ष मे या २५वे वर्ष में चोर, शस्त्र या सर्प द्वारा मृत्यु की सभावना होती है, इससे बच जाय तो ७० वर्ष तक जीवित रह सकता है। [३६-३८]

९. धन—इस राशि वाला शूरवीर, सत्यवक्ता, बुद्धिमान, सात्त्विक प्रकृति वाला, लोकप्रिय, शिल्प-विज्ञान का ज्ञाता, धनवान, सुन्दर स्त्री वाला, अभिमानी,

---

* पृष्ठ ६१०.

चारित्र-सम्पन्न, मधुर-भाषी, तेजस्वी, स्थूल देहधारी और कुल-नाशक होता है। इसकी जन्म से १८ वे दिन तक मृत्यु की सभावना होती है, इससे बच जाय तो ७७ वर्ष तक जीवित रहता है। [३९-४१]

१०. मकर—इस राशि वाला व्यक्ति दुराचारियो का प्रिय, स्त्रियो के वशीभूत, पण्डित, परस्त्री आसक्त और गायक होता है। इसके गुप्ताग पर निशान होता है। अनेक पुत्रो वाला, फूलो का शौकीन, धनवान, त्यागी, स्वरूपवान, ठड से डरने वाला, सर्दी की व्याधि से ग्रस्त, विशाल परिवार वाला, और बार-बार सुख की चिन्ता करने वाला होता है। इसकी २०वे वर्ष मे शूल व्याधि से मृत्यु की सम्भावना है, इससे बच जाय तो ७०वे वर्ष के भाद्रपद माह मे शनिवार को मृत्यु होती है। [४२-४४]

११ कुम्भ—इस राशि मे जन्मा व्यक्ति दानेश्वरी, आलसी, कृतघ्न, हाथी या घोड़े जैसी आवाज वाला, मेढक जैसी कुक्षिवाला, निर्भीक, धनवान्, जड-दृष्टि, चचल हस्त, पुण्यवान, स्नेहरहित और मान तथा विद्या प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करने वाला होता है। इसकी १८वे वर्ष मे बाघ से मृत्यु की सम्भावना है, इससे बच जाय तो ८४ वर्ष तक जीवित रहता है। [४५-४७]*

१२ मीन—इस राशि वाले की सभी चेष्टाएँ और व्यवहार अति गभीर होते है तथा वह शूरवीर, वाक्चतुर, उच्च पद प्राप्त और क्रोधी होता है। रण-नीति चतुर, त्याग या दान मे असमर्थ, कजूस, गायन-कला-विशारद और भाई-बन्धुओ के प्रति वात्सल्य वाला होता है। यह सेवाभावी और तेज गति से चलने वाला होता है। [४८-४९]

हे राजेन्द्र ! मैंने जो मेष आदि राशियो के गुणों का वर्णन किया है, वह सर्वज्ञो द्वारा अपने शिष्यो के समक्ष वर्णित के समान ही है, क्योकि ज्योतिष, निमित्त आदि अतीन्द्रिय शास्त्र जो बाह्य इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य नही है उन सब का वर्णन सर्वज्ञो द्वारा पहले ही हो चुका है। यदि किसी स्थान पर कोई बात न मिले या विपरीत प्रतीत होती हो तो उसे जानने वाले की बुद्धि-अल्पज्ञता का दोष ही समझना चाहिए; क्योकि अल्पज्ञान वाले लोग शास्त्रो की गहराई और सूक्ष्मता को नही समझ सकते। ऐसी स्थिति मे यदि क्रूर ग्रहो की दृष्टि न पड़ी हो और राशियाँ बलवान् हो तो उपरोक्त गुण सत्य/खरे ही उतरते है, अन्यथा नही होते, ऐसा आप समझे। [५०-५३]

राजा जीमूत ने ज्योतिर्विद् के उपरोक्त कथन को सत्य और शकारहित होकर स्वीकार किया। फिर सिद्धार्थ ज्योतिषी का सन्मान कर, पूजन कर और उचित दान देकर उसको विदा किया। उचित समय पर आनन्द महोत्सव और भोजन एवं दानपूर्वक मेरा नाम घनवाहन रखा गया।

---

* पृष्ठ ६११

अकलंक-जन्म : मैत्री

जीमूत राजा का नीरद नामक छोटा भाई था जिसकी पत्नी का नाम पद्मा-रानी था। इस पद्मा रानी ने भी इसी समय मे एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम अकलक रखा गया। मेरा और अकलक का सुखपूर्वक पालन-पोषण अनेक प्रकार से होने लगा। हम दोनो साथ-साथ बडे हुए, साथ-साथ धूल मे खेले, धूल में लोटे और साथ-साथ बाल-क्रीडाएँ की। मेरा कभी काका के लडके अकलंक से विरह नही हुआ। भवितव्यता ने बालपन से ही अकलंक के साथ मेरी मित्रता नियोजित कर दी थी जो दिनोदिन गाढ होती गई और हमारा पारस्परिक स्नेह वढता ही गया। फिर हम दोनो ने एक ही उपाध्याय के पास समस्त कलाओ का अध्ययन भी किया। हे सुन्दरी! इस प्रकार आनन्द-कल्लोल करते हुए हम दोनो कामदेव के मदिर रूप यौवनावस्था को प्राप्त हुए। [५४–५८]

अकलक बचपन मे, कुमारावस्था मे और युवावस्था मे भी उच्च व्यवहार/आचरण वाला, लघु कर्मी, भाग्यवान्, व्यसनरहित, दुर्व्यवहार-रहित, दुश्चेष्टा-रहित, शान्तमूर्ति, पवित्रात्मा, विनयी, देवपूजक, मधुरभाषी, स्थिरचित्त, निर्मल-मन, स्वल्परागी, प्रकृति से ही विकार-रहित और साधारणतया परमार्थ का ज्ञाता न होने पर भी तत्वज्ञानी जैसा दिखाई देता था। फिर उसका सुसाधुओ से सम्पर्क/परिचय हुआ, उनके पास आने-जाने के प्रसंग बढे और * उनके व्याख्यान सुन-सुन कर जैन आगमो का भी कुशल जानकार हो गया। हे भद्रे। धर्मिष्ठ प्रकृति का होते हुए भी अकलंक का मेरे प्रति स्नेहभाव होने से हम दोनो निरन्तर आनन्दपूर्वक क्रीडा विलास करते रहते। [५९–६३]

एक दिन मैं प्रात.काल मे विचक्षण अकलंक को साथ लेकर क्रीडा करने के लिये मनोहारी वुधनन्दन उद्यान मे गया। मेरी इच्छा को मान देकर दोपहर तक वह मेरे साथ खेला। तत्पश्चात् जब उसकी इच्छा घर जाने की हुई तब मैंने कहा कि इस उद्यान के मध्य मे एक बडा मन्दिर है, वहाँ चलकर थोडी देर विश्राम करे, फिर घर चलेगे। [६४–६६]

मुनि-दर्शन

अकलंक ने मेरी बात मान ली और हम दोनो उद्यान के मध्यभाग में स्थित विशाल जिन मन्दिर मे प्रविष्ट हुए। अन्दर जाकर हम दोनो ने नम्रभाव से जिनेश्वर भगवान् की स्तुति की और वापस बाहर आये। मन्दिर के बाहर अकलक ने श्रेष्ठ मुनिगणो को देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि आज अष्टमी होने से वे नगर के उपाश्रय से यहाँ देव-वन्दन के लिये आये है। यह भी ज्ञात हुआ कि सभी साधुओ ने पहले तीर्थंकर भगवान् को विधिपूर्वक वन्दन किया, फिर अलग-अलग

* पृष्ठ ६१२

स्थानो पर बैठकर सिद्धान्त-वाचन, सूत्र-पाठ और ज्ञान-ध्यान में अपना समय व्यतीत कर रहे है। ये सभी साधु अत्यधिक निर्मल कान्ति-सम्पन्न थे और दूर-दूर बैठे हुए ऐसे लग रहे थे मानो बाह्यद्वीप समुद्र मे स्थित चन्द्र हो! बाह्य दृष्टि से भी वृद्धिशाली दिखाई देते थे। अत्यन्त सुन्दर आकृति वाले और इच्छित फल को देने वाले वे साधु कल्प-वृक्षो के समान सुशोभित हो रहे थे। [६७-७२]

उस समय अकलंक ने मुझ से कहा—कुमार घनवाहन! देखो, देखो! ये मुनिपुगव कामदेव जैसे रूपवान, सूर्य जैसे तेजस्वी, मेरु पर्वत जैसे स्थिर, समुद्र जैसे गम्भीर और महाऋद्धिवान देवताओ के समान लावण्य सम्पन्न दिखाई देते है। ये ऐसे अनेक गुणो के भण्डार तेजस्वी महापुरुष तो राज्य-भोग भोगने के योग्य है, फिर ये भाग्यशाली पुरुष ऐसे दुष्कर चारित्र का पालन क्यो करते हैं? इन्होने ऐसे कठिन साध्वाचार को क्यो ग्रहण किया होगा? मेरे मन मे ऐसे कई स्वाभाविक प्रश्न उठ रहे हैं और मन मे कौतूहल पैदा हो रहा है, अत चलो, हम इन मुनिपुगवो के पास चले और प्रत्येक से वैराग्य का कारण पूछे।

मैंने भी अकलक के प्रस्ताव को स्वीकार किया और हम दोनो उन मुनिगणो के पास प्रश्न पूछने के लिये चले गये।

२. लोकोदर में आग

सिद्धान्त का पाठ करते हुए एव ज्ञान-ध्यान मे व्यस्त अलग-अलग बैठे हुए मुनियो में से एक के पास मैं और अकलक गये। पहले हम दोनो ने मुनिराज को वदन किया। फिर अकलक ने शात स्वर से मुनिराज से पूछा—भगवन्! आपका ससार पर से वैराग्य होने का क्या कारण बना?

उत्तर मैं मुनि बोले—सुनिये, मैं लोकोदर नामक ग्राम का रहने वाला एक कौटुम्बिक/गृहस्थ हूँ। एक रात इस नगर मे चारों तरफ भारी आग लग गई। चारो तरफ धुँए के बादल छा गये और अधिकाधिक अग्नि-ज्वाला की लपटे निकलने लगी। वांस फूटने जैसी कड-कड की आवाजें होने लगी। आवाजे सुनकर लोग जाग गये। चारो ओर कोलाहल मच गया। बच्चे चिल्लाने लगे, स्त्रिया दौड-भाग करने लगी, अन्धे हो-हल्ला/कोलाहल करने लगे, पंगु उच्चस्वर से रोने लगे, कुतूहली खिलखिलाने लगे,* चोर चोरी करने लगे सब वस्तुए जलने लगी, कजूस लोग विलाप करने लगे और सम्पूर्ण नगर माता-पिता-रहित अनाथ जैसा हो गया।

* पृष्ठ ६१३

सम्पूर्ण नगर तथा जन-समूह को जलाने वाली इस आग को देखकर एक बुद्धिमान मत्रवादी बाहर आया। नगर के बीच गोचन्द्रक (एक ऊचे चबूतरे) पर खडे होकर उसने पहले स्वय कवच धारण किया, फिर चारो तरफ मत्रित रेखा खीचकर चबूतरे के मध्य मे एक विशाल मण्डल बना लिया, फिर उच्च स्वर मे नगर के लोगो को बुलाने लगा—'भाईयो! आप सब इस मन्त्रित मण्डल मे आ जाइये, यहाँ आपके शरीर और वस्तुए नही जलेगी।' उसकी आवाज सुनकर कुछ लोग उस मन्त्रित मण्डल मे चले गये।

अन्य लोग पागल, शराबी, हृदय-शून्य, आत्मशत्रु और ग्रह-ग्रसित की तरह अपने शरीर और सर्वस्व को जलते हुए देखकर भी मूर्खो की भाति आग मे घास, लकडिया और घी से भरे हुए घडे डालकर आग को बुझाने का प्रयत्न करने लगे। इस विचित्र परिस्थिति को देखकर मण्डल मे प्रविष्ट लोगो मे से कुछ ने कहा—'अरे भोले लोगो! यह आग को बुझाने का उपाय नही है। या तो जल डालकर अग्नि को शात करो या मत्रवादी द्वारा मन्त्रित मण्डल मे चले आओ, जिससे हमारी भांति तुम भी आग से बच सकोगे।' परन्तु लोगो ने उनकी बात को अनसुना कर दिया। कुछ ने सुनकर भी लापरवाही की, कुछ तो हसी उड़ाने लगे और उलटा उपदेश देने लगे तथा कुछ तो क्रोधित होकर मारने भी दौडे। यह देख-कर मण्डल के लोग चुप हो गये। कोई-कोई समझदार पुण्यशाली प्राणी मण्डल मे प्रविष्ट भी होते रहे।

कुमारो! मेरी तथाविध भवितव्यता होने से मुझे मण्डल मे रहे हुए लोगो की बात रुचिकर प्रतीत हुई अत: मैं कूदकर मण्डल मे चला गया। मण्डल मे प्रविष्ट होकर मैंने देखा कि पवन के वेग से आग बढ रही है और नगर के सभी लोग रोते-चिल्लाते और चीखे मारते हुए आग में जल रहे हैं। तदनन्तर मण्डल मे रहने वाले कई लोगो ने दीक्षा ग्रहण की, उस समय मै भी उनके साथ प्रव्रजित हो गया। हे भद्र! यही मेरे वैराग्य का कारण है।

उपनय

मुनि की बात सुनकर अकलंक अत्यन्त प्रसन्न हुआ और दूसरे मुनि के पास जाने के लिये उठ खड़ा हुआ। मैं तो इस कथा का कुछ भी भावार्थ नही समझ सका, अत: मैंने अकलक से पूछा—

कुमार! मुनि ने वैराग्य का जो कारण बतलाया उसे सुनकर तुम्हे तो अत्यधिक प्रसन्नता हुई, किन्तु मुझे तो कुछ भी समझ मे नही आया, अत. तुम मुझे इसका भावार्थ ठीक से समझाओ। [७३]

अकलक बोला—भाई! मुनि ने जिसे लोकोदर ग्राम कहा है उसे इस संसार को समझो * और इस ससार मे वह रहता है ऐसा समझो। महामोह के

* पृष्ठ ६१४

अन्धकार को रात्रि समझो । राग-द्वेष रूपी अग्नि से यह नगर निरन्तर जलता ही रहता है । तामसभाव/कषाय परिणति से धूए के बादल छाये रहते है । राजसभाव रूपी आग के शोले भभकते रहते है । ससार के क्लेश को बांस फूटने की आवाज समझो । राग-द्वेष रूपी अग्नि से उत्तप्त होकर लोग जाग उठते है और कोलाहल करते है । क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कषाय बालक दारुण क्रन्दन करते है । कृष्ण, नील, कपोत अशुद्ध लेश्या रूपी स्त्रिया हाफती हुई दौड़ने लगती है । ससार मे रागाग्नि से तप्त मूर्ख प्राणी अधो की तरह चिल्लाते हैं । वस्तुस्थिति को जान-कर भी उस पर आचरण नही करने वाले पगु उच्च स्वर से रोते है । नास्तिक हसोडो की तरह व्यर्थ की धमाचौकड़ी करते है । इन्द्रिय रूपी चोर धर्म-सर्वस्व की चोरी करते है । राग रूप अग्नि से आत्मगृह की अच्छी-अच्छी वस्तुएं जलने लगती हैं । कुछ लोग चिल्लाते है, 'क्या करे ?' इस भयकर आग को बुझाने मे हम असमर्थ है, इसे कजूसो का विलाप समझो । भाई ! साधु ने इस ससार मे लगी हुई भीषण आग का वर्णन किया और उसके द्वारा फैल रही अव्यवस्था को चित्रित किया । लोग परस्पर एक-दूसरे को नही बचा सकते, इसीलिये ससार रूपी नगर को अनाथ कहागया । यहाँ मत्रवादी को विशुद्ध परमेश्वर सर्वज्ञ महाराज समझो, जिन्होने उठकर गोचन्द्रक आकार के मध्यलोक मे आत्मकवच धारण कर सूत्र के मन्त्रो से रेखाये-खीचकर तीर्थ-मण्डल की स्थापना की और धर्मोपदेश के आकर्षण से लोगो को अपने मण्डल मे बुलाया । तीर्थंकर/मन्त्रवादी की धर्मदेशना/आह्वान से उत्साहित होकर कुछ भाग्यशाली पुरुष उनके तीर्थमण्डल मे प्रविष्ट हुए पर उनकी सख्या अत्यल्प थी; क्योकि ससार के जीवो की सख्या की अपेक्षा से वे उसके अनन्तवे भाग जितने ही थे । जो सर्वज्ञ के तीर्थ मे मत्र-वादी के मण्डल मे गये वे ससाराग्नि दावानल से बच गये । [७४-८९]

अन्य महामूर्ख लोग राग-द्वेष रूपी अग्नि से जल रहे इस ससार को विषयो से शात करने का प्रयत्न करने लगे । जो स्त्री-पुत्रादि पर आसक्ति रखकर, धन एकत्रित करते हुए पाँचो इन्द्रियो को खुली छोड़ कर इस ससाराग्नि को बुझाने का प्रयत्न करते है, वे तो उसमे घास के पूले और लकडी के गट्ठर डालकर उसको बढाते ही रहते हैं । जो लोग बार-बार कपट, लोभ, अभिमान, क्रोध आदि से इस अग्नि को शात करने का प्रयत्न करते है, वे इसमे घी के घडे डाल कर उसे बढाने का काम ही करते है ।* तीर्थ-मण्डल के अन्दर प्रविष्ट लोग बार-बार उन्हे समझाते है कि घास, लकडी और घी डालने से अग्नि बुझेगी नही, वह तो और अधिक भड़केगी, प्रर वे नही समझते । बार-बार बताने पर भी कि ससाराग्नि तो प्रशम जल के छिडकाव से ही शात होगी, वे उसका उपयोग नही करते और न सत्तीर्थ रूपी मण्डल मे ही प्रविष्ट होते है । ससाराग्नि को बुझाने की बात सुनकर उस पर आचरण करना तो दूर रहा, प्रत्युत वे ऐसा उपदेश देने वालो की हसी उड़ाते है । इन मुनि-महात्माओ की भाति कोई सा व्यक्ति ही वस्तुस्थिति को समझ पाता है ।

* पृष्ठ ६१५

इन्होने सत्य को समझा और प्रबुद्ध होकर सर्वज्ञ के तीर्थ-मण्डल में प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात् इन्होने देखा कि ससारोदरवर्ती सभी लोग राग-द्वेप रूपी अग्नि से अत्यन्त विह्वल होकर जल रहे है और अशुद्ध अध्यवसाय रूपी पवन इस अग्नि को और अधिक बढा रहा है। ग्रामीणो के समान अज्ञानी जैसे-जैसे अधिक रोते-चिल्लाते है, वैसे-वैसे तीर्थ-मण्डल मे सुरक्षित मुनियो के आँखो के सामने यह धधकती अग्नि उन्हे अधिक जलाती है। [६०-६८]

अन्त मे मुनि ने कहा कि मण्डल के भीतर रहने वाले कुछ लोगो ने दीक्षा ग्रहण की और उनके साथ मैने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। हे भद्र घनवाहन! मुनि के इस वाक्य मे भी वक्रोक्ति है। मैने पूछा—कुमार! इस समस्त घटना मे वक्रोक्ति कैसे है? अकलक ने कहा—तीर्थ मण्डल मे चार प्रकार के लोग होते है—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। इस वाक्य का अर्थ यह है कि तीर्थमण्डल में रहने वाले सभी लोग दीक्षा नही ले पाते, कुछेक ही दीक्षा लेते है, उन्ही मे से एक ये मुनि भी है। हे भद्र! सारी कथा मे वक्रोक्ति से मुनि ने ससाराग्नि को वैराग्य का कारण बताया है। यह कथा बहुत चमत्कारपूर्ण होने से उसे सुनकर मेरा चित्त अत्यन्त हर्षित हुआ। हे भद्र! मैने यह भी सोचा है कि मुनि महाराज ने जो बात कही है वह पूर्ण सत्य है। निरन्तर जलता हुआ यह ससार सज्जनो के लिये तो वैराग्य का कारणभूत ही होता है। यह भी सत्य है कि मूर्ख/जड़बुद्धि लोग अपनी आत्मा को इस ससाराग्नि मे जलाते है, जबकि उनमे से कुछ बुद्धिशाली लोग उससे बाहर निकल जाते है। इन मुनि महाराज ने हम दोनो को प्रतिबोधित करने के लिये ही लोकोदर मे आग लगने की कथा को अपने वैराग्य का कारण बताया है।

[६६-१०५]

मुझे लगता है कि वे ऐसा कह रहे है—'अरे भाइयो! इस प्रदीप्त आग से जल रहे ससार मे तुम दोनो भी जल रहे हो। तुम्हारे जैसे विवेकीजनो को तो तीर्थ-मण्डल मे प्रविष्ट हो जाना चाहिये। जो भाग्यवान प्राणी भावपूर्वक हमारे इस तीर्थ-मण्डल मे प्रवेश करते है, उन्हे राग-द्वेष की यह अग्नि कभी जला नही सकती।' ये मुनि-श्रेष्ठ इस कथा द्वारा हमे भी यह उपदेश सुना रहे है, ऐसा मुझे स्पष्ट लग रहा है। भाई घनवाहन! मुनिसत्तम के ये उत्तम विचार मुझे तो बहुत ही प्रिय लगते है, तुम्हे रुचिकर है या नही, यह मै नही जानता। [१०६-१०८]

हे भद्रे! अकलक की उपरोक्त बात सुनकर * मै तो चुप ही रहा। मैने कोई उत्तर नही दिया, क्योकि मेरा मन अभी तक पाप से भरा हुआ था, पाप-पूर्ण ससार मे ही आसक्त था।

वहाँ से हम मन्दिर के बाहर ज्ञान-ध्यान मे रत दूसरे मुनि के पास पहुँचे और उन्हे वन्दन किया। [१०६-११०]

---

* पृष्ठ ६१६

३. मदिरालय

धनवाहन के भव मे संसारी जीव अपनी आत्मकथा को आगे बढाते हुए अगृहीतसकेता को उद्देश्य कर कह रहा है। दूसरे मुनि के पास पहुँच कर हम दोनो ने वन्दन किया, फिर अकलक ने पूछा—भगवन्! इतनी छोटी उम्र मे आपके दीक्षा लेने का क्या कारण है ?

उत्तर मे मुनि बोले—सौम्य! सुनो, शराबियो के एक बडे समूह को मद्य पीने मे तत्पर देखकर मुझे वैराग्य हो गया। मेरे शरीर के सभी अग मद्य के नशे मे चूर हो गये थे और मैं एक बड़ा मद्यपी बन गया था। मुझ पर कृपा कर ब्राह्मण महात्माओ ने मुझे प्रतिबोधित किया, जिससे मुझे वैराग्य हो गया। [१११–११३]

मदिरा और मदिरालय

अकलक—पूज्य! इस मद्यशाला का विस्तृत वर्णन कर यह बताने की कृपा करे कि वे मद्यपी कैसा व्यवहार करते थे और वे ब्राह्मण कौन थे ?

मुनि—सुनिये, यह मद्यशाला अनेक घटित घटनाओ से युक्त और अनन्त लोगो से परिपूर्ण होने से इसका सम्यक् प्रकार से वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है ? तदपि हे नरोत्तम! मै आपके समक्ष उसका सक्षेप मे वर्णन करता हूँ। ध्यानपूर्वक सुने। [११४–११६]

यह मद्यशाला अनेक प्रकार की सुवासित मदिरा से लोगो को सन्तुष्ट करती है। सुन्दर पात्रो मे चित्र-विचित्र शराबे शोभायमान है। इसके चषक (मद्यपात्र) काले कमल के समान सुन्दर हैं। मदिरा और मद्यपान मद्यरसिको के प्रमोदानुभूति का कारण है। [११७]

इसमे रहने वाले सभी लोग मदिरा के नशे मे धुत्त रहते है। वे नाचते-कूदते और हसी-मजाक करते हुए प्रफुल्लित होते है। बाह्य दृष्टि से देदीप्यमान तूफानी लोग मुह से सीटियाँ बजाते हुए गीत गाते रहते हैं। परस्पर ताल देते हुए एक ही साथ सैकडो रास करते रहते है। [११८]

यह मद्यशाला सुन्दर आकृति वाले अनेक प्रौढ प्राणियो से भरी है। इसमे प्रगाढ मद से उन्मत्त एव उद्धत अनेक स्त्रियाँ भी सम्मिलित है। यह शाला इतनी लम्बी है कि इसका प्रारम्भ कहाँ से हुआ और अन्त कहाँ पर है ? कुछ पता नही लगता। यह लोकाकाश-नामक भूमि मे स्थित है। [११९]

इसमे करोड़ो मृदग और कासे बजते रहते है वीणा के नाद से इसके आनन्द मे वृद्धि होती रहती है। बांस (बांसुरी) आदि वाद्ययन्त्रो की ध्वनि से युवा बराती

अधिक उद्धत होते है और वे हजारो प्रकार की विचित्र आवाजे करते रहते है। [१२०]

मद्यशाला मे नृत्य, गायन, विलास, मद्यपान, भोजन, दान, आभूषण और मान-अपमान की धमाल चलती ही रहती है। यहाँ अनेक विचित्र उलटी-सुलटी विचार-तरगे चलती ही रहती है, जिससे यह मद्यशाला लोगो को चमत्कार का कारण प्रतीत होती है। [१२१]

हे भद्र! अनेक विध विभ्रम चेष्टाओ वाले रसिकजनो से सर्वदा सेवित और सर्व सामग्री से परिपूर्ण इस मद्यशाला को मैने देखा। हे सौम्य! लोक मे ऐसा कोई नाटक या आश्चर्य नही जो मैने इस मदिरालय मे अनुभूत न किया हो। [१२२-१२३]

मदिरालय के मुख्यत: निम्न तेरह विभाग हैं :—

१. यहाँ अनन्त लोग शराब के नशे मे धुत्त पडे रहते है। वे बेचारे न तो कुछ बोलते है, न कोई चेष्टा करते है और न कोई विचार करते है। वे किसी प्रकार का कोई लौकिक व्यवहार भी नही करते है, मात्र मृतप्राय: की तरह मूर्छित अवस्था मे पड़े रहते है। [१२४-१२५]

२. यहाँ दूसरे भी अनन्त लोग है। वे भी उपरोक्त के समान ही मूर्छित अवस्था मे रहते है, पर वे * कभी-कभी बीच-बीच मे कुछ-कुछ लौकिक व्यवहार करते है। [१२६]

३. यहाँ पृथ्वी और पानी आदि के रूप और आकृति धारण करने वाले असख्य लोग उपरोक्त अवस्था मे नशे मे धुत्त पडे रहते है। [१२७]

४. यहाँ असख्य लोग ठूस-ठूस कर मात्र मदिरा का स्वाद ही लिया करते है। ये न कुछ सूघते है न कुछ देखते है और न कुछ सुनते हैं। शून्यचित्त वाले ये लोग जमीन पर लोटते रहते है। नशे की घेन मे जीभ से कुछ स्वाद लेते रहते हैं और कभी-कभी चिल्लाते रहते है। [१२८-१२९]

५. यहाँ पूर्वोक्त स्वरूप धारक असख्य लोग ऐसे भी है जो केवल सूंघते है, देख-सुन नही सकते [१३०]

६. यहाँ असंख्य लोग नशे मे घूरते हुए आखे खोल-खोल कर सामने पड़ी वस्तु को देखते तो है, पर सुनते नही। इनकी चेतना पर भी मदिरा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। [१३१]

७ यहाँ असख्य लोग मदिरा के नशे मे चेतना-शून्य हो गये है। इनके मन मर गये है इसलिये मनरहित माने जाते हैं। [१३२]

८ यहाँ असख्य लोग स्पष्ट चेतना वाले तो है किन्तु सर्वदा अधिक नशे की अवस्था मे होने के कारण वे दुष्ट शत्रुओ द्वारा बार-बार छेदे, भेदे और चीरे

* पृष्ठ ६१७

जाते हैं। वे आपस मे भी छेदते, भेदते और काटते रहने के कारण तीव्र वेदना भोगते रहते है। [१३३-१३४]

९ यहाँ ऐसे असख्य लोग है जिनके चित्त शराब की घेन मे भ्रमित चित्त वाले हो गये है। कौनसा काम अकरणीय है, यह तो वे समझते ही नही। वे पशु-पक्षी की आकृति को धारण करने वाले, मु ह से चिल्लाने वाले, अपनी माँ के साथ भी सभोग करने वाले, धर्म-अधर्म को नही जानने वाले, कुछ भी कार्य करने वाले और अव्यक्त बोली बोलने वाले है। उनमे से कुछ नशे मे जमीन पर लोटते है, कुछ आकाश मे उड़ते हैं और कुछ पानी मे डुबकी लगाते है। ये लोग परस्पर लड मरते है और अत्यन्त कठोर दु.ख सहन करते है। सचमुच शराब समस्त आपत्तियो का कारण है। [१३५-१३९]

१०. इस मद्यशाला मे दो प्रकार के असख्य मनुष्य है—मदमत्त बने हुए असख्य और दूसरे संख्यात। जो नशे मे मत्त है वे बेचारे भूमि पर लोटते है, वमन थूक, पित्त, विष्टा और मूत्र खाते-पीते हैं। हे भद्र! दूसरी प्रकार के ये सख्यात मनुष्य नशे मे मत्त होकर परस्पर लड़ते है, कूदते है, नाचते है, उच्च स्वर मे हसते है, गाते है, व्यर्थ का भाषण करते है, बेकार फिरते है, जमीन पर लोटते है और दौड़ा-दौड करते है। विलास के आनन्द-रस मे मैल, कचरा, मास, श्लेष्म आदि तुच्छ वस्तुओ से भरी हुई स्त्रियो के मुख और नेत्रो का चुम्बन करते है* और विवेकी मनुष्य को लज्जा आने योग्य बिब्बोक आदि विचित्र आचरण करते है। माँ-वाप को भी मारने लगते है, चोरी आदि अनार्य कार्य करते है और कैसे भी भ्रष्ट कार्य हो उनमे तत्पर हो जाते है। परिणामस्वरूप राजपुरुषो द्वारा पकडे जाते है, अनेक प्रकार की भयकर तीव्र वेदना और मार सहन करते है।

[१४०-१४६]

११ इस विभाग मे असख्य प्राणी ऐसे है जिन्हे चार उपविभागो मे बाट दिया गया है। ये भी मदिरा के नशे मे मस्त होकर कलबल-कलबल करते रहते है। यहाँ इनके सन्मुख अविरत रूप से बासुरी और वीणा के मधुर स्वर होते रहते है, नाटक और खेल चलते रहते है, आनन्द-विलास और वादित्रो के मधुर स्वर चलते रहते हैं। इस धमाल मे वे स्वय भी नाचते, कूदते, हसते, रोते और अपनी स्त्रियो के साथ अपनी आत्मा की अनेक प्रकार की विडम्बनाये करते रहते है। मदिरामत्त होने से वे एक-दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, शोक करते है, अभिमान से फलते हैं, कभी-कभी अकार्य भी कर बैठते हैं। ये चारो समुदाय वाले अपने आप को सुखी मानते है, पर वास्तव मे वे दु खी ही हैं। [१४७-१५०]

१२ इस मदिरालय मे सख्यात लोग ऐसे भी है जो मदिरा नही पीते और मध्यस्थ भाव से रहते है। मदिरा पीने वाले लोग प्रतिदिन इनकी हसी उडाते है और असूया से इनको ब्राह्मण के नाम से बुलाते है। [१५१-१५२]

---

* पृष्ठ ६१८

१३. हे सौम्य ! इस मद्यशाला के बाहर अनन्त लोग ऐसे भी है जो स्वय महाबुद्धिशाली है और मदिरा सेवन से रहित है। वे इस अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित मद्यशाला से सदा के लिये दूर होकर बाधा-पीडाओ से रहित हो गये है और निरन्तर आनन्दोत्सव मे मग्न रहते है। [१५३-१५४]

हे भद्र ! इस मद्यशाला (लोक) मे अनेक विभागो मे से उपरोक्त मुख्य तेरह विभागो का स्वरूप सक्षेप मे मैने तुम्हे बताया। मैं स्वय भी मदिरा के नशे मे मत्त होकर उपरोक्त वर्णित पहले विभाग मे अनन्त काल तक रहा। फिर किसी प्रकार क्रमशः दूसरे, तीसरे और चौथे विभाग मे मदघूर्णित होकर उद्दाम लीला करता हुआ बहुत काल तक रहा। उपरोक्त तेरह मे से प्रथम और अन्तिम के दो विभाग अर्थात् तीन विभागो को छोडकर शेष दसो विभागो मे मद्यपी की दशा मे पापो के कारण मै अनन्त बार भटकता रहा। [१५५-१६०]

मदिरालय की भूमि जो वमन, पित्त, मूत्र, विष्टा, कफ आदि अपवित्र वस्तुओ से वीभत्स और दुर्गन्धित हो रही थी, उसमे मैं मद्यपी की दशा मे लोटा, गुलाचे खायी, घुटनो के बल चला, खड़ा हुआ, गिरा, नशे मे चिल्लाया, कभी हसा, नाचा, रोया, दौडा,* लोगो से लड़ा, बलवान लोगो से प्रतिक्षण मार खाई और प्रहारो से शरीर जर्जर हो गया। इस प्रकार लाखो दुःखो से उत्पीड़ित/त्रस्त होकर भी मै इस मद्यशाला मे विचरता रहा। [१६१-१६४]

एक बार इस मद्यशाला मे स्थित मुझ पर किसी ब्राह्मण की दृष्टि पड़ी। उसको मुझ पर करुणा/दया आयी। उसने सोचा कि यह बेचारा स्वय को शराब के व्यसन से अत्यन्त दुःख का अनुभव कर रहा है, अत किसी उपाय द्वारा इसका व्यसन छुडवाना चाहिये जिससे यह भी हमारी तरह से सुखी हो सके। यह सोचकर ब्राह्मण ने मुझे प्रतिबोध देने का, समझाने का प्रयत्न किया। वह पुकार-पुकार कर मुझे सच्ची बात समझाने लगा किन्तु मदिरा के नशे मे मत्त मैं उसकी बात को न सुनकर शून्य चेतन जैसा मद्यशाला के विभिन्न विभागो मे भटकता रहा। जब ब्राह्मण जोर-जोर से चिल्लाने लगा तो मैंने थोड़ा सा हुकारा दिया, तब उसने मुझे बुलाने का बहुत प्रयत्न किया। इस अवसर पर मदिरा का नशा कुछ कम होने से मेरी चेतना प्रकट होने लगी और मैने उत्तर दिया। तत्पश्चात् उसने विस्तार से मदिरा के दोष बताये। मुझे भी उसकी बात पर विश्वास हुआ और मैंने मदिरापान के त्याग का निश्चय किया और मै भी उसके जैसा ब्राह्मण बन गया। सभी ब्राह्मणो ने दीक्षित होकर साधु-वेष पहन रखा था अत मैने भी साधु-वेष धारण कर लिया। यद्यपि शराब से जो अजीर्ण मुझे हुआ था वह अभी तक नही मिटा है तदपि मुझे आशा है कि दीक्षा के प्रभाव से मैं अपने सारे अजीर्णों को समाप्त कर दूगा। हे भद्र ! यही मेरे वैराग्य का कारण है।

---

* पृष्ठ ६१९

हे बहिन अगृहीतसंकेता ! साधु महाराज की उक्त वार्ता सुनते हुए ही अकलक के मन मे उस सम्बन्ध मे विचार-विमर्श चलने लगा जिससे उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो गया । पूर्वभव मे अभ्यास किये गये ज्ञान का स्मरण होने से उसे कथा का भावार्थ समझ मे आ गया जिससे वह बहुत प्रमुदित हुआ और मुनि महाराज को वन्दना कर तीसरे मुनि की ओर जाने लगा ।

कथा का उपनय

पहले की भाति ही मैंने (घनवाहन ने) अकलक से कहा कि इस वार्ता का भावार्थ मैं नही समझ पाया हूँ, अतः स्पष्ट रीति से इसका रहस्य मुझे बतला दे । मेरी जिज्ञासा देखकर अकलक बोला—भाई घनवाहन ! यह ससार ही मद्यशाला है । इस रूपक के द्वारा मुनि ने स्वय को ससार से वैराग्य होने का कारण बतलाया है । तू इस उपनय को ध्यानपूर्वक सुन ।

यह संसार वस्तुतः मदिरालय के समान ही है, क्योकि इसमे अनन्त घटनाये घटित हो चुकी है, हो रही है और होती रहेगी । इसमे अनन्त जीव शराबी का चरित्र निभा रहे है । आठ प्रकार के कर्म और उनके भिन्न-भिन्न भेद अनेक प्रकार के मद्य हैं । इनमे से चार प्रकार के कषाय आसव है, नौ प्रकार के नोकषाय सिरके है, चार घाति कर्म मदिरा है, भिन्न-भिन्न गति के आयुष्य मदिरा के आधारभूत होने से चित्र-विचित्र मद्यपात्र (भाण्ड) है, प्राणियो के शरीर कर्मरूपी मद्य का उपयोग करने से मद्य पीने के पात्र हैं, इन्द्रियाँ शरीर को विभूषित करने वाली होने से और अत्यन्त आसक्ति का कारण होने से उन्हे काले कमल की उपमा दी गई है । * कर्मरूपी मद्य से उन्मत्त लोट-पोट बने लोग नाचते, कूदते, हँसते रास-विलास करते और विब्बोकादि अनेक प्रकार की चेष्टाये करते है उन्हे कलकल ध्वनि, उनके आपसी लडाई-झगडो को मृदग, दुष्ट लोगो द्वारा उत्पन्न क्लेश को कासे और दु खी प्राणियो के मद-मद विलाप को वीणा की उपमा दी है । लोगो की शोकपूर्ण करुण चीत्कार को बास (वासुरी) की आवाज, आपद्ग्रस्त प्राणियो की चेष्टाओ को मुगुन्द की आवाज, प्रिय वियोग की अवस्था मे दीनता प्रकट करने वाले विलाप को करताल की आवाज कहा गया है । अत्यन्त अज्ञान के वशीभूत मूर्ख लोग बरातियो का अनुकरण करते है ।

इसमे कमनीय आकार के धारक देवता पात्र का रूप धारण करते है और उनकी अप्सराये गाढ मदोद्धत युवती स्त्रियो का । यह मद्यशाला इतनी विशाल और लम्बी है कि इसके प्रवेश और अन्तिम छोर का कुछ पता ही नही लगता, अर्थात् यह अनादि अनन्त है ओर सर्वदा लोकाकाश मे स्थित है । इसमे नाच, गायन, विलास, मद्यपान, भोजन, दान, अलकार-ग्रहण, मान-अपमान आदि चित्र-विचित्र भाव चलते ही रहते है, जो अज्ञानी प्राणियो के ससार-वर्धन और विवेकी प्राणियो के वैराग्य का कारण बनते है ।

---

* पृष्ठ ६२०

मुनि महाराज ने मद्यशाला के जो तेरह प्रकार के प्राणियो के विभाग बताये है उन्हे विभिन्न अवस्थाओ के जीव समझना। इन विभागो का भावार्थ इस प्रकार है—१. असव्यवहार वनस्पति, २ संव्यवहार वनस्पति, ३. पृथ्वी, पानी, वायु और अग्नि के एकेन्द्रिय, ४ बेइन्द्रिय, ५ तेइन्द्रिय, ६. चौ इन्द्रिय, ७ असज्ञी पचेन्द्रिय, ८ नारकीय, ९ पचेन्द्रिय तिर्यच, १० समुच्छिम और गर्भज मनुष्य, ११ भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव, १२ ब्राह्मण के नाम से बतलाये गये इन्द्रियो पर सयम रखने वाले त्यागी वैरागी सयत मनुष्य और १३. ससार मद्यशाला से बाहर हुई मुक्त आत्माएं।

इन सभी प्राणियो की सख्या और इनके लक्षण भी साथ मे बताये गये है। उनके सम्बन्ध में होने वाली चित्र-विचित्र घटनाओ का भी सक्षेप में वर्णन किया गया है। इसमें मुनि महाराज ने स्वयं अपने आप को कर्म-मद्य का पान करने वाला बताया और किस-किस विभाग मे कितना-कितना भटकना पड़ा, यह भी बतलाया। ये पहले असव्यवहार जीव राशि मे अनन्त काल तक रहे। वहाँ से अनन्त काल व्यतीत होने पर बड़ी कठिनाई से बाहर निकले और सव्यवहार वनस्पति जीव राशि मे बहुत समय तक रहे। तदनन्तर दशो विभागो/स्थानो मे बारबार घूमते/भटकते रहे। इनको पहले असव्यवहार विभाग मे फिर से और अन्तिम दो ब्राह्मण एव मुक्तात्माओ के विभाग में अभी तक प्रवेश नही मिल सका है। इन तीनो स्थानो के अतिरिक्त दस विभागो मे इन्हे कैसी-कैसी तीव्र पीड़ाये सहन करनी पडी यह इन्होने स्पष्ट किया।

हे सौम्य! मुनि महाराज ने इस वार्ता द्वारा हमे भी समझाया है कि यह ससार मद्यशाला जैसी है और आत्मा के दु ख का कारण है।* अन्त में उन्होने कहा कि 'मद्यशाला स्थित ब्राह्मणो ने उन्हे देखा और यत्नपूर्वक प्रतिबोधित किया' आदि की सघटना/योजना इस प्रकार घटित होती है। [१६५–१६६]

अनादि ससार मे तथाप्रकार के स्वभाव के योग से कर्म की उत्कृष्ट स्थिति को भोग कर प्राणी मनुष्य भव मे आता है और सुसाधु-महात्माओ के सम्पर्क मे आने पर नदी मे घिसते पत्थर की तरह उसे द्रव्यश्रुत (ऊपरी ज्ञान) की प्राप्ति होती है किन्तु कर्म-मदिरा के नशे मे उसे सम्यक्त्व की तथा वास्तविक परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति नही होती, जिससे वह सत्क्रिया का आचरण नही कर पाता और श्रेष्ठ साधुओ के सम्पर्क का लाभ नही उठा पाता। यही प्राणी की कर्म-मद्य-सेवन की तीव्र इच्छा है। हे सौम्य! यही कामना अतिभयकर और ससार-वर्धन का कारण है। इसके वशीभूत प्राणी बेभान होकर बार-बार परिभ्रमण करता है। जब काल आदि समस्त हेतु अनुकूल होते है तभी प्राणी अति दारुण कर्म की गाँठ को शुभ भाव से काटकर राधावेध की तरह अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होने वाले सद्-दर्शन को प्राप्त करता है। सुसाधु-ब्राह्मणो द्वारा प्रतिबोध के लिए बुलाने पर जब

* पृष्ठ ६२१

प्राणी हुकारा देता है, इसी को धर्मोपदेश के बोध की स्वीकृति समझना चाहिये। इसी को "दर्शन, मुक्ति-वीज, सम्यक्त्व, तत्त्ववेदन, दु:खान्तकृत्, सुखारम्भ" आदि नामो से जाना जाता है। ये सभी शब्द एक ही बात (हुकार) की सूचना देते है। जव प्राणी सम्यग् दर्शन युक्त होता है तभी तत्त्वश्रद्धान से उसकी आत्मा पवित्र हो जाती है, कृतकृत्य हो जाती है, फिर वह ससार समुद्र मे नही भटकता। ऐसा प्राणी सम्यग् शास्त्र के अनुसार जिसका जैसा वास्तविक स्वरूप होता है, उसे वैसा ही अपनी बुद्धिचक्षु से देखता है। जैसे किसी प्राणी का नेत्र-रोग नष्ट हो जाने पर उसे वस्तुओ का रूप ठीक-ठीक दिखाई देता है वैसे ही वह यथास्थित रूप को देखकर प्रशान्त अन्तरात्मा से परम सवेग-भाव का आश्रय लेकर वस्तुओ मे स्थित आन्तरिक भावो पर यथायोग्य विचार करता है। [१६७–१७७]

ऐसे प्राणी की विचारधारा इस प्रकार की होती है—यह भयकर ससार-समुद्र जन्म, मरण, वृद्धावस्था, व्याधि, रोग, शोक से परिपूर्ण और प्राणियो को अनेक प्रकार के क्लेश उत्पन्न कराने वाला है। जब कि जन्म-मरण-भय आदि क्लेशो से रहित और बाधा-पीडा-वर्जित स्थान मोक्ष ही प्राणी के लिये सुखकारी है। हिंसा आदि दु ख ससार-वृद्धि के कारण और अहिंसा आदि बाधा-पीडा-रहित मोक्ष के कारण हैं। यो बुद्धि-चक्षु से ससार का निर्गुणत्व और मुक्ति के गुणत्व को देखकर विशुद्ध आत्मा आगम मे कथित नियमानुसार उसके लिए प्रयत्न करता है। जैसे कोई कामी पुरुष अपनी प्रिय वल्लभा को प्राप्त करने के लिए अनेक दुष्कर कठिन कार्य करता है वैसे ही मोक्ष प्राप्त करने की दृढ इच्छा वाला प्राणी क्षुद्र प्राणियो को अति दुष्कर लगने वाले महान कार्यों और अनुष्ठानो को भी पूरा करता है। उपादेय मनोज्ञ वस्तु को प्राप्त करने के प्रयास मे जो कठिनतम अनुष्ठान आदि किये जाते हैं उससे उसके मन मे तनिक भी पीड़ा नही होती, क्योंकि साध्य को प्राप्त करने की मन मे दृढ इच्छा होती है और चित्त तथा विचार प्रतिवन्धित हो जाते हैं। एकबार साध्य को प्राप्त करने मे मन लग जाने के वाद उसके प्रयत्न मे किये गये परिश्रमो से उसे कोई कठिनाई प्रतीत नही होती। ऐसे विचारवान व्यक्ति को तो उलटे त्याज्य वस्तु को ग्रहण करने मे कठिनाई होती है।* जैसे व्याधिग्रस्त व्यक्ति जब कटु औषधोपचार से आरोग्य प्राप्त करने लगता है तव उसे कड़वी दवा पीने मे भी बुरी नही लगती और उसे प्रीतिपूर्वक नियमित रूप से लेता है, वैसे ही उत्तम मनुष्य जब अपने को ससार-व्याधि से ग्रस्त देखता है और जव उपचार करने पर उसे समता रूपी आरोग्य प्राप्त होने लगता है तब वह साध्य को प्राप्त करने के लिए पूर्णशक्ति, प्रसन्नचित्त और दृढता से प्रयत्न करता है तथा उसमे अधिकाधिक प्रगति करता रहता है। इसी हेतु वह शुद्ध चारित्र को प्राप्त कर उसमे क्रमशः आगे वढता जाता है। तत्पश्चात् सर्वज्ञ बनकर, अन्त मे ज्ञानयोग से भवोपग्राही चार अघाती कर्मों का क्षय कर शाश्वत मोक्ष को प्राप्त

---

* पृष्ठ ६२२

करता है। प्राणी को ऐसी महान कल्याणकारी परम्परा अधिकाश में सत्साधु एव गुरुजनो की सेवा से ही प्राप्त होती है, इसीलिये मनीषियो ने कहा है—
[१७८–१८९]

भक्तिपूर्वक निरन्तर साधु-सेवा, भावपूर्वक प्राणियो के प्रति मैत्री और अपने आग्रह का त्याग ही धर्म हेतु के साधन है। [१९०]

साधु-सेवा से निरन्तर वास्तविक और शुभकारी उत्तम उपदेश प्राप्त होता है, धर्म का आचरण करने वाले महापुरुषों का दर्शन होता है और योग्य पात्र के प्रति विनय करने का प्रसंग प्राप्त होता है। साधु-सेवा का यह कोई सामान्यफल नही अपितु महाफल है। [१९१]

मैत्री की भावना वाले प्राणी के शुभ भावो मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, शुभ भाव रूपी जल के छिडकाव से द्वेषरूपी अग्नि शान्त होती जाती है।
[१९२]

झूठे आग्रह का त्याग करने से निखिल दोषो को उत्पन्न करने और समस्त गुणो का घात करने वाली तृष्णा चली जाती है। इस प्रकार गुण समूह से युक्त होकर विशुद्ध आत्मा जब अपने आशय मे स्थिर होकर कार्य सिद्ध करती है तब तत्त्वज्ञानी उसे सम्यग् धर्म का साधक कहते है। [१९३–१९४]

भाई घनवाहन! मुनि ने जो यह बात कही, उसका रहस्य यही है कि करुणा-तत्पर ब्राह्मण का रूप धारण करने वाले ने मुनि को बोध दिया।
[१९५]

इस कथा मे मुनि ने जो अन्य बात कही वह तो प्रथम मुनि की कथा मे भी आ चुकी है, अत. उसका निष्कर्ष स्पष्ट होने से मै पुन. वर्णन नही करता हूँ। यह तो स्पष्ट है कि त्याग (विरति) रहित समग्र प्राणी कर्मरूपी मद्य मे आसक्त और धुत्त रहते हैं, जब कि साधुगण ससार-मद्यशाला मे रहते हुए भी उससे दूर रहते हैं। इस मुनि को ब्राह्मण रूपी साधु ने कर्ममद्य से यत्नपूर्वक अलग किया और उसे दीक्षा दी, यही उसके वैराग्य का कारण है। दीक्षा के प्रताप से कर्मरूपी अजीर्ण के विष को समाप्त कर यह मुनि भी ससार-मद्यशाला से बाहर चले जायेंगे, मुक्त हो जायेंगे।
[१९६–१९९]

भद्र घनवाहन! ऐसी दुःखद और गदी मद्यशाला मे अपने जैसो का जान-बूझ कर रहना उचित नही है। [२००]

हे अगृहीतसकेता! अकलक ने इस प्रकार इस कथा का विस्तार से विवेचन किया, पर मुझे तो उससे कुछ भी बोध प्राप्त नही हुआ। जैसे शून्य अरण्य में मुनि मौन धारण करते हैं वैसे ही मैं भी चुप रहा। फिर हम दोनो तीसरे मुनि के पास गये। [२०१–२०२]

४. अरहट-यन्त्र

वुधनन्दन उद्यान के मन्दिर के बाहर अलग-अलग बैठकर ज्ञान-ध्यान करने वाले मुनियो मे से अब हम तृतीय मुनि के पास पहुँचे। अकलक ने अत्यन्त भक्ति-पूर्वक सच्चे हृदय से मुनि को वन्दन किया,* मैंने भी वन्दन किया। फिर अत्यन्त विनयपूर्वक अकलक ने मुनि से वैराग्य का कारण पूछा, तब मुनि ने कहा कि पानी निकालने के एक अरहट्ट (रहँट) यन्त्र को देखकर मुझे वैराग्य हुआ।

अकलंक ने सोचा कि जिस प्रकार प्रथम मुनि को आग को देखकर और दूसरे मुनि को मद्यशाला को देखकर वैराग्य हुआ वैसे ही इस मुनि को रहँट को देखकर वैराग्य हुआ होगा। आनन्दित और स्मित-हास्य से मनोहर दिखने वाले इस महात्मा से इस सम्बन्ध मे विशेष पूछने पर कुछ नवीन तथ्यो की जानकारी प्राप्त होगी, यह सोचकर प्रसन्न-वदन अकलक ने मुनि से पूछा—महाभाग! रहँट से आपको वैराग्य किस प्रकार हुआ। [२०३–२०६]

मुनि बोले – हे नरोत्तम! सुनो, मैंने जिस पानी निकालने के अरहट्ट यन्त्र (रहँट) को देखा, वह पूरे वेग से चल रहा था। वह रात-दिन चलता था। वह सम्पूर्ण एक ही यन्त्र था और उसका नाम भव था। इसको खेचने (चलाने) वाले राग, द्वेष, मनोभाव और मिथ्यादर्शन नामक चार खेडूत साथी थे। इन सब के ऊपर महामोह था, उसी महापुरुष के प्रताप से यह यन्त्र चल रहा था। इस रहँट यन्त्र को चलाने के लिये सोलह कषाय रूपी बैल लगे हुए थे जो बिना घास-पानी के भी चलते थे, फिर भी वहुत बलवान और उद्धत थे, अत्यन्त वेगवान और शीघ्रता से काम करने वाले थे। रहँट पर काम करने वाले हास्य, शोक, भय आदि कुशल सेवक थे और जुगुप्सा, रति, अरति आदि दासिया कार्य-तत्पर थी। इस यन्त्र पर दुष्टयोग और प्रमाद नामक दो बड़े तुम्बे लगे थे। विलास, उल्लास और विब्वोक चेष्टा नामक आरे इस यन्त्र के चक्र में लगे हुए थे। [२०७-२१२]

वहाँ असयत-जीव नामक महाभयंकर अतिगहन-कूप था जो अविरति रूपी जल से भरा था और वह इतना गहरा था कि इसका तल भी दिखाई नही देता था। उस यन्त्र में जीवलोक नामक अत्यन्त विस्तृत और लम्बी घटमाला लगी थी जो पाप और अविरति रूपी पानी से भर-भर कर बाहर आकर खाली होती थी। इस यन्त्र को मरण नामक नौकर बार-बार चलाता था, उस समय पट्टिका-घर्षण से उत्पन्न खट-खट की तेज आवाज को विवेकी पुरुष दूर से ही सुन लेते थे।

[२१३–२१५]

---

* पृष्ठ ६२३

वहाँ कुए से निकले जल को ग्रहण करने वाली 'अज्ञान-मलिन आत्मा' नामक बडी नाली थी। पास ही जल-संचित करने के लिये मिथ्याभिमान नामक सुदृढ कुण्डी थी, जिसमे से सक्लिष्ट-चित्तता नामक छोटी नाली और भोग-लोलुपता नामक अति लम्बी पतली नाली निकल रही थी। यह नाली जन्म-सन्तान नामक खेत और अलग-अलग जन्म रूपी क्यारियो की सिचाई करती थी, जिनमे कर्मप्रकृति नामक बीज वोया जाता था और तज्जीवपरिणाम नामक व्यक्ति यह वुआई कर रहा था। फलस्वरूप सुख-दु:ख आदि धान्य-समूह उत्पन्न होता था। इस सब का कारण तो यह अरहट्ट यन्त्र ही माना जाता था। वहाँ सतत उत्साही असद्वोध नामक सिंचाई करने वाला सर्वदा तैयार ही रहता था जिसे महामोह राजा ने इसी कार्य के लिये नियुक्त कर रखा था। [२१६-२२१]

भद्र अकलक! ऐसी निखिल सामग्री से परिपूर्ण सतत भ्रमोत्पादक * संसार अरहट्ट यन्त्र पर मै लम्वे समय तक सोता हुआ पडा रहा। देखो, सामने ये भाग्यशाली मुनिराज जो ध्यानमग्न है, जो मेरे गुरु कहलाते है, उन्हे मुझ पर दया आई। उन्होने मुझे वहाँ सोया देखा, मेरी समस्त चेतना को गाढ मूर्छित देखा, तब वहुत प्रयत्न पूर्वक इन्होने मुझे प्रतिबोधित किया, जागृत किया। यह भव अरहट्ट कैसा है? इसके यथास्थित रूप का विस्तृत वर्णन किया और कहा—अरे मूर्ख! इस पूरे यत्र का स्वामी तू ही है, इसके फल को भोगने वाला भी नि.सदेह रूप से तू ही है, फिर तू स्वय क्यो इस भव-अरहट्ट को नही जानता? भाई! बराबर समझ, तू अनन्त दु.ख भोग रहा है, भूतकाल मे भोगे है और भविष्य मे भोगेगा। इसका कारण यह भव अरहट्ट ही है यह बात संशय रहित है, अतः तू इसका त्याग कर दे।

मार्गदर्शन कराने वाले इन परोपकारी महात्मा से मैंने पूछा—मैं इस भव अरहट्ट का त्याग कैसे करूं?

महात्मा ने बताया—हे महासत्वशाली! तू दीक्षा ग्रहण कर। जो उत्तम प्राणी भाव से भागवती दीक्षा ग्रहण करते है, उनके सम्बन्ध मे यह भव-अरहट्ट अपने आप ही हीन और नष्ट प्राय. हो जाता है। [२२२-२२९]

मेरे गुरु के उपरोक्त वचन सुनकर मैंने उन्हे भावपूर्वक स्वीकार किया और मैंने दीक्षा ले ली। हे सौम्य! मेरे वैराग्य का यही कारण है। [२३०]

मुनि महाराज के वचन सुनकर अकलक बोला—भगवन्! आपको वैराग्य का कारण तो बहुत अच्छा मिला। ऐसा कौन समझदार व्यक्ति होगा जिसे इस ससार-अरहट्ट चक्र को देख/समझ कर भी ससार से विरक्ति न हो?

इन मुनि महाराज को भक्ति पूर्वक वन्दन कर अकलक और मैं अन्य मुनि महाराज के पास चले गये। [२३१-२३३] 卐

* पृष्ठ ६२४

५. भव-मठ

मैं अकलंक के साथ चौथे साधु के पास गया। वन्दन कर हम नीचे बैठे तब मुझे प्रतिबोधित करने के लिये अकलक ने भाग्यशाली मुनि से वैराग्य का कारण पूछा। [२३४]

मुनि बोले—भद्र अकलक! विभिन्न रूपो वाले हम सभी चट्टा (परिव्राजक) एक बड़े मठ मे आनन्द पूर्वक रहते थे। वहाँ हमारे भक्तो का एक परिवार आया। इस परिवार मे वैसे तो अनेक मनुष्य थे, पर परिवार का सचालन करने वाले मुख्य पाँच व्यक्ति थे। उन्होंने हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया जिससे वे हमे अपने हितेच्छु लगे। हे सौम्य! वास्तव मे तो यह परिवार हमारा शत्रु था, पर हमे ऐसा लगने लगा मानो हमारा प्रेमी हो। इस परिवार ने विद्यार्थियो को आदरपूर्वक विविध प्रकार का भोजन कराया। नये-नये भोजन के लोलुप विद्यार्थियो ने परिवार के आन्तरिक भाव से अनभिज्ञ रहकर डटकर भोजन किया, ठूस-ठूस कर पेट भरा। इस परिवार ने मन्त्रित भोजन बनाया था जिससे उस अतिदारुण अन्न को खाते ही कई परिव्राजक-बटुको को तुरन्त सन्निपात हो गया और कुछ को अपच होकर उन्माद हो गया। इस भोजन से विद्यार्थियो का गला अवरुद्ध हो गया,* जीभ पर काटे-काटे हो गये, श्वास नली गर्र-गर्र बोलने लगी, वे विह्वल हो गये और ऐसा लगने लगा मानो उनकी चेतना नष्ट हो गई हो। कुछ छात्रो का ज्वर की पीडा से शरीर जलने लगा, कुछ को सर्दी लगने लगी और कई चेतना-शून्य होकर जमीन पर लोटने लगे। सन्निपात की तीव्रता से पीडित होकर वे कभी चिल्लाते तो कभी तडफडाते, कभी उनके मुख से झाग निकलते। इस प्रकार मठ के वे छात्र शोचनीय दशा को प्राप्त हो गये। उस भोजन से जो मठ के परिव्राजक और बटुक उन्मादग्रस्त हो गये थे वे पापी देव, गुरु और सघ की निन्दा करने लगे, विपरीत बोलने लगे, और निकृष्ट चेष्टाये करने लगे। जिनकी चेतना ही लुप्त हो गई हो, उनकी कौनसी चेष्टा अच्छी हो सकती है? कुछ इस भोजन के दोष से पशु के समान अधर्मी बने या उसके विष से मूर्ख जैसे हो गये। [२३५–२४६]

यहाँ सामने जो स्वाध्याय-ध्यानमग्न पवित्रात्मा मनिपु गव बैठे हैं, वे विशुद्ध वैद्यकशास्त्र के परम ज्ञाता है। हे भद्र। एक बार मैं मूढात्मा जब मठ के परिव्राजको के मध्य में सन्निपात-ग्रस्त होकर भटक रहा था तब इन महापुरुष ने मुझे देखा। इनको मुझ पर करुणा आई और इन्होने अपनी औषधि के प्रयोग से मेरा सन्निपात

---

* पृष्ठ ६२५

मिटाया, फलस्वरूप मेरी चेतना अधिक स्पष्ट हुई। अन्य विद्यार्थियो की सगति से मुझ मे जो उन्माद था उसे इन महात्मा ने बहुत यत्नपूर्वक मिटाया। जब इन महाभाग्यशाली महात्मा ने देखा कि मेरा मन स्वस्थ हुआ है और मै उनकी बात समझने योग्य हुआ हूँ तब उन्होने मुझे बताया कि सारा मठ ही उन्माद और सन्निपात-ग्रस्त है। मैंने देखा कि सभी छात्र अव्यक्त स्वर से बोल रहे है, प्रलाप कर रहे हैं, ऊंघ रहे है और दु.ख में डूबे हुए है। यह दृश्य देख कर मै अत्यन्त भयभीत हुआ। [२४७–२५२]

मुनि ने कहा—भद्र ! भोजन के दोप से तू भी ऐसा ही था, तेरी भी ऐसी ही दशा थी। देख, तेरे शरीर पर अभी भी अजीर्ण के विकार दिखाई देते है। देख, जैसा करने के लिये मैं तुझे कह रहा हूँ, यदि तू वैसा नही करेगा तो तू फिर से ऐसे ही दु ख मे डूब जायेगा।

मुनि महाराज के उपदेश को सुनकर, उस पर विश्वास कर और मठवास के भय से भयभीत होकर मैंने इस भोजन के अजीर्ण का शोधन करने वाली दीक्षा स्वीकार की। अब ये मुनिपुंगव मुझे जिन-जिन क्रियाओ/अनुष्ठानो को करने के लिये कहते है उन सब को मैं सम्यक् प्रकार से करता हूँ। यही मेरे वैराग्य का कारण है। [२५३–२५६]

मुनिराज की बात सुनकर अकलक ने प्रेम से नेत्र ऊपर उठाये, मुनि को वन्दन किया और अगले मुनि की तरफ जाने लगा। उस समय मैंने अकलक से पूछा—मित्र मुझे तो मुनि की बात समझ मे नही आई, अत. उसके भावार्थ को स्पष्ट रूप से तुम समझाओ। [२५७–२५८]

कथा का रहस्य

अकलक ने कहा—भाई घनवाहन ! मुनि शिरोमणि ने * इस संसार को मठ की उपमा दी है। लोह-शलाका के समान संसार मे प्राणी भिन्न-भिन्न रूप धारण करते है। वे अनेक प्रकार के है और एक-दूसरे से सम्बन्धरहित भी हैं, अत: मठ निवासी साधुओ के समान हैं। इनके कोई माता-पिता, सगे-सम्बन्धी नही है। ये परमार्थ से धनरहित हैं और ये सभी जीव परस्पर सम्बन्धरहित हैं। ससार-मठ मे रहने वाले जीव रूपी परिव्राजक-विद्यार्थियो के पास बन्धहेतु नामक भक्त परिवार आता है। बन्धहेतु तो विचित्र प्रकार के होते है और कई हैं, पर उनमे से मुख्य पाँच हैं। अत बन्धहेतु परिवार के संग्राहक और सचालक मुख्य पाँच व्यक्ति कहे गये हैं :—प्रमाद, योग, मिथ्यात्व, कषाय और अविरति। ये पाँच जीवो के बन्धहेतु हैं। प्राणी पर अनादि काल से मोह राजा का असर इतना अधिक है कि मोहराज और उसका उपर्युक्त परिवार जो वास्तव मे प्राणी के कर्म-बन्ध के हेतु होने से उसके शत्रु हैं, फिर भी उसे हितकारी मित्र जैसे लगते हैं। मठ

* पृष्ठ ६२६

निवासी विद्यार्थियो की तरह यह मन्दबुद्धि प्राणी भी इनके शत्रुता पूर्ण दुष्ट स्वरूप को नही पहचानता। [२५९-२६६]

जिस प्रकार मठ निवासियो को भक्त परिवार ने मन्त्रित भोजन कराया, उसी प्रकार मोह राजा की आज्ञा से इस प्राणी की लोलुपता को बढाने के लिये चित्र-विचित्र भोजन तैयार कराये जाते है। इस भोजन को महामोह स्वय मन्त्रित करते है, जिससे वह ज्ञान को आवृत/आच्छादित कर देता है। इस खाद्य सामग्री को पूर्ववर्णित बन्धहेतु तैयार कर खिलाता है। मोह से अत्यन्त लोलुप जीव मठ निवासियो की भाति इस स्वादिष्ट भोजन को प्राप्त कर अपनी आत्मा को उससे ठूंस-ठूंस कर भर लेता है। उस समय प्राणी को उसके दारुण परिणामो का न तो ज्ञान होता है और न वह उस पर विचार ही करता है। इस कुभोजन के परिणाम-स्वरूप उसे जो अज्ञान होता है, उसी को अनभिग्रह मिथ्यात्व नामक सन्निपात कहा गया है। [२६७-२७०]

यह प्राणी महा अन्धकार रूपी मिथ्याज्ञानमय भाव-सन्निपात के प्रभाव से एकेन्द्रिय अवस्था मे लकड़ी की भाति निश्चेष्ट पडा रहता है। बेइन्द्रिय की अवस्था मे आवाज अव्यक्त होने से गर्र-गर्र करता सुनाई देता है। तेइन्द्रिय की अवस्था मे भूमि पर इधर-उधर लोट-पोट होता रहता है। चार इन्द्रिय की अवस्था मे झणझणारव करता हुआ फडफड़ाता है। असज्ञी पचेन्द्रिय की अवस्था मे पीड़ित होता है। गर्भज पचेन्द्रिय के आकार मे झाग निकालता हुआ तडफता है। अपर्याप्त अवस्था मे अवरुद्ध गले वाला दिखाई देता है। नरक मे अनेक प्रकार के दुःखो एव तीव्र तापो से व्यथित जीभ पर काटे हो गये हो, ऐसा लगता है। नरक में ही अधिक गर्मी और अधिक सर्दी से दु खी होता है। पशु के रूप/आकार मे कुछ सोच-विचार नही कर पाता। मनुष्य का जन्म प्राप्त कर बारम्बार अधिक मोहित होता है। देव अवस्था मे महामोह की निद्रा मे समय खो देता है और सभी अवस्थाओ मे धर्म-चेतनाहीन होकर ही रह जाता है। *

हे सौम्य! मिथ्या ज्ञान का अन्धकार रूपी भयकर सन्निपात जीव को उसके कर्म-भोजन के परिणामस्वरूप ही होता है। [२७१]

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति मे वर्तमान अधिकतर प्राणियो को इस अकल्याणकारी भोजन के परिणामस्वरूप सर्वज्ञ-शासन के विपरीत अभिनिवेश हो जाता है। इस अभिनिवेश के वशीभूत होकर वे राग, द्वेष, मोह से कलुषित को परमात्मा मानते हैं, आत्मा को एकान्त नित्य, क्षणिक, सर्वगत, पचभूतात्मक या श्यामाक धान अथवा तण्डुल जैसा मानते हैं, सृष्टिवाद को स्वीकार करते है और अन्य तत्त्वो को भी उलटा-सुलटा कर देते है। इसी को अभिगृहीत मिथ्यादर्शन रूपी कर्म-भोजन के सामर्थ्य से उत्पन्न उन्माद कहा जाता है। इस उन्माद से ग्रस्त

* पृष्ठ ६२७

व्यक्ति वास्तविक विशुद्ध मार्ग को दूषित करता हुआ प्रलाप करता है। तपोमार्ग को उड़ाने के लिये तपस्या की हसी करता है। स्वेच्छानुसार व्यवहार करने का उपदेश देकर मानो नाचता है। आत्मा, परलोक, पुण्य, पाप आदि कुछ भी नही है, ऐसा कहते हुए मानो कूद रहा है। सर्वज्ञ मत के ज्ञाता पुरुषो से जब पराजित हो जाता है तब रोता दिखाई देता है और अपने तर्क की डण्डी से नगारा बजाते हुए गाता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

हे सौम्य ! इसीलिये जैनेन्द्र मत से विपरीत दृष्टि वाले उन्माद-ग्रह-ग्रस्त लोग नाचते, कूदते, गाते, रोते और खिलखिला कर हसते हैं, ऐसा कहा गया है। ये सभी प्राणी कर्मरूपी विष के प्रभाव को धारण करते है और उनकी धर्म-चेतना नष्ट प्राय. हो जाती है, इसमे तनिक भी सदेह नही है। [२७२–२७३]

इन मुनि ने कहा था कि 'सन्मुख विराजमान मेरे गुरुदेव मुनि-पुगव वैद्यक शास्त्र का प्रगाढ परिश्रमपूर्वक अध्ययन कर निष्णात बने हैं। वे कृपा-परायण होने से उन्होने अपने औषधोपचार से मुझे दारुण सन्निपात के प्रभाव से मुक्त किया।' मुनि का उक्त कथन पूर्णतया घटित होता है। हे सौम्य ! सुन, ये मुनिगण सिद्धान्त रूपी आयुर्वेद का परिश्रमपूर्वक अध्ययन कर, पारगत विद्वान् बनकर ससारस्थ समस्त प्राणियो के स्वरूप को सम्यक् प्रकार से जान लेते है। जब किसी भी व्याधि-ग्रस्त का ये मुनिश्रेष्ठ वैद्यराज निरीक्षण/निदान करते है तब उन्हे प्रतीत होता है कि यह प्राणी कर्म-भोजन द्वारा उत्पन्न सन्निपात से ग्रस्त है। फलस्वरूप ऐसे भाग्य-शाली मुनियो के हृदय मे ऐसे प्राणी पर करुणा उत्पन्न होती है और वे सोचते है कि किस उपाय से इस पामर प्राणी को ससार-क्लेश से मुक्त किया जाय ? इस निदान के फलस्वरूप वे प्राणी मुनिराज की निन्दा करते हैं, उन पर क्रोध करते हैं अथवा उन्हे मारते है, तब भी ये महासत्वशाली उस पर किंचित् भी क्रोधित नही होते। वे सोचते है कि ये बेचारे कर्म-सन्निपात से अत्यन्त पीड़ित हैं, मिथ्यात्व उन्माद से सतप्त है, पाप रूपी विष से मूर्च्छित है, सदा दु.ख के भार से दबे हुए है* और इनकी विशुद्ध धर्म चेतना नष्ट हो गई है। अत परवश होकर यदि ये निन्दा, आक्रोश या मारपीट करे तो उन पर कौनसा विचक्षण व्यक्ति क्रोध करेगा ? करुणारसिक प्राणी दु ख पर डाम नही लगाते, घाव पर नमक नही लगाते/छिडकते। [२७५–२८३]

कर्म से आवृत ये बेचारे प्राणी मात्र दया के पात्र ही नही, वरन् विवेकी प्राणियो को ससार से उद्वेग कराने वाले भी है। सन्निपात और उन्मादग्रस्त ऐसे पागल जीवो को ससार मे भटकते हुए देखकर जिनेन्द्र कथित स्वरूप को समझने वाले व्यक्ति सोचते है कि मनुष्य जन्म प्राप्त करने पर भी ये बेचारे ऐसी स्थिति मे पडे हैं, यह तो बहुत ही बुरी बात है। यह दृश्य देखकर किस विचारशील को इस ससार-कारागृह पर प्रेम हो सकता है। [२८४–२८६]

---

* पृष्ठ ६२८

हे सौम्य ! ऐसी स्थिति मे इन करुणायुक्त चित्त वाले गुरु महाराज ने स्वकीय कर्मरूपी सन्निपात-ग्रस्त इस चौथे मुनि को प्रतिबोधित किया । इन वैद्य-श्रेष्ठ ने एक मठवासी छात्र-तुल्य प्राणी को अपने वचना-मृत औषधि से साधु बना कर स्वस्थ किया, सन्निपात के असर से मुक्त किया । अत. वास्तव मे इन्हे श्रेष्ठ वैद्य ही कहा जा सकता है । [२८७–२८८]

पुन इन मुनि ने कहा था कि, 'मेरे मे उस समय अन्य चट्टो (परिव्राजक-छात्रो) के सहवास से उन्माद था उसे भी इन्होने प्रयत्नपूर्वक मिटाया ।' इसका फलितार्थ यह है कि गुरु महाराज ने पहले तो बोध द्वारा अज्ञानियो के महा पाप-कारक अभिग्राहिक मिथ्यात्व का नाश किया, फिर अन्य तीर्थियो के सहवास से आये हुए उन्माद जैसे अभिनिवेश मिथ्यात्व का क्षय किया । इसके पश्चात् जब प्राणी सम्यक् भाव मे आता है तब गुरु महाराज इस मठ रूपी ससार के विस्तार को समझाते है और बताते हैं कि यह सारा ससार कैसा है । उस समय यह प्राणी देखता है कि जैसे मठ मे विद्यार्थी रहते है, उसी प्रकार ससार मे प्राणी रहते है और कर्म-भोजन के दोष से वे सन्निपात और उन्माद से पीडित होते है । उन्हे दु ख से पीडित रहते, चिल्लाते और नशे मे चूर जैसे देखकर तथा बक-बक करते देखकर यह भयभीत हो जाता है । [२८९–२९४]

फिर इन मुनि ने अपने गुरु महाराज से कहा—हे पूज्यवर ! चारो गति मे ससार-भ्रमण करने वाले सभी प्राणी मुझे दु खी दिखाई देते है, इन्हे देखकर मुझे बहुत उद्वेग होता है ।

इस पर मुनिराज बोले—भद्र ! जैसे ये सभी प्राणी तुझे दु ख-समुद्र मे डूबे हुए और रक्षणरहित दिखाई देते है, तू भी पहले वैसा ही था । तेरे शरीर पर अभी भी कर्म का अजीर्ण दिखाई देता है, उसे जीर्ण करने के लिए मै तुझे जो क्रिया/अनु-ष्ठान बताता हूँ उसे तू कर । यदि तू इस क्रिया को नही करेगा तो पुन इस ससार मे दु खग्रस्त हो जायेगा । [२९५–२९८]

गुरु महाराज के उपर्युक्त वचन सुनकर इस मुनि ने जैनेन्द्र मत की दीक्षा ग्रहण की और गुरुदेव ने जिन सत्क्रियाओ/अनुष्ठानो * को करने के लिए कहा, उन सब को इन्होने भलीभाति पूर्ण किया । अभी भी ये मुनि कर्म-भोजन से हुए अजीर्ण को प्रतिदिन क्षीण करते रहते है । इस प्रकार मुनि ने अपने वैराग्य का कारण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया । [२९९–३००]

भाई घनवाहन ! ऐसा मत समझ कि इस ससार मे कर्म-भोजन के अजीर्ण से पीड़ित मात्र ये साधु ही है । हम सभी ऐसी ही पीडा भोग रहे है । मनुष्य जन्म प्राप्त कर हमारे जैसे प्राणियो को भी इस कर्म-अजीर्ण का शोधन करना चाहिए और ऐसा करने के लिए हमे भी दीक्षा-ग्रहण करनी चाहिए । [३०१–३०२]

---

* पृष्ठ ६२९

हे अगृहीतसकेता ! उस समय भी मै तो कर्मभार से अधिक आच्छादित और भारी हो रहा था, अत. अकलक द्वारा प्रस्तुत विचार मुझे रुचिकर नही लगे। मैंने उसके विचारो की उपेक्षा ही की। [३०३]
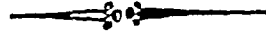
६. चार व्यापारियों की कथा

हे अगृहीतसकेता ! मै उदार चरित्र अकलक के साथ वहाँ बैठे हुए मुनियो मे से पाँचवे मुनि के पास गया। वन्दन कर हम दोनो मुनि के समक्ष बैठे, तब मुनि ने सामान्य प्रकार से उपदेश दिया। इसके पश्चात् अकलक ने मुनि से पूछा—भगवन् ! आप ससार से विरक्त क्यो हुए ? वैराग्य का क्या कारण है ? मै जानना चाहता हूँ। [३०४-३०५]

मुनि—भाई ! सामने जो आचार्यप्रवर बैठे है उन्होने मुझे एक कथा कही, जिसे सुनकर मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ और मैने दीक्षा ग्रहण की। [३०६]

अकलक—महाराज ! ऐसे अनुपम वैराग्य का कारण बनने वाली कथा अवश्य ही अनुग्रह करके मुझे सुनाइये। [३०६]

चार व्यापारियों की कथा

मुनि—अच्छा सुनो। वसन्तपुर नगर मे सार्थवाहो के चार पुत्र रहते थे। ये चारो समवयस्क और समव्यसनी थे। इन चारो मे प्रगाढ मैत्री थी। अन्यदा इन चारो को अनेक आवर्तो, जलचरो और अन्य अनेक सैकडो भयो से व्याप्त समुद्र पार कर व्यापार करने के लिये रत्नद्वीप जाने की इच्छा हुई। इन मित्रो के नाम क्रमश चारु, योग्य, हितज्ञ और मूढ थे और जैसे इनके नाम थे वैसे ही उनमे गुण भी थे। चारो अपने-अपने जहाज लेकर रत्नद्वीप पहुँचे। रत्नद्वीप सब प्रकार के रत्नो की खान था। बिना पुण्य के इस द्वीप मे पहुँचना ही कठिन था। भाग्यवान व्यक्ति ही इस सुन्दर द्वीप मे पहुँच सकते है। इस द्वीप मे पहुँच कर भी बिना परिश्रम के रत्न के ढेर प्राप्त नही होते। भोजन की सामग्री सामने परोसी हुई होने पर भी बिना हाथ हिलाये कौन भोजन कर पाता है ? [३०७-३१२]

रत्नद्वीप मे पहुँच कर चारु ने अन्य सब काम छोड़कर, कुछ शुद्ध मानस-पूर्वक केवल रत्न एकत्रित करने का कार्य किया। वह बहुत विचक्षण था अत.

भिन्न-भिन्न उपायो से लोगो को आकर्षित कर प्रतिदिन नये-नये रत्न एकत्रित करता रहता था। इस दृढ निश्चयी नरोत्तम ने अल्प समय मे ही अपना पूरा जहाज मूल्यवान रत्नों से भर लिया, क्योकि वह स्वय रत्नो के गुण-दोषो का परीक्षक था। उसे उद्यान आदि मे इधर-उधर घूम-फिर कर व्यर्थ समय गवाने मे रुचि नही थी। हे भद्र! रत्न-परीक्षा (ज्ञान) और सदाचार पालन (चारित्र) द्वारा चारु ने रत्नद्वीप मे रहकर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया, अपना स्वार्थ सिद्ध किया।*
[३१३–३१७]

चारु का दूसरा मित्र योग्य था। इसने भी रत्नद्वीप मे रत्न एकत्रित करने की इच्छा से व्यापार प्रारम्भ किया, किन्तु वह उद्यान आदि मे घूम-घूम कर अपना कुतूहल भी शान्त करता था। रत्नो के गुण-दोषो के परीक्षण का ज्ञाता तो था, किन्तु घूमने आदि मे उसकी शक्ति का ह्रास अधिक होता था। वह प्रतिदिन वन, उद्यान, सरोवर आदि पर घूमने जाता था जिससे उसका बहुत सा समय व्यर्थ चला जाता था। चारु के उपालम्भ के भय से वह अन्त करण के आदर बिना बेगार की तरह से कभी-कभी थोड़े रत्न एकत्रित करता था। वहाँ बहुत समय तक रहने पर भी उसने थोडे से अच्छे माणक ही खरीदे थे और अधिकाश समय घूमने-फिरने मे ही विता दिया था। वह रत्नद्वीप मे गया तो व्यापार करने था और इतने दिनो मे बहुत सा व्यापार कर सकता था किन्तु अपने मौज-शौक के कारण उसने अपना अधिकाश समय व्यर्थ गवा दिया। थोडे लाभ के लिये उसने अधिक समय व्यतीत किया। [३१८–३२३]

चारु का तीसरा मित्र हितज्ञ था। इसे रत्नो की परीक्षा का ज्ञान ही नही था। दूसरो के सकेत निर्देश पर ही वह रत्नो को पहचानता था। फिर इसे उद्यान आदि मे घूमने का, चित्रादि देखने का अत्यधिक कुतूहल था जिससे रत्न-व्यापार मे बाधा आती थी। आलस्य और शौक के कारण वह मन लगाकर रत्नो का व्यापार नही कर पाता था। जब उसका व्यापार करने का थोड़ा मन होता तो धूर्त लोग शख, काच के टुकडे, कौडिये आदि ऊपर से चमकीली मामूली वस्तुए उसे रत्न के स्थान पर बेच देते। उसे रत्नो की परीक्षा न होने से वह ठगा जाता और मामूली वस्तुओ को भी रत्न समझ कर खरीद लेता। इस प्रकार हितज्ञ रत्नद्वीप आकर भी प्रमाद और कुतूहल मे पड़कर अपने स्वार्थ को सिद्ध करने मे असमर्थ रहा।
[३२४–३२८]

चारु का चौथा मूढ नामक मित्र तो रत्नो के परीक्षण ज्ञान से पूर्णतया अनभिज्ञ था। अन्य लोगो द्वारा रत्नो के गुण-दोष समझाने पर भी वह मोहग्रस्त मूर्ख उन्हे स्वीकार नही करता था। फिर उसे कमलो के उद्यानो मे, वन-खण्डो मे, बगीचो मे घूमने, चित्र देखने और देवमन्दिरो की शोभा देखने मे अधिक रस आता था, जिससे इन्ही कामो मे उसका अधिकाश समय व्यतीत हो जाता था और

---

* पृष्ठ ६३०

व्यापार के लिये उसे समय ही नही मिलता था। रत्न-परीक्षा से अनभिज्ञ वह वास्तविक अमूल्य रत्नो से तो द्वेष करता था और धूर्तो द्वारा रत्न कहकर बेचे गये शंख, काच के टुकड़े, कौडिया आदि खरीद लेता था। बाग-बगीचो मे घूमने तथा कौतुक देखने में ही वह अपना समय नष्ट करता था। [३२९–३३१]

जब चारु का जहाज रत्नो से भर गया तब उसने वापस लौटने का सोचा और अपने अन्य मित्रो का हाल भी जानना चाहा। सब से पहले वह अपने मित्र योग्य के पास पहुँचा और उसे बताया कि उसका जहाज तो रत्नो से भर चुका है, अत॰ वह अपने देश लौटना चाहता है। उसके क्या हाल है ? क्या वह भी उसके साथ देश मे लौटने को तैयार है ? [३३२–३३३]

योग्य ने बताया कि उसे तो अभी बहुत थोड़े ही रत्न प्राप्त हुए हैं, जहाज अभी तक भरा नही है। जब चारु ने इसका कारण पूछा तब उसने बताया कि उसका बहुत सा समय घूमने-फिरने में बीत गया था। चारु ने समझाया—मित्र ! बाग-बगीचे देखने का शौक ठीक नही है।* यहाँ आकर भी यदि रत्न एकत्रित नही किये तो अपने आपको ठगना ही हुआ। तेरे जैसे के लिये यह बात योग्य नही है। मित्र ! तू जानता है कि रत्न सुख के कारण है और उन्हे प्राप्त करने के लिये ही हम यहाँ आये है, तदपि उस लक्ष्य की उपेक्षा करना या उस तरफ पूरा ध्यान न देना तो आत्मशत्रुता ही है। यह तो अपने हाथो अपने पाव पर कुल्हाडी मारने जैसा हुआ। तू इतने दिनो बाग-बगीचो मे घूमा उससे तेरा पेट तो नही भरा ना ? तब बुद्धिमानी तो इसी मे है कि जिससे अपना स्वार्थ सिद्ध हो वही कार्य पहले किया जाय, क्योकि अपने स्वार्थ का नाश करना तो मूर्खता है। क्या तुझे लज्जा नही आती कि तू जिस काम के लिए यहाँ आया था उसे छोडकर अन्य कामो मे व्यर्थ ही अपना समय खो रहा है ? भाई ! अब मेरे कहने से इस मौज-शौक को छोड़कर सतत प्रयत्न पूर्वक रत्न एकत्रित करने मे लग जा। यदि तू मेरा कहना नही मानेगा तो मै तुझे यही छोडकर देश लौट जाऊंगा, क्योकि मेरा प्रयोजन तो सिद्ध हो चुका है। जैसा तूने अभी तक समय खोया वैसा ही भविष्य मे भी खोता रहेगा तो अपने स्वार्थ से भ्रष्ट होगा और दु.खी होगा। [३३४–३४१]

चारु के उपर्युक्त वचनो मे योग्य अपने मन मे बहुत लज्जित हुआ और उसने अपने मित्र को विश्वास दिलाया कि अब वह उसके कहे अनुसार ही करेगा, अन्य कोई कार्य नही करेगा। वह थोड़े दिन और रुक जाय और उसे भी अपने साथ ही लेकर देश लौटे। चारु के स्वीकार करने पर योग्य ने मौज-शौक को छोडकर अपना सारा समय रत्न एकत्रित करने मे लगा दिया। [३४२–३४४]

अब चारु अपने दूसरे मित्र हितज्ञ के पास आया। उससे भी उसने वही बात कही कि उसका जहाज तो रत्नो से भर चुका है इसलिये वह देश लौटना

* पृष्ठ ६३१

चाहता है, उसके क्या हाल है ? चारु की बात सुनकर हितज्ञ ने घबराते हुए आज तक जो कुछ एकत्रित किया था उसे चारु को बतलाया। चारु ने देखा कि हितज्ञ ने मात्र शंख, कांच के टुकड़े और कौड़िये इकट्ठी कर रखी है। जब चारु ने उससे पूछा कि इतने दिनो तक वह क्या कर रहा था ? तब हितज्ञ ने आज तक किस प्रकार वह घूमने-फिरने मे अपना समय व्यतीत कर रहा था, वह सब कुछ बताया। सुनकर कृपालु चारु ने समझाया—मित्र हितज्ञ ! पापी धूर्तो ने तुझे ठग लिया है। तुझे रत्नों का परीक्षण ज्ञान न होने से, तुझे मूर्ख समझ कर उन पापियो ने उसका लाभ उठाया है। तू बहुत भोला है। तू यहाँ रत्नद्वीप मे व्यापारी बनकर रत्नो का व्यापार करने आया है, मौज-शौक करने नही आया है। सच्चे व्यापारी को ऐसे खोटे शौक नही करने चाहिये। [३४५–३४६]

चारु के उपर्युक्त वचन सुनकर हितज्ञ ने विचार किया कि, अहो ! चारु की बात कितनी अच्छी है, इसका मेरे प्रति कितना स्नेह है। मेरा हित कहाँ है और अहित कहाँ है, वह सब कुछ भली प्रकार जानता है। अतः इसी से पूछ लूँ कि अब मुझे क्या करना चाहिये ? यह सोचकर उसने पूछा—मित्रवत्सल चारु ! अब मैं अपना समय बाग-बगीचे देखने, चित्र देखने और मौज-शौक मे थोडा भी नही विताऊगा। अब मुझ पर कृपा कर रत्नो के गुण-दोष अच्छी तरह बतला दो ताकि मुझे भी रत्नपरीक्षा आ जाय। फिर मै तुम्हारे निर्देशानुसार काच, शख आदि न खरीद कर सच्चे रत्न ही खरीदूंगा और अपने जहाज को रत्नो से भर कर तुम्हारे साथ ही देश चलूंगा, अत· हे नरोत्तम ! थोडे दिन आप और ठहर जावे। [३५०–३५४]

चारु ने* सोचा कि योग्य की भाति हितज्ञ भी सच्चे उपदेश से अपने नाम को सार्थक करेगा। यह सोचकर चारु ने हितज्ञ को रत्न-परीक्षा सिखाई और केवल सच्चे रत्न ही खरीदने के बारे मे उसे प्रयत्नपूर्वक समझाया। चारु के उपदेश से उसने मौज-शौक मे व्यर्थ समय गवाना बन्द कर दिया। अपने पास के पहले इकट्ठे किये काँच, शख आदि का त्याग किया और एकाग्रता से मात्र अमूल्य रत्न एकत्रित करने मे लग गया। अब हितज्ञ व्यापार-कुशल बन गया था और स्वय रत्नो की परीक्षा कर खरीदने लग गया था। [३५५–३५८]

इसके पश्चात् चारु अपने तीसरे मित्र मूढ के पास गया और आदरपूर्वक उसे अपने स्वदेश लौटने के विचारो से अवगत किया। मूढ बोला—भाई चारु ! तू अभी देश लौटकर क्या करेगा ? इस द्वीप की रमणीयता को क्या तुम नही देख रहे हो ! इसे चारो तरफ घूम-फिर कर अच्छी तरह देखो। इसका तट कितना रमणीय है। चारो तरफ कमल वन हैं, ऊचे-ऊचे मकान है, सुन्दर उद्यान हैं, बड़े-वडे सरोवर हैं। ये सब इस द्वीप की शोभा को द्विगुणित करते हैं। यहाँ कितने आराम और क्रीडा के स्थल हैं जो पुष्पो से भरे हुए वनखण्डो से आवेष्टित है। यहाँ

* पृष्ठ ६३२

अधिक समय तक सुखोपभोग कर फिर जब इच्छा होगी तब स्वदेश लौट जायेंगे। मैंने भी अपना जहाज माल से भर लिया है ।

फिर मूढ ने अपने जहाज मे भरा हुआ माल चारु को दिखाया । चारु ने देखा कि मूढ ने अपने जहाज मे सिर्फ कौड़िये, शख और काच के टुकडे भर रखे है । यह देखकर प्रशस्त मन वाला चारु सोचने लगा कि यह बेचारा मूढ तो सचमुच मूर्ख ही है । यहाँ आकर यह मौज-शौक में मग्न हो गया है और इसके अज्ञान का लाभ उठाकर धूर्तों ने इसको अच्छी तरह ठग लिया है । यदि अब भी यह सावधान हो जाय तो अच्छा है, अत व्यापार के सच्चे मार्ग की जानकारी हेतु इसको शिक्षा प्रदान करू ।

यह सोचकर श्रेष्ठ बुद्धि वाले चारु ने कहा—मित्र बाग-बगीचो मे घूमना और चित्र देखना हमारे योग्य नही है । हम यहाँ रत्नो का व्यापार करने आये है, उसमे यह मौज-शौक तो विघ्नकारक है । यह तो अपने आप को ठगना है । मित्र ! मुझे लगता है कि पापी धूर्तों ने तुझे अच्छी तरह ठगा है । जो चमकते काच के टुकडे है, उन्हे रत्न कह कर तुझे बेच दिया है । भाई ! ये सब कचरा तूने खरीद लिया है, व्यर्थ की वस्तुए तूने खरीद ली हैं, इनसे तुझे कोई लाभ नही होगा । अत: अब तू इन्हे छोड और मूल्यवान सच्चे रत्न एकत्रित कर । रत्नो की पहचान मैं तुझे बताता हूँ । [३५६-३६६]

चारु मूढ को रत्नो की परीक्षा बताने को उद्यत हुआ तभी मूढ एकाएक आवेश मे आ गया और बोला—जाओ ! मुझे तुम्हारे साथ नही आना है । तुम जिस काम मे लगे हो उसी को करते रहो । मित्र ! तू तो वैसा का वैसा ही रहा । यहाँ आकर भी वैसी ही बाते करता है । मैं यहाँ छैल-छबीला बन कर घूम रहा हूँ तो तू मेरा तिरस्कार कर रहा है और चला है मुझे रत्न परीक्षा बताने । जैसे मुझे रत्नो की परीक्षा आती ही न हो । मेरे रत्न-सचय को कचरा बता रहा है । भले ही मेरे रत्नो मे चमक कम हो, पर मुझे तेरे बताये रत्न नही चाहिये । [३७०-३७३]

चारु ने मूढ के उपर्युक्त कथन का उत्तर देने के लिए जैसे ही मुह * खोला वैसे ही मूढ फिर बोलने लगा— मित्र ! मुझे न तो तेरे रत्न चाहिए और न ही तेरे जैसे रत्न चाहिए । मेरा काम उनके बिना भी चल जायगा । मुझे तुम्हारी सलाह, शिक्षा या उपदेश की किंचित् भी आवश्यकता नही है । चुपचाप अपना रास्ता नापो ।

यह सुनकर चारु ने अपने मन मे विचार किया कि इस मूढ को शिक्षा देने का कोई उपाय मुझे तो नही सूझता; क्योकि यह मेरी तो बात ही नही सुनता और अपनी ही ढपली बजाये जा रहा है । [३७४-३७६]

इधर योग्य और हितज्ञ ने चारु के उपदेश के अनुसार कार्य किया और अल्प समय मे उन दोनो ने भी अपने जहाज मूल्यवान् रत्नो से भर लिये । चारु

* पृष्ठ ६३३

इन दोनो के साथ स्वदेश लौटा। मूढ को इन्होंने वही छोड दिया। तीनो मित्रो ने स्वदेश मे पहुँच कर अपने-अपने रत्न बेचे जिससे उनको अपार लक्ष्मी प्राप्त हुई और वे आनन्द से परिपूर्ण होकर सुख से रहने लगे। [३७७–३७९]

मूढ रत्नद्वीप मे मौज-शौक ही करता रहा, उसने रत्न एकत्रित नही किये। परिणामस्वरूप वह निर्धन हो गया और अनेक प्रकार से दु.खी होने लगा। वहाँ के किसी क्रोधी राजा ने उसके दुर्व्यवहार से क्रोधित होकर उसे रत्नद्वीप से बाहर निकाल कर भयकर जल-जन्तुओ से भरे हुए और भयानक लहरो से त्रास देने वाले आदि-अन्त-रहित अदृष्टतल वाले समुद्र मे फैंक दिया। [३८०–३८१]

सौम्य अकलंक! मेरे पूज्य आचार्यदेव ने मुझे उपर्युक्त कथा कही, जिसे सुनकर मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ। यही मेरे वैराग्य का कारण है। [३८२]

अकलक कथा का भावार्थ/रहस्य भली प्रकार समझ गया था जिससे उसका मुख-कमल विकसित हो गया। इन मुनि को नमस्कार कर अकलक अन्य मुनि के पास जाने लगा। [३८३]

मैंने कहा—मित्र अकलक! तुमने तो मुनिराज से वैराग्य का कारण पूछा जिसके उत्तर मे मुनि ने उपर्युक्त कथा सुनाई। मुझे तो इस कथा से वैराग्य का कोई सम्बन्ध ही प्रतीत नही होता। यह कथा तो असम्बद्ध-सी लगती है। मुझे तो तो इस कथा का भावार्थ कुछ भी समझ मे नही आया। [३८४]

कथा का उपनय

अकलंक बोला—भद्र घनवाहन! मुनिराज ने कोई असबद्ध बात नही की। इस कथा मे बहुत गूढ रहस्य छिपा हुआ है, ध्यानपूर्वक सुन।

कथा के वसन्तपुर नगर को असव्यवहार जीवराशि समझना चाहिये। सुन्दरतम, सुन्दरतर, सुन्दर और निकृष्ट चार प्रकार के विकास क्रम के अनुसार ससारी जीवो को यथार्थ नामधारक चार व्यापारी चारु, योग्य, हितज्ञ और मूढ समझना चाहिये। ससार के विस्तार को समुद्र समझ। समुद्र की भाति ससार मे भी जन्म जरा, मरण रूपी पानी रहता है। जैसे अतिगम्भीर समुद्र को पार करना कठिन है वैसे ही अतिगहन मिथ्यादर्शन और अविरति के कारण ससार को पार करना कठिन है। जैसे समुद्र मे चार बडे पाताल कलश है, वैसे ही ससार विस्तार मे भी चार महा भयकर कषाय रूपी पाताल कलश है। जैसे समुद्र की ऊची-ऊची दुर्लंघ्य लहरे महा भयकर लगती हैं वैसे ही ससार मे महामोह की लहरें बहुत भयकर होती है। समुद्र मे बडे-बडे जलजन्तु रहते हैं वैसे ही यह ससार अनेक प्रकार के दु ख रूपी जन्तुओ से भरा है। समुद्र मे जैसे तीव्र गति के पवन से समुद्र क्षुब्ध होता रहता है वैसे ही ससार मे रागद्वेष रूपी तेज पवन से निरन्तर क्षोभ उत्पन्न होता रहता है। समुद्र उफनते हुए पानी से प्रत्येक क्षण चपल रहता है वैसे ही यह ससार भी सयोग-वियोग रूपी उफानो से सदा चचल रहता है। समुद्र ज्वार से आकुल रहता है वैसे ही ससार अनेक प्रकार के मनोरथ रूपी ज्वार से निरन्तर व्याकुल रहता है। जैसे

समुद्र का आदि-अन्त नही दिखाई देता वैसे ही संसार के विस्तार का भी कोई आदि-अन्त दिखाई नही देता ।

इस ससार-समुद्र मे मनुष्य जन्म की प्राप्ति रत्नद्वीप मे पहुँचने के समान है । बाग-बगीचो मे घूमने का कुतूहल पाँचो इन्द्रियो के विषयो को भोगने की अभिलाषा के समान है । सर्वज्ञ प्ररूपित विशुद्ध धर्म के विपरीत प्रवृत्ति करने वाले कुधर्मो को शख, कोडिये और काँच के टुकडो के समान समझना चाहिये । रत्नद्वीप के धूर्तो के समान ही ससार में कुधर्म का प्रचार करने वाले कुतीर्थियो को समझना चाहिये । जीव के स्वरूप को जहाज और मोक्ष को स्वदेश आगमन/स्वस्थानगमन के समान समझना चाहिये; क्योकि वही आत्मा का वास्तविक स्वस्थान है ।* मूढ पर क्रोधित होने वाले राजा को स्वकर्मपरिणाम राजा समझ और उसे समुद्र मे फेकने को ससार का अनन्त भव-भ्रमण समझ ।

भाई घनवाहन ! यदि तू उपर्युक्त उपमाओ को ध्यान मे रखकर पुन: इस कथा पर विचार करेगा तो तुझे इसका गूढार्थ समझ मे आ जायेगा । फिर भी तुझे विशेष रूप से समझाने के लिये मैं विस्तार से इसका स्पष्टीकरण करता हूँ, सुन–[३८५]

जिस प्रकार चारु वसंतपुर नगर से निकल कर समुद्र को पार कर रत्नद्वीप पहुँचा । यहाँ आकर कृत्रिम और अकृत्रिम रत्नो की पहचान की । बाग-बगीचो मे जाकर मौज-शौक मे समय बर्बाद नही किया । धूर्त लोगो को पहचान गया । बनावटी रत्नो का क्रय नही किया । विशिष्ट और महर्घ्य रत्नो को क्रय करने का व्यापार किया । अल्प समय मे ही अमूल्य रत्नो का सग्रह किया । रत्नद्वीप के विशिष्ट लोगो मे अपना स्थान बनाया । अपने जहाज को रत्नो से भर लिया और अपने स्वार्थ/प्रयोजन को सिद्ध किया वैसे ही चारु की भाति इस ससार मे जो सुदरतम भव्य जीव है वे असव्यवहार जीव राशि मे से निकल कर इस विस्तृत अनन्त ससार-समुद्र को पार कर रत्नद्वीप जैसे मनुष्य भव को प्राप्त करते हैं । मनुष्य जन्म मे लघुकर्मी होकर रत्न परीक्षक के समान वे त्याज्य और ग्रहणीय को जानते हैं । ऐसे प्राणी विचार करते है कि मनुष्य जन्म प्राप्त करना अति दुर्लभ है । यह मनुष्य जन्म सचमुच रत्नो की खान है । सत्य, अनन्त सुख और निर्वाण प्राप्ति का यह साधन है । मनुष्य जन्म जैसे उत्तम स्थान को प्राप्त कर विष से भी भयकर फलो को प्रदान करने वाले इन्द्रिय-विषय रूपी मौज-शौक मे उसे खोना अयोग्य है । ऐसे सुन्दरतम प्राणी सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म-मार्ग को बिना किसी के उपदेश के स्वयं प्राप्त कर लेते हैं । वे कुतीर्थिक रूपी ठगो से नही ठगे जाते । कुधर्म ग्रहण नही करते और स्वयं परीक्षा कर सच्चे रत्न रूपी साधु-धर्म रूपी अमूल्य रत्नो का ही व्यापार करते हैं । वे सर्वदा क्षमा, नम्रता, सरलता निर्लोभता, तप, सयम, सत्य, शौच, मूर्च्छात्याग/

* पृष्ठ ६३४

परिग्रह-त्याग, ब्रह्मचर्य, सन्तोप, प्रशम आदि गुण-रत्नो को प्रतिपल एकत्रित करते रहते है। वे सद्गुरु, सुसाधु और स्वधर्मी भाइयो को अपनी तरफ आर्कषित करते है। वे सद्गुणो से अपनी आत्मा रूपी जहाज को परिपूर्ण करते है और वास्तव मे आत्महित साधन का कार्य निष्पादन करते हैं।

जैसे योग्य ने रत्नद्वीप मे जाकर रत्नो के गुण-दोषो का परीक्षण किया, रत्न खरीदने के लिए छोटा-सा व्यापार भी किया, किंतु उद्यानो मे घूमने-फिरने के मौज-शौक के चक्कर मे अपना अधिकाश समय नष्ट किया। फलस्वरूप रत्नद्वीप में अधिक समय तक रहने पर भी वह विशिष्ट रत्नो का सञ्चय नही कर सका। वैसे ही हे भद्र घनवाहन ! योग्य के समान सुन्दरतर (मध्यम) जीवो मे भव्यता तो होती है, पर वे धीरे-धीरे मनुष्य भव प्राप्त करते है। वे लघुकर्मी होने से गुण-अवगुण की परीक्षा कर सकते है और सर्वज्ञ-दर्शन को प्राप्त कर श्रावक के योग्य कुछ-कुछ गुण-रत्नो (अणुव्रतों) को ग्रहण करने का व्यापार करते है। वे दुर्जेय लोभ को नही जीत सकते। उनकी इन्द्रियाँ अधिक चपल होती है, अत. वे धन और इन्द्रिय-विषयो मे वार-वार आर्कषित होते रहते है। धन और विषयो पर ममत्व होने के कारण* उनका बहुत-सा समय व्यर्थ चला जाता है और बहुत थोडे समय के लिए वे रत्न-व्यापार कर पाते है। जो रत्न एकत्रित करते है वे भी श्रावक के योग्य साधारण कीमत के अणुव्रत रूपी गुणव्रत इकट्ठे कर पाते हैं। वे साधुधर्म से प्राप्त होने वाले महामूल्यवान गुण-रत्नो (महाव्रतो) को एकत्रित नही कर पाते।

जैसे हितज्ञ रत्नद्वीप पहुँच कर भी स्वय रत्न-परीक्षक न होने के कारण, दूसरो से शिक्षण/उपदेश प्राप्त करके भी रत्न ग्रहण करने की ओर ध्यान नही दे सका और मौज-शौक मे ही समय नष्ट करता रहा। धूर्तो को पहचान नही सका। फलस्वरूप चमकते हुए काच के टुकडो को अमूल्य रत्न समझ कर सग्रह करता रहा और चारु के उपदेश से पूर्व स्वय को छलता रहा। वैसे ही हे भद्र घनवाहन ! हितज्ञ के समान सुन्दर (सामान्य) जीवो मे भी भव्यता तो होती है, पर उन्हे मनुष्य जन्म की प्राप्ति वहुत कठिनाई से होती है। किंचित् गुरुकर्मी होने से उन्हे धर्म के गुण-दोषो की परीक्षा नही होती। वे दूसरो के उपदेश की अपेक्षा रखते है। इन्द्रिय-विषयो और धन मे अत्यन्त लुब्ध होने से वे सर्वज्ञ-प्ररूपित विशुद्ध धर्मरत्न को प्राप्त करने मे असमर्थ रहते हैं। कुतीर्थिको द्वारा बिछाये जाल और उनकी ठग-विद्या को वे नही समझ पाते। शाति, दया, इन्द्रिय-निग्रह आदि अमूल्य रत्नो को वे मूल्यहीन मानते है। अपने दम्भ-प्रधान अज्ञान के कारण बाहर से चमकते हुए नकली रत्न जैसे कुधर्म के अनुष्ठानो को धर्म-बुद्धि से करते है और उन्ही को सुन्दर तथा लाभ-दायक मानते है। चारु जैसे सद्गुरु के उपदेश के पहले वे सचमुच अपने आप को ठगते रहते है।

---

* पृष्ठ ६३५

जैसे मूढ रत्नद्वीप तो पहुँचा किन्तु वह स्वय रत्न-परीक्षा-ज्ञान से शून्य होने पर भी दूसरो की शिक्षा को भी अग्राह्य समझता था, मौज-मस्ती मे ही सारा समय बर्बाद करता था, अमूल्य रत्नों का तिरस्कार करता था, काच के टुकड़ो को महर्घ्य रत्न समझता था, धूर्तो ने उसे अच्छी तरह से छला था और वह स्वय अपने को ठगता रहता था वैसे ही हे भद्र घनवाहन ! मूढ जैसे निकृष्ट जीव किसी प्रकार रत्नद्वीप रूपी मनुष्य भव को प्राप्त करके भी स्वय अभव्य या दुर्भव्य होने से तथा गुरुतर/भारी कर्मी होने से न तो स्वय धर्म के गुण-दोष की परीक्षा कर सकते हैं और न ही किसी चारु जैसे सद्गुरु के उपदेश को सुनने का ही उन्हे अवकाश होता है। पाँचो इन्द्रियो के विषयों मे तथा धन के संचय और रक्षण मे वे अत्यन्त लुब्धता से प्रवृत्ति करते है। शाति, दया आदि शुद्ध अनुष्ठान रूपी गुणरत्नो के प्रति वे द्वेष करते है और स्नान, होम, यज्ञ आदि जीवघातक तथा जीवसतापक पापकारी अनुष्ठानो के प्रति धर्म-बुद्धि रखते है। ऐसे कुअनुष्ठानो का वे स्वय तत्त्वबुद्धि से आचरण करते है। इस प्रकार कुतीर्थिको द्वारा ऐसे निकृष्ट प्राणियो का धर्मधन चुराया जाता है और वे स्वय को अनेक प्रकार से ठगते रहते है।
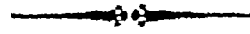
७. रत्नद्वीप कथा का गूढार्थ

अकलक ने रत्नद्वीप कथा का विस्तृत विवेचन करते हुए कहा—जैसे चारु ने अपना जहाज मूल्यवान रत्नो से भर कर स्वदेश जाने की इच्छा से अपने मित्र योग्य के पास जाकर कहा कि, मित्र ! अब मै स्वदेश जाना चाहता हूँ, क्या तुम भी साथ ही चल रहे हो ? इस पर योग्य ने कहा था कि, मेरा जहाज अभी तक भरा नही है। मै थोडे मे ही रत्नो का संग्रह कर पाया हूँ। यह सुनकर जब चारु ने इसका कारण पूछा तो * उत्तर देते हुए योग्य ने कहा कि, इस व्यवसाय मे मेरी मौज-मस्ती ही बाधक बनी है। इसी प्रकार हे भद्र घनवाहन ! चारु जैसे महात्मा मुनिराज अपनी आत्मा को तप, संयम, शांति, संतोष, ज्ञान-दर्शन आदि मूल्यवान् भाव-रत्नो से भरकर जब मोक्ष रूपी स्वस्थान मे जाने की इच्छा प्रकट करते है, उस

---

* पृष्ठ १३६

समय योग्य जैसे देशविरतिधारक श्रावको को मोक्ष का निमन्त्रण देते हुए उन्हे उपदेश देते हैं। उत्तर में श्रावक कहते हैं कि अभी उनमे इतने गुण-रत्न एकत्रित नही हुए हैं कि वे स्वस्थान जा सके। योग्य जैसे गुणो के प्रति रुचि रखने वाले प्राणियों को चारु जैसे साधु पुरुष कहते हैं कि यद्यपि यह मनुष्य जन्म ऐसा है कि इसमे सद्गुण एकत्रित करने का कार्य सरलता से हो सकता है और ऐसा करना प्राणी के स्वाधीन हैं, तथापि आपने हमारी भाति सम्पूर्ण गुणरत्नो को एकत्रित नही किया, इसका क्या कारण है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में श्रावक बताते है कि इन्द्रिय-विषयो का व्यसन और धन के प्रति ममत्व ही सम्पूर्ण गुण-रत्नो को एकत्रित करने मे विघ्नभूत बने हैं।

जैसे चारु ने योग्य को कहा था—भद्र ! रत्नद्वीप मे आकर भी काननादि कुतूहलो मे समय गवाना उचित नही है। यह कुतूहल विशिष्ट रत्नो को ग्रहण करने में न केवल महाविघ्नकारी बना है अपितु आत्मवंचना का कारण भी बना है। तुम जानते हो कि यहाँ के अमूल्य रत्न सुख के कारण हैं तदपि उनका अनादर करके तुम आत्म-शत्रु क्यो बनते हो ? तुम यह भी जानते हो कि लम्बे समय तक मौज-मस्ती मारने पर इसकी पूर्ति/तृप्ति कभी नहीं हुई, अत. तुम्हे स्व-अर्थ की साधना मे ही प्रवृत्त होना चाहिये। अन्यथा तुम्हारा रत्नद्वीप आगमन निरर्थक ही सिद्ध होगा। अतएव हे मित्र ! कौतुको का त्याग कर मेरे सान्निध्य मे महर्घ्य रत्नो का उपार्जन कर, अन्यथा तू स्वार्थ/लक्ष्य भ्रष्ट हो जायेगा।

चारु की हितशिक्षा सुनकर योग्य अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने अपनी भूल स्वीकार की और भविष्य मे मौज-शौक मे समय न खोकर, रत्नद्वीप मे रहते हुए मात्र रत्न एकत्रित करने का ही कार्य करने का आश्वासन दिया और शीघ्र ही अपना जहाज सच्चे रत्नो से भर लिया। वैसे ही भद्र घनवाहन ! मुनिपुंगव भी देशविरति श्रावको को हित-शिक्षा देते है :—

सज्जनो ! तुम्हे मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है तुमने जिन-वचनामृत रस का आस्वादन किया है। ससार की असारता और निरर्थकता तुम्हे ज्ञात है। शरीर मल-कीचड़ से भरा हुआ है, तारुण्य सध्याकालीन बादलो की भाति क्षण-क्षण मे नष्ट होने वाला है, जीवन ग्रीष्म-तप्त पक्षी के गले जैसा चञ्चल है और स्वजनवर्ग का स्नेह-विलास थोडे समय में स्वत. ही नष्ट होता अपनी आँखो से देख रहे हो। ऐसी अवस्था मे धन और इन्द्रिय-विषयो पर ममत्व कैसे उचित कहा जा सकता है ? यह तो स्पष्टत· अपने आप को ठगना हुआ। ज्ञान आदि विशिष्ट रत्नो की प्राप्ति मे तो इस ममत्व से विघ्न ही होता है। भद्रो ! तुम लोग जानते हो कि इन्द्रिय विषयो के फल वहुत भयकर और मन को उद्वेलित करने वाले है। स्त्रिया चञ्चल-हृदया होती हैं। स्त्रियाँ चिर सुख का स्थान भी नही है और वे आर्त्त-रौद्र ध्यान का कारण भी है। तुम्हे यह भी ज्ञात है कि ज्ञान सुगति मार्ग का प्रदीप है, अत्यन्त

मानसिक आह्लाद का कारण है और बुरी योनियों में गिरते हुए प्राणियो का हस्तावलम्ब है। दर्शन मन को अतिशय प्रमुदित करने वाला, महा क्षेमकारी और मोक्ष मे निक्षेप/स्थापन कराने वाला है। चारित्र हृदय को प्रफुल्लित करने वाला, निरन्तर आनन्दोत्सव कराने वाला है और * जीव-वस्त्र पर अनादि-काल से लगे मैल को स्वच्छ करने वाले शुद्ध जल के समान है। तप सर्व सगरहित बनाता है और असयुक्त (अनागत) कर्म-मैल को रोकने वाला है। सयम भवभ्रमण के भय को दूर करने वाला और भविष्य के हर्ष का कारण है। हे भव्यजनो! यह सब जानते हुए भी यह तुम्हारी कैसी अविद्या, कैसा मोह, कैसा आत्मवचन और कैसी आत्म-शत्रुता है कि विषयो मे अत्यन्त मुग्ध बनते हो, स्त्रियो पर मोहित हो, धन पर लुब्ध होते हो, सम्बन्धियो के प्रति प्रगाढ स्नेह रखते हो, तरुणाई पर फूले नही समाते हो और अपना रूप देख-देख कर हर्षित होते हो। तुम्हे अनुकूल प्रसग प्राप्त होने पर प्रसन्न होते हो, हितकारी उपदेश देने वाले पर क्रोधित होते हो, गुणो से द्वेष करते हो और हमारे जैसे सहायक के साथ होने पर भी सन्मार्ग से भागते हो। सासारिक सुखो से हृष्ट होते हो, ज्ञान का अभ्यास नही करते हो, दर्शन का आदर नही करते हो, चारित्र का पालन नही करते हो, सयमित नही होते हो और तप आदि के द्वारा आत्मा को गुण-पुन्जो का पात्र नही बनाते हो।

हे भविकजनों! यह तुम्हारी कितनी बड़ी भूल है! कैसा प्रमाद और कैसी आत्म-वचना है! तुम्हारी यह प्रवृत्ति कितनी अधिक हानिप्रद है! जब तक तुम्हारी ऐसी प्रवृत्ति रहेगी तब तक हे भद्रो! तुम्हारा मनुष्य-जन्म निरर्थक है। हमारे जैसो का सान्निध्य भी निष्फल है। तुम्हे यह अभिमान है कि तुम उपर्युक्त सभी बातो के जानकार हो, यह भी निष्प्रयोजन है। तुम्हे भगवान् के दर्शन की प्राप्ति हुई है, पर उससे भी तुम्हे कोई लाभ नही है। तुम्हारी प्रवृत्तियो से तुम्हारे अपने ही हाथो अपने स्वार्थ का नाश हो रहा है, इसका कारण तुम्हारा अज्ञान ही है। तुमने इन विषयो का लम्बे समय तक सेवन किया है, फिर भी तुम्हे न तो सन्तुष्टि/तृप्ति हुई है, न होने की है, फलतः तुम्हारे जैसो का इनमे आसक्त होकर बैठे रहना उचित नही है। अतः अब भी विषयासक्ति का त्याग करो, स्वजनो के प्रति ममता को छोडो, धन-सग्रह और घर-गृहस्थी की झूठी ममता/व्यसन का परिहार करो, सब ससारी कचरे को फैंक दो, भागवती दीक्षा ग्रहण करो और सत्य, ज्ञान आदि गुणो का संचय करो। हम जब तक तुम्हारे पास है तब तक अपनी आत्मा को गुणो से भर दो और अपने पारमार्थिक स्वार्थ को सिद्ध कर लो। यदि तुम ऐसा नही करोगे तो हमारी हितशिक्षाओ के अभाव मे सद्बुद्धि-रहित होकर तुम अपने स्वार्थ से भ्रष्ट हो जाओगे।

[चारु ने योग्य को जो उपदेश दिया उसे सुसाधु के वचनामृत तुल्य समझना चाहिये।]

---

* पृष्ठ ६३७

सन्मुनियो के उपालम्भ पूर्ण उपदेश रूपी वचनामृत सुनकर योग्य की ही भाति देशविरतिधर श्रावक भी अपनी प्रवृत्ति के लिए लज्जित होते है, सच्चे-झूठे उत्तर नही देते और मन मे झूठा अभिनिवेश नही रखते । परन्तु साधु के वचनो को अपने हित के लिये स्वीकार करते हैं, उनका आदर करते है और यथोक्त विधान के अनुसार भगवत्प्ररूपित महाव्रतो को स्वीकार कर अपने आत्मा रूपी जहाज को गुण-रत्नो से भर लेते है ।

जैसे चारु ने हितज्ञ के पास जाकर स्वय के साथ स्वदेश लौटने को आमत्रित किया, उस पर हितज्ञ ने स्वोपार्जित धन-राशि चारु को दिखाई । चारु ने जब उसके जहाज मे भरे हुए रत्नो के स्थान पर शख, कौडे और काच के टुकडे देखे तब उसका कारण पूछा । हितज्ञ ने मौज-शौक को इसका कारण बताया । वैसे ही हे भद्र घनवाहन ! मिथ्यादृष्टि भव्य प्राणियो की भद्रता को देखकर सम्पूर्ण गुणोपेत सुसाधु उन्हे सद्धर्म-उपदेश * देने को तत्पर होते हैं । इस कथन को चारु हितज्ञ के पास गया—के तुल्य समझे ।

तदनन्तर ये साधु उन भद्रक भव्य मिथ्यादृष्टि प्राणियो को अपने धर्मोपदेश द्वारा मोक्ष का आमन्त्रण देते है । उत्तर मे वे भव्य मिथ्यादृष्टि कहते हैं—हम भी तो धर्मानुष्ठान करते है, नित्य स्नान करते है, अग्निहोत्र प्रज्वलित रखते है, तिल और समिधा द्वारा होम करते हैं, गाय, भूमि और सोने का दान देते हैं, कुए, तालाव और बावडी खुदवाते है, कन्यादान करते हैं । ऐसा कहने वाले प्राणियो ने शख, कौडे और काच के टुकडे इकट्ठे कर रखे है, ऐसा समझना चाहिये ।

ऐसे मिथ्यादृष्टि प्राणी सुसाधुओ से निवेदन करते हैं- भो—भट्टारक ! हम सुख से रहते है क्योकि माँस खाते है, मद्य पीते है, सरस स्वादिष्ट बत्तीस प्रकार का भोजन करते हैं, तैतीस प्रकार की सब्जी खाते है, सुन्दर स्त्रियो के साथ विलास करते है, सुकोमल निर्मल मूल्यवान वस्त्र पहनते है, पाच सुगन्धित युक्त पान खाते है, विविध पुष्पमालाये धारण करते है, विलेपन करते है, धन का ढेर इकट्ठा करते हैं और हमारी इच्छानुसार क्रीडा करते हुए विचरण करते है । शत्रु की गन्ध भी सहन नही करते, स्वकीय कीर्ति को चारो दिशाओ मे फैलाते है, अपनी काति और व्यवहार को मनुष्यभूमि के देवता के सदृश बनाते हैं और मनुष्य जन्म मे जो कुछ सार रूप है, उन सब का स्वय अनुभव करते है । इस सब को हितज्ञ के बाग-बगीचो मे घूमने के समान समझना चाहिये ।

हितज्ञ के मुख से स्वचेष्टित कथन सुनकर जैसे कृपापूरित हृदय से चारु ने हितज्ञ को कहा—'मित्र ! तू पापी धूर्त लोगो से ठगा गया है । तू स्वय अनभिज्ञ होने से रत्नो के गुण-दोषो का परीक्षण करने मे असमर्थ है । तू रत्नद्वीप रत्नो का व्यापार करने के लिये आया है अतः काननादि घूमने और मौज-मस्ती का व्यसन

---

* पृष्ठ ६३८

तो तुझे रखना ही नही चाहिये। इस व्यसन से परमार्थत. तू ठगा जाकर मुख्य लक्ष्य से भ्रष्ट ही होगा।'

चारु का मैत्री और सौजन्य पूर्ण हितकारी कथन सुनकर और चारु को विज्ञ रत्नपरीक्षक मानकर हितज्ञ ने उसकी शिक्षा को सहर्ष स्वीकार किया। मौज-शौक का त्याग कर व्यापार करने का दृढ निश्चय किया और रत्न परीक्षा सीखने-की कामना से चारु का शिष्यत्व भाव स्वीकार करने की मनोवांछा प्रकट की। चारु भी हितज्ञ के व्यवहार से प्रसन्न हुआ और उसने हितज्ञ को रत्न-लक्षण का सम्यक् प्रकार से शिक्षण प्रदान किया। शिक्षण प्राप्त कर हितज्ञ रत्नो के गुण-दोषो का विचक्षण परीक्षक वन गया। तत्पश्चात् हितज्ञ सगृहीत कृत्रिम रत्नो का परिहार कर, विशिष्ट रत्नो का सग्रह करने मे दत्तचित्त हो गया।

हे भद्र घनवाहन ! इसी प्रकार मुनिसत्तम भी करुणापूरित मानस से भद्रक भव्य मिथ्यादृष्टि प्राणियो को इस प्रकार हितशिक्षा पूर्ण धर्मदेशना देते हैं—

हे भद्रो ! यह सत्य है कि तुम धार्मिक हो, अपनी वुद्धि से सच्चा समझ कर ही धर्म करते हो, पर सच्चा धर्म किसमें है, उसकी विशेषता अभी तुम्हे ज्ञात नही है क्योकि तुम बहुत भोले हो। तुम्हे कुधर्मशास्त्रकारो ने ठगा है। हिंसा के कार्यो से कभी धर्म-साधना नही होती। सब प्राणियो पर दया करने को ही भगवान् ने विशुद्ध धर्म कहा है। होम यज्ञ आदि तो इसके विरुद्ध है। इस प्रकार धर्मबुद्धि से अधर्म-सेवन उचित नही है, फिर तुम्हारा यह कहना कि तुम * मास-मदिरा का सेवन कर सुखी हो, यह भी तुम्हारे अज्ञान को ही प्रकट करता है। विवेकशील पुरुष तो तुम्हारी बात सुनकर हँसे बिना नही रह सकते। शरीर विविध पीड़ाओ से व्याप्त है, विभिन्न रोगो से भरा है, वृद्धावस्था शीघ्रता से आने वाली है, राज्य-दण्ड का भय है जिससे शरीर और मन सतप्त रहता है। तरुणाई टेढी-मेढी चाल से बीत जाने वाली है। सम्पत्तिया सभी प्रकार के दु.ख उत्पन्न करने वाली है। स्नेहियो का वियोग मन को दग्ध कर देता है। अप्रिय सयोगो से मन व्याकुल होता है। मृत्यु-भय प्रतिदिन निकट आ रहा है, शरीर अपवित्र पदार्थों का भण्डार है। नि.सार विषय वासनाए पुद्गलो के परिणाम को प्रकट करती है। सारा ससार असख्य दु खो से भरा हुआ है, इसमे प्राणी को सुख कहाँ ? सुख का प्रश्न ही नही उठता। परमार्थ से यह सब एकान्त दु ख है, पर तुम्हे उसमे सुख का झूठा भ्रम होता है। यह भ्रम तुम्हारे कर्मों के फलस्वरूप होता है और यही ससार-भ्रमण का कारण है। अत हे भद्रो ! अति कठिनाई से प्राप्त ऐसा सुन्दर मनुष्य जन्म तुम्हे मिला है। धर्म करने योग्य सामग्री और अनुकूलता भी तुम्हे प्राप्त हुई है। हमारा उपदेश भी तुम्हे मिलता रहता है। गुण प्राप्त करना तुम्हारे हाथ मे है। ज्ञानादि मोक्ष का मार्ग स्पष्ट है। जीव का वस्तु स्वभाव अनन्त आनन्द है। जीव को अपने

* पृष्ठ ६३६

वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति ही मोक्ष है और उसकी प्राप्ति बोध, श्रद्धा और अनुष्ठान (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) से होती है। यह सब कुछ जानते हुए भी तुम अपने आपको ठगते हो और महर्घ्य रत्नो की परीक्षा कर उन्हे एकत्रित नही करते हो तो फिर तुम्हारा इस मनुष्य जन्म रूपी रत्नद्वीप मे आना व्यर्थ नही तो और क्या है?

मुनिश्रेष्ठ के उपर्युक्त वचन सुनकर हितज्ञ जैसे भद्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव सोचते हैं कि भगवत्स्वरूप मुनिराजो का मेरे प्रति प्रेम है, वात्सल्य है। इनका ज्ञान अतिशय अगाध है और इनका कथन हृदयवेधी/असर कारक है। उपदेश के परिणामस्वरूप उनके मन मे उच्च शुभ भावना उत्पन्न होती है और अभी तक धन-प्राप्ति और विषय भोग के प्रति जो आसक्ति थी वह कम होने लगती है। फिर वे मुनियो से सच्चा धर्म-मार्ग पूछते हैं, शिष्यभाव धारण कर विनयादि से गुरु का मन प्रसन्न करते हैं। तब गुरु महाराज उन्हे गृहस्थोचित एव साधुओ के योग्य देशविरति और पूर्ण निवृत्ति का धर्म-मार्ग बताते हैं तथा उसे विशिष्ट यत्न पूर्वक प्राप्त करने का उपाय बताते हुए कहते हैं :—

भद्रो ! यदि तुम्हारी इच्छा है कि तुम्हे विशुद्ध सद्धर्म/आत्म-धर्म की प्राप्ति हो तो सब से पहले तुम्हे इन कर्त्तव्यो का पालन करना चाहिये—तुम्हे दयालुता का सेवन/व्यवहार करना चाहिये, किसी का भी तिरस्कार नही करना चाहिये, क्रोध का त्याग कर दुर्जनो की सगति छोड़ देनी चाहिये और झूठ बोलने का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। दूसरो के गुणो का गुणानुरागी बनना, चोरी न करना, मिथ्याभिमान का त्याग करना, परस्त्री-सेवन का त्याग करना, धन, ऋद्धि अथवा ज्ञान प्राप्ति से फूलना नही चाहिये और दु खी प्राणियो को दु.ख से मुक्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। पूजनीय गुरुओ की पूजन-भक्ति, देवो का वन्दन, सम्बन्धियो का सम्मान और स्नेहियो की आशा-पूर्ति का प्रयत्न करना चाहिये। मित्रो का अनुसरण करना, अन्य का दोष-दर्शन और निन्दा न करना, दूसरो के गुणो को ग्रहण करना, और अपने गुणो की प्रशंसा मे लज्जा का अनुभव करना चाहिये।* अपने छोटे से सुकृत्य का भी पुन -पुन अनुमोदन करना और परोपकार के लिये यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिये। महापुरुषो से आगे होकर बातचीत करना, दूसरो के मर्म को प्रकट नही करना, धर्म-युक्त व्यक्तियो का अनुमोदन/समर्थन करना, सुवेष/सादी वेशभूषा धारण करना और शुद्ध आचरण का पालन करना चाहिये। इस प्रकार की प्रवृत्ति से तुम्हे सर्वज्ञ प्ररूपित शुद्ध धर्म के अनुष्ठान की योग्यता प्राप्त होगी।

गृहस्थ-धर्म/श्रावकाचार धारक जनो को अकल्याणकारी मित्रो (मोहादि अन्तरग शत्रुओ) का सम्बन्ध छोड देना चाहिये। कल्याणकारी मित्रो (चारित्र धर्मराजा आदि आन्तरिक मित्रो) से मित्रता बढानी चाहिये। अपनी उचित स्थिति

---

* पृष्ठ ६४०

और मर्यादा का उल्लघन नही करना चाहिये। लोक व्यवहार की अपेक्षा रखनी चाहिये। गुरु और बड़े लोगो को मान देना और उनकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करना चाहिये। दानादि सद्गुणो मे विशेष प्रवृत्ति, भगवान् और देव की उदार पूजा, साधु महात्माओ की निरन्तर शोध और उनका सयोग मिलने पर विधिपूर्वक धर्मशास्त्र का श्रवण करना चाहिये। यत्नपूर्वक शास्त्रो की पर्यालोचना करते हुए उनके अर्थ/रहस्य को समझ कर उसे जीवन मे उतारना, धैर्य धारण करना, भविष्य का विचार करना और मृत्यु को सदा अपने सम्मुख समझना चाहिये। परलोक-साधन मे तत्परता, गुरुजनो की सेवा, योगपट्ट का दर्शन, योग के रूप को अपने मन मे स्थापित करना, धारणा को स्थिर करना, किसी भी प्रकार के आन्तरिक विक्षेप का त्याग करना, और मन वचन काया के योगो की शुद्धि का प्रयत्न करना चाहिये, भगवान् के मन्दिर-मूर्तियो को तैयार करवाना चाहिये। तीर्थंकरो के वचनो/शास्त्रो को लिखवाना, मगल जप/नमस्कार मत्र का जाप करना, चार शरण को स्वीकार करना और अपने दुष्कृत्यो की निन्दा करनी चाहिये। अपने सत्कृत्यो की बार-बार अनुमोदना करना, मत्र-देवो की पूजा करना, पूर्व पुरुषो के प्रशस्त चरित्रो को पुनः-पुन श्रवण करना, उदारता रखना और उत्तम ज्ञान मे प्रतिपल रमण करना चाहिये। इस प्रकार की प्रवृत्ति से तुम मे साधुधर्म के अनुष्ठानो को करने की योग्यता प्राप्त होगी।

इसके पश्चात् बाह्य और अन्तरग सग का त्याग करने से और दूसरो द्वारा प्राप्त आहार पर तुम्हारा जीवन आधारित होने से तुम भाव-मुनि बनोगे। फिर तुम्हे प्रतिदिन सूत्र और उसके अर्थ को ग्रहण करने की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। मन मे वस्तु तत्त्व को समझने की जिज्ञासा उत्पन्न होनी चाहिये। अपने और दूसरो के शास्त्रो का अध्ययन करना, परोपकार के कार्यो मे सदा तत्पर रहना, पर-पक्ष के आशय को भली प्रकार समझना, अपने नाम को सार्थक करने वाले गुरु के साथ सच्चा सम्बन्ध कैसे स्थापित हो इसकी शोध करना, गुरु का भली-भाति विनय करना और सभी अनुष्ठानो की विधियो को करने के लिये तत्पर रहना चाहिये। सात मण्डलि (सूत्र, अर्थ, भोजन, कालग्रहण, आवश्यक, स्वाध्याय और सथारा) मे पूर्ण प्रयत्न करना, आसन-स्थापनाचार्य और छोटे-बडे साधुओ का जो क्रम शास्त्रो मे बताया गया है उसका बराबर पालन करना चाहिये। साधु के योग्य उचित अशन (भोजन) क्रिया का पालन करना, विकथा आदि विक्षेपो का सर्वथा त्याग करना, सभी क्रियाओ मे भावपूर्वक उपयोग/विवेक रखना और सूत्रार्थ श्रवण की विधि को सीखना चाहिये। बोध-परिणति का आचरण करना सम्यक् ज्ञान मे स्थिरता का प्रयत्न करना और मन को स्थिर करना चाहिये। ज्ञान-प्राप्ति का अभिमान नही करना चाहिये। ज्ञानहीनो का मजाक नही उडाना, विवाद का त्याग करना, समझ रहित व्यक्ति की बुद्धि का पृथक्करण करने के प्रयास का त्याग करना अथवा अनपढ और पढे हुओ के प्रति व्यवहार मे किसी प्रकार का भेद-भाव नही करना चाहिये। कुपात्र मनुष्य को शास्त्र का अभ्यास नही कराना चाहिये। इस प्रकार की प्रवृत्ति से तुम्हे ऐसी योग्यता प्राप्त होगी कि गुणानुरागी लोग तुम्हारा बहुमान

करेगे, शाति रूपी लक्ष्मी स्वत: ही प्राप्त होगी और तुम भाव-सम्पत्तियो के आश्रय-स्थान बन जाओगे ।

जब तुम्हारी आन्तरिक वास्तविक योग्यता उपर्युक्त प्रकार की हो जायेगी तब गुरु महाराज की तुम पर कृपा होगी और वे प्रसन्न होकर तुम्हे * सिद्धान्त का सार बतायेंगे । फिर तुम में श्रवणेच्छा, श्रवण, ग्रहण, धारणा, ऊहा (सामान्य ज्ञान), अपोह (अर्थ-विज्ञान), विचारणा और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति, ये आठ प्रज्ञा गुण प्रस्फुटित होगे । तत्पश्चात् तुम्हे आसेवना, प्रत्युपेक्षणा, प्रमार्जन, भिक्षाचर्या आदि की विधि भी अपनी आत्मा के साथ एकमेक करनी होगी । इर्यापथिकी दोषो का प्रतिक्रमण करना, आलोचना लेना, निर्दोष भोजन-विधि सीखना, विधिपूर्वक पात्र स्वच्छ करना, आगमानुसार मल-विसर्जन विधि तथा स्थडिल भूमि का बराबर निरीक्षण करना होगा । तदनन्तर तुम्हे समस्त उपाधि-रहित होकर षड् आवश्यक (प्रतिक्रमण) करना, आगमानुसार काल-ग्रहण, पाच प्रकार का स्वाध्याय, प्रतिदिन की क्रिया मे सावधानी, पाच प्रकार के आचार का पालन, चरण-करण की सेवना और अगागीभाव से आत्मा को अप्रमादी बनाते हुए अति उग्र विहार करना चाहिये । ऐसी प्रवृत्ति से अस्खलित मोक्ष मे पहुँच जाने वाले गुण-समूहो की तुम्हे प्राप्ति होगी ।

इस प्रकार भगवत्स्वरूप सन्मुनि उन्हे सद्गुणो के उपार्जन का मार्ग बताते है । मुनि के उपर्युक्त उपदेश से जो अभी तक मिथ्यादृष्टि किन्तु स्वय भद्र एव भविष्य मे हितसाधन की योग्यता वाले भव्य प्राणी है वे सावधान हो जाते है, भावरत्न (सच्चे धर्म) के परीक्षक बनते है, कुधर्मों का त्याग करते है और सद्गुणो के उपार्जन मे लग जाते है । फिर स्वय ही गुरु से कहते है :—

भट्टारक ! हम तो अभी तक महान विपत्तियो के हेतु विषयभोगो से बहुत ही अधिक ठगे गये है । धूर्त स्वरूप कुतीर्थिको ने हमे बहुत भ्रमित किया है, पर अब हमे ज्ञात हो गया है कि इन सबका कारण हमारा मोह दोष ही था । अब आपने वात्सल्य भाव से कृपा कर हमे विशुद्ध मार्ग बताया है, अत हे स्वामिन् ! अब हम आपके पूर्वोक्त कथनानुसार ही सब कुछ करेगे । इस प्रकार के भव्य प्राणियो पर साधुओ की मधुर वाणी का अच्छा प्रभाव होता है और वे उसके अनुसार चलने का निर्णय लेते हैं, जिससे अन्त मे वे अपने सच्चे स्व-अर्थ को सिद्ध करने मे समर्थ होते है । [३८६–३८८]

तत्पश्चात् जैसा कि पूर्व मे कहा जा चुका है कि चारु अपने तीसरे मित्र मूढ के पास गया और प्रेमपूर्वक स्वदेश लौटने को कहा । इस पर मूढ ने उसे कहा—'मित्र ! स्वदेश जाकर क्या करेगे ? अभी तो यहाँ, दर्शनीय कई स्थान है जिन्हे अभी देखना है । यह रत्नद्वीप रमणीयतम स्थान है । देख, देख ! यह द्वीप चारो ओर से

* पृष्ठ ६४१

पद्म-खण्डो/ कमल वनो से सुशोभित है, आकर्षक उद्यान है, सरोवरों से मडित है, कमनीय विहार स्थल है, सुगन्धित पुष्पो और वनराजियो से स्पृहणीय हो रहा है और श्रेष्ठ लोगो का अभिलषणीय स्थान है। अत यहाँ अधिक समय तक सुख का उपभोग करने के पश्चात् स्वस्थान की ओर चलेगे। मुझे तो यहाँ से जाना ही अच्छा नही लगता। वैसे मैंने भी तेरे समान माल से जहाज भर लिया है।

यह कह कर मूढ ने काच के टुकडो से भरा हुआ जहाज चारु को दिखाया। काच के टुकडो को देखकर चारु को मूढ पर दया आती है और वह उसे हित शिक्षा देते हुए कहता है—मित्र! काननादि कौतुको मे और मौजमस्ती मे समय नष्ट कर तूने अच्छा नही किया। रत्न के भ्रम से कुरत्नो/काच के टुकडो का तूने सग्रह किया है, अत तू इन कुरत्नो का त्याग कर और इन सुरत्नो को ग्रहण करने का प्रयत्न कर। मित्र! * सुरत्नो के लक्षण ये है। इस प्रकार चारु ज्यो ही रत्नो के लक्षण बताने लगा त्यो ही मूढ क्रोधावेश मे आकर बोला—

मैं नही जाऊगा। तुम्हे जाना हो तो तुम जाओ। तुम्हे जो कार्य करना हो, करो। तुम जैसा चाहते हो वैसा नही होगा। तुम मेरे देदीप्यमान रत्नो को काच के टुकडे बताते हो। मुझे तुम्हारे सुरत्नो से कोई लेना देना नही। इस प्रकार मूढ ने कृपापूर्वक हितशिक्षा-दान देने को उद्यत चारु का मुह-तोड जवाब देकर उसको तिरस्कृत किया।

मूढ के इस व्यवहार से चारु ने विचारपूर्वक निश्चय किया कि यह मूढ हितशिक्षा देने योग्य नही है।

इसी प्रकार भद्र घनवाहन! चारु के तुल्य भगवत्स्वरूप मुनिगण जब मूढ जैसे दुर्भव्य या अभव्य प्राणियो को धर्मोपदेश देने के लिये तत्पर होते है, उनके समीप जाते है और उन्हे विशुद्ध धर्म का उपदेश देकर मोक्षगमन के लिये आमन्त्रित करते है तब ऐसे मूढ-सदृश प्राणी गुरु महाराज से कहते हैं :—

अरे साधुओ! हमे तुम्हारा मोक्ष नही चाहिये। तुम भी उस मोक्ष मे जाकर क्या करोगे? देखो, तुम्हारे मोक्ष मे न खाना है, न पीना है। न कोई भोग विलास है और न कोई ऐश्वर्य। वहाँ न तो दिव्य देवागनाओ का संयोग है और न ही कमनीय कमलाक्षियो के कटाक्ष। वहाँ किसी प्रकार का प्रेम-सभाषण, नाच, गाना, हँसना, खेलना कुछ भी तो नही है। हन्त! इसे मोक्ष कहते है? यह तो बन्धन हुआ। [३८९-३९०]

देखिये, हमारा यह ससार का विस्तार तो हमारे चित्त को अत्यन्त आनन्दित करने वाला है, हमे तो अत्यन्त रमणीय लगता है। ससार मे हमे खूब खाना-पीना, धन, सम्पत्ति, विलास, आभूषण मिलते है और कमलाक्षी स्त्रियो के साथ इच्छित आनन्द भोगने को मिलते है। हम स्वेच्छानुसार आचरण करते हैं, नाचते

* पृष्ठ ६४२

है, गाते है, विलोपन करते है और सब प्रकार के सुख साधन हमे यहाँ प्राप्त है। हे श्रमणो ! ऐसे सुख सामग्री से परिपूर्ण ससार को छोडकर मोक्ष मे जाने का तुम्हारा विचार हमे तो ठीक नही लगता। छोडो मोक्ष की बात को। हमे तो ससार की तुलना मे मोक्ष मे अधिक सुख नही लगता। पहले यहाँ के प्राप्त सुख को भोग ले, फिर मोक्ष जाने की सोचेगे। [३६१–३६५]

साधुओ ! जो सद्धर्म तुम्हारे मन मे स्थित है वह तो हमे भी ज्ञात है। तुम धर्म का गर्व क्यो करते हो ? देखो, हम भी अनेक पाडे, बकरे और सूअरो को मारकर उनके खून से चडिका का तर्पण करते है। गोमेध, अश्वमेघ और नरमेघ यज्ञ करते है। अनेक बकरो की यज्ञ मे आहुति देते है। अनेक प्राणियो का मर्दन कर चारो प्रकार के यज्ञ करते है। बेचारे अनेक पशुओ को उस बुरी योनि से निकाल कर उन्हे समस्त दु खो से मुक्त करते है। हमारी पापऋद्धि से हम दिन-प्रतिदिन जीवो को मार-मार कर यज्ञ स्थान को मास से भर देते है, * फिर अपनी इच्छानुसार उसका दान कर देते है। इस प्रकार हम नित्य ही अपने धर्मकृत्य द्वारा अपने कर्त्तव्य का पालन कर स्वय को कृतकृत्य समझते है, अतएव तुम्हारे द्वारा बताये गये धर्म की हम बात भी नही करते। [३९६–४०१]

मूढ जैसे अभव्य प्राणियो द्वारा आचार्य महाराज को ऐसा उत्तर देने पर भी उन शान्त-मूर्ति धैर्यशाली मुनियो को इन पर अधिक दया आती है और उन्हे प्रतिवोध देकर मार्ग पर लाने के विचार से वे पुनः कहते है :—

भद्रो ! ससार को बढाने वाले ऐसे झूठे भ्रम मे फँसे रहना उचित नही है। तुम विपरीत मार्ग पर जा रहे हो। तुमने जिन इन्द्रिय-भोगो की बात कही इनका परिणाम तो सर्प-दश की भांति भयकर है। इनका अन्त बहुत कटु है। वे पाप से आच्छन्न और महा भयकर क्लेश-वर्धक है। तुम स्त्रियो मे आसक्त रहते हो, पर वास्तव मे तो वे प्राय अकार्यकर्त्री होती हैं और स्वभाव से माया की छाब ही है। उनके विलास, नाच, गायन और चाल सभी विडम्बना मात्र ही है। भाइयो ! मोक्ष तो अनन्त आनन्द से परिपूर्ण है और वह आनन्द सर्वदा बना रहता है। जीवो की आत्म-व्यवस्था/आत्म-स्वरूप सभी प्रकार के क्लेशो से रहित है। अत. मनुष्य जन्म को प्राप्त कर खाने-पीने और विलास मे डूबे रहकर आत्म-प्रवञ्चना करना तुम्हारे जैसे व्यक्तियो के योग्य नही है। थोड़े दिनो तक टिकने वाले इन्द्रिय-भोगो मे आसक्त रहकर, मोक्ष के राजमार्ग को छोडकर तुम अनन्त ससार के फन्दे मे मत फसो। धर्म के अनुष्ठान करने की बुद्धि से अन्य जीवो को मारने का पाप कर रहे हो, यह तो ससार को बढाने वाला है। अतः ऐसे कुशास्त्रो के दुराग्रह मे फसकर ऐसा पाप का काम मत करो। पाप-दोषो का नाश करने वाले अहिंसा धर्म मे प्रवृत्ति करो। [४०२–४१०]

---

* पृष्ठ ६४३

मुनिराज द्वारा शान्ति से कहे गये उपर्युक्त उपदेशामृत को सुनकर मूढ जैसे पापी प्राणी क्रोधित हो जाते है और क्रोध के आवेश मे ही मुनि से कहते है—अरे साधुओ ! हमे शिक्षा देने की और अपनी चतुराई बताने की कोई आवश्यकता नही है। जैसे आये हो वैसे ही उलटे पैरो वापस लौट जाओ। अरे पापिष्ठो ! तुम भोगो की इतनी निन्दा करते हो और हमारे माने हुए धर्म की बुराई करते हो, अतः सचमुच तुम हमारे शत्रु हो। तुम्हे तो सीधे यम के द्वार पहुँचाना चाहिये। हमारा ऐसा सुन्दर विशुद्ध धर्म तुम्हे प्रिय नही है तो हे अधमपुरुषो ! हमे भी तुम्हारे धर्म की कोई आवश्यकता नही है। हे श्रमणाधमो ! तुम अपने लोगो को तुम्हारा सद्-धर्म बतलाओ, हमे तुम्हारे धर्म से कोई प्रयोजन नही है। [४११-४१५]

मूढ प्राणियो के क्रोधित होकर उपर्युक्त उत्तर देने पर साधुओ को उन पर और अधिक दया आती है। वे एक बार और उन्हे सद्धर्म के लक्षण बताने का प्रयत्न करते है। मुनिराज द्वारा पुन धर्म के लक्षण बताने को उद्यत होने पर मूढ प्राणी आँखे लाल कर, क्रोध से होठ दबाकर लात मारने और धक्का-मुक्की करने को तैयार हो जाते है और एक दो लात तो मार ही देते है। मूढ की ऐसी चेष्टाओ को देखकर शान्त मुनि अपने मन मे निश्चय करते है कि, यह प्राणी किसी भी प्रकार सन्मार्ग पर नही आ सकता, अतः वे ऐसे प्राणी के प्रति उपेक्षा धारण करते है।* यह निश्चय हो जाने पर कि अमुक गाय वन्ध्या है तब फिर उससे दूध प्राप्ति का प्रयत्न व्यर्थ ही है। [४१६-४१९]

अन्तिम निष्कर्ष

जैसे पूर्व-कथित चारु के उपदेश को योग्य और हितज्ञ ने अंगीकार कर तदनुसार आचरण/व्यापार किया, विशिष्ट अमूल्य रत्नो का क्रय कर सग्रह किया, रत्नो से अपने-अपने जहाजो को भरा और चारु के साथ स्वदेश/स्वस्थान को गये। स्वस्थान मे पहुँच कर ये तीनो रत्नो का व्यापार कर सततानन्द के भाजन बने। मूढ के दुर्व्यवहार से कुपित होकर रत्नद्वीप के भूपति ने उसे रत्नद्वीप से निष्कासित कर समुद्र में फिकवा दिया जिससे वह मूढ अनन्त दु.ख-पीडाओ का भाजन बना। वैसे ही भाई घनवाहन ! देशविरतिधारक श्रावक (योग्य) और भद्र प्रकृति वाले भव्य मिथ्यादृष्टि (हितज्ञ) जैसे प्राणी जब मुनिराज (चारु) का उपदेश सुनते है तब उसके अनुसार आचरण करने लगते है और अन्त मे सर्वज्ञ प्ररूपित पाँच महाव्रतो को स्वीकार करते है, जिससे उनमे ज्ञानादि गुणो की वृद्धि होती है। धीरे-धीरे उनकी आत्मा ऐसे गुणरत्नो से परिपूर्ण हो जाती है और अन्त मे परमपद (मोक्ष) को प्राप्त कर निरन्तर सतत अनन्त आनन्द-समूह के पात्र बनते है। क्योकि, वहाँ उन्हे आत्मा मे एकत्रित ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी रत्नो का ही व्यापार करना होता है। मूढ जैसे प्राणी जब पाप से पूरे भर जाते है तब

* पृष्ठ ६४४

कर्मपरिणाम राजा अत्यन्त कुपित होता है और उसे मनुष्य जन्म रूपी रत्नद्वीप से निकाल कर ससारसागर मे निरन्तर दुःख सहने के लिये फेंक देता है।

हे घनवाहन ! उपर्युक्त चार व्यापारियो की कथा के गूढार्थ को समझ कर ही पाचवे मुनि ने ससार का त्याग कर दीक्षा ग्रहण की। कथा मे सच्ची घटना और रूपक को बहुत ही सुन्दरता से प्रतिपादित किया है। इसके रहस्य का चिन्तन कर्म को काटने वाला है। कौन सा बुद्धिमान भव्य पुरुष ऐसा होगा जो इस कथा के गूढार्थ को समझ कर मुनित्व को स्वीकार नही करेगा ? रत्नद्वीप जैसे मनुष्य भव को प्राप्त कर अपने आत्मा रूपी जहाज को गुणरत्नो से नही भरेगा और अन्त मे मोक्ष को प्राप्त करना नही चाहेगा ? [४२०-४२२]

[इस कथा के विचार मात्र से प्राणी ससार से भयभीत हो जाता है और धर्म मे अनुरक्त हो जाता है। अब तो तुझे मुनि द्वारा कही गई कथा का भावार्थ समझ मे आ गया होगा।]

हे अगृहीतसकेता ! उस समय मेरी कर्म-स्थिति भी कुछ जीर्ण हुई थी, जिससे मेरे मन मे भी कुछ भद्र भाव जागृत हुए और अकलक की बात मुझे किंचित् सुखकारी और मधुर लगी। फिर भी मैं चुप ही रहा, कुछ भी उत्तर नही दिया।

८. संसार-बाजार (प्रथम चक्र)

मेरे मित्र अकलक के साथ मैं (घनवाहन के भव मे संसारी जीव) छठे मुनिराज के पास गया। हमने मुनिराज का वन्दन किया और उन्होने हमे धर्मलाभ कहा। अकलक ने मुनिराज से वैराग्य का कारण पूछा, इस पर मुनिराज ने कहा— भाई अकलक ! आदि-अन्त रहित ससृति नामक एक नगरी है। उस नगरी मे स्थित बाजार ही मेरे वैराग्य का कारण बना है। [४२३]

अकलक ने विचार किया कि जैसा तीसरे मुनि ने अपने वैराग्य का कारण अरहट चक्र को बतलाया वैसा ही यह बाजार भी होगा। फिर भी उसने मुनि से पूछ ही लिया—भगवन् ! इस बाजार से आपको कैसे वैराग्य हुआ ? स्पष्ट करने की कृपा करें। [४२४-४२५]

उत्तर मे मुनि बोले—भाग्यवान ! सामने जो ध्यानमग्न मुनि महाराज बैठे है, उन्होने अनेक जन्मो को उत्पन्न करने वाले इस बाजार को मुझे बतलाया।* इस बाजार मे बहुत लम्बी-लम्बी भव रूपी श्रेणिया है। दुकाने सुख-दु.ख नामक किराणे से भरी हुई है। इसमे खरीद-बिक्री मे व्यस्त अनेक जीव रूपी व्यापारी किराणा एकत्रित करने और अपने स्वार्थ मे तत्पर आकुल-व्याकुल दिखाई दे रहे हैं। वहाँ निम्न, मध्यम और उत्कृष्ट पुण्य-पाप रूपी मूल्य देकर स्वानुरूप वस्तुए खरीदी जा सकती हैं। अनेक पुण्यहीन गरीब जीवो से यह बाजार भरा हुआ है, सर्वदा खुला रहता है और व्यापार चलता रहता है। इस ससृति नगरी का बलाधिकृत/सेनापति महामोह है, जिसके अधीन काम क्रोध आदि अधिकारी है। वहाँ कर्म नामक रौद्र ऋण दाता और जीव कर्ज लेने वाले है। इस कर्जदाता से कोई नही बचा सकता। ये लेनदारो को ऐसी अति दारुण जेल मे डाल देते हैं जहाँ से छुटकारा ही न हो सके। वहाँ कषाय नामक दुर्दान्त मदोन्मत्त बच्चे लोगो को उद्वेलित करते हुए कलकल करते रहते हैं। यह बाजार अनेक आश्चर्यजनक नवीनताओ से युक्त है। निरन्तर आकुल-व्याकुल और जागृत रहने वाला इसके समान दूसरा कोई बाजार ससार मे नही है। [४२६-४३४]

सूक्ष्म निरीक्षण करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि इस बाजार मे रहने वाले सभी प्राणी अन्दर से अत्यन्त दु खी है। हे भाग्यशाली ! सन्मुख ध्यानस्थ बैठे मेरे गुरु महाराज ने कृपापूर्वक उस समय मेरी आँखो मे ज्ञानाजन लगाया, जिससे मेरी दृष्टि अत्यन्त निर्मल हो गई और दुकानो के अन्त मे एक मठ जैसा शिवालय दूर से मुझे दिखाई दिया। सद्बुद्धि-दृष्टि से इस शिवालय मे मुक्त नामक अनन्त पुरुष मुझे दृष्टिगोचर हुए। वे निरन्तर आनन्द से युक्त और समस्त प्रकार की बाधा-पीडा से रहित थे। मुझे लगा कि मैं भी इन दुकानो मे से किसी एक मे व्यापार कर रहा हूँ, पर शिवालय को देखने के पश्चात् मुझे उसी मे जाने की तीव्र इच्छा वाला निर्वेद जाग्रत हुआ। मैंने गुरु महाराज से कहा—नाथ ! चलिये हम इस बाजार को छोडकर इसके अन्त मे स्थित शिवालय मे चलकर रहे। इस कोलाहल पूर्ण बाजार मे तो मुझे क्षण भर भी शान्ति नही मिलती। मेरी इच्छा आपके साथ उस मठ मे जाने की ही है।

मेरी इच्छा सुनकर गुरु महाराज बोले—'हे नरश्रेष्ठ ! यदि तुझे मठ मे जाने की ऐसी तीव्र इच्छा है तो तू मेरी दीक्षा ग्रहण कर, क्योकि यह दीक्षा ही शीघ्रता से मठ मे पहुँचाती है।' उत्तर मे मैने कहा—'भगवन् ! यदि ऐसी बात है तो मुझे शीघ्र ही दीक्षा दीजिये, इसमें थोडा भी विलम्ब मत करिए।' मेरा उत्तर सुनकर उन्होने मुझे सर्वज्ञ मत की पारमेश्वरी दीक्षा प्रदान की और उस मठ मे पहुँचने के कारण रूप कर्त्तव्य/अनुष्ठान समझाये। इन कर्त्तव्यो का पालन करते हुए ही अभी मैं यहाँ रह रहा हूँ। [४३५-४४४]

---

* पृष्ठ ६४५

बाजार और मठ का वर्णन सुनने के पश्चात् अकलक ने पूछा—महाराज ! आपके गुरु महाराज ने आपको किस प्रकार के कर्त्तव्य बतलाये ?* जिनके बल पर आप मठ मे पहुँचना चाहते हैं ? कृपा कर मुझे विस्तार से समझाइये। [४४५]

मुनिराज बोले—सौम्य अकलक ! सुनो। मेरे गुरु महाराज ने उस समय मुझे कहा था :—

भद्र ! तेरी सम्पत्ति/अधिकार मे रहने के लिये एक सुन्दर कमरा है, जिसका नाम काया है। इसके पचाक्ष नामक झरोखे हैं और क्षयोपशम नामक गर्भगृह है। इसके पास ही कार्मण शरीर नामक भीतरी चौक या कमरा है। इस भीतरी कमरे/चौक मे एक चित्त नामक अति चपल बन्दर का बच्चा रहता है।

यह सुनकर मैंने कहा—यह सब ठीक है।

पुन. गुरु ने कहा—इन सब को साथ मे रखकर ही तुझे दीक्षा लेनी है, क्योकि योग्य अवसर की प्राप्ति के पहले इनका त्याग नही हो सकता।

मैंने कहा—जैसी आपकी आज्ञा।

तत्पश्चात् गुरु महाराज ने मुझे दीक्षा दी और समझाया—भद्र ! इस बन्दर के बच्चे का तुझे भली प्रकार रक्षण करना चाहिये।

मैंने कहा—जैसी आपकी आज्ञा ! आप कृपा कर मुझे यह तो बताये कि इस बन्दर के बच्चे को किससे भय है ? जिससे मैं उन भयो से उसकी रक्षा कर सकू।

उत्तर में गुरु महाराज ने बताया—सौम्य ! यह बन्दर का बच्चा जिस चौक मे रहता है, वहाँ अनेक प्रकार के उपद्रवकारी तत्त्व है। वहाँ कषाय नामक चपल चूहे उस बेचारे को काटते रहते है, नोकषाय नामक डक मारने मे पटु भयकर बिच्छु डक मारते रहते हैं, सज्ञा नामक क्रूर बिल्लिया खा जाती हैं, राग-द्वेष नामक भयकर मोटे चूहे इसे हडप कर जाते है और महामोह नामक अतिरौद्र बडा बिल्ला इसे पूरा ही निगल जाता है। परिषह उपसर्ग नामक डास-मच्छर इसे बार-बार काट कर सन्तप्त करते रहते है, दुष्टाभिसन्धि और वितर्क नामक वज्र जैसी सूण्डो वाले खटमल इसका खून चूस लेते हैं, झूठी चिन्ता नामक गिलहरियाँ बार-बार पीडित करती है और रौद्राकार प्रमाद नामक तिलचट्टे बारबार तिरस्कृत/पराजित करते हैं। अविरति कीचड नामक जूए बार-बार डक मारती हैं और मिथ्यादर्शन नामक अति घोर अन्धेरा उसे अन्धा बना देता है। हे भद्र। इस बन्दर के बच्चे को गर्भगृह/चौक मे रहते हुए ही स्थायी रूप से निरन्तर ऐसे अनेक उपद्रव होते रहते हैं, जिसकी तीव्र वेदना को बेचारा चित्त/बन्दर-बालक सहन नही कर सकता और रौद्रध्यान रूपी खैर के अंगारो से धधकते कुण्ड मे कूद पड़ता है। किसी

* पृष्ठ ६४६

समय यह अनेक प्रकार के कुविकल्प रूपी मकड़ियों के जालो से जिसका मुंह छिप गया है ऐसी अति भीषण आर्तध्यान रूपी गहन गुफा मे छिप जाता है। तुझे अप्रमत्त भाव से सर्वदा इस बन्दर के वच्चे को अग्निकुण्ड मे या गहन गुफा मे जाने से रक्षण करना चाहिये।

मैंने पूछा—भगवन्! इसको अग्नि-कुण्ड या गुफा में जाने से रोकने का उपाय क्या है?

तब गुरु महाराज ने कहा—भाई! काया नामक कमरे के पाच गवाक्ष (द्वार) है, उनके वाहर ही पाच विपय नामक विपवृक्ष हैं जो अति भयकर हैं। इनकी गध मात्र से * वन्दर के वच्चे को मूर्छा आने लगती है। इनको देखने से वह चपल वन जाता है और श्रवण मात्र से वह मरने लगता है। फिर स्पर्श करने और खाने से तो उसका विनाश हो इसमें आश्चर्य ही क्या? पहले कहे गये चूहे आदि के उपद्रव बन्दर के वच्चे को इतना अधिक त्रस्त कर देते है कि वह व्याकुल होकर इन विपवृक्षो को आम्रवृक्ष मानने लगता है और प्रसन्नता पूर्वक इन विपवृक्षो पर आसक्त हो जाता है। पहले वताये गये पांच द्वारो से वाहर निकल कर वह अत्यन्त अभिलापापूर्वक इन वृक्षो की तरफ दौड़ता है। वह इनके कुछ फलो को अच्छा समझ कर उन पर लुब्ध हो जाता है और कुछ फलों को खराव मानकर उनसे द्वेष करता है। इन वृक्षो पर अत्यन्त आसक्ति पूर्वक डाल-डाल पर घूमता है। वृक्षो के नीचे अर्थनिचय/विपयरज नामक सूखे पत्ते फल-फूल आदि कचरा जमा हुआ होता है, उस पर वह वार-वार लोटता है और भोग-स्नेह रूपी वरसाती जल-विन्दुओ से गीला होकर कर्म-परमाणु-निचय अर्थात् वृक्ष के फल-फूल परागरूपी इस कर्मपरमाणु रज/धूल को अपने शरीर पर चिपका लेता है।

भावार्थ

गुरु महाराज द्वारा कही गयी उपरोक्त वार्ता का भावार्थ मेरी समझ मे आ गया था, अत मैंने विचार किया कि सामान्यतः शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पाच विष वृक्ष प्रतीत होते हैं। अस्पष्ट दिखाई देने वाले इनके फूल और अधिक स्पष्ट दिखाई देने वाले विशेष 'आविर्भाव' इसके फल प्रतीत होते है। विषयो की आधारभूत वस्तुए इसकी शाखाये प्रतीत होती है। चित्तरूपी बन्दर के बच्चे का इन डालियो पर घूमना उपचार से ही समझना चाहिये, क्योकि लोग प्रायः ऐसा कहते हैं कि 'अभी मेरा मन अमुक स्थान पर गया।' गुरुजी की वात भली-भाति मेरी समझ मे आ रही थी, अतः आगे भी समझ मे आयेगी ही, ऐसा सोचकर मैंने वार्ता को आगे चलाने का अनुरोध किया।

गुरु महाराज ने आगे कहा—भद्र! भोग-स्नेह-जल से जब इस बन्दर के वच्चे का शरीर गीला होता है और वह कर्मपरमाणुनिचय नामक रज मे लोटता है,

* पृष्ठ ६४७

तब यह धूल उसके शरीर पर अधिक चिपक जाती है और उसका सारा शरीर धूलि-धूसरित हो जाता है। एक तो बन्दर वैसे ही चञ्चल होता है, फिर यह जहरीली धूल शरीरवेधक होने से उसके शरीर मे घाव कर देती है, शरीर क्षीण होकर शिथिल हो जाता है, उसका मध्य भाग चारो तरफ से फट जाता है। जहरीली धूल सारे शरीर मे और विशेष रूप से मध्यभाग मे असर करती है जिससे सारा शरीर जलने लगता है। फलस्वरूप उसका पूरा शरीर काला हो जाता है और कही कही से लाल भी दिखाई देने लगता है। जब वह वापस अपने गर्भगृह/चौक मे जाता है तब पहले बताये गये चूहे मच्छर आदि के उपद्रव फिर होने लगते है। इन उपद्रवो का आक्रमण उस पर प्रति क्षण अधिकाधिक उग्र होते रहते है।

रक्षण के उपाय

भद्र! इस चित्त रूपी बन्दर के बच्चे को इन उपद्रवो से बचाने का सीधा उपाय यह है कि स्ववीर्य/आत्मशक्ति नामक अपने हाथ मे अप्रमाद नामक वज्रदण्ड लेकर पाचो द्वारों के पास खडे रहना और जब-जब वह बन्दर का बच्चा इन्द्रिय रूपी झरोखो से विषय रूपी विषवृक्ष के फलो को खाने की इच्छा से बाहर आवे तब-तब उसे वज्र दण्ड दिखा कर, फटकार कर बाहर आने से रोकना। फिर भी यह चित्त बन्दर अधिक चञ्चल होने से यदि बाहर आ जाय तो उसे जोर से डरा धमकाकर वापस लौटा देना। बाहर आने पर रोक लगी होने से उसकी विषवृक्ष रूपी आम्र फल खाने की इच्छा निवृत्त हो जायगी और भोग-स्नेह-जल से भीगकर जो सर्दी हो गई थी वह दूर हो जायगी।* शरीर सूखेगा और उसमे गर्मी आयेगी। शरीर के सूखने से उस पर लगी हुई धूल प्रति क्षण नीचे गिरने लगेगी, उसके घाव भरने लगेगे, शरीर की क्षीणता दूर होगी, शरीर काला पड़ने से रुकेगा और झूठी लाली नष्ट होगी। फिर से उसके शरीर पर धवलता (सफेदी) आयेगी, शारीरिक स्थिरता बढेगी और दर्शनीय सुन्दर रूप बनेगा। इसके बाद गर्भगृह मे भी उसे उपर्युक्त उपद्रव अधिक तग नही करेगे। फिर कमरे मे रहे हुए चूहे, बिल्ली, करोलिया, मच्छर आदि का भी तुझे इसी अप्रमाद वज्रदण्ड से चूरा-चूरा कर देना चाहिये। तदनन्तर चौक के रास्ते से यदि बन्दर का बच्चा बाहर निकलेगा तब भी उसको किसी प्रकार का भय नही रहेगा। हे भद्र! यही उसकी रक्षा का उपाय है।

मैंने गुरुजी से पूछा—भदन्त! इस बन्दर के बच्चे की रक्षा करने से मुझे क्या लाभ होगा?

गुरुजी ने कहा—भद्र! तुम्हे शिवालय मठ बहुत पसन्द आया था और वहाँ जाने की तुम्हारी इच्छा हुई थी। इस मठ मे पहुँचने का मुख्य उपाय चित्तरूपी इस बन्दर के बच्चे की सुरक्षा है। इसकी भली प्रकार सुरक्षा करने से यह बिना

---

* पृष्ठ ६४८

किसी विघ्न के शिवालय मे पहुँचने का प्रबल कारण बनता है । अतएव हे भद्र ! यदि इस मठ मे जाने की तुम्हे बुद्धि हुई है, अभिलाषा है तो तुझे उस चित्त रूपी बन्दर के बच्चे की सुरक्षा करने का सुदृढ प्रयत्न करना चाहिये । यह बन्दर का बच्चा लम्बे समय से चक्र (भ्रमावर्त) मे पड़ा है, इसमें मे इसका बाहर निकलना अत्यन्त कठिन है ।

यह कैसे चक्र के चक्कर मे पडा, यह भी बताता हूँ :—ऊपर बताये गये चूहे, बिल्ली आदि के अत्यधिक उपद्रवो से पीडित होकर, मोह के वश मे यह बच्चा आम्रफल की भ्राति से विषवृक्ष के फल खाने दौडता है, जिससे धूल की मोटी परत इसके शरीर पर जम जाती है। फिर भोग-स्नेह-जल से भीगने पर शरीर क्षत-विक्षत हो जाता है। फिर चूहे आदि उसको खाने की इच्छा से उस पर अधिक सख्या मे अधिक तीव्रता से आक्रमण करते है । जैसे-जैसे यह अधिक पीडित होता है वैसे-वैसे शान्ति प्राप्त करने के लिये वह आम्र वृक्ष की तरफ दौडता है। फलस्वरूप और अधिक धूल चिपकती है, अधिक भीगता है, शरीर अधिकाधिक क्षत-विक्षत और जर्जरित होता है । हे भद्र ! यो इस चक्र (आवर्त) मे पडने के बाद बार-बार उपद्रव बढते जाते है । ऐसे दूषित चक्र (आवर्त) मे पडने के बाद जब तक तू स्वयं इसकी रक्षा नही करेगा, तब तक यह विघ्न रहित नही हो सकता । अत. हे नरश्रेष्ठ ! जैसा मैने ऊपर बताया है, तदनुसार निरन्तर इसकी सुरक्षा करनी चाहिये, तभी यह चित्त रूपी बन्दर का बच्चा विघ्नरहित हो सकेगा । [४४६–४५४]

मै गुरुजी की वार्ता का भावार्थ समझ गया । अत: उस पर चिन्तन करते हुए मेरे मन मे निम्न सत्य प्रस्फुटित हुआ—

रागादि से उपद्रव प्राप्त चित्त इन्द्रियो के विषयो मे प्रवृत्ति करता है, जिससे इसका कर्मसचय बढता जाता है ।* भोग-स्नेह की वासना उसके साथ एकीभूत होती रहती है, जिससे ससार सम्बन्धी सस्कार उत्पन्न होते है । ये सस्कार ही वह क्षत-विक्षत अवस्था है । इन सस्कारो से ही चूहे बिल्ली आदि के समान ये रागादि उपद्रव तीव्र होते है । ये उपद्रव प्रतिक्षण बढते रहते है जिससे प्रेरित यह चित्त बार-बार विषयो की तरफ दौड़ता है तथा बार-बार कर्म बाधता है जो अधिक चिकने होते जाते है । चिकनाहट के कारण उपद्रव अधिक बढते है । इस प्रकार यह चित्त ऐसे चक्र (आवर्त) मे पड जाता है जिसका तल कही दिखाई नही देता । इस चक्र मे इसको करोडो प्रकार के दु ख होते है जिससे यह छूट नही सकता । इसकी रक्षा का उपाय स्ववीर्य रूपी हाथ द्वारा अप्रमाद दण्ड का उपयोग बताया है । अत मुझे अब गुरुजी के उपदेशानुसार अप्रमादी बनकर उसका पूर्णतया अनुशीलन करना चाहिये । [४५५–४६२]

कारण यह है कि यह शरीर, सम्पत्ति, भोग, सगे-सम्बन्धी आदि सभी बाह्य पदार्थ स्वप्न समान है, इन्द्रजाल है, गधर्व नगर है । सद्‌बुद्धि द्वारा ऐसा निर्णय कर,

* पृष्ठ ६४६

बार-बार ऐसी तात्त्विक भावना करता रहूँगा जिससे इस ससार के जाल से चित्त का बन्धन हटेगा। मेरे चित्त का संसार के साथ अनादि काल से सम्बन्ध होने से यह ससार की तरफ दौड़ेगा तो अवश्य, परन्तु उसकी यह दौड़ आत्मा के लिये हानिप्रद है, यह जानकर प्रयत्नपूर्वक चित्त को उधर जाने से रोकू गा और उसे समझाऊंगा कि, हे चित्त ! तुझे इस प्रकार बाहर भटकने से क्या लाभ ? तू तो अपने स्वरूप में ही स्थिर रह, जिससे आनन्द मे लीन रह सके। यह ससार बाहर भटकने के समान ही है क्योकि यह दु:खो से भरा हुआ है और अपने स्वरूप मे रहना ही मोक्ष है, जो अनेक सुखो से परिपूर्ण है। अतः सुख प्राप्त करने की इच्छा से बाहर भटकना व्यर्थ है, अयुक्त है। क्योकि ससार तो दु.खपूर्ण ही है। आत्मा मे स्थिर रहने से तुझे इस जन्म मे भी बहुत सुख मिलेगा और यदि तू बाहर भटकेगा तो इस भव मे भी बहुत दु ख प्राप्त करेगा। कहा भी है :—

पराधीनता ही पूर्ण दु ख है और स्वाधीनता ही पूर्ण सुख है। बाह्य-भ्रमण पराधीनता है और आत्मरमण ही स्वाधीनता है। आत्मा के बाहर रही हुई कोई भी वस्तु तुझे प्रिय लग सकती है, पर तुझे यह जानना चाहिये कि वे सभी वस्तुए नाशवान है, दु खदायी है, आत्मस्वरूप से भिन्न है और मैल से भरी हुई है।

अत: हे चित्त ! ऐसी वस्तुओ के लिये तू क्यो व्यर्थ मे ही कष्ट उठाता है ? आत्मा को छोडकर क्यो इस प्रकार बारम्बार बाहर भटकता है ? यदि आत्मा के बाहर की कोई वस्तु सुन्दर होती तो वह दु ख निवारण मे भी समर्थ होती, पर आत्मस्वरूप मे तेरी स्थिरता के अतिरिक्त कोई भी बाह्य वस्तु वास्तव मे दु ख निवारण मे समर्थ नही है। जब तू भोग रूपी भयकर अगारो से जलता है तब तुझे आनन्द स्वरूप आत्मा मे ही शान्ति मिलती है, फिर तू बाह्य भ्रमण का व्यर्थ ही कष्ट क्यो उठाता है ? * अतएव हे चित्त ! तू अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य और आनन्द से परिपूर्ण आत्मा मे स्थिर होकर शीघ्र ही निराकुल बन। [४६३–४७५]

आत्मा मे स्थिर रहने से भोग रूपी चिकनाई सूख जाती है जिससे नि सदेह चिपकी हुई कर्मरज अवश्य ही गिरती जाती है। तेरे शरीर पर जो भयकर धारिया पड गई हैं वे अत्यन्त दूषित वासनाओ से उत्पन्न हुई है। परन्तु, जब तू इन वासनाओ की पीडा से मुक्त होगा तब तुझे भोगो पर कोई प्रीति नही रहेगी। विद्वानो का कहना है कि इन धारियो मे पडे ये भोग-पिण्ड (गाठे) जैसी है, जो थोडी सी देर आनन्द देती है, पर जब इन भोग-पिण्डो को भोगना पडता है तब वे अधिक पीडा-दायक होती है। भोगो को भोगने के समय थोड़ी देर आनन्द प्राप्त होता है, किन्तु दूषित वासनाओ के ध्यान से ये अन्त मे पीडा को अधिक बढावा देती हैं। यदि तेरे शरीर से बुरी वासनाए निकल जाय तो वह निर्विघ्न निरन्तर आनन्दयुक्त बन जाय। ऐसी स्थिति के प्राप्त होने पर तुझे भोग की इच्छा ही नही रहेगी। अत. हे चित्त !

---

* पृष्ठ ६५०

तू वाह्य भ्रमण का त्याग कर और अपने वास्तविक स्वरूप मे स्थिर होकर वैठ तथा निरावाध बन। [४७६-४८१]

चित्त को इस प्रकार शिक्षा देकर, समझा कर मै भलीभाति लक्ष्य पूर्वक इसकी रक्षा मे तत्पर रहूँगा। यदि यह पापी चञ्चल चित्त इतना समझाने पर भी नही मानेगा तो मै इसे वाह्य-भ्रमण से प्रयत्न पूर्वक वार-वार रोकू गा। फिर कषाय, नोकषाय आदि सभी उपद्रवियो का अप्रमाद रूपी शस्त्र से नाश कर दू गा। रागादि उपद्रवियो को उनके प्रतिपक्षियो के सहयोग तथा ज्ञान के उपयोग से एवं शुभध्यान के सेवन से मैं शीघ्र नष्ट कर दू गा। राग-द्वेष का नाश होने पर परिषह उपसर्ग आदि वाह्य उपद्रव मुझे पीडित नही कर सकेंगे। फिर मेरा चित्त आत्माराम वन जायेगा, रागादि उपद्रवो से मुक्त हो जायेगा, वाहर भटकता वन्द हो जायेगा और मोक्ष के योग्य वन जायेगा।

हे अकलंक! मन मे ऐसा दृढ निश्चय कर, उसके अनुसार आचरण करने का निर्णय लेकर अभी मैं प्रमाद का त्याग कर, सावधान होकर यहाँ निवास कर रहा हूँ। ऐसा उन छठे मुनि महाराज ने अपने वैराग्य और दीक्षा का कारण वताते हुए कहा। [४८२-४८८]

६. संसार-बाजार (द्वितीय चक्र)

छठे मुनि के वैराग्य-हेतु की कथा सुनकर अकलंक ने कहा—भगवन्! आपने बहुत अच्छा किया। आपने सद्गुरु की वाणी के रहस्य को समझ कर, योग्य प्रकार से आचरण कर आप उसे अपने जीवन मे उतार रहे है। आपने जिस चित्त के चक्र की बात कथा मे कही, वैसा ही एक अन्य चक्र भी मेरे विचार से होना चाहिये। मेरा यह विचार ठीक है या नही? आप सुनकर स्पष्टीकरण करे।

मुनि ने कहा—भद्र! अपने विचार प्रकट करो।

अकलक ने कहा—चित्त/मन दो प्रकार का कहा गया है, द्रव्यचित्त और भावचित्त। मनपर्याप्ति वाली आत्मा द्वारा ग्रहण किये गये मनोवर्गणा के पुद्गलों से द्रव्यचित्त निर्मित होता है। (छः पर्याप्तियो में से छठी मनपर्याप्ति द्वारा जो मनोवर्गणा ग्रहण की जाती है उसी को द्रव्यमन कहा जाता है।) यह द्रव्यमन जब जीवात्मा के साथ सयुक्त होता है तब उसे भावमन कहा जाता है। भावमन कार्मण-

शरीर मे रहता है, इसीलिये इसे अलग जाना जाता है। * नियमानुसार तो भावमन जीव ही है, पर जीव चित्तरूप होते भी है और नही भी होते। उदाहरण के तौर पर केवली भावमन-रहित होते हैं। (किसी को मन से उत्तर देने के लिये वे द्रव्यमन का उपयोग करते है, किन्तु केवलज्ञान होने से भावमन की अपेक्षा नही रहती। अर्थात् केवलज्ञानी के द्रव्यमन तो होता है, किन्तु भावमन नही होता)। जब यह प्राणी राग-द्वेष आदि से युक्त होता है तब मिथ्याज्ञान के कारण वह विपरीत निर्णय लेता है। फलस्वरूप दु:खदायी वस्तु मे सुख प्राप्त करने की कामना से उसमे प्रवर्तित होता है। अर्थात् मिथ्याज्ञान के कारण वह यह निर्णय नही कर पाता कि वास्तविक सुख और दु.ख कहाँ है? झूठी प्रवृत्ति के स्नेह-तन्तु कर्म-परमाणुओ को आकर्षित करते है, जिससे जन्म-जन्मान्तर का प्रारम्भ होता है। इन जन्मातरो मे प्राणी फिर से विपरीत निर्णय लेता है और रागादि सतति की वृद्धि करता है। रागादि सतति से विपयाकाक्षा होती है, विषयाकाक्षा से स्नेह-तन्तुओ का जन्म होता है, स्नेह-तन्तुओ से कर्म-ग्रहण होता है और कर्म-ग्रहण से दुबारा जन्म होता है। पुन बुद्धि-विपर्यास से रागादि का क्रम चलता है। इस प्रकार यह जन्म-जन्मान्तर का चक्र अविच्छिन्न रूप से चलता ही रहता है। जब तक यह प्राणी विपरीत निर्णय लेता रहता है तब तक उसकी अनिष्टकारी भव-पद्धति (ससार-भ्रमण) चलती ही रहती है। भगवन्! मैंने आपके समक्ष यह द्वितीय चक्र की बात प्रस्तुत की है। मेरा उपर्युक्त कथन उपयुक्त है या नही? कृपा कर बताये। [४८९-४९७]

उत्तर मे मुनिराज ने कहा—महाभाग्यवान! तेरा कथन पूर्णरूप से युक्ति-युक्त है, इसमे कोई सन्देह नही है। तेरे जैसे तत्त्व के जानकर झूठी बात कर ही कैसे सकते है? ऊपर की वार्ता से मैने भी समझा और तुम्हारी बात का गुरुजी ने भी समर्थन किया था कि विपरीत निर्णयो का यह चक्कर ही अनिष्टकारी भवचक्र का कारण है। अत. सच्ची-झूठी बात का सच्चा विवेक रखने वाले प्राणियो को यथाशक्य इन विपर्यासो/विपरीत निर्णयो का त्याग करना चाहिये। एक बार विपर्यासो का नाश होते ही इस द्वितीय चक्र की अन्य बातो का तो अपने आप ही जडमूल से नाश हो जायगा। विपर्यास का त्याग ही सच्चा विवेक है, सच्चा तत्त्व-ज्ञान है और आस्रव-रहित धर्म है। जो अप्रमादी प्राणी विपर्यास का त्याग कर सच्चा तत्त्वज्ञ बन जाता है, उसे अपने मनोविकारो का जाल अपने से भिन्न लगता है। वह मन को अलग और अपनी आत्मा को उससे अलग देखता है, अत उसे आत्मा निरन्तर आनन्दमय लगती है। फिर उसे न तो दु.ख पर द्वेष होता है और न उसे सुख-प्राप्ति की इच्छा ही होती है। इस प्रकार मन से अलग होने पर, मन पर आसक्ति दूर हो जाती है जिससे इन्द्रियो के विषयो पर स्नेह नही रहता। स्नेह (चिकनाई) जाते ही कर्म-परमाणुओ का सचय रुक जाता है। इस प्रकार नि:स्पृह होने पर ससार-बीज का नाश हो जाता है और वह मुक्त जीवो के समान जन्मान्तर

* पृष्ठ ६५१

का प्रारम्भ नही करता तथा उसके भवचक्र का चलना वन्द हो जाता है । [४९८–५०५]

ऊपर दो प्रकार की बात कही गई है—एक कर्मबन्ध और दूसरा उससे फैलता भवचक्र । जो इन दोनो की प्रवृत्ति और निर्वृत्ति की वास्तविकता को जानते है, वे क्या ससार को बढाने वाले शरीर, धन, इन्द्रिय-भोग या अन्य किसी भी पदार्थ पर कदापि राग कर सकते है ? जिस प्राणी का चित्त सासारिक पदार्थों पर आसक्त होता है, जिसे उनमे आनन्द और सुख की प्रतीति होती है, समझना चाहिये कि अभी तक उसने ससार-चक्र और विपर्यासचक्र को वस्तुत: तत्त्व से नही पहचाना है । * इसका कारण यह है कि ज्ञान और क्रिया के योग से ही फल की प्राप्ति होती है, समस्त कार्यों की सिद्धि होती है, अन्य किसी भी कारणो से कार्य-सिद्धि नही हो सकती । ज्ञान द्वारा साध्य को बराबर पहचान कर, फिर उस पर सम्यक् प्रकार से आचरण करने पर ही साध्य की प्राप्ति हो सकती है । महामति (उमास्वाति) ने वस्तुस्वरूप को इसी प्रकार बताया है—"ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष" "सम्यक् प्रवृत्ति· साध्यस्य प्राप्त्युपायोऽभिधीयते" । सम्यक् आचरण ही साध्य प्राप्ति का उपाय है । यदि उससे साध्य की प्राप्ति न हो तो वह उपाय उपाय ही नही कहा जा सकता । जहाँ असाध्य का आरम्भ है, वहाँ सम्यग् ज्ञान नही और जहाँ सम्यग् ज्ञान नही, वहाँ साध्य का आरम्भ नही । साध्य और सम्यग् ज्ञान का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । इसीलिये आगम का जानकार जो भी क्रिया करता है उसे सच्ची क्रिया कहा जाता है और जो व्यक्ति योग्य क्रिया मे यथाशक्ति प्रयत्न करता है उसे आगम का जानकार कहा जाता है । जो प्राणी चिन्तामणि रत्न के स्वरूप को जानता है, जो गरीबी से पीडित है और जो उसकी प्राप्ति के अनेक उपाय भी जानता है, वह उसे प्राप्त करने के प्रयत्न को छोडकर अन्य कार्यो मे कदापि प्रवृत्ति नही कर सकता । अत: जो साध्य से विपरीत प्रवृत्ति करता है वह साध्य के स्वरूप को भली प्रकार से जानता ही नही । जो भौरा मालती पुष्प की सुगन्ध को जानता है वह घास या दूब पर बैठने की प्रवृत्ति नही करता । ससार का अभाव होने से सत्प्राणी मुक्ति को प्राप्त करता है । अधिक क्या कहूँ ? तात्पर्य यह कि तुमने जो दूसरे चक्र की बात कही, वह सत्य है । मेरे गुरुजी ने भी इन सब वातो के परिणाम स्वरूप ही मुझे बन्दर के बच्चे की यत्नपूर्वक रक्षा करने का विशेष कर्त्तव्य बताया था । [५०६–५१७]

अकलक—महाराज ! इस वन्दर को शिवालय/मठ मे कैसे ले जाया जाय ? गुरुजी ने इसके क्या-क्या उपाय बताये ? [५१८]

छठे मुनि—भद्र ! जैसा आचार्य भगवान् ने मुझे मार्ग बताया, वह सुनाता हूँ सुनो—सौम्य ! पिछले प्रकरण मे जिस क्षयोपशम नामक गर्भगृह का वर्णन आया है, उसमे छ परिचारिकाये रहती है । उनका सामान्य नाम लेश्या है और प्रत्येक

* पृष्ठ ६५२

का नाम क्रमश कृष्ण, नील, कपोत, तैजस्, पद्म और शुक्ल है। ये इसी गर्भगृह मे उत्पन्न होती हैं, यहीं की समृद्धि से पलती है, यहाँ बढ़ती है और इसी स्थान को पुष्ट करती हैं। इनमे से पहले की तीन क्रूरतम क्रूरतर और क्रूर है। ये तीनो अनेको अनर्थ-परम्पराओ की कारणभूत है और बन्दर के बच्चे की तो वास्तविक शत्रुभूत ही है। गर्भगृह मे अनेक प्रकार के अशुभ कचरे की वृद्धि करने की हेतु है। तुझे भी इन अनेक दु खो से पूर्ण बाजार मे रखने और शिवालय-गमन मे विघ्नदायक ये तीनो ही हैं। पुन: हे भद्र ! अन्य तीन शुद्ध, शुद्धतर और शुद्धतम स्वरूपधारिणी है। वे अनेक प्रकार की आह्लाद-परम्परा को प्रदान करती है, बन्दर के बच्चे की सहायक बहिनो के समान है, गर्भगृह को शुद्ध करने वाली है और तुझे इस निस्सारता की परम्परा से ओत-प्रोत बाजार से निकाल कर शिवालय पहुँचाने मे अनुकूलता प्रदान करने वाली है। इन छहो ने गर्भगृह मे ऊपर चढने के लिये अपनी शक्ति से परिणाम नामक सीढ़िया बना रखी हैं। इस पर चढने के लिये प्रत्येक ने क्रमश: * एक के ऊपर एक, असख्य-असख्य अध्यवसाय नामक सीढिया बनाई हैं जो अध्यवसाय स्थान नाम से प्रसिद्ध है। कृष्ण लेश्या ने जो असख्य सीढिया बनाई है, वे काले रग की हैं। नील लेश्या द्वारा नीले रग की, कपोत लेश्या द्वारा कबूतरी रग की, तैजस् लेश्या द्वारा विशुद्ध चमचमाती, पद्म लेश्या द्वारा श्वेत कमल जैसी और शुक्ल लेश्या द्वारा विशुद्ध स्फटिक जैसे निर्मल श्वेतरग की असख्य सीढिया बनाई गई है। बन्दर का बच्चा जब तक पहली तीन लेश्याओ द्वारा बनाई सीढियो पर घूमता है तब तक उछल-उछल कर झरोखे की तरफ दौडता है और आम्रवृक्ष (विप वृक्ष) पर छलाग मारता है। छलाग मारते हुए नीचे गिरता है और उसका पूरा शरीर धूलिधूसरित हो जाता है। वहाँ चिकनाई की बू दो से उसके शरीर पर सैकडो धारिया पड जाती है शरीर क्षत-विक्षत और जर्जरित हो जाता है। फिर चूहे बिल्ली आदि विशेष उपद्रवो द्वारा उसे अधिकाधिक त्रास देते है, जिससे वह नष्टप्राय: सा/मूर्च्छित सा भयकर आकृति वाला बन जाता है और निरन्तर संतप्त स्थिति मे दिखाई देता है। इस स्थिति मे यह बन्दर का बच्चा (चित्त) तेरे लिये भी अनन्त दु.खदायी परम्पराओ का कारण बनता है। अत तुझे इस बच्चे को पहली तीन लेश्याओ द्वारा निर्मित सीढियो से ऊपर चौथी लेश्या द्वारा निर्मित सीढियो पर चढाना चाहिये। यहाँ उसे प्रतिक्षण सताप कम होने लगेगा। बाधा-पीडाये कम होने लगेगी, चूहे, बिल्ली, मच्छर आदि के उपद्रव कम होगे और आम्रफल (विषफल) खाने की इच्छा कम हो जायगी। फिर मकरन्द की स्निग्धता के सूखने से शरीर पर चिपकी हुई धूल नीचे गिरेगी और उसे किंचित् सुख प्राप्त होगा तथा शरीर तेजस्वी एव स्वरूपवान बनेगा। इसके पश्चात् तुझे पाचवी लेश्या द्वारा निर्मित सीढियो पर चढाना चाहिये। यहाँ सताप और कम होगे, उपद्रव बहुत कम होगे, अपथ्य आम्र-फल खाने की इच्छा बहुत कम हो जायगी, शरीर सूख जायगा और उस पर लगी धूल-कचरा अधिकाश

---

* पृष्ठ ६५३

मे नीचे गिर जायगा। फिर बन्दर के बच्चे के शरीर मे हुए घाव भरने लगेगे, आनन्द प्राप्त होगा, शरीर श्वेत होगा, स्वास्थ्य मे वृद्धि होगी और वह विशाल बनेगा। इसके बाद उसे छठी लेश्या द्वारा निर्मित सीढ़ियो पर चढाना। यहाँ इसकी दु ख भोगने की स्थिति अत्यन्त कृश हो जायगी, उपद्रव नष्ट हो जायेंगे, आम्रफल खाने की इच्छा नही के समान हो जायेगी, धूल और कचरे मे लोटने की इच्छा भी नष्टप्राय हो जायगी और मकरन्द के स्नेह की स्निग्धता एकदम सूख जायेगी।* शरीर एकदम शुष्क हो जाने से धूल-कचरा सब गिर जायगा, शरीर स्वच्छ हो जायगा और निरन्तर आह्लाद तथा निर्मल स्फटिक जैसी शुद्धता प्राप्त हो जायगी।

पीछे की तीन परिचारिकाओ/लेश्याओ द्वारा निर्मित सीढियो पर चढते हुए उसे प्रतिपल धर्मध्यान रूपी मन्द-मन्द पवन लगेगा। यह पवन सताप को दूर करने वाला, सुखकारी, शीतल और सद्गुण रूप कमल वन के परागकणो से सुगन्धित होगा। इस पवन के लगने से बच्चा सतत प्रमुदित होता जायेगा। चूहे, बिल्ली, बिच्छु, मच्छर आदि के उपद्रव वाले कमरे और पहले की तीन लेश्याओ द्वारा निर्मित अधकारमयी सीढियो को छोडकर, बाद की तीन लेश्याओ द्वारा निर्मित भय-रहित प्रकाश पूर्ण सीढियो पर बन्दरो की एक टोली छिपकर रहती है। वे तेरे इस बन्दर के बच्चे के सम्बन्धी है। इस टोली का मुखिया/विशुद्ध धर्म नामक एक विशालकाय बन्दर है। यह विशुद्धधर्म बन्दर प्रशम, दम, सतोष, सयम, सद्बोध आदि परिवार से परिवृत है। धृति, श्रद्धा, सुखप्राप्ति, जिज्ञासा, विज्ञप्ति, स्मृति, बुद्धि, धारणा, मेधा, क्षान्ति, नि स्पृहता आदि वानरियाँ भी इस टोली मे है। धैर्य, वीर्य, औदार्य गाम्भीर्य, शौडीर्य, ज्ञान, दर्शन, तप, सत्य, वैराग्य, अकिचन्य, मार्दव, आर्जव, ब्रह्मचर्य, शौच आदि बन्दर बच्चे भी इस टोली मे है। जब तुम्हारा बन्दर का बच्चा पीछे की तीन लेश्याओ द्वारा निर्मित सीढियो पर चढना प्रारम्भ करेगा तब किसी-किसी स्थान पर महावानर, वानरिया और बन्दर-बच्चो मे से कोई-कोई प्रकट होगा, वे सब इस टोली मे से ही होगे। तेरे बन्दर के बच्चे का रूप भी इन सब के शरीररूप है, जीवनभूत है, सर्वस्व है और सच्चा हित करने वाला है। यह बन्दरो की टोली स्वरूप मे स्थिर, सूर्य जैसी तेजस्वी/प्रकाशमान और अपने दर्शनीय वर्ण से जगत् को आह्लादित करने वाली है, गवाक्षो के बाहर लगे विषवृक्षो की तरफ जाने की अभिलाषा से रहित होती है तथा कर्म-परमाणु-रज रूपी फल, फूल, धूल और कचरे मे लोटने की इच्छा से रहित होती है। यह बन्दरो की टोली भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न सीढियो पर दिखाई देती है। तेरा बन्दर का बच्चा जब अपने इन विशिष्ट सम्बन्धी और हितकारी बन्दरो की टोली को प्रकाशमान, नूतन, उच्च मार्ग पर मिलेगा तब उसे बहुत आनन्द प्राप्त होगा और अत्यन्त हर्ष मे आकर ऊपर-ऊपर की सीढ़ियो पर चढता चला जायेगा तथा अन्त मे छठी लेश्या द्वारा

* पृष्ठ ६५४

निर्मित सीढियो तक पहुँच जायेगा। वहाँ यह बन्दर टोली तेरे बच्चे के शरीर पर शुक्लध्यान नामक गोचन्दन रस का ठण्डा लेप करेगी। इन सीढियो पर चढते-चढते जब तेरा बच्चा आधे रास्ते तक पहुँच जायगा तब वह गाढ आनन्द मे ओत-प्रोत हो जायेगा। इससे ऊपर की सीढियो पर चढने मे यह असमर्थ होगा। हे सौम्य! यह बन्दर का बच्चा क्योकि तेरा जीवन है, तेरा आन्तरिक धन है और तेरे ही साथ एकमेक है, अत: जैसे-जैसे यह ऊपर चढेगा वैसे-वैसे तू भी ऊपर चढता जायेगा। अब यह बच्चा आगे नही चढ सकता, अत तुझे यही छोड देगा। आगे की सीढियो पर तुझे स्वय चढना पडेगा। * अन्त मे इन सीढियो को भी छोड़कर स्व सामर्थ्य से पाँच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण समय तक आकाश मे अधर रहकर, अपने कमरे/गर्भगृह और बन्दर के बच्चे का त्याग कर, कूदकर, एक झपट्टे मे बाजार को छोडकर, तपाक से उड़कर शिवालय मे प्रविष्ट हो जाना। वहाँ पहले से अवस्थित लोगो के बीच अनन्त काल तक रहकर अनन्त आनन्द का अनुभव करते रहना।

मैने कहा—जैसी गुरुदेव की आज्ञा। भद्र अकलक! मेरे गुरुजी ने उस समय मुझे बताया था कि इस प्रकार यह बन्दर का बच्चा तुझे मठ/शिवालय मे ले जाने मे समर्थ है।

छठे मुनिराज के भावार्थ से पूर्ण और अत्यन्त रहस्यमय उपर्युक्त वचन सुनकर अकलक ने मुनिराज को वन्दन किया और कहा—हे मुनिराज! आपके श्रेष्ठतम आचार्य भगवान् ने आपको अत्यन्त सुन्दर उपदेश दिया। आप उसे आचरण मे उतार रहे हैं यह अत्यन्त प्रशसनीय है। आप जैसे प्रभावशाली व्यक्ति के लिये यही उचित है। [५१९-५२०]

यो छठे मुनिराज को नमस्कार कर हम आगे बढे।

१०. सदागम का सान्निध्य : अकलंक की दीक्षा

हे अगृहीतसकेता! छठे मुनिराज के पास से जब हम आगे चले तो भाग्यशाली अकलंक को मुझे सम्यक्बोध देने की इच्छा जागृत हुई, अत थोडा रुक कर उसने कहा—भाई घनवाहन! इन मुनि महाराज ने स्पष्ट शब्दो मे जो बातचीत की उसका गूढार्थ तुझे समझ मे आया या नही? देख, इन श्रमण भगवन्त ने महत्व की बात हमे कही है। [५२१-५२२]

---

* पृष्ठ ६५५

मुनिश्रेष्ठ ने हमे बताया कि क्लेशरहित मन ही संसार-समुद्र को शीघ्र पार करवाने का हेतु है। लेश्या के परिणामो से ही मन को क्लेशरहित बनाया जा सकता है। जब वह विशुद्ध लेश्या द्वारा शुद्ध अध्यवसायो की तरफ ले जाया जाता है तभी वह क्लेशरहित होता है और क्लेशरहित होकर ही ससार को पार कराने मे समर्थ होता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात उन्होने यह कही कि मन ही शिवगमन (मोक्ष) का कारण है और वही संसार का भी कारण है, ऐसा मुनिगण कहते है। पूर्व प्रकरण मे जिस कमरे, गर्भगृह, बन्दर के बच्चे आदि का वर्णन किया गया है, वह सभी प्राणियो के लिये समान ही है। बन्दर का बच्चा जब पूर्व-वर्णित सीढियों पर चढता है तब उसका चढ़ना ही भव/संसार का कारण है। चढते हुए उसके आस-पास जो दुकाने आती हैं, उसमे वह उछलता हुआ चला जाता है और प्राणी को भी शीघ्र उस दुकान पर ले जाता है। [५२३-५२८]

मैने पूछा—मित्र अकलक! तुम्हारा कथन मैं नही समझ पाया, इसका आन्तरिक भावार्थ क्या है?

अकलक—भाई घनवाहन! सुनो—लेश्या और उसके अध्यवसाय तो तेरी समझ मे आ गये होगे। मरने के समय प्राणी का चित्त जिस लेश्या के अध्यवसाय मे होता है, अन्य भव मे प्राणी उसी लेश्या के वैसे ही अध्यवसाय में उत्पन्न होता है। कहा भी है "अन्त मति सो गति।" चित्त असख्य अध्यवसायो में प्रवृत्ति करता रहता है, इसीलिये वह चित्र-विचित्र योनि रूपी ससार का कारण बनता है। यदि यह चित्त दोषपूर्ण अध्यवसाय मे प्रवृत्ति करता है तो ससार का कारण बनता है और यदि वही निर्दोष/विशुद्ध अध्यवसाय मे प्रवृत्ति करता है तो मोक्ष का कारण बनता है। यह चित्त ही तेरा वास्तविक अंतरग धन है। धर्म और अधर्म, सुख और दु.ख का आधार भी यही चित्त है। अत. इस चित्तरूपी अमूल्य रत्न की भली प्रकार रक्षा करनी चाहिये। * भावचित्त और जीव परस्पर एक ही है, विभेद नही है। अत. जो प्राणी भावचित्त की रक्षा करता है वह अपनी आत्मा की रक्षा करता है। जब तक यह चित्त भोग की लोलुपता से वस्तुओ और धन को प्राप्त करने के लिये जहाँ-तहाँ दौडता रहेगा तब तक उसे सुख की गध भी कैसे प्राप्त हो सकेगी? [५२९-५३४]

जब यह चित्त नि स्पृह होकर, सर्व प्रकार के बाह्य-भ्रमण का त्याग कर, इच्छारहित होकर अपनी आत्मा मे स्थिर होगा तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

कोई भक्ति करे या स्तुति करे, कोई क्रुद्ध हो या निन्दा करे, इन सब पर एक समान दृष्टि हो, सब पर चित्त मे समान भाव हो, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

---

* पृष्ठ ६५६

अपने सगे-सम्बन्धी हो या अपने शत्रु हो या अपने को हानि पहुँचाने वाले हो, इन सब पर जब चित्त मे एक समान भाव होगे, एक पर राग और दूसरे पर द्वेष नही होगा, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

पाँचो इन्द्रियो के विषय अच्छे हो या बुरे, सुखदायी हो या दु.खदायी, इन सब पर जब चित्त मे एक समान वृत्ति होगी, किसी विषय पर प्रेम और किसी का तिरस्कार नही होगा, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर लेप करने वाले मनुष्य पर और छुरी से घाव करने वाले मनुष्य पर जब मन मे लेशमात्र भी भेद-भाव नही होगा, अभिन्न चित्त-वृत्ति होगी, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

ससार के सभी पदार्थ पानी के समान है, तेरा चित्त रूपी कमल इन्ही से उत्पन्न है। और, इन्ही के निकट रहते हुए भी जब इनमे लिप्त नही होगा, जैसे कमल पानी से अलग रहता है वैसी स्थिति जब तेरे चित्त की होगी, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

उद्दाम यौवन से दैदीप्यमान लावण्य और अत्यन्त सुन्दर रूपवती ललित ललनाओं को देखकर भी जब मन मे किंचित् भी विकार पैदा नही होगा, तेरे चित्त की स्थिति जब ऐसी निर्विकार स्वरूप होगी, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

अत्यन्त आत्म-सत्त्व को धारण कर जब चित्त, अर्थ और काम-सेवन से विरक्त होगा, पराङमुख होगा और धर्म मे आसक्त होगा तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

जब मन राजस् और तामस् प्रकृति का त्याग कर स्थिर समुद्र के समान कल्लोल रहित शात और सात्विक बनेगा, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

जब चित्त मैत्री, करुणा, मध्यस्थता और प्रमोद भावना से युक्त होकर मोक्ष प्राप्ति मे एकरस होकर लगेगा, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी।

भाई घनवाहन ! इस जगत मे प्राणी को सुख-प्राप्त करने के लिये चित्त के अतिरिक्त अन्य कोई साधन उपलब्ध नही है। त्रैलोक्य मे सुख-प्राप्ति का एक मात्र यही साधन है। [५३५–५४५]

हे अगृहीतसकेता ! अकलक के पूर्वोक्त वचनामृत को सुनकर मै किंचित् आह्लादित हुआ। फिर मेरे मित्र अकलक ने दृष्टान्त रूपी मुद्गर से मेरी अत्यधिक सघन कर्म-पद्धति को काट दिया, जिससे मैं लम्बे काल की कर्म-स्थिति को पार कर शेष अल्प काल की कर्मस्थिति के निकट पहुँच गया। यह अल्पकालीन कर्मस्थिति शीघ्र तोडी जा सके, ऐसी है। [५४६–५४८]

हे विशालाक्षि ! वामदेव के प्रस्ताव [भव] मे बुधसूरि ने जो वचन कहे थे वह तो तुझे याद ही होगे ?*

---

* पृष्ठ ६५७

अगृहीतसकेता—आचार्य की वाणी मेरी स्मृति-पटल मे भलीभाति नहीं आ रही है अतः तू ही पूर्व-प्रसग को स्पष्ट कर।

ससारी जीव—हे चपललोचना भद्रे ! आचार्य बुधसूरि ने अपनी आत्म-कथा कहते हुए कहा था कि उनका एक पुत्र विचार देश-देशातरो का भ्रमण करने के लिये प्रवास पर गया था और वह भवचक्रपुर मे घूम कर, निरीक्षण कर, बहुत समय के पश्चात् मार्गानुसारिता को साथ लेकर वापस लौटा था। उसने एकांत मे मुझे (बुधसूरि को) महाबलवान मोहराज और चारित्रधर्मराज के बीच हुए युद्ध का वर्णन सुनाया था। उसने यह भी कहा था कि इस युद्ध मे मोहराज की जीत हुई थी और दर्प के साथ चारित्रधर्मराज की सेना को चारो तरफ से घेरकर खडा था। इस प्रकार चारित्रधर्मराज को घिरी हुई स्थिति मे देखकर और उसके चारो ओर दर्पिष्ठ मोहराज की बलवान सेना देखकर वह मेरे पास आया था।

[५४६–५५६]

इतना सुनते ही अगृहीतसकेता को पहली सब बाते याद आ गई और उसने समर्थन किया कि, हाँ घ्राण के दोप बताते समय यह वार्ता पहले आ चुकी है, अब मुझे सारी बाते भली-भाति याद आ गई है। भाई ! तत्पश्चात् इसके आगे क्या हुआ ? वह सुनाओ। [५५७–५५८]

तब ससारी जीव ने कहा—हे मृगलोचने ! अब मैं आगे की आत्मकथा (घटनाओ) का वर्णन करता हूँ, तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

अनन्तकाल से चित्तवृत्ति अटवी में चारित्रधर्मराज की पूरी सेना चारो तरफ से घिरी हुई थी। यह घटना तेरे लक्ष्य मे आ ही गई। मै अकलंक के समीप खड़ा-खड़ा उसकी बात सुन रहा था। उस समय जो घटना घटित हुई उसे भी सुनो।

[५५९–५६१]

अपनी सेना को शत्रुबल द्वारा घिरा हुआ और पीडित देखकर सद्बोध मत्री ने विपण्णवदन चारित्र धर्मराज से कहा—देव ! अब इस विषय मे अधिक चिन्ता की आवश्यकता नही है। हमारे मनोरथ वृक्ष के पुष्प आने लगे है, इससे लगता है कि अब हमारा कार्य सिद्ध होगा। वस्तुतः जब तक यह महा प्रभावशाली संसारी जीव हमको नही पहचानता तभी तक हमे शत्रुओ की पीडा है। जैसे ही यह हमको पहचानेगा, हमे सात्वना देगा और हमारा सपोपण करेगा वैसे ही हम शत्रु (मोहराज) की पूरी सेना को नष्ट करने मे समर्थ हो जायेगे। हे देव ! यह ससारी जीव ही हमारा महाप्रभु है। चित्तवृत्ति अटवी मे पहले जो घोर अन्धकार फैला था, उसमे अब कुछ-कुछ प्रकाश किरणे दिखाई दे रही है। इससे अनुमान होता है कि अब ससारी जीव हमे विशेप रूप से पहचानने की स्थिति मे आ रहा है। उसकी चित्तवृत्ति मे रहे अन्धकार मे हम ऐसे छिप गये थे कि उसने आज तक हमे देखा ही नही। पर, अब यह अन्धकार दूर हो रहा है और उसमे प्रकाश किरणे प्रस्फुटित हो रही है, अत ससारी जीव हमारा दर्शन अवश्य करेगा। मेरा यह परामर्श है कि हमारे

महाराजा कर्मपरिणाम को पूछकर ससारी जीव के पास किसी विश्वस्त व्यक्ति को भेजना चाहिये जो वहाँ जाकर उसे हमारे अनुकूल बनावे * और कुछ समय बाद उसके मन मे हमे देखने की लालसा उत्पन्न करे। [५६२-५७०]

सद्बोध मत्री की सम्मति सुनकर चारित्रधर्मराज ने कहा—हे मन्त्रिन् ! तुमने वहुत ही प्रशस्त और उचित परामर्श दिया। अब यह बताओ कि किसको संसारी जीव के पास भेजा जाय ?

मत्री—देव ! मेरे विचार से सदागम को भेजना चाहिये। जब ससारी जीव का सदागम से अधिक परिचय होगा, तब उसमे हमारे दर्शन की इच्छा उत्पन्न होगी। फिर कर्मपरिणाम महाराजा उसका हमसे परिचय करायेगे, तभी हम शत्रु को नष्ट करने मे समर्थ होगे। [५७१-५७४]

चारित्रधर्मराज ने मंत्री के परामर्श को मानकर और सदागम को मेरे पास आने की आज्ञा दी। फिर राजा ने मत्री से पूछा—यदि सदागम के साथ अपने सेनापति सम्यक्दर्शन को भेजा जाय तो कैसा रहेगा ?

मंत्री—स्वामिन् ! संसारी जीव के पास सम्यक् दर्शन जाय यह तो निःसंदेह बहुत ही उत्तम प्रस्ताव है। सम्यक्दर्शन साथ हो तभी सदागम भी अपना वास्तविक लाभ प्रदान कर सकता है। ऐसा होने पर हम सब का परिचय उससे हो सकता है। पर, अभी उसे भेजने का अवसर प्राप्त नही हुआ है, अत अभी नही भेजना ही ठीक रहेगा। विचक्षण लोग विना अवसर की प्राप्ति हुए कोई कार्य नही करते।
[५७५-५७९]

चारित्रधर्मराज—हे मन्त्रिन् ! तब उसको भेजने का अवसर कब प्राप्त होगा ?

मंत्री—देव ! इस सम्बन्ध मे मेरे विचार आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ, आप सुनें। अभी सदागम ससारी जीव के पास जाकर रहे और उसे भली प्रकार अपना बनाले। उसके पश्चात् अवसर देखकर सम्यक्दर्शन को भेजेंगे, क्योकि सदागम के पास रहने से जब ससारी जीव उससे परिचित होगा और उसमे जब स्वय की शक्ति उत्पन्न होगी तभी सम्यक्दर्शन का उसके पास जाना उचित रहेगा। मत्री की राय को मानकर राजा ने सदागम को मेरे पास भेज दिया।
[५८०-५८३]

इधर महामोह राजा ने तो पहले से ही अपने विश्वस्त अधिकारी ज्ञानसवरण को मेरे पास भेज रखा था। इसने चारित्रधर्मराज की पूरी सेना को पर्दे के पीछे छिपा रखा था और महामोह की सेना की सहायता एव पोषण कर रहा था। ज्ञानसवरण के प्रभाव से महामोह की सेना भयरहित थी और सभी निश्चिन्त होकर आनन्द मे बैठे थे। अब जैसे ही इस ज्ञानसवरण ने सदागम को मेरे पास आते देखा, वह डर के मारे छिप कर बैठ गया। [५८४-५८७]

* पृष्ठ ६५८

अकलंक की दीक्षा

इधर अतरग राज्य में उपर्युक्त हलचल हो रही थी उधर अकलंक सब मुनियों के गुरु जो ध्यानमग्न बैठे थे, उनके पास गया * और उनके चरण-स्पर्श कर वन्दन किया। मै भी उसके साथ ही गुरुजी के पास गया। गुरु महाराज कोविदाचार्य का जब ध्यान पूर्ण हुआ तब उन्होने हमे धर्मलाभ दिया और अकलंक के साथ वार्तालाप किया। अकलक ने कुछ प्रश्न पूछे जिसका कोविदाचार्य ने उत्तर दिया। फिर वे धर्मोपदेश देने लगे। उसी समय मैंने उनके पास में बैठे महात्मा सदागम को देखा। [५८८–५९०]

मैने अकलंक से पूछा—मित्र ! यह सदागम कौन है ?

अकलक—घनवाहन ! ये महात्मा सदागम साधु-पुरुषो के आराध्य हैं। ये जो आज्ञा देते है उसे विनयपूर्वक सभी साधु स्वीकार करते है। सदागम का गुण-गौरव एव महत्व आचार्यदेव भली प्रकार जानते है। हे भद्र ! ये धर्म और अधर्म का विवेचन करने वाले और अत्यन्त हितकारी हैं, अतः इनसे सदुपदेश प्राप्त करने के लिए तुझे इनसे परिचय करना चाहिए। मुझे, इन साधुओ को और आचार्य भगवान् को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह महात्मा सदागम से ही प्राप्त हुआ है। आचार्यश्री इन हितकारी सदागम से तेरा परिचय/सम्बन्ध करा देंगे। इनसे परिचय/सम्बन्ध करने पर तुझे शीघ्र ही अपना लाभ-हानि, हित-अहित क्रमशः सब ज्ञात हो जायगा।

हे भद्रे ! मित्र के आग्रह से और कुछ अन्तरात्मा के सन्तोष से मैने सदागम से परिचय/सम्बन्ध स्थापित किया। कोविदाचार्य ने सदागम के गुण और महत्ता बतलाई, पर मुझे उसके प्रति श्रद्धा नही हुई। केवल मित्र अकलक को प्रसन्न करने के लिये श्रद्धाशून्य होकर मै चैत्यवन्दन करता, साधुओं को दान आदि देता, पर मेरी अन्तरात्मा मे इनके प्रति प्रीति नही थी। भावशून्य चित्त से मैं ऊपरी दिखावे के लिये सब काम करने लगा। हे भद्रे ! अकलक के अनुरोध से मै नमस्कार मन्त्र आदि का जप और पाठ भी करने लगा। इन सब कार्यो को करने में मेरा मन तो नही था, पर अकलक के आग्रह से मै सब कुछ करता रहा। [५९१–६००]

तदनन्तर माता-पिता की आज्ञा लेकर अकलंक ने तुरन्त ही गुरु कोविदाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और सुसाधुओ से परिवृत आचार्यश्री के साथ मुनिचर्या के अनुसार विहार करते हुए अन्य स्थान को चला गया। [६०१–६०२]

---

* पृष्ठ ६५६
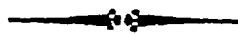
११. महामोह और परिग्रह

इधर महामोह राजा के राज्य में जब पता लगा कि चारित्रधर्मराज द्वारा सदागम को मेरे पास भेजा गया है तो वहाँ जिस प्रकार की हलचल मची, उसे भी बतलाता हूँ।

रागकेसरी के मन्त्री विषयाभिलाष को जब मालूम हुआ कि उसका विशिष्ट अधिकारी ज्ञानसंवरण सदागम के भय से छिपकर बैठ गया है तब उसने महामोह महाराजा से कहा—महाराज ! अभी तक ज्ञानसंवरण को किसी प्रकार त्रास या भय नही था और हम सब निश्चित बैठे थे। परन्तु, देव ! अब सदागम ससारी जीव के पास जाकर रहने लगा है, जिससे ज्ञानसंवरण भयभीत हो गया है। सदागम आपका कट्टर विरोधी है, * अत. उसकी उपेक्षा करना तनिक भी उचित नही है। विद्वान् लोग "नाखून से उखाडी जाने वाली वस्तु को इतनी बढने ही नही देते कि फिर उसे कुल्हाडी से उखाड़नी पडे।" [६०३–६०७]

मन्त्री के उपर्युक्त वचन सुनकर महामोहराज की पूरी सभा क्षुब्ध और सदागम पर क्रोधित हो उठी। महायोद्धा भौहे चढाकर हुंकार करने लगे, होठ काटने लगे और जमीन पर पाव पछाडते हुए एक साथ ही महामोहराज से कहने लगे—'देव ! हमे आज्ञा दीजिये, हमे जाकर पापी सदागम को मार डालना चाहिये।' प्रत्येक योद्धा की आवाज एक-साथ होने से सभा-स्थल मे खलबली मच गयी।

इस परिस्थिति को देखकर महामोह राजा ने कहा—मेरे वीर सैनिको ! तुम सब कथनानुसार करने वाले ही हो। किन्तु, महापापी सदागम ने ससारी जीव के पास मेरे द्वारा प्रेषित ज्ञानसंवरण का अपमान किया है, अतः उस दुरात्मा का हनन मेरे हाथो से ही हो, यह उचित है। वीरो ! मैं तुम सब का सामूहिक रूप ही हूँ, अत· सदागम मेरे द्वारा मारे जाने पर भी उसका श्रेय तुम सब को ही मिलेगा। क्योकि, तुम सब मुझ मे समाये हुए ही हो, इसलिये उसे मारने के लिये मेरा जाना वास्तव मे तुम्हारे जाने के समान ही है। तुम सब यही रहो, पापी सदागम को मारने के लिये मैं स्वय ही जाता हूँ। तुम सब स्वामीभक्त हो इसलिये सावधान रहना। तुम्हारे मे से जब कभी किसी की आवश्यकता पडेगी तब बीच-बीच मे यथा-अवसर अपना कर्त्तव्य निभाते रहना।

हे वीरो ! मेरे पौत्र रागकेसरी के पुत्र सागर का मित्र परिग्रह मुझे बहुत प्रिय है, उसे यहाँ छोड़कर जाना मुझे अच्छा नही लगता। यह महाशक्तिशाली है

---

* पृष्ठ ६६०

और समग्र दृष्टि से मेरी सहायता करने योग्य है, अतः अकेले परिग्रह को अपने साथ लेकर मै सदागम का नाश करने जा रहा हूँ ।

महाराजा महामोह का अत्यन्त आग्रह देखकर सब ने मस्तक झुका कर उनके कथन को मान्य किया । [६०८-६१९]

हे भद्रे ! तत्पश्चात् महामोह और परिग्रह अत्यन्त उत्साह पूर्वक मेरे समीप आये । मैंने इन दोनो को आते हुए देखा । हे चपललोचना सुन्दरि ! अनादि काल से इनके विषय मे अभ्यस्त होने के कारण मेरा इनसे स्नेह-सम्बन्ध पुनः शीघ्र ही स्थापित हो गया ।

उसी समय मेरे पिता श्री जीमूतराज नरेन्द्र की मृत्यु हुई । सभी सम्बन्धियो और मत्रियो ने मुझे राजगद्दी पर विठाया । सभी सामन्तो ने मेरी आज्ञा स्वीकार की । शत्रु मेरे दास हो गये । अनेक विभूतियो से परिपूर्ण समृद्ध राज्य मुझे प्राप्त हुआ । मेरे राज्य-प्राप्ति का आन्तरिक कारण तो मेरा पुण्योदय मित्र था किन्तु महामोह के स्नेह मे मग्न मैंने उस समय उसे नही पहचाना और यह सब परिग्रह मित्र का प्रभाव ही समझा । [६२०-६२४]

इधर जब मेरा मन शरीर, विषयभोग, राज्य, चित्र-विचित्र * विभूतियो और पौद्गलिक पदार्थों की तरफ आकर्षित होता रहता था उस समय सदागम मुझे परामर्श देता—भाई घनवाहन ! ये सभी वस्तुएँ क्षणभगुर है, दुःख से पूर्ण हैं, मल से भरी हुई है, तेरे स्वभाव से विपरीत है, बाह्य-भ्रमण कराने वाली हैं, अतः हे घनवाहन ! तू इन पर मूर्छा मत रख । तेरी आत्मा ज्ञान, दर्शन, वीर्य और आनन्द से पूर्ण है । यह आनन्द स्थिर, शुद्ध और स्वाभाविक है और तुझे अन्तर्मुखी करने वाला है । अतः हे नरोत्तम ! तुझे उसी तरफ आकर्षित होना चाहिये । जिससे तू निरतर आनन्द और निर्वृति को प्राप्त कर सके । [६२५-६२८]

दूसरी तरफ महामोह मुझे शिक्षा देता कि मेरा राज्य, सपत्तियां, शरीर, शब्दादि इन्द्रिय-भोग और अन्य सभी जो ऐसे पदार्थ है वे स्थिर है, सुखपूर्ण है, निर्मल है, हितकारी है और उत्तम है । महामोह पुनः कहता कि जीव, देव, मोक्ष, पुनर्जन्म, पुण्य, पापादि कुछ भी नही है । यह ससार पचभूत का बना हुआ है । अतः हे घनवाहन ! जब तक शरीर है तब तक इच्छानुसार खाओ, पीओ, आनन्द करो, रात-दिन सुन्दर भोग भोगो और मनोहर नेत्र वाली ललित ललनाओ के साथ यथेष्ठ काम-सुख भोगो । पहला मूर्ख पुरुष तुझे जो सीख देता है उसे तू मत मान । [६२९-६३३]

इसी समय परिग्रह कहने लगा—हे घनवाहन ! सोना, अनाज, रत्न, आभूषण आदि प्रयत्न पूर्वक एकत्रित कर । अर्थात् तू घर बना, जमीन खरीद और चारो तरफ अपनी समृद्धि को बढा । इसके लिये यथाशक्य प्रयत्न कर । जो प्राणी

* पृष्ठ ६६१

प्राप्त धन का भली प्रकार रक्षण करता है और अप्राप्त के लिये प्रयत्न करता है, जो कभी सतुष्ट होकर नही बैठता, उसी को निरन्तर सुख प्राप्त होता है।
[६३४–६३५]

हे सुलोचने ! सदागम, महामोह और परिग्रह की ऐसी भिन्न-भिन्न शिक्षा को सुनकर मेरा मन किञ्चित् डावाडोल हो गया। मै निर्णय नही ले सका कि मुझे क्या करना और क्या नही करना चाहिये। इसी समय ज्ञानसवरण जो छिप गया था, महामोह की उपस्थिति से उसमे पुन. शक्ति आई और भय छोड़कर वह मेरे शरीर में पुन: प्रविष्ट हो गया। इससे सदागम द्वारा दिया गया उपदेश और उसका रहस्य मेरी समझ मे नही आया और उसकी मधुर वाणी से मेरा चित्त रजित नही हुआ। हे भद्रे ! अनादि काल से अत्यन्त अभ्यस्त होने के कारण महा-मोह और महापरिग्रह का कथन मुझे सचोट लगा और वह मेरे हृदय मे जम गया। अत· मैंने देव-पूजा, गुरु-वन्दन, नमस्कार मत्र का जाप आदि धर्मक्रियाओ का त्याग कर दिया और भोगो मे आसक्त हो गया। मैंने साधुओ को दान देना और अन्य सत्कार्यों मे धन का उपयोग करना बन्द कर दिया तथा अधिकाधिक धन एकत्रित करने लगा। प्रजा पर नये-नये कर थोपने लगा जिससे प्रजा कर के बोझ से दब-सी गयी। फिर मुझे सभी सासारिक कार्यों मे अत्यन्त गाढ आसक्ति होने लगी। मोहराज अपनी शक्ति का यथाशक्य उपयोग करने लगा। सदागम के प्रति मुझे तनिक भी रुचि नही रही। परिग्रह के वशीभूत मुझे सब कुछ कम ही नजर आने लगा। चाहे जितनी प्राप्ति हो फिर भी मेरी इच्छा कभी पूरी नही होती। जितना अधिक मिले उससे भी अधिक अर्थात् समस्त धन प्राप्त करने की इच्छा होती रहती। * मेरी आन्तरिक स्थिति को ऐसी देखकर सदागम मुझ से दूर चला गया। महामोह और परिग्रह मेरे आन्तरिक राज्य के स्वामी बन गये। उनकी इच्छा पूरी हुई जिससे उन्हे प्रसन्नता और सतोष हुआ। [६३६–६४४]

अकलंक मुनि और कोविदाचार्य का आगमन

अन्यदा कोविदाचार्य मेरे मित्र अकलक और अन्य साधुओ के साथ भिन्न-भिन्न स्थानो मे विहार करते हुए मेरे नगर मे आये। मै वैसे किसी साधु को वन्दन करने नही जाता था, पर अकलक से मेरा पुराना गाढ स्नेह था इसलिये उसे प्रसन्न करने के लिये वहाँ गया और अकलक तथा उसके गुरु कोविदाचार्य तथा अन्य सभी मुनियो को नमस्कार किया।

कोविदाचार्य ने अपने ज्ञान बल से मेरा पूरा इतिवृत्त (चरित्र) जान लिया था। अन्य लोगो से भी अकलक ने मेरे बारे मे बहुत कुछ सुन लिया था। अत प्रसगानुसार मुनि अकलक ने अपने आचार्य से कहा—नाथ ! सदागम का क्या महत्त्व है और उसकी कितनी शक्ति है ? यह राजा धनवाहन को समझाने की कृपा

---

* पृष्ठ ६६२

करे। साथ ही दुर्जनो की सगति से प्राणियो में क्या-क्या दूषण उत्पन्न होते है ? क्या-क्या हानि होती है ? यह भी आप उसे विशेष रूप से बतलाइये, जिससे इसको सत्य मार्ग का सम्यक् प्रकार से ज्ञान हो सके। यदि यह सदागम की भक्ति करे और महामोह एव परिग्रह की दुष्ट सगति छोड़ दे तो इसे इस भव तथा पर भव मे अतुल सुख प्राप्त हो। अतः हे विभो ! आप कृपा कर इसे सत्य का परिचय कराइये।
[६४५-६५०]

कोविदसूरि ने स्वीकृति दी, फिर मुझे ध्यानपूर्वक सुनने को कहा। अकलंक के आग्रह से मै सूरि महाराज के निकट बैठा और सूरि महाराज ने अपनी कथा हमे सुनाई।

१२. श्रुति, कोविद और बालिश

[अकलक मुनि के कहने से मन मे आचार्य-भगवान् की कथा के प्रति निरादर होते हुए भी अपने चित्त को अन्यत्र लगाकर मै कथा सुनने तो बैठ गया, पर मुझे उनकी कथा मे कोई रुचि नही थी।]

आचार्य महाराज ने कथा प्रारम्भ की :—

एक क्षमातल नामक नगर है जिसके राजा का नाम स्वमलनिचय और रानी का नाम तदनुभूति है। इनके कोविद और बालिश नामक दो पुत्र है। कोविद का पूर्वजन्म मे सदागम से परिचय हुआ था। जब कोविद ने इस जन्म मे फिर से सदागम को देखा तब ऊहापोह (विचार) करते-करते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया, जिससे पूर्वकाल का परिचय स्मृति मे आ गया और सदागम को देखकर उसके चित्त मे आनन्द की वृद्धि हुई। फिर यह समझ कर कि यही मेरा हितकारी गुरु है उसने सदागम को अपना गुरु स्वीकार किया। कोविद ने सदागम का स्वरूप बालिश को भी समझाया, किन्तु उसके हृदय में पाप होने से उस दुर्बुद्धि ने उसे स्वीकार नही किया।

कोविद का श्रुति के साथ लग्न

इधर कर्मपरिणाम महाराज ने अपनी कन्या श्रुति को कोविद और बालिश के पास भेजा। यह कन्या स्वयवर द्वारा विवाह करने की इच्छुक थी। कन्या के साथ एक सग नामक दासपुत्र था। यह दासपुत्र सम्बन्ध कराने मे अतीव निपुण और चालाक था तथा सर्वदा श्रुति के आगे-आगे चलने वाला था। सग को श्रुति से पहले ही

वहाँ भेज दिया गया था। श्रुति ने कोविद और बालिश दोनो को पसद किया और दोनो से विवाह किया।

कोविद और बालिश के स्वाधिकार मे निजदेह नामक पर्वत था जिसके ऊपर मूर्धा नामक महाशिखर था। इस शिखर के दोनो तरफ श्रवण नामक कपाट युक्त दो कक्ष थे। श्रुति ने इन दोनो कक्षो को देखा और अपने निवास के लिये पसद किया। पति की आज्ञा लेकर वह इन दोनो कमरो में रहने लगी। इस प्रकार श्रुति श्रवणप्रासाद मे कोविद और बालिश के साथ विचरण करने लगी।

बालिश और श्रुति

इधर श्रुति को प्राप्त कर * बालिश प्रसन्न हुआ। अत्यन्त हर्षित होकर वह सोचने लगा कि, अहा ! मै बहुत भाग्यशाली हूँ कि मुझे पुण्य के प्रभाव से इतनी सुन्दर मनोहर श्रुति नामक स्त्री प्राप्त हुई है। मै भाग्यवान हूँ, कृतकृत्य हूँ, पुण्यवान हूँ। [६५१-६५२]

उसे श्रुति के प्रति स्नेहपरायण जानकर, अवसर देखकर एक दिन सग उसके पास गया और मधुर वाणी मे बोला—

हे देव ! आपके अत्यन्त हितेच्छु कर्मपरिणाम महाराजा ने मेरी स्वामिनी श्रुतिदेवी का विवाह आपके साथ किया यह बहुत ही उत्तम कार्य हुआ। महाराज ! रूप, वय, कुल, शील और लावण्य मे समानता होने पर पति-पत्नी मे परस्पर प्रेम होता है, किन्तु इन सब मे समानता बहुत कठिनाई से प्राप्त होती है। आप पुण्यवान है कि आपको पुण्य-कर्मो से इन सब मे समानता प्राप्त हुई है। अब इस मनोहर प्रेम-सम्बन्ध को यथाशक्य अधिकाधिक बढाने की आवश्यकता है। [६५३-६५६]

शठात्मा दासपुत्र सग के वाक्य सुनकर बालिश बोला—भाई सग ! तेरी बात तो ठीक है, पर यह तो बता कि यह प्रेम-सम्बन्ध कैसे बढ़े ?

सग—प्रिया को जो वस्तु अधिक प्रिय हो, उसका उसे बार-बार उपभोग करवाने से प्रेम-सम्बन्ध बढता है।

बालिश—मेरी प्रिया को कौनसी वस्तु अधिक प्रिय है, यह तो बता ?

सग—देव ! इन्हे मधुर ध्वनि बहुत प्रिय है।

बालिश—यदि ऐसा ही है तो मै ऐसा प्रबन्ध कर दूंगा कि एक क्षण के भी विश्राम बिना वह निरन्तर मधुर ध्वनि सुनती ही रहे।

सग—धन्यवाद कुमार ! आपकी बडी कृपा।

प्रियतमा की प्रिय वस्तु को बताने वाले उसके दासपुत्र सग पर बालिश को अत्यधिक प्रेम उत्पन्न हुआ, अतः उसने उसे अपने हृदय मे स्थापित कर लिया। [६५७-६६०]

---

* पृष्ठ ६६३

इसके पश्चात् बालिश श्रुति को वीणा, वेणु, मृदग, काकली, गीत आदि मधुर स्वर और गायन सुनाने लगा। जब श्रुति इससे प्रसन्न होती तो वह प्रमुदित होता और मन मे समझता कि वह बहुत सुखी है। इस ससार मे उसे स्वर्ग का सुख मिल गया है। वह सचमुच भाग्यवान है कि उसे सततानन्ददायी श्रुति जैसी पत्नी मिली। [६६१–६६२]

वालिश दासपुत्र सग को अपने हृदय मे स्थापित कर अत्यन्त स्नेह से उसकी चापलूसी करते हुए, सुन्दर मधुर ध्वनि, राग-रागिनियो और वादित्रो के नाद से श्रुति का पालन-पोषण करने लगा। अन्त मे वह राग-रागिनियो मे इतना डूब गया कि उसने दूसरे सब काम छोड़ दिये, धर्म को दूर से ही नमस्कार किया और छैल-छबीला जैसा व्यवहार करने लगा, जिससे वह विवेकीजनो की दृष्टि मे हास्यपात्र बन गया। [६६३–६६४]

कोविद और श्रुति

इधर कोविद ने सदागम से पूछा – महाराज! श्रुति स्वय चलकर मेरे पास आई और मेरा वरण किया, अत: वह मेरी हितेच्छु है या नही? कृपा कर बतलाइये।

सदागम—हे नरोत्तम कोविद! जब यह तेरी पत्नी दासपुत्र सग के साथ हो तब वह तनिक भी हितेच्छु नही है। इसका कारण मे बतलाता हूँ, तू सुन।

रागकेसरी राजा के मंत्री ने पहले ससार को वश मे करने के लिये पाँच अधिकारी भेजे थे उनमे से एक यह है। रागकेसरी मोहराजा का पुत्र है और कर्म-परिणाम महाराजा का भतीजा है। रागकेसरी कर्मपरिणाम महाराजा का मत्री भी है और जगत् प्रसिद्ध लुटेरा भी है। महामोह का तो सारा कार्य यही करता है। सभी लोग विश्वासपूर्वक जानते है कि कर्मपरिणाम महाराजा सब से अधिक बलवान, सर्वश्रेष्ठ * और सभी प्राणियो का बुरा-भला करने वाले है। यदि लोगो को यह मालूम हो जाय कि श्रुति इस लुटेरे रागकेसरी की पुत्री है, तो कोई उससे विवाह करने को तैयार न हो। अत. रागकेसरी ने अपने विशेष सेवक सग को श्रुति की सेवा मे नियुक्त कर दिया है तथा उसको सब गुप्त बाते बताकर पहले से ही यहाँ भेज दिया है। वह श्रुति को कर्मपरिणाम की पुत्री बतलाता है, परन्तु वस्तुत श्रुति रागकेसरी की ही पुत्री है। दुरात्मा रागकेसरी ने ससार को ठगने के लिये अपनी कन्या को सग के साथ भेजा है, तब वह तुम्हारी हितेच्छु कैसे हो सकती है? यद्यपि तूने उसे अपनी पत्नी बनाया है, पर वह पति को ठगने वाली है, अत: हे भद्र! तू कभी उसका विश्वास मत करना। तूने उससे विवाह कर लिया है इसलिये अभी उसका त्याग तो नही किया जा सकता, पर उसके दासपुत्र सग से सदा बचकर रहना।

---

* पृष्ठ ६६४

इसका विश्वास करके कभी इसके कपट जाल मे मत फसना । यदि यह पापी सग तेरे पास नही आये तो श्रुति तेरे पास रहकर भी तेरा कुछ बिगाड़ नही सकती, तेरे लिये दोषकारिणी नही बन सकती । जब श्रुति अपने सेवक सग के साथ होती है तब वह अरुचिकर शब्दो से द्वेष और मधुर ध्वनि की लोलुप बनती है, पर स्वय यह ऐसी नही है । यह सग के साथ से ही विकृत होती है । जब यह सग के सहवास से राग-द्वेष के वश होकर तुझे प्रेरित करे तब यह अनेक दुखो की परम्परा का कारण बनती है । किन्तु, सग से दूर रहकर कैसी भी वाणी सुनकर यह मध्यस्थ रहती है, राग-द्वेष रहित रहती है, इसीलिये पीडादायक नही होती । यह नीच सग अत्यन्त अधम व्यक्ति है, दुष्टात्मा है, दासीपुत्र है और अनेक प्रकार के दुख और त्रास का कारण है, अत वह सर्वथा त्याग करने योग्य है । [६६५–६८०]

विनम्र कोविद ने सदागम की शिक्षा/परामर्श को शाति से सुना, स्वीकार किया और श्रुति के दास सग का सर्वथा त्याग कर दिया । यद्यपि कोविद ने श्रुति का विवाह-सम्बन्ध कायम रखा, तदपि अब उसमे शब्द सम्बन्धी आतुरता या उत्सुकता जागृत नही होती । उसे बुरे शब्दो से द्वेष और मधुर शब्दो पर राग नही होता । इससे लोगो में उसकी प्रशसा होती और वह स्वय सुखी हो गया । यो कोविद ने सग का त्याग कर पूर्ण सुख प्राप्त किया और बालिश ने सग को हृदय-स्थित कर भरपूर दु.ख प्राप्त किया । [६८१–६८३]

हे भूप! बाह्य प्रदेश मे एक तुगशिखर नामक बडा पर्वत है । एक दिन कोविद और बालिश उस पर्वत पर जाने लगे । इस अत्यन्त उच्च पर्वत पर देवताओ द्वारा निर्मित एक गुफा है जो बहुत विशाल है और इतनी लम्बी है कि मानव को उसका अन्त कही दिखाई नही देता । [६८४–६८५]

बालिश की मृत्यु

इधर एक किन्नर युगल और एक गन्धर्व युगल मे एक दिन गायन-कला की प्रतिस्पर्धा हुई । दोनो युगल अपनी-अपनी कला को श्रेष्ठतम बताने लगे । इस प्रतिस्पर्धा का निर्णय करने के लिये उन्होने तुगशिखर की विशाल गुफा का स्थान चुना । परीक्षको की उपस्थिति मे परस्पर की प्रतिस्पर्धा से वे दोनो युगल अपनी-अपनी गायन-कला का वहाँ एकान्त स्थान मे प्रदर्शन करने लगे । * अत्यन्त कर्ण-प्रिय मधुर ध्वनि से राग आलाप लेने लगे । हे नृप! उसी समय कोविद और बालिश भी शिखर पर पहुँच गये । गुफा के भीतर से आते युगलो के गायन के सुमधुर स्वर को सुनकर वे सावधान हो गये । [६८६–६८९]

इस समय दुरात्मा बालिश ने संग की प्रेरणा से श्रुति को गुफा के द्वार के पास खडा कर दिया । हृदयस्थित सग की प्रेरणा से स्वय भी गायन सुनने मे तल्लीन हो गया । बालिश ने अपना सर्वस्व श्रुति को अर्पण कर दिया था, अतः उस समय

* पृष्ठ ६६५

तो वह श्रुतिमय ही हो गया था। वह रस मे इतना लीन हो गया कि उसे कुछ भी सुध-बुध नही रही। सग ने भी उस समय अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया जिससे बालिश बेजान होकर निर्जीव पत्थर की शिला की तरह गुफा मे गिर पड़ा। बालिश के गिरने से गुफा मे जोरदार धमाका हुआ। धमाके से सभी देव, गन्धर्व और किन्नर चौक गये। रग मे भग होने से वे सब बालिश पर क्रोधित हुए। सभी एक साथ बोल पडे—'अरे ! यह यहाँ कौन है ? पकडो, इसे मारो।' इस प्रकार आवेश मे बोलते हुए उन्होने बालिश को बन्धनो मे जकड दिया और लात-घू सो के प्रहार से इतना मारा कि वह वही मर गया। [६९०–६९४]

कोविद की दीक्षा

इधर सदागम के उपदेश से कोविद ने सग का त्याग कर दिया जिससे श्रुति के साथ होते हुए गायन सुनकर भी वह उसमे आसक्त (मूर्छित) नही हुआ। बालिश को मार खाते और जमीन पर गिरते देखकर वह अविलम्ब पर्वत के शिखर से नीचे उतर आया और धर्मघोष नामक आचार्य के पास पहुँच गया। बालिश की घटना से उसकी विवेक बुद्धि जाग्रत हुई जिससे उसने दीक्षा ग्रहण करली और साधु बन गया। अनुक्रम से उसके गुरु ने उसे अपने स्थान पर आचार्य पद प्रदान किया। हे राजन् ! वही कोविद मैं स्वय हूँ। [६९५–६९८]

राजेन्द्र ! मेरा भाई बालिश अपने शत्रु रूप मित्र सग की सगति से व्यथित हुआ, अनेक दु:ख प्राप्त किये और अन्त मे मृत्यु को प्राप्त हुआ। हितकारी महात्मा सदागम ने मुझे ऐसे दु ख-जाल से बचाया, क्योकि उनके उपदेश से ही मैंने सग का त्याग किया था। फिर सयम ग्रहण करने के पश्चात् तो मेरे लिये सर्वदा आनन्द ही आनन्द है। यह सब उपकारी सदागम का ही प्रताप है। अभी भी मै सदागम के प्रत्येक निर्देश/आज्ञा का पालन करता हूँ। सदागम समस्त प्राणियो का हितेच्छु है। आत्मा मे स्थित आन्तरिक शत्रुओ (मोहराज, परिग्रह) की सगति का परिणाम बहुत ही भयकर है। हे महाराज ! अत. जो प्राणी वास्तव मे अपनी भलाई/हित चाहते हो उन्हे दुष्ट आन्तरिक शत्रुओ की सगति का त्याग कर सदागम के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। [६९९–७०३]

घनवाहन का द्रव्य-आचार

हे अगृहीतसकेता ! महात्मा कोविदाचार्य की अत्यन्त सुन्दर आत्मकथा मुझे नाममात्र भी नही रुचि। इसके विपरीत मुझे मन मे ऐसा लगने लगा कि आचार्य और अकलक ने मिलकर किसी भी प्रकार मेरा महामोह और परिग्रह से साथ छुडाकर सदागम से सगति कराने के लिये ही यह षड्यन्त्र रचा है। [७०४–७०५]*

---

* पृष्ठ ६६६

इस प्रकार मेरे मन मे विचार चल रहे थे और 'मुझे क्या करना चाहिये' इस चिन्ता मे पड़ा हुआ था। उसी समय मेरे मन के विचारो और आशय को समझने वाले मुनि अकलक ने झट से अवसरानुसार बात छेड दी। वे बोले—भाई घनवाहन! आचार्य भगवान् की वाणी तुझे बराबर समझ मे आई या नही? उत्तर मे मैने कहा—हाँ भाई! बराबर समझ गया। बुद्धिमान् अकलक ने अवसर का लाभ उठाकर तुरन्त कहा—यदि बराबर समझ मे आ गई हो तब तो आज से ही उसी के अनुसार आचरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। [७०६–७०७]

अकलक पर मेरा अत्यन्त स्नेह था, भगवान् कोविदाचार्य के आस-पास का वातावरण भी अचित्य रूप से प्रभावित था, मेरी कर्मग्रथि भी नष्ट होने के निकट पहुँच गई थी और मुझ मे आचार्य के समक्ष कुछ कहने की सामर्थ्य भी नही थी, अत मैने अकलंक की बात स्वीकार करली। उसी समय पुन सदागम फिर मेरे निकट आ पहुंचा। मैने फिर से चैत्यवदन आदि कृत्य प्रारम्भ कर दिये। पहले मैने जो धर्म का अभ्यास किया था उसे फिर से याद किया, ताजा किया और फिर से दान आदि देना प्रारम्भ किया। इस समय महामोह और परिग्रह मेरे से थोडे दूर खिसक गये थे। इन सब का ग्रहण मैने मात्र अकलक की लज्जा से ऊपर-ऊपर से किया था। मेरे मन मे तो इनके प्रति किंचित् भी प्रेम नही था, क्योकि मैने इन सब को अन्तर्मन से स्वीकार नही किया था।

उस समय अकलक को तो ऐसा लगने लगा मानो मेरी सासारिक पदार्थो के प्रति आसक्ति कम हुई हो, मानो धनसचय के सम्बन्ध मे अब मुझे सतोष हो गया हो और सदागम के साथ मेरा पूर्ण सम्बन्ध हो गया हो। मेरी स्थिति को सुधरा हुआ समझ कर अकलक मुनि और आचार्य महाराज वहाँ से विहार कर अन्यत्र चले गये।

१३. शोक और द्रव्याचार

हे भद्रे! अकलक मुनि के अन्यत्र विहार करते ही महामोह और परिग्रह फिर जाग्रत हुए, प्रसन्न हुए और मेरे निकट आगये तथा सदागम फिर मुझ से दूर चला गया। मैं फिर दान आदि सत्कार्यो के प्रति शिथिल हो गया। धर्मोपदेश पूर्णत. भूल गया और एकदम पशु जैसा बन गया। मुझ मे जो धर्मांकुर उगे थे वे व्यर्थ हो गये। धीरे-धीरे मैं पुनः विषय-सेवन मे मूर्छान्ध और धन एकत्रित करने मे तल्लीन हो गया। अनेक स्त्रिया और सुवर्ण एकत्रित करने मे मैं प्रजा को अनेक प्रकार से

पीड़ित करने लगा। अनेक प्रकार की भोग-तृप्ति के लिये मैने महलो में हजारो स्त्रिया एकत्रित की, सोने से सैंकड़ो कुँए भर दिये और महामोह के अधीन होकर पृथ्वी को स्वर्ण रहित बना दिया। इस ससार मे ऐसा कौनसा पाप होगा जो मैंने मोह और परिग्रह के वश मे होकर न किया हो! मेरी सारी इच्छाये मेरे अन्तरग मित्र पुण्योदय की कृपा से पूरी होती थी, पर मैं मोह और परिग्रह के वशीभूत इस तथ्य को न समझ सका। उसे प्रेम का प्रत्युत्तर भी नही दिया, जिससे वह मुझ पर कुछ क्रोधित हो गया। [७०८–७१३]

शोक का आगमन

उसी समय मेरी हृदयवल्लभा प्रिया मदनसुन्दरी जो मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय थी वह शूल-व्याधि से पीड़ित हुई। थोडे दिन व्याधिग्रस्त रही और अन्त मे मृत्यु को प्राप्त हुई। मेरे हृदय पर भारी आघात लगा। [७१४]

इसी समय महामोह का एक बड़ा योद्धा शोक, जो अत्यन्त विनयी सेवक था, अपने स्वामी के पास आया। आदर-पूर्वक अपने स्वामी को प्रणाम किया और अवसर देखकर अत्यन्त कपट-पूर्वक मुझ मे समा गया। [७१५–७१६]

देवी मदनसुन्दरी को पुन.-पुन· याद कर मैं उच्च स्वर से रोने लगा, चिल्लाने लगा, सिर पीटने लगा और आँसू गिराने लगा। मैंने अपने शरीर-सस्कार और राज्यकार्य पर ध्यान देना एकदम बन्द कर दिया और अत्यन्त दु खित अवस्था मे ऐसा बन गया मानो मुझे कोई ग्रह लगा हो। [८१७–७१८]

अकलक का उपदेश

किसी ने अकलक मुनि के पास मदनसुन्दरी की मृत्यु और मेरे शोकमग्न होने के समाचार पहुँचा दिये। यह सुनकर * मुझ पर कृपा कर वे मेरे नगर मे पधारे। उन्होने आकर देखा कि मैं एकदम शोकमग्न हूँ और मैंने सभी सत्कार्य छोड दिये है, तब मुझ पर दया कर उन्होने कहा—भाई घनवाहन! यह तू क्या कर रहा है? क्या तू मेरा वचन एकदम भूल गया है? क्या तूने सदागम को छोड़ दिया है? अरे! इन दुष्टो ने तुझे सचमुच ठग लिया है। भाई! तू तो सब कुछ समझता था, आतरिक रहस्य जानता था, फिर ऐसी बच्चो जैसी चेष्टा क्या तुझे शोभा दे रही है? शोक तुझे बार-बार मदनसुन्दरी की याद दिलाकर तेरे चित्त को व्याकुल कर रहा है, क्या तू यह नही जानता? मेरी बतायी सब बाते भूल गया? अरे! तनिक सोच तो सही! सभी प्राणी यमराज के मु ह मे ही है तथापि उनका एक क्षण का जीवन भी आश्चर्यजनक ही है। यमराज कब ग्रास बना लेगा यह कोई नही जानता। यमराज इतना क्रूर है कि यह प्रेम, बन्धन, अवस्था, सम्बन्ध किसी की भी अपेक्षा नही करता। मदमस्त हाथी की तरह उसके मार्ग मे जो भी आता

* पृष्ठ ६६७

है उसका कचूमर निकाल देता है। यह कृतान्त (यमराज) हिमकण जैसा व्यवहार कर सज्जन रूपी सुन्दर कमल और लोगो की आखो के तारो को क्षण भर मे सुखा देने वाला है। मनुष्य शरीरधारी को मत्र-तत्र, धन के ढेर, बडे-बडे निपुण वैद्य, रामबाण औषधिया, भाई-बन्धु और स्वय इन्द्र भी यमराज से नही छुडा सकता। मृत्यु ऐसा उपद्रव है जिसका प्रतीकार/प्रतिशोध अशक्य है। एक दिन सभी को जाना है, फिर इस सिद्ध मार्ग पर किसी को जाते देख कर कौन समझदार व्यक्ति घबरायेगा ? विह्वल होगा ? [७१९–७२८]

महाभाग्यशाली अकलक मुनि मेरे शोक को दूर करने के लिये अश्रान्त होकर प्रतिदिन मुझे धर्मोपदेश देते रहते। भिन्न-भिन्न प्रकार से जीवन-मरण के सम्बन्ध मे बताते। मृत्यु सम्बन्धी विशिष्ट तत्त्वज्ञान के झरने मेरे समक्ष बहाते, परन्तु महामोह के वशीभूत मै शोक की चाल ही चलता और महात्मा अकलक के वचनो पर ध्यान नही देता। मैं हतबुद्धि होकर बार-बार रोता। हे बाले ! प्रिये ! प्रियतमे ! सुन्दरी ! प्रेमिके ! हे सुमुखि ! हे कमलनयने ! सुन्दर भौरो वाली ! कान्ता ! मृदुभाषिणी ! पतिवत्सला ! पतिप्रेमी ! पतिव्रता ! हा देवी मदनसुन्दरी ! तेरे प्राणप्यारे घनवाहन को इस प्रकार रोता छोडकर तू कहाँ चली गई ? प्यारी ! तू मुझे शीघ्रता से एक बार अपना दर्शन देदे। इस रोते विरही से एक बार बात करले। प्रिये ! यहाँ आकर एक बार मुझ से मिल जा और मेरी इस अत्यन्त दयनीय स्थिति को अपनी उपस्थिति से दूर कर दे।

हे भद्रे ! मैं तो महात्मा अकलंक के समक्ष भी निर्लज्ज होकर इस प्रकार अनर्गल प्रलाप करता रहता और वे मुझे बार-बार उपदेश दे रहे है, इस पर तनिक भी लक्ष्य नही देता। [७२९–७३४]

हे भद्रे ! महामति अकलक सब कुछ देखते, मोह के साम्राज्य पर विचार करते। स्वय महाबुद्धिशाली, दयावान, परोपकारी तथा मेरे प्रति स्नेहशील होने से मेरी दयनीय स्थिति को देखकर वे पुन मुझे उपदेश देने लगे :—[७३५]

महाराज घनवाहन ! तेरे जैसे के लिये ऐसा बच्चो जैसा व्यवहार योग्य नही है। तू पुरुषत्वहीनता को छोड, धैर्य धारण कर, अन्त करण से स्वस्थ बन, अपनी आत्मा को स्मरण कर, अपना एकान्त अहित करने वाले महामोह का त्याग कर, शोक को * छोड और परिग्रह का सम्पर्क शिथिल कर। सदागम का अनुसरण कर और उसके उपदेश के अनुसार आचरण कर जिससे कि मेरे चित्त को प्रसन्नता हो। भाई ! क्या तू इतने ही दिनो मे उन प्रथम मुनि की लोकोदर मे आग (ससाराग्नि) की कथा भूल गया ? क्या तू ससार मद्यशाला की कथा भी भूल गया ? क्या ससार अरहट चक्र की बात भी तुझे याद नही रही ? क्या ससार मठ मे रहने वाले लोगो के सन्निपात और उन्माद की बात तेरे लक्ष्य मे नही रही ? मनुष्य

* पृष्ठ ६६८

जन्म रूपी रत्नद्वीप की दुर्लभता का भी क्या तुझे ध्यान नही रहा ? संसार बाजार मे रहने वाले लोगो की स्थिति का पर्यालोचन कर क्या तुझे वैराग्य नही होता ? अरे ! क्या तुझे तेरे चित्त रूपी बन्दर के बच्चे की चपलता भी स्मृति मे नही रही ? क्यो भूल गया कि इस चित्त की निरन्तर रक्षा की आवश्यकता है । यदि तू उसकी रक्षा करना स्वीकार करता है तो फिर तदनुसार आचरण क्यो नही करता ? भाई ! क्यो विषवृक्षो पर कूद रहा है ? क्यो लोट-पोट होकर अर्थनिचय नामक पत्र-फल-फूल रूपी कर्मरज को अपने शरीर पर चिपका रहा है ? तू मोक्षमार्ग को भली प्रकार जानकर भी अपनी आत्मा को महाघोर नरक की तरफ क्यो घसीट रहा है ? तेरे चित्त की रक्षा द्वारा तेरी आत्मा को शिवालय मठ मे पहुँचाने का जो उपाय बताया गया है, उसको उपयोग मे लेकर अपने को सततानन्दी मोक्ष मे क्यो नही ले जाता ? हे महाराज ! ससारी प्राणियो के लिये विपत्तियाँ तो हस्तगत के समान पग-पग पर है, प्रियजनो का वियोग भी सुलभ है, बडी-बडी बीमारियाँ दूर नही जो चलते-फिरते भी हो जाती हैं, दु:ख भी एकदम पास मे ही है जो क्षण-क्षण मे चिपकने वाले है और मृत्यु तो निश्चित ही है । अत: निर्मल विवेक ही प्राणी का सच्चा रक्षक है, यही वास्तविक आधार है, अन्य कोई नही ।

शोक का पलायन

बहिन अगृहीतसकेता ! जैसे गहरी नीद मे सोये को आवाजे देकर उठाया जाय, विष के असर मे झूमते हुए व्यक्ति को सस्फुरायमान प्रबल मत्रो द्वारा स्थिर किया जाय, मद्य के नशे मे मदमस्त बने प्राणी का आकस्मिक भय द्वारा नशा उतारा जाय, या मूर्छित प्राणी को शीतल जल और पवन के योग से सचेत किया जाय और सन्निपात-ग्रस्त व्यक्ति की उन्मत्तता निपुण चिकित्सक की नियमानुसार चिकित्सा द्वारा ठीक की जाय, वैसे ही अकलक मुनि की उपर्युक्त विस्तृत सुन्दर वचन-पद्धति से मुझ मे कुछ शुद्धि आई, मै स्थिर हुआ और मुझ मे चेतना जाग्रत हुई ।

इस स्थिति को देख शोक महामोह के पास गया और नमस्कार कर बोला—देव ! अब मैं जा रहा हूँ, अकलक मुझे यहाँ रहने नही देता, बैठने नही देता । यह तो लट्ठ लेकर मेरे पीछे पडा है ।

महामोह—वत्स शोक ! यह अकलक बहुत ही क्रूर है, अति विषम है । यह घनवाहन के साथ मिल कर बेचारे को ठग रहा है, उसे विपरीत मार्ग पर ले जा रहा है । अब हमारा क्या होगा ? कुछ समझ मे नही आता । अभी तो तू जा, पर सावधान रहना । हमारा मिलन आगे फिर कभी होगा ।

शोक—'जैसी महाराज की आज्ञा' कहकर वह वहाँ से विदा हुआ ।

मैंने भी अकलक मुनि के वचन स्वीकार किये । सदागम के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया तथा महामोह और परिग्रह के प्रति किंचित् तिरस्कार जताया । पहले

सीखे हुए ज्ञान का फिर से प्रत्यावर्तन किया, नये शास्त्रो को पढने के प्रति आदर दिखाया, जिन मन्दिर बनवाये, प्रतिमाये स्थापित करवाई, तीर्थ-यात्राये की, स्नात्र महोत्सव करवाये और सुपात्रो को दान दिया। मेरी शुभ क्रियाओ को देखकर अकलक मुनि को मन मे सतोष हुआ कि उसने मुझे गुणवान बना दिया है, मुझे सुमार्ग पर ले आया है।

१४. सागर, बहुलिका और कृपणता

महामोह के विशेष अगरक्षक और अति समर्थ सागर (लोभ) ने जब अपने मित्र परिग्रह की दुर्दशा सुनी तब उसे अपने मन मे अत्यन्त दु ख हुआ और वह मित्र की सहायता के लिये मेरे पास आने को तत्पर हुआ।* इसके लिए उसने राग-केसरी से आज्ञा मागी, जो उसे प्राप्त हो गयी। उस समय वहाँ बहुलिका भी उपस्थित थी, उसने अपने पिता रागकेसरी से कहा—पिताजी! जहाँ सागर जाय वहां मुझे तो अवश्य ही जाना चाहिये। आप तो जानते ही है कि वह मेरे बिना एक क्षण भी नही रह सकता।

बहुलिका की मांग पर विचार करते हुए रागकेसरी ने उत्तर मे कहा—पुत्रि! अच्छी बात है, यदि ऐसा ही है तब तू भी जा। पर, कृपणता तो सागर का शरीर और प्राण ही है। जब तू जा रही है तो उसे भी साथ लेती जा, इससे सागर को भी धैर्य रहेगा। बहुलिका और कृपणता दोनो बहिने भी साथ आ रही है यह जानकर सागर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने पिताजी की कृपा का आभार माना और दोनो बहिनो के साथ मेरे पास आ पहुँचा।

इन तीनो को मेरे पास आते देखकर महामोह और परिग्रह भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। आते ही कृपणता ने मेरा आलिगन किया जिससे मेरे मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि सुख के साधन उपलब्ध कराने वाले अपने धन का अदृष्ट पारलौकिक सुख के लिए व्यय करना क्या व्यर्थ नही है? पर, यह अकलक मुनि तो मुझे नित्य ही द्रव्यस्तव (पूजा, यात्रा, महोत्सवादि) करने की प्रेरणा देता है और कहता है कि महाराज घनवाहन! यदि अभी तेरी भावस्तव (त्याग, समता, आत्मरमणतादि) करने की क्षमता नही है तो द्रव्यस्तव का आदर किया कर, आचरण किया कर।

* पृष्ठ ६६९

धीरे-धीरे भावस्तव की क्षमता भी आजायेगी। उनके कहने से मैंने विपुल धन व्यर्थ मे ही खर्च कर दिया, अब मुझे क्या करना चाहिये?

कृपणता के प्रभाव से मै उपर्युक्त चिंता मे पड़ा ही था कि तभी बहुलिका ने भी मेरा आलिंगन किया जिससे मेरे मन मे कुबुद्धि उत्पन्न हुई। मै सोचने लगा 'यदि मैं किसी युक्ति से अकलक मुनि का यहाँ से विहार करा सकू तो मेरा यह व्यर्थ का खर्चा बच सकता है।' यह सोचकर मैं अकलक मुनि के पास आया और विनय पूर्वक निवेदन किया—'भगवन्! आपकी बडी कृपा है कि आप मेरे उपकार के लिए यहाँ पधारे। वह कार्य अब सम्पूर्ण हुआ और आपका मासकल्प (शेषकाल) भी समाप्त हुआ। महात्मा कोविदाचार्य को मन मे बुरा लगेगा कि विहार का समय हो जाने पर भी हमने आपको रोक कर रखा। आपके अधिक रुकने से हमे भी उपालम्भ मिलेगा, अत. अब आप यहाँ से विहार कीजिये। मैं आपके आदेशों का पूर्ण रूप से पालन करूगा। आप इस सम्बन्ध मे तनिक भी चिन्ता न करे, निश्चिन्त रहे।' मेरा कथन सुनकर मुनि अकलक वहाँ से विहार कर अपने गुरु के पास चले गये।

परिग्रह पर पुन: आसक्ति

अकलक मुनि के जाते ही सागर (लोभ) के निर्देश से मैंने धर्म कार्यों मे होने वाले धन-व्यय को बन्द कर दिया और पुनः परिग्रह मे आसक्त हो गया। [७३६]

मुझे फिर से अपने में आसक्त जानकर परिग्रह ने अपने मित्र से कहा—मित्रवत्सल सागर! मैं तो प्रत्यक्षतः क्षय हो रहा था, तुमने आकर मुझे बचा लिया। मित्र! तुझ से भी अधिक अपने भाई पर वात्सल्य रखने वाली इस कृपणता बहिन ने इस समय मुझे जीवनदान दिया है। बहुलिका भी मेरी परम उपकारिणी है, इसी ने मेरे प्रगाढ महाशत्रु अकलक को यहाँ से निर्वासित करवाया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! तुमने बहुत अच्छा किया कि समय पर पहुँच कर मेरी रक्षा की और महाराजा महामोह के प्रति अपनी सच्ची भक्ति को प्रदर्शित किया। [७३७–७४०]

इन तीनो की प्रशंसा सुनकर महामोह ने कहा—वत्स परिग्रह! * तू पूर्णरूप से सत्य ही कह रहा है। हे वत्स! यह सागर तो मेरा प्राण ही है। मैंने अपनी सारी शक्ति इसमे स्थापित कर दी है जो इसमे पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो चुकी है। मेरे सैन्यबल मे यह मेरा सच्चा भक्त है, मेरा सच्चा पुत्र है, राज्य के योग्य है और तेरी रक्षा करने मे सक्षम है। [७४१–७४३]

महामोह द्वारा उत्तेजित सागर मुझे अधिकाधिक वशीभूत करने मे समर्थ हुआ और सदागम के सम्पर्क मे बाधक बना। सागर के वशीभूत मेरी आशा-तृष्णा दिन-प्रतिदिन बढती गयी और सदागम मुझ से दूर होता गया। अन्त मे मैंने सभी

---

* पृष्ठ ६७०

सत्कार्यों का त्याग कर दिया और अकलक मुनि के आने के पहले जैसा था वैसा ही हो गया। सभी प्रकार का द्रव्यस्तव शिथिल हो गया और मैं ससाररसिक बनकर महापरिग्रह मे मूर्छित हो गया। [७४४-७४५]

कोविदाचार्य की शिक्षा

हे भद्रे! कृपासागर अकलंक मुनि ने जब मेरा वृत्तान्त सुना तब उनके मन मे फिर से मुझे सुमार्ग पर लाने का विचार उठा। उन्होने अपने गुरु कोविदाचार्य को प्रणाम कर फिर से मेरे पास आने की आज्ञा मागी।

विचक्षण आचार्य ने मुनि के हृदय के सद्भाव को समझ कर कहा—वत्स अकलक! तेरा यह प्रयत्न व्यर्थ होगा, अत. वहाँ जाने के कष्ट का त्याग कर। क्योकि, जब तक महामोह और परिग्रह उसके समीप डेरा डाले पडे है, तब तक हे मुनि! उस घनवाहन पर कुछ भी असर नही होगा। वह कर्मशील नही बन सकेगा। ये दोनो मूल नायक है और सागर आदि अनेको के आश्रय स्थान हैं। वे सभी एक के बाद एक उसके पास नियम पूर्वक आते रहेगे। वह वर्तमान मे उन दुष्टो के वश मे हो रहा है, अत· अभी उसे कैसा उपदेश? कैसा धर्म? कैसे सदागम का मिलन सम्भव हो सकता है? अभी उसे धर्मदेशना देना तो बहरे के आगे बीन बजाना, अन्धे के समक्ष नाचना और ऊसर भूमि मे बीज बोने के समान है। [७४६-७५२]

कदाचित् मान ले कि तेरे प्रयास से उसमे कुछ परिवर्तन हो भी जाय तो वह बहुत ही थोडा और अल्पकालीन होगा तथा तुझे अपने ज्ञान-ध्यान की विशिष्ट हानि होगी। तेरे द्वारा बार-बार जागृत करने पर भी जब तक वह महामोह और परिग्रह के पाश मे जकडा रहेगा तब तक वह महामोह की भावनिद्रा मे ही पडा रहेगा, अत हे आर्य! अभी तेरा घनवाहन के निकट जाना व्यर्थ है। जिससे स्व-कार्य की हानि हो ऐसे कार्य मे विचक्षण लोग नही पड़ते। [७५३-७५५]

अकलक—भगवन्! आपका कथन सत्य है, पर बेचारे इस घनवाहन का इन अनर्थकारी दुष्टो से कब छुटकारा होगा?

विद्या और निरीहता

कोविदाचार्य—तुम्हारे जैसे प्राणी चारित्रधर्मराज के सेनापति सम्यग्दर्शन को तो जानते ही है। इस सेनापति ने चारित्रधर्मराज के साथ मिल कर अपने वीर्य से एक विद्या नामक अति मनोहर मानस-कन्या निर्मित की है। यह अत्यन्त रूपवती, विशाल आँखो वाली, जगत को आह्लादित करने वाली, विश्व के भाव और अर्थ को जानने वाली और सर्व अवयवो से सुन्दर है।* ससारातीत लावण्यवती यह कन्या सतत उद्दाम लीला से विलास करती हुई, स्त्री सम्बन्ध से दूर रहने वाले मुनियो को भी अति प्रिय है। यह सभी सम्पदाओ की मूल, सब क्लेशो को नष्ट करने वाली और

* पृष्ठ ६७१

अक्षय आनन्द को प्राप्त कराने वाली कही गई है। जब घनवाहन इस कन्या से विवाह करेगा तब मोहराज के फन्दे से छूटेगा। यह कन्या अपनी शक्ति के कारण पापी महामोह की प्रबल विरोधिनी है। इस कारण ये दोनो कदापि एक साथ नही रह सकते। [७५३–७६३]

चारित्रधर्मराज की एक दूसरी निरीहता नामक निष्पाप सर्वांगसुन्दरा मनोहर कन्या है, जो विरति देवी की कुक्षि से उत्पन्न हुई है। उसके भाई उसे अत्यधिक सन्मान देते है और चारित्रधर्म के राज्य मे वह सर्व प्रिय है। यह सम्यक्दर्शन सेनापति का अत्यन्त अभीष्ट है, सद्बोध मन्त्री की अतिवल्लभ है और स्वामीभक्त तन्त्रपाल सतोष द्वारा पाली पोषी गई है। यह स्वभाव से ही अति श्रेष्ठ है। इसकी सभी इच्छाये पूर्ण हो गई हैं, अत· वह वस्त्र, आभूषण, माला आदि शरीर-शोभा की इच्छा नही करती। इसे स्वर्ण, रत्न या विविध प्रकार के भोगो से आकर्षित नही किया जा सकता। यह भाग्यशालिनी कन्या समग्र जगत् वन्द्य मुनियो की प्रिय है, दु खो का नाश करने वाली है और चित्त को आनन्द देने वाली है। जब घन-वाहन इस लावण्यवती कन्या से विवाह करेगा तब वह पापी परिग्रह के फन्दे से छूटेगा। यह कन्या दुरात्मा परिग्रह की शत्रु है, अत· उसे देखते ही वह पापी अत्यन्त भयभीत होकर भाग जायेगा। [७६४–७७१]

अकलक—भगवन् ! महामोह और परिग्रह का निर्दलन करने वाली इन दोनो कन्याओ का लग्न घनवाहन से कब होगा ?

कोविदाचार्य—बहुत समय पश्चात् घनवाहन को इन कन्याओ की प्राप्ति होगी और तभी इनका विवाह भी उसके साथ होगा।

अकलक—यदि आपकी आज्ञा हो तो इन दोनो कन्याओ को प्राप्त करवाने मे मै घनवाहन की सहायता करू ?

कोविदाचार्य—हे महाभाग ! अभी इन कन्याओ को प्राप्त करवाने का तेरे जैसे व्यक्ति को अधिकार नही है। इन दोनो कन्याओ को प्रदान करने का मात्र कर्म-परिणाम महाराज को ही अधिकार प्राप्त है। जब वे इन्हे देने के लिये सहमत होगे तभी तेरे जैसे भी उसमे हेतु बन सकेंगे।* जब उन्हे लगेगा कि घनवाहन इन कन्याओ को प्राप्त करने योग्य हो गया है तभी वे सुखप्रदाता भाग्यशालिनी कन्याओ का लग्न उसके साथ करेगे। अतएव अनधिकार चेष्टा होने के कारण तू इसकी चिन्ता छोड दे। जो वस्तु तेरे हाथ मे नही है उसके लिये आग्रह मत कर और निराकुल होकर अपने स्वाध्याय ध्यान मे तल्लीन हो जा।

हे भद्रे ! गुरुजी के वचन को स्वीकार कर अकलक मुनि ने मेरे बारे मे चिन्ता करना छोड दिया और स्वय आतुरता-रहित होकर स्वाध्याय, ज्ञान, ध्यान मे तल्लीन हो गये। [७७२–७८०]

---

* पृष्ठ ६७२

१५. महामोह का प्रबल आक्रमण

अकलक मुनि से उपेक्षित और महामोह एव परिग्रह के आश्रित होने के कारण इन दोनो के पारिवारिक लोग एक-एक करके मेरे पास आ-आ कर मुझे पीडित करने लगे। उनके अधीनस्थ एक व्यक्ति के जाते ही दूसरा आ जाता और कुछ न कुछ कारण निकाल कर मेरे पास रहने लगता। [७८१-७८२]

हे अगृहीतसकेता! महामोह के परिवार द्वारा मैं जिस प्रकार पीडित किया गया, यदि उसका विस्तृत वर्णन करने बैठू तो वह बहुत लम्बा हो जायगा और तुम भी मुझे वाचाल कहने लगोगी, इसलिये सक्षेप मे कहता हूँ, सुनो—

महामोह के प्रत्येक सेनानियों का घनवाहन पर प्रयोग

चित्तवृत्ति महाटवी मे प्रमत्तता नदी के बीच स्थित तद्विलसित द्वीप के बारे मे तो तुम्हे याद ही होगा। पूर्ववर्णित इस द्वीप मे चित्तविक्षेप मण्डप, तृष्णा वेदिका और उस पर विपर्यास सिंहासन पर बैठे महामोह राजा अपने अविद्या शरीर से शोभायमान थे, यह भी तुम्हे याद होगा। विमर्श और प्रकर्ष ने प्रस्ताव ४ मे इनका वर्णन किया है। हे विशालाक्षि! यह सब वर्णन तुम्हे अच्छी तरह याद होगा। [७८३-७८७]

अगृहीतसकेता ने कहा कि उसे यह सब याद है, अब आगे सुनाओ।

ससारी जीव ने घनवाहन के भव की अपनी कथा को आगे बढाते हुये कहा—

हे सुलोचने! इस सम्बन्ध मे विमर्श ने प्रकर्ष को जो बतलाया था वह तुझे स्मरण मे होगा कि उस वेदिका पर मिथ्यादर्शन आदि बहुत से महामोह के अधीन राजा, योद्धा, माण्डलिक, सामन्त आदि जो अपनी स्त्रियो, परिवार और कर्मचारियो के साथ बैठे थे उनमे से प्रत्येक योद्धा सपरिवार मुझे कदर्थित करने के लिये मेरे पास आ पहुँचा। इसका कारण यह था कि इन सब का नायक महामोह मेरे समीपवर्ती था। फलस्वरूप उनमे से शायद ही कोई बचा हो जिसने मुझे त्रास न दिया हो। [७८८-७९१]

सब से पहले महामूढता ने मुझे उस भव के वर्तमान भावो और परिस्थितियो मे इतना गृद्ध और मूर्छित कर दिया कि मैं सन्मार्ग से भ्रष्ट हो गया।

मिथ्यादर्शन ने सदागम को मुझ से दूर हटाया और मेरी बुद्धि मे इतना भ्रम उत्पन्न कर दिया कि मैं असत्य को सत्य मानने लगा।

इसकी पत्नी कुदृष्टि ने मुझ से धर्म-वुद्धि से अनेक दारुण पाप करवाये और मुझे अधोगति मे धकेला।

रागकेसरी ने निःसार और साधुजनो द्वारा निन्दित शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयो के प्रति मेरे मन मे प्रीति उत्पन्न की और मेरे मन को दुर्वल वनाया।

इसकी जगत्प्रसिद्ध पत्नी मूढता * के वश होकर मैं ससार की अनिष्टता को कभी न समझ पाया। [७९२–७९६]

महामोह के पुत्र द्वेषगजेन्द्र ने कारण, विना कारण जहाँ-तहाँ मुझमें अप्रीति उत्पन्न की और मुझे सन्तप्त किया।

इसकी पत्नी अविवेकिता ने तो मुझे वशवर्ती वनाकर कार्य-अकार्य का विचार करने से ही रोक दिया।

रागकेसरी के मंत्री विषयाभिलाष ने मुझे शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श मे अत्यन्त लोलुप वनाकर अपने वश में कर लिया।

इसकी पत्नी भोगतृष्णा ने मुझे प्राप्त विषयो मे गाढ मूर्छान्ध वनाया और अप्राप्त भोगो के प्रति मेरे मन मे आकांक्षा उत्पन्न कर विडम्बित किया।

[७९७–८००]

हे भद्रे! गाम्भीर्यता के प्रवल विरोधी हास्य ने मुझे विना कारण ही बहुत वार हा-हा करके मु ह फाड-फाड कर हंसाया और मेरे मुख की गम्भीरता को नष्ट किया।

हे भद्रे! रति के वश विवश होकर मैंने मल, मूत्र, मास, चर्वी आदि दुर्गन्धित पदार्थों से भरी हुई स्त्रियो के साथ रमण किया।

हे भद्रे! भिन्न-भिन्न प्रसगो को लेकर अरति ने मेरे मन को अनेक प्रकार से उद्वेलित और सन्तप्त किया।

भय ने मेरे मन मे आतक पैदा किया कि मैं मर जाऊ गा या कोई मुझे मार देगा या मेरा राज्य छीन लेगा।

प्रिय वन्धु की मृत्यु या धन के नष्ट होने आदि कारणो से शोक ने मुझे वार-वार विडम्वित किया।

जुगुप्सा ने मुझे तत्त्वमार्ग से हटाकर मिथ्यावुद्धि मे लगाया और मुझे विवेकी-जनो के मध्य हास्य का पात्र वनाया।

पूर्ववर्णित पितामह महामोहराज की गोद मे तूफान मचाने वाले राग-केसरी के आठ पुत्र और द्वेषगजेन्द्र के आठ पुत्र, इन सोलह कषाय बच्चो ने तो मुझे इतना उद्विग्न किया कि उसका वर्णन करना भी कठिन है। [८०१–८०८]

---

* पृष्ठ ६७३

फिर, ज्ञानसवरण ने मुझे अन्तरंग ज्ञान-प्रकाश से रहित कर दिया, मेरे विचार वुद्धि और तर्क पर पर्दे डालकर मेरी मति को घेर लिया ।

फिर दर्शनावरण ने मुझ से घुर्र-घुर्र करवाया, मुझे निद्राधीन कर दिया । मुझे काष्ठ जैसा मूढ और चेष्टा रहित बनाकर किसी भी प्रकार के दर्शन से विमुख किया ।

हे सुन्दरागि ! वेदनीय ने मुझे कभी अत्यन्त आह्लादित और कभी सताप-विह्वल किया ।

हे सुलोचने ! आयुष्य नृपति ने मुझे बहुत लम्बे समय तक घनवाहन के रूप मे कायम रखा ।

नाम नामक राजा ने अपनी शक्ति प्रदर्शित कर मेरे शरीर मे अनेक चित्र-विचित्र रूप बनाये ।

हे सुमुखि ! गोत्र ने अपने प्रभाव से मुझे कभी उच्च वर्णीय और कभी नीच वर्णीय प्रसिद्ध किया । *

अन्तराय ने मुझे लाभ, दान, भोग, उपभोग मे अपनी शक्ति को प्रकट करने से रोका । [८०९-८१४]

हे विशालाक्षि ! पापात्मा दुष्टाभिसन्धि ने मुझे आर्त्त और रौद्र ध्यान मे फसाकर मुझसे अनेक पाप करवाये ।

इनके अतिरिक्त भी महामोह की सेना मे जितने भी महारथी महायोद्धा थे उन सबने बारी-बारी से तत्काल ही मेरे पास आकर अपनी-अपनी शक्ति से मुझे प्रभावित किया ।

मुनि अकलक की उपेक्षा के कारण मैं अनाथ जैसा हो गया था, अत. मेरे इन भाव-शत्रुओ ने निर्भय होकर मुझे अनेक प्रकार से कदर्थित एव पीड़ित किया । [८१५-८१७]

एक बार मुझे त्रस्त करने के लिये मकरध्वज (कामदेव) महामोह नरेन्द्र के पास आया । वह अपने साथ अपनी पत्नी रति, विषयाभिलाष मत्री और उसके पाच कुटुम्बियो (बच्चे, पाच इन्द्रियो) को साथ लेकर आया । हे मृगलोचनि ! अपने कार्य को सिद्ध करने के लिये वह कवच-सन्नद्ध होकर हाथ मे तीर कमान लेकर आया । कामदेव को देखकर मोहराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । स्वय कामदेव भी अपने स्वरूप को देखकर प्रमुदित हुआ । मकरध्वज के सम्मिलन से तो मोहराज मदमस्त गन्ध हस्ति की तरह अत्यन्त बाधक बनकर मुझे अनेक प्रकार की पीडा देने को उद्यत हो गया । [८१८-८२२]

* पृष्ठ ६७४

कामदेव के पुष्पबाण से आहत होते ही मै शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध मे अन्धे व्यक्ति के समान लुब्ध हो गया। मैं इन पाँचो भोगो मे इतना डूब गया कि मेरी सद्बुद्धि कब नष्ट हो गई, मुझे पता ही नही चला। कीचड़ भरे गड्ढे मे पड़े सूअर के समान मैं विषयो के अपवित्र कीचड मे रात-दिन निर्लज्ज होकर निमग्न रहने लगा। अनेक प्रकार के भोगो को बहुत समय तक अनेक बार भोगने पर भी मुझे तृप्ति नही हुई। घी पिलाने से कभी दुबला बन्दर मोटा हुआ है? जितने अधिक भोग मैं भोगता उतनी ही अधिक मेरी भोग-तृष्णा बढती रहती। यह सत्य ही है कि बडवानल अग्नि मे पानी डालने से वह और भभकती है। चन्द्र-किरण के समान निर्मल अकलक के उपदेश, महामोह रूपी बादलो से आवृत हो जाने से मैं उन सब शिक्षाओ को पूर्णरूपेण भूल गया।

तब मुझे इस प्रकार भाव-शत्रुओ से घिरा हुआ देखकर सदागम ने समझ लिया कि अभी उसका अवसर नही है, अत. वह भी मेरे से दूर चला गया।

[८२३–८२८]

ऐसे विचित्र सयोगो मे भी मेरी सभी इच्छाये पूर्ण होती थी, यह मेरे अन्तरग मित्र पुण्योदय की ही कृपा थी, पर उस समय मैं मूढ इस बात को नही समझ पाया।

कामदेव के वशीभूत होकर सब राज्य-कार्यों को छोड़कर मैं रात-दिन अपने अन्त.पुर-स्थित स्त्रियो के साथ भोग-विलास करते हुए रहने लगा। नगर मे कोई सुन्दर स्त्री दिखाई देती या उसके सम्बन्ध मे किसी से सुनता तो उस स्त्री को चाहे वह कुलवान हो या कुलहीन, पकडवा कर अपने महल मे मगवा लेता और बलात्कार पूर्वक उसे अपनी पत्नी बना लेता। न तो मैं पाप का ही विचार करता, न कुल-कलंक की ही चिन्ता करता,* न अपने राज्यधर्म के विषय मे ही सोचता और न मत्रियो द्वारा रोके जाने पर ही रुकता। [८२९–८३३]

राज्यभ्रष्ट घनवाहन

मेरे इस अधम आचरण से मेरी प्रजा, सामन्त, सगे-सम्बन्धी सभी मेरे से विरक्त हो गये, उद्विग्न एव रुष्ट हो गये। मेरी सेना भी मेरी निन्दा करने लगी। सभी जगह गुणो की पूजा होती है, पूजा मे सम्बन्ध कारणभूत नही होते। लोगो द्वारा हो रही मेरी निन्दा/गर्हा को जानते हुए भी मैं महामोह के वशीभूत होकर निन्दनीय कार्यो मे आकण्ठ डूबा ही रहा। मुझ पापिष्ठ ने नीच कुलोत्पन्न, मनुष्यो के लिए अगम्य/अयोग्य स्त्रियो को भी अपने अन्त.पुर मे रख लिया। [८३४–८३७]

मेरे नीरदवाहन नामक एक छोटा भाई था जो लज्जालु, विनयवान, सुस्वभावी, लोकप्रसिद्ध, पुरुषार्थी एवं महाउद्योगी था। मेरे अत्यन्त अधम व्यवहार से उद्विग्न प्रजाजन, सामन्त, मत्री एव सेनापति ने एक दिन एकत्रित होकर विचार

---

* पृष्ठ ६५७

किया और सब ने एकमत होकर नीरदवाहन से एकान्त मे कहा—कुमार ! अब घनवाहन अगम्य स्त्रियो मे आसक्त, मर्यादाहीन, बुद्धिहीन, नष्टधर्म पशुतुल्य एव कुलकलकी हो गया है । अब यह श्वान-तुल्य नराधम इस राज्य सिंहासन के योग्य नही रह गया है । यह तो राज्य को खो चुका है और वश को भी इसने लज्जित कर दिया है । अब इसका विनाश निकट ही है, अतः अब राज्य के प्रति उपेक्षा करना आपको और हमें शोभा नही देता । विरोधी राज्यो को हमारे राजा की इस अधोगति का पता लगे, उसके पहले ही राज्य की बागडोर आपको सभाल लेनी चाहिये । अन्यथा न आपके भाई रहेगे, न राज्य रहेगा, न सपत्ति रहेगी, न हम रहेगे, न मर्यादा रहेगी और न यह नगर ही बच पायेगा ।

मेरे भाई नीरदवाहन ने उनकी युक्तियुक्त बात को सुना और उनकी अभिलापा एव चेष्टाये देख कर वह उस पर विचार करने लगा । [८३८–८४५]

हे भद्रे ! इधर मेरे अतिअधम व्यवहार से निर्बल पड़ा हुआ मेरा अन्तरग मित्र पुण्योदय भी अत्यधिक उद्विग्न हुआ और अन्त मे मेरी अत्यन्त नीचता पूर्ण वृत्ति से घबराकर मुझे छोडकर चला गया । मेरे पापो की अधिकता से मेरे भावशत्रु बढते गये, परिणामस्वरूप मेरे कर्म की स्थिति अधिक लम्बी हो गई । इन सब आन्तरिक और बाह्य कारणो से मन्त्री, सामन्त और प्रजाजनो की बात को युक्तियुक्त समझ कर विचारपूर्वक नीरदवाहन ने राजा बनना स्वीकार कर लिया । नीरदवाहन की सम्मति प्राप्त होते ही उसी समय सैनिको ने शराब के नशे मे चूर मुझ को आकर बाँध लिया । मैंने इधर-उधर दृष्टि दौडाई, पर मेरे कर्मचारियो या मेरे भाई-बन्धुओ आदि किसी ने मेरी कोई सहायता नही की । हे सुभ्रु ! उस समय नरक के परमाधामियो की तरह मेरे मन्त्रियो और सेनापति आदि ने मिलकर मुझे नरक तुल्य महाभयकर कैदखाने मे डाल दिया । [८४६–८५१] *

सब ने मिलकर मेरे छोटे भाई नीरदवाहन का राज्याभिषेक बडे हर्षोल्लास से किया । सब लोग हर्षित होकर नाचने लगे और हृदय से सतुष्ट हुए । कुस्वामी के नाश और सुस्वामी के गुणो से प्रसन्न सैनिको और प्रजा ने खूब खुशियाँ मनाई । प्रसन्नता की उर्मियो को प्रकट करने के लिए उस समय प्रजा और सैनिको ने क्या-क्या उत्सव नही मनाए ? [८५२–८५३] *

मल, मूत्र, कचरे आदि अतितुच्छ पदार्थों की दुर्गन्ध से भरा हुआ वह कैदखाना जिसमे मुझे रखा गया था बहुत सकडा और फिसलन भरा माता के गर्भ जैसा था । भूख-प्यास से व्याकुल और लोहे की जजीरो से जकड़े हुए मुझ को छोटे बच्चे भी मेरे पहले के दुर्व्यवहार को याद कर मारते और तिरस्कार करते थे । यातना-स्थानो मे भी मेरे सम्बन्धीजन आकर मेरा तिरस्कार करते । नरक मे जैसे नारकी जीवो को शारीरिक सन्ताप दिया जाता है वैसे ही अनेकविध शारीरिक सन्ताप मुझे

---

* पृष्ठ ६७६

उस कैदखाने मे प्राप्त हुएं। महामोह के वशीभूत एव राज्यभ्रष्ट होने से मुझे कितना मानसिक एव शारीरिक सन्ताप हो रहा था इसका तो वर्णन ही नही हो सकता। मेरे इस विपुल राज्यवैभव और समृद्धि को अन्य लोग भोग रहे है, इस शोक से मैं पीडित था। सुख मे पले पोसे मेरे इस शरीर की ऐसी दुर्दशा हो, मेरे ही सेवक मेरा तिरस्कार/अपमान करे, इस प्रकार पीडित करे यह कितनी मानसिक-सन्ताप की बात थी। मेरे स्वर्ण भण्डार और रत्नो को जिन पर मेरा स्वामित्व था उसे दूसरे लोग चुरा रहे है। हाय मैं मारा गया ! यो मै धन-मूर्छा से व्यथित हुआ।
[८५४–८६०]

हे भद्रे ! दु खपूरित नरक जैसे कारावास मे मैं अपने पापकर्मो से बहुत समय तक रहा। हे चारुलोचने ! मैने इतनी शारीरिक और मानसिक पीडाये महामोह और उसके परिवार के दोष के कारण ही सहन की थी, फिर भी ससार पर से मेरी आसक्ति कम नही हुई। बहुत समय तक कैदखाने मे बैठा-बैठा भी मैं अन्य लोगो पर क्रोध करता रहा, आर्त-रौद्र ध्यान करता रहा और बदला लेने का विचार करता रहा। [८६१–८६३]

अन्त मे मुझे दी हुई उस भव की गोली जीर्ण हुई और मेरी स्त्री भवितव्यता ने मुझे नई गुटिका प्रदान की तथा उसी के प्रभाव से पापिष्ठनिवास के सातवे मोहल्ले (सातवी नरक) मे मैं पापिष्ठ (नारकी) के रूप मे उत्पन्न हुआ।
[८६४–८६५]

१६. अनन्त भव-भ्रमरण

पापिष्ठनिवास नगरी के अप्रतिष्ठान नामक स्थान पर मै ३३ सागरोपम काल तक अनेक प्रकार के वज्र के काटो से छिन्न-भिन्न होते हुए गेद की तरह से उछलता रहा। फिर अन्य गोली देकर भवितव्यता मुझे पचाक्षपशुसस्थान मे ले गयी और वहाँ मच्छ के रूप मे उत्पन्न किया। वहाँ से मेरी गोली (आयु) समाप्त होने पर दूसरी गोली देकर भवितव्यता मुझे फिर पापिष्ठनिवास के अप्रतिष्ठान स्थान मे ले गई और वहाँ से वापस पचाक्षपशुसस्थान मे सिंह के रूप मे उत्पन्न किया।
[८६६–८६८]

यहाँ से गोली समाप्त होने पर अन्य-अन्य गोलियाँ देकर पापिष्ठनिवास के चौथे मोहल्ले मे और फिर पचाक्षपशुसस्थान मे बिलाव के रूप मे उत्पन्न किया। इस प्रकार मेरी पत्नी भवितव्यता ने विविध प्रकार के नये-नये रूप धारण करवाये

और प्रत्येक प्रसग पर दु.ख समुद्र के विस्तार का प्रतिक्षण साक्षात्कार करवाया।*
असव्यवहार नगर के अतिरिक्त प्रत्येक नगर मे भवितव्यता मुझे बार-बार ले गई और ससार के समस्त स्थानो पर मुझे भ्रमण करवाया। हे सुन्दरि! महामोह के परिवार से घिरा- हुआ और अपनी पत्नी भवितव्यता की आज्ञा का पालन करते हुए मैने कौन-कौन सा नाटक नही खेला। हे भद्रे! मेरी पत्नी ने परिग्रह की आड मे प्रत्येक योनि मे मुझे अनेक प्रकार से विडम्बित किया। उसने मुझे गृह-कोकिलिका (गोह) सर्प और चूहे के रूप धारण करवाये, जिसमे मै धन के भण्डार को प्राप्त कर प्रसन्न होता था और उसकी रक्षा करता था तथा किसी के द्वारा उसका हरण कर लेने पर विह्वल होकर मृत्यु प्राप्त करता था। [८६९-८७४]

भवितव्यता प्रसन्न

जैसे घर्षण-घूर्णन न्याय से नदी मे घिसते-घिसते पत्थर भी गोल हो जाता है उसी प्रकार अनन्त काल तक घिसते-घिसते जब मैं कुछ ठीक हुआ तब गजगामिनी भवितव्यता मुझ पर प्रसन्न हुई। अनन्त काल तक मेरे साथ भटक-भटक कर महामोह आदि भी थक जाने से अब कुछ निर्बल हो गये थे। हे सुमुखि! मेरे पाप भी कम हुए थे, मेरी कर्मस्थिति भी कम हुई थी और मेरी कर्मग्रन्थी भी कुछ निकट आ गई थी। अत अब भवितव्यता ने मुझे दूसरी गोली देकर मानवावास मे उत्पन्न किया।

मनुजगति के भरत क्षेत्र मे साकेतपुर नगर मे नन्द नामक व्यापारी अपनी पत्नी धनसुन्दरी के साथ रहता था। भवितव्यता की गोली के प्रभाव से मे धन-सुन्दरी की कुक्षि से पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। मेरा नाम अमृतोदर रखा गया। क्रमश: बढते हुए काम-मन्दिर के समान मैं युवावस्था को प्राप्त हुआ। एक बार वहाँ जगल मे घूमते हुए मैने सुदर्शन नामक साधु को देखा। उन्होने भी कृपा कर मुझे उपदेश दिया। हे भद्रे! उन्ही के समीप मैने इन महात्मा सदागम को फिर देखा। मुनि के उपदेश से मेरे मन मे कुछ भद्र परिणाम उत्पन्न हुए और मैने द्रव्यत/बाह्यत. श्रावकपन ग्रहण किया और नमस्कार मन्त्र आदि का उच्चारण/पाठ करने लगा। [८७५-८८४]

मेरी एकभवभेदी गोली के समाप्त होने पर भवितव्यता ने मुझे दूसरी गोली दी जिसके प्रभाव से मै भवचक्र मे स्थित विबुधालय मे भुवनपति देव के रूप मे उत्पन्न हुआ। विबुधालय मे भुवनपति, व्यतर, ज्योतिष-और कल्पवासी पाटको मे देव सज्ञक कुलपुत्र देव रहते है। पहले तीन के क्रमश दस, आठ और पाँच भेद है। कल्पवासी के कल्पस्थ और कल्पातीत दो भेद है। कल्पस्थ देवो के १२ और कल्पातीत के ९ एव पाच आवास है। हे भद्रे! उपर्युक्त चार प्रकार के देवो मे से प्रथम प्रकार के देवो मे मेरा जन्म होने से मै विबुध (देव) जाति का कुलपुत्र हुआ। हे

* पृष्ठ ६७७

पद्माक्षि ! यहाँ आकर मै फिर सदागम को भूल गया । वह भी अपने अवसर की प्रतीक्षा करते हुए मुझे छोड कर मेरे से दूर चला गया । * मै यहाँ डेढ पल्योपम तक महान ऋद्धि सम्पन्न देव के रूप मे यथेष्ट सुख भोगता रहा और आनन्द मे डूब कर लीलापूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा । [८८५-८९०]

मेरा काल समाप्त होने पर सन्तुष्ट चित्त होकर मेरी पत्नी भवितव्यता ने फिर मुझे दूसरी गोली दी जिससे मै मानवावास के बन्धुदत्त व्यापारी की पत्नी प्रियदर्शना की कुक्षि से बन्धु नामक पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुआ । क्रमश. बढते हुए मै तरुण हो गया । तब एक बार मै सुन्दर नामक मुनि के सम्पर्क मे आया । उनके समीप भी मैने इन सदागम महात्मा को देखा । मुनीश्वर ने मुझे सदागम के विषय मे कुछ बताया और शिक्षा देकर मेरी आँखे खोलने का प्रयत्न किया । हे भद्रे ! इनके प्रभाव से मै भावरहित जैन श्रमण (द्रव्य साधु) बन गया । [८९१-८९४]

द्रव्य श्रमणत्व के प्रभाव से मैं फिर विबुधालय मे व्यतर रूप मे उत्पन्न हुआ । यहाँ की महर्द्धि और सुख मे मैं फिर सदागम को भूल गया । इसके पश्चात् मैं फिर मानवावास मे लाया गया जहाँ फिर मेरी भेट सदागम से हुई । हे भद्रे ! इस प्रकार मेरी भार्या भवितव्यता के निर्देश से अनन्त भवचक्र मे भटकते हुए मैंने अनन्त बार सदागम से भेट की और बार-बार इन्हे भूलता गया । इन महात्मा को भूल जाने से मै अधिकाधिक भवचक्र मे भटकता रहा और यदा कदा सदागम के सम्पर्क मे आता रहा । इसके फलस्वरूप हे सुलोचने ! मै अनन्त बार द्रव्य श्रावक बना, अनन्त बार द्रव्य साधु बना और मुझे इन महात्मा सदागम से मिलने का सौभाग्य भी मिलता रहा । जब-जब मैं महात्मा सदागम को भूलता तब-तब मुझे मेरी पत्नी भवितव्यता अनेक स्थानो पर ले जाती और भिन्न-भिन्न रूप से त्रसित करती । कई बार तो मैं इन महात्मा को भूलकर कुतीर्थिक यति (सन्यासी) आदि भी बना । उस समय मैंने इन सदागम महात्मा को झूठा और प्रपची तक बतलाया । इस प्रकार की परिस्थितिया इस अन्तरहित भवचक्र मे अनन्त बार उत्पन्न हुई । इस भवचक्र मे भटकते हुए कई बार मेरी कर्मस्थिति लम्बी हुई और कई बार छोटी हुई । कई बार मोहराज आदि शत्रु बलवान होते और कई बार महात्मा सदागम के प्रभाव से भावशत्रु अकुश मे आते और निर्बल बनते । इस प्रकार बार-बार सदागम महात्मा से भेट होते रहने से मेरा इनसे अधिकाधिक सम्पर्क/परिचय बढता गया । इस गाढ सम्पर्क से क्या हुआ ? यह भी तू सुनकर समझ ले । [८९५-९०५]

महात्मा सदागम के अधिक परिचय से मेरी चितवृत्ति अटवी कुछ निर्मल हुई । योग्य अवसर जान कर सेनापति सम्यग्दर्शन मेरे पास आने के लिये उद्यत हुआ । उसने सद्बोध मन्त्री से कहा—आर्य ! आपने पहले मुझे योग्य अवसर की प्रतीक्षा करने के लिये कहा था । मुझे लगता है कि ससारी जीव के पास मेरे जाने

* पृष्ठ ६७८

का अब उचित समय आ गया है। अतः हे नरोत्तम ! आप महाराजा से पूछे, यदि उनकी आज्ञा हो तो अब मै ससारी जीव के पास जाऊँ। [६०६-६०८] *

सद्बोध—भाई ! तूने बहुत ठीक कहा। तुमने योग्य अवसर को बराबर ढूढा है। पश्चात् सद्बोध मत्री ने फिर चारित्र धर्म महाराज से पूछा। महाराज ने मत्री के कथन को स्वीकार किया और सेनापति सम्यग्दर्शन को मेरे पास भेजने की आज्ञा प्रदान की। [६०६–६१०]

मेरे पास आने से पहले सम्यग्दर्शन ने मत्री से पूछा—हे देव ! यदि आपकी आज्ञा हो तो इस पापरहित निर्दोष पुत्री विद्या को भी अपने साथ ले जाकर उसे भेट स्वरूप प्रदान करू। इससे ससारी जीव को भी सतोष होगा।

सद्बोध—सेनापति ! अभी विद्या को ले जाने का समय नही आया है। क्यो ? इसका कारण भी सुनो। यह ससारी जीव अभी बहुत कच्चा है। अभी वह तुझे अच्छी तरह पहचान नही सकेगा अभी तो वह तुझे सामान्य रूप से ही स्वीकार करेगा। जब तक वह तेरे तात्त्विक स्वरूप को न समझे और समझ कर उसे भलीभाति धारण न करे तब तक विद्या कन्या उसे नही दी जा सकती। अभी हम उसके कुल और शील को नही जानते। अभी हमारा उससे गाढ परिचय भी नही है। यदि वह विद्या का पराभव/तिरस्कार करे, उसके साथ अच्छे सम्बन्ध न रखे तो मेरे जैसे को बहुत दुःख होगा। अत अभी विद्या को बिना लिये ही तुम उसके पास जाओ। योग्य समय पर वह तेरा स्वरूप अच्छी तरह से समझेगा। जब तेरा वास्तविक स्वरूप उसके ध्यान मे आ जायगा तब मै विद्या को लेकर वहाँ आऊगा। अभी ससारी जीव को सदागम का आश्रय प्राप्त हुआ है और उसके मोहादि भावशत्रु निर्बल हुए हैं तथा उसके सुख के स्वाद को चखा है। यह महाराज चारित्रधर्मराज के प्रति उन्मुख भाव वाला हुआ है और उसके मानस मे महाराज के दर्शन की इच्छा उत्पन्न हुई है। अभी तुम विद्या कन्या के बिना जाओगे तब भी बहुत लाभ प्राप्त होगा, अतः अभी तुम अकेले ही जाओ। [६११–६१६]

सम्यग्दर्शन—जैसी महाराज की आज्ञा और आपका परामर्श।

इस प्रकार महाराजा के आदेश से और मत्री के परामर्श से सेनापति अकेला ही मेरे पास आने के लिए निकल पडा। समय पर विद्या को अपने साथ लेकर आने के लिए उसने मत्री को सकेत कर दिया। [६२०]

---

* पृष्ठ ६७६

१७. प्रगति के मार्ग पर

हे भद्रे ! मानवावास के जनमदिर नगर मे आनन्द गृहस्थ अपनी पत्नी नन्दिनी के साथ रहता था। भवितव्यता द्वारा दी गई गोली के प्रभाव से मैंने नन्दिनी की कुक्षि मे प्रवेश किया और उसके पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ मेरा नाम विरोचन रखा गया। क्रमश बढते हुए मै युवावस्था को प्राप्त हुआ।

धर्मघोष मुनीन्द्र की धर्मदेशना

एक समय मैं नगर के बाहर चितनन्दन उद्यान मे घूमने गया। वहाँ मैंने धर्मघोष आचार्य को देखा। इस समय मेरी कर्मस्थिति सक्षिप्त हो गई थी और महामोहादि भावशत्रु निर्बल हो गये थे। अतः मैंने महाभाग्यवान आचार्य के चरण छूए और निर्जीव स्वच्छ भूमि देखकर बैठ गया। आचार्य के दर्शन से मेरे मन मे भद्र भाव उत्पन्न हुए और मैं धर्म-सन्मुख हुआ। मेरे हृदय के भावो को ज्ञान से जान कर आचार्यश्री ने कानो को पवित्र करने वाले अमृत के समान आनन्ददायक मधुर शब्दो से उपदेश देना प्रारम्भ किया :—

ससार मे मनुष्य जन्म प्राप्त करना अति कठिन है, उसमे भी जैन धर्म की प्राप्ति तो और भी कठिन है।* जिस वुद्धिमान पुरुष को इनकी प्राप्ति हो, उसे तो इनके द्वारा परमपद की प्राप्ति करनी ही चाहिये। ऐसा न करने से क्या होगा ? यह भी सुनलो। इस भयकर ससार रूपी अन्तरहित मार्ग पर उसे यात्रा के लिये आवश्यक सामग्री एव पाथेय साथ मे लिये बिना ही चलने से मार्ग मे अतुलनीय दु ख परम्परा का भाजन बनना पडेगा। साथ ही प्राणी को यह भी समझना चाहिये कि कुशल कर्म ही ससार-समुद्र को पार करने के मुख्य साधन है, अत. उसे कर्मयोगी की तरह अच्छे कार्य ही करने चाहिये। ऐसे अमूल्य मनुष्य जन्म को व्यर्थ नही खोना चाहिये। [६२१-६२८]

सन्मार्ग-दर्शन

उस समय धर्मघोष आचार्य के पास महात्मा सदागम भी पुनः दृष्टिगोचर हुए। मुनीन्द्र के वचनो को अगीकार करने की आकाक्षा जागृत हुई और मैने आचार्यश्री से पूछा—भगवन् ! मुझे क्या करना चाहिये, यह बताने की कृपा करे।

आचार्य—भद्र ! सुनो, तुम्हे इस संसार नाटक का पूर्णरूपेण अनादर करना चाहिये। जिनके रागद्वेष और मोह नष्ट हो गये है और जो अनन्त ज्ञान, दर्शन,

---

* पृष्ठ ६८०

वीर्य, और आनन्द से परिपूर्ण है ऐसे परमात्मा की आराधना करनी चाहिये। उनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलने वाले साधु भगवन्तो की भक्ति करनी चाहिये और जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष रूपी नौ तत्त्वो को सच्चे तत्त्वों के रूप मे स्वीकार करना चाहिये। समस्त प्रकार से तीर्थंकर महाराज के वचनरूपी अमृत का पान करना चाहिये। उनके साथ एकात्मकता धारण करनी चाहिये अथवा उपकारी-उपकारक भाव को समझना चाहिये। आत्महितकारी अनुष्ठान करना चाहिये। पुण्यानुबन्धी पुण्य का सचय करना चाहिये। अन्त करण को निष्कलक रखना चाहिये। कुविकल्परूपी वचन-जाल का त्याग करना चाहिये। भगवान् के वचन के सार को ढूढ निकालना चाहिये। राग-द्वेष आदि दोषो को पहचानना चाहिये। सद्गुरु के उपदेशरूपी औषधि को ग्रहण करना चाहिये। निरन्तर मन को सदाचरण मे लगाना चाहिये। दुर्जनो द्वारा प्रणीत कुधर्म के वचनो का तिरस्कार करना चाहिये। महापुरुषो के मध्य मे अपने को स्थापित करना चाहिये और निष्प्रकपित स्थिर चित्त से रहना चाहिये।

सम्यक्दर्शन का आगमन

धर्मघोष आचार्य का उपर्युक्त मधुर व्याख्यान चल ही रहा था कि सेनापति सम्यग्दर्शन वहाँ आ पहुँचा। अति कठिनता से भेदी जाने योग्य कर्मग्रन्थि को भेद कर मैंने उसे देखा। उसे देखते ही मुझे आचार्य के उपदेश के प्रति रुचि हुई और उनके कथन पर श्रद्धा पैदा हुई, जिससे मुझे लगा कि सेनापति मेरा वास्तविक हितकारी बन्धु है। मैंने आचार्यश्री से कहा—नाथ! आपकी आज्ञानुसार कर्त्तव्य करने के लिये मै तत्पर हूँ। फिर आचार्य को वन्दन कर मै अपने घर गया।

अब मै सम्यग्दर्शन युक्त हुआ और मुझे तत्त्व पर श्रद्धा हुई, जिससे मेरी आत्मा पवित्र हो गई। किन्तु, अभी मेरी यह श्रद्धा विशिष्ट ज्ञान से रहित थी। हे सुमुखि! 'जिनेन्द्र भगवान् ने जो कुछ कहा है वही नि शक सत्य है' इस प्रकार की श्रद्धा से मैं उस समय प्रसन्न था। सदागम ने अपना विज्ञान मुझे थोडा-थोडा बतलाया था वही मैं जानता था, किन्तु वस्तु के सूक्ष्म भाव एव गहन भावार्थ को अभी मैं नही समझता था। मेरे गुरु बहुत ही योग्य और उपदेश-कुशल थे, फिर भी वे मुझे सूक्ष्म ज्ञान नही दे सके, क्योकि विशेष ज्ञान के लिये आवश्यक योग्यता अभी मुझे प्राप्त नही हुई थी। हे सुन्दरागि! श्रद्धा और * ज्ञान का वास्तविक कारण तो अपनी योग्यता ही है, गुरु तो सहकारी कारण निमित्त मात्र है। उदाहरण के तौर पर देख—घनवाहन के भव मे अकलक मुनि एव कोविदाचार्य ने मुझे उपदेश देने का बहुत प्रयत्न किया था, पर मुझ पर कुछ भी असर नही हुआ था, मुझे श्रद्धा भी नही हुई थी। हे सुमुखि! उसके पश्चात् भी मेरा अनन्त बार सदागम से सम्पर्क हुआ पर मै श्रद्धाशून्य होने से उसकी बात को सत्य ही नहीं मानता था। प्राणी मे

* पृष्ठ ६८१

जब जितनी योग्यता होती है तब उतने ही गुण उसे प्राप्त होते है। योग्यता विना गुण-प्राप्ति या उसकी वृद्धि नही हो सकती। अतः आचार्य के उपदेश से मुझे मात्र सूक्ष्म ज्ञानरहित सच्ची श्रद्धा हुई, क्योकि उस समय मुझ मे इतनी ही योग्यता/पात्रता थी। [६२६-६३७]

गृहिधर्म का आगमन

कर्मग्रन्थी का भेद करते हुए मैने कर्मस्थिति को क्षीण किया था। उस समय उसमे से भी दो से नौ पल्योपम की स्थिति को मैंने और कम कर दिया, जिससे चारित्रधर्मराज का पुत्र गृहिधर्म मेरे पास आया। मैने उसे सामान्य तौर से पहचाना, विस्तृत परिचय नही कर सका। मैने कतिचिद् सामान्य व्रत नियम भी ग्रहण किये और तदनुसार उनका पालन भी किया। मैंने जितना पालन किया वह श्रद्धा से विशुद्ध बुद्धिपूर्वक किया, परिणामस्वरूप भवितव्यता मुझे दूसरी गोली देकर कल्पवासी विबुधालय मे ले आई। [६३८-६४०]

सौधर्म देवलोक : पूर्वभव-स्मरण

सौधर्म के नाम से प्रसिद्ध प्रथम देवलोक मे देदीप्यमान देवता का रूप धारण करते हुए मै क्षणभर मे सुख-शय्या से जागृत हुआ। देवता का जन्म किस प्रकार होता है और उस समय उसका शरीर कैसा होता है यह सुनने योग्य है, अतः सुन—

एक दिव्य पलग पर सुन्दर अति कोमल स्पर्श वाला बिछौना था। उस पर बहुत ही मुलायम चित्तानन्ददायक आच्छादन (चादर) बिछा था। आस-पास अति सुगन्धित फूलो और धूप की सुगन्ध फैल रही थी। आँखो को प्रिय लगने वाला दिव्य वस्त्र का अति सुन्दर चन्दोवा पलंग के ऊपर बधा हुआ था।

वहाँ मेरे सन्मुख दोनो हाथ पसार कर खडे हुए देवताओ के आनन्द स्वर से मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उस समय मेरे शरीर पर मुकुट, कडे, बाजूबन्द, हार और कुण्डल आदि आभूषण सुशोभित हो रहे थे। शरीर पर सुगन्धित लेप, मुख मे पान और कण्ठ मे सदैव ताजा रहने वाला पुष्पहार था। ऐसे सुन्दर सयोगो मे मैं शय्या से उठकर बैठा हुआ। उस समय चारो दिशाये प्रकाशमान हो रही थी।

उस समय शय्या के पास ही देवागनाएं खड़ी थी, जिनके सुन्दर नेत्र निर्निमेष होते हुए भी अति चपल थे, जो अत्यन्त सुन्दर थी और प्रेम भरी आँखो से 'जय जय नन्दा, जय जय भद्दा' बोल रही थी। वे कह रही थी 'हे नन्द! हे भद्र! आपकी जय हो। आप देव हैं। आप हमारे स्वामी हैं। हम आपकी दासिया है।' इस प्रकार अद्भुत रूप सौन्दर्य वाली वे देविया मधुर एव कर्णप्रिय शब्दो से बोल रही थी। [६४१-६४७]

मेरे आस-पास ऐसी अद्भुत समृद्धि को देखकर मेरी आँखे विस्मय से प्रफुल्लित हो गई और मैं सोचने लगा कि कौन से सत्कार्य के फलस्वरूप मुझे यह ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई है। हे विमललोचने! उस समय मुझे ज्ञान हुआ कि विरोचन के भव मे मैंने रुचि और समझ पूर्वक जो गृहस्थ-धर्म का पालन किया था उसी का यह फल मुझे मिला है। मै सोच ही रहा था कि सेनापति सम्यग्दर्शन और सदागम मेरे पास आ पहुँचे। तव मुझे ध्यान आया कि यह सब इन पुण्यपुरुष महात्माओ का प्रताप है। उसी समय मैंने दोनो को अपने बन्धु के समान स्वीकार कर लिया। इस निश्चय के साथ ही मै शय्या से उठा और देवताओ के योग्य अपने कर्त्तव्यो को पूरा करने मे लग गया। [९४८–९५१] *

देव कर्त्तव्य का पालन

देवभूमि मे रत्नकिरणो की प्रतिच्छाया से रक्तिम दिखाई देने वाले जल से पूर्ण और प्रफुल्लित कमलो से शोभायमान सरोवर मे हृष्ट-पुष्ट नितम्ब और पयोधरो वाली रूपवती देवाँगनाओ के साथ मैंने जलक्रीडा की। फिर मैं लीलापूर्वक जिन मन्दिर मे गया। यह जिन मन्दिर अति भव्य और शुद्ध स्वर्ण से निर्मित था तथा इसका आगन रत्न-जटित था। वहाँ दृढ भक्ति पूर्वक मैंने जिनेन्द्र भगवान् को वन्दन किया। फिर मैंने तीर्थंकर देव के वचनो से परिपूर्ण मणिरत्नमय निर्मल पत्रो मे सग्रहित मनोहर पुस्तक को खोला। इस पुस्तक के लिखित वर्णन को पढने से रोम-रोम विकसित होता था। ऐसी सुन्दर पुस्तक को पढा और मुझे क्या-क्या करना है, इसकी जानकारी उस ग्रन्थ से प्राप्त की। इस देवलोक में मैंने इच्छानुसार पाँचो इन्द्रियो के भोग भोगे और दो सागरोपम से कुछ कम काल तक मैं यहाँ आनन्दपूर्वक रहा। [९५२–९५५]

कलन्द आभीर

यहाँ का समय पूरा होने पर भवितव्यता ने मुझे फिर एक गोली दी जिससे मैं पुनः मानवावास मे मदन नामक आभीर (ग्वाले) की पत्नी रेणा की कुक्षि से पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। यहाँ मेरा नाम कलद रखा गया। हे सुन्दरागि! यहाँ आने पर मेरे प्रिय बन्धु सम्यग्दर्शन और सदागम को तो मैं भूल ही गया। वे यहाँ आये ही नही। हे भद्रे! मैंने वहाँ गृहिधर्म को भी नही देखा। क्योकि, सम्यग्दर्शन और सदागम के अभाव मे वह एकाकी दृष्टिगोचर भी नही होता। फिर भी, हे हसगामिनि! पूर्वभव मे मेरा कुछ विकास हुआ था जिससे मैं पाप से डरता रहा और भद्र परिणाम से ही मैंने ग्वाले के भव को पूरा किया। [९५६–९५९]

विस्मृति और भ्रमण

भवितव्यता द्वारा दी गई अन्य गोली से मैं मानवावास से ज्योतिषी देवगति मे उत्पन्न हुआ। यहाँ भी मुझे अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई। खूब इन्द्रियो को तृप्त

* पृष्ठ ६८२

किया और प्रचुर भोग भोगे। यहाँ महामोह और परिग्रह से कई बार भेट हुई। मैंने उनसे सम्बन्ध बढाया और उनके प्रति विशेष पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया। उन्हे मैंने अपना मित्र मान लिया। सम्यग्दर्शन और सदागम को तो मै बिलकुल भूल ही गया। [९६०–९६२]

ज्योतिषी देव का मेरा काल समाप्त होने पर भवितव्यता ने फिर मुझे दूसरी गोली देकर पचाक्षपशुसस्थान मे मेढक के रूप मे उत्पन्न किया। महामोहादि से सम्बन्ध बढाने के कारण मेरी पत्नी भवितव्यता मुझसे रुष्ट हो गई थी और उसे मुझे नाच नचाने की आदत पडी हुई थी, इसीलिये मेढक के भव की गोली जीर्ण हो जाने पर उसने मुझे नई-नई गोलिया देकर मुझसे अनेक रूपो मे नाटक करवाये और अनेक स्थानो पर इधर-उधर भटकाया। [९६३–९६४]

वासव

नानाविध स्थानो मे भ्रमण करवाकर मेरी पत्नी भवितव्यता ने फिर मुझे मानवावास के कम्पिलपुर नगर के राजा वसुबन्ध की धरा नामक रानी की कूख से वासव नामक राजपुत्र के रूप मे उत्पन्न किया। यहाँ मेरे पास वैभव होने पर भी मै सत्कृत्य करता था जिससे सर्व प्रिय हो गया था। युवक होने पर एक बार मैं शान्तिसूरि नामक सद्धर्मोपदेशक से मिला। हे भद्रे! इनका उपदेश सुनने के बाद मुझे सम्यग्दर्शन और सदागम भी दिखाई दिये। इनके अधिक परिचय से मेरे सुहृदाभास शत्रु महामोहादि कुछ निर्बल हुए। महामोहादि भावशत्रु बाहर से मित्र जैसे लगते थे पर वास्तव मे वे मेरे आन्तरिक शत्रु ही थे, किन्तु अभी तक मैं उन्हे अच्छी तरह नही परख सका था।

हे चारुभाषिणि! सम्यग्दर्शन और सदागम के सम्पर्क एव प्रताप से यहाँ मुझे कुछ लाभ हुआ। यहाँ का काल समाप्त होने पर भवितव्यता मुझे दूसरे देवलोक मे ले गई।* यहाँ भी मेरा सम्यग्दर्शन और सदागम से परिचय हुआ। यहाँ बहुत समय तक मैने देवताओ के दिव्य और अतुल सुखो का उपभोग किया और आनन्द मे समय व्यतीत किया। [९६५–९७०]

सम्यग्दर्शन और सदागम की जय-पराजय

देवलोक से मै फिर मनुजगति के काचनपुर नगर मे आया। महामोह के दोष से यहाँ भी मै सम्यग्दर्शन और सदागम को भूल गया। हे भद्रे! इस प्रकार मैने असख्य बार सम्यग्दर्शन और महात्मा सदागम से भेट की होगी और अनेक बार ये मेरे पास से चले गये होगे। सम्यग्दर्शन तो मेरे पास से एकदम ही चले गये थे। इसका कारण यह था कि मै सख्यातीत स्थानो पर भटका किन्तु अभी तक मैंने वास्तविक विरति (त्याग) भाव धारण नही किया था। मात्र ऊपरी श्रद्धा से

* पृष्ठ ६८३

सन्तुष्ट होकर श्रावक बना था पर सर्वविरति (पूर्ण त्याग) की भावना नही हुई थी । क्योकि, कई बार नैसर्गिक सरलता के कारण और कई बार किसी को प्रसन्न रखने के लिए मैंने श्रद्धायुत होकर श्रावक वेष धारण किया था, किन्तु हृदय से सर्वविरति भाव कदापि धारण नही किया था । संख्यातीतवार जब-जब सम्यग्दर्शन से भेट होती थी तब-तब मेरा सदागम से अवश्य मिलाप होता था और उसके मूल मे सामान्य रूप से गृहिधर्म अवश्य रहता था । कई बार ऐसा भी बना कि गृहस्थ धर्म के साथ मैंने सम्यग्दर्शन को नही भी देखा । सामान्यत: सम्यग्दर्शन के साथ सामान्य गृहस्थधर्म और सदागम को मैंने असंख्य बार देखा । जब-जब मैंने इन तीनो को देखा तब-तब मुझे सुख प्राप्त हुआ, पर बीच-बीच मे कई बार मैंने इन्हे छोड़ भी दिया । अकेले सदागम को तो मैंने अनन्तबार देखा, पर इसके बिना सम्यग्दर्शन कभी दिखाई नही दिया । [९७१-९७९]

हे भद्रे ! जब-जब सम्यग्दर्शन मेरे पास होता तब-तब पुण्योदय मेरा मित्र बना रहता और मेरे अनुकूल रहता । मानवावास या विबुधालय में मुझे जो यथेष्ट भोग, सपत्ति और विलास के सुख-साधन प्राप्त होते थे वे सब पुण्योदय के ही प्रताप से प्राप्त होते थे । हे भद्रे ! सम्यग्दर्शन की उपस्थिति से अन्य लाभ यह होता था कि मेरी कर्मस्थिति लघ्वी (सक्षिप्त) होती जाती, भावशत्रु भयभीत रहते और महामोहादि चुप पडे रहते । हे सुमुखि ! जब कभी मेरे भावशत्रु प्रबल हो जाते तब मेरा पुण्योदय मित्र मुझ से दूर हो जाता जिससे मुझे बहुत त्रास होता । पुण्योदय के दूर होते ही मेरे समक्ष दु ख के पहाड़ खडे हो जाते । इस सब के फलस्वरूप ही भवितव्यता मुझे अनन्त काल से भटका रही थी । पुण्योदय के अभाव मे कर्मस्थिति फिर लम्बी हो जाती और मन एकदम अधम तथा तत्त्व-श्रद्धा-रहित हो जाता । ऐसे समय मोहादि महाशत्रृ प्रबल हो जाते और मुझ पर अपना प्रभुत्व जमाते तथा सम्यग्दर्शन और सदागम मुझ से दूर चले जाते । ऐसी घटना अनेक बार घटी । [९८०-९८६]

एक विशेष बात तुझे और बतलादू कि मिथ्यादर्शन द्वारा जब सेनापति सम्यग्दर्शन पराभूत होता तब ज्ञानसवरण * सदागम पर विजय प्राप्त कर उसे भी दूर कर देता । कभी सम्यग्दर्शन और सदागम भी विजय प्राप्त कर मिथ्यादर्शन और ज्ञानसंवरण को दूर भगा देते ।

हे भद्रे ! इस प्रकार दोनों पक्षो की जय-पराजय चलती ही रहती । देश, काल, वल और परिस्थिति के अनुसार जब जिसकी प्रबलता होती तब उसकी विजय और विपक्ष की पराजय होती । इस प्रसग मे मुख्य बात यह थी कि दोनो पक्षो मे से जिस पक्ष के प्रति मै अपना प्रेम प्रदर्शित करता प्राय: उसकी विजय होती और जिसके विरुद्ध रहता उसकी पराजय होती । दोनो पक्षो की हार-जीत अनन्त काल तक होती रही । [९८७-९९०]

* पृष्ठ ६८४

विभूषण

वहिन अगृहीतसकेता ! अन्यदा भवितव्यता ने मुझे नई गोली देकर मानवावास के मध्यवर्ती सुन्दर सोपारक नगर के व्यापारी शालिभद्र की पत्नी कनकप्रभा की कुक्षि से पुत्र रूप मे उत्पन्न किया । यहाँ मेरा नाम विभूषण रखा गया ।

महापुरुषों की निन्दा : आशातना

एक समय मै शुभकानन उद्यान मे गया । वहाँ मुझे सुधाभूत आचार्य के दर्शन हुए । मैने उनका उपदेश सुना । उसी समय मेरी सेनापति सम्यग्दर्शन और इन महात्मा सदागम से भेट हुई । उपदेश सुनकर मुझे तत्त्व पर रुचि/श्रद्धा हुई, पर मन मे विरति (त्याग) भाव उत्पन्न नही हुआ । हे निष्पापे ! गुरु के आग्रह से आतरिक सच्ची इच्छा के विना मै साधु भी बन गया । मैने साधु का वेष धारण किया और साधुओ के वीच रहा भी, पर कर्म-दोष से मै विभाव (विपरीत) मार्ग पर चला गया और अपने वास्तविक कर्तव्य को भूल गया । ऐसे अवसर पर महामोहादि पुनः प्रवल हो गये और सम्यग्दर्शन तथा सदागम भावतः मेरे से दूर चले गये । महामोह के वशीभूत मे परनिन्दा करने लगा, सकारण या अकारण दूसरों पर आक्षेप करने लगा । मैंने तपस्वियो की निन्दा की, आदर्श चरित्र वाले महापुरुषो की निन्दा की, सत्क्रिया मे रुचि रखने वाले प्राणियो की टीका-टिप्पणी की । ऐसे उच्चस्तरीय पुरुपो की निन्दा करते हुए मेरे मन मे किंचित् भी ग्लानि नही हुई । बात यहाँ तक पहुँची कि संघ, श्रुतज्ञान, गणधरो और स्वय तीर्थंकरो की निन्दा और आशातना करने से भी मैं नही चूका । गणधर और तीर्थंकर भी अमुक विषय को बरावर नही समझ सके, ऐसे आक्षेप मैंने किये । यो साधु का वेष धारण करके भी मैं पूर्णरूपेण पापात्मा, गुणो का शत्रु और महामोहाभिभूत भयंकर मिथ्यादृष्टिवान बन गया ।

दु ख-समुद्र में पतन

हे भद्रे ! ऐसी पाप चेष्टाओ के परिणाम स्वरूप मै अति कठिन दुर्भेद्य कर्मसमूह से घिर गया । परिणाम स्वरूप मेरी पत्नी भवितव्यता ने मुझे फिर से अनन्त काल तक दुःखसमुद्र मे डुबा कर लगभग सभी स्थानो पर भटकाया । इस ससार मे रही हुई समस्त द्रव्यराशि को मैंने अर्धपुद्गल-परावर्तन से कुछ कम समय मे भोग लिया और चारो तरफ खूब भटका । हे पद्मपत्राक्षि ! इस ससार-चक्र के भ्रमण मे एक भी विपत्ति शेष न रही जो मुझ पर न पडी हो, अर्थात् एक भी दुःख या विडम्बना बाकी न रही । [९९१–१००४]

प्रज्ञाविशाला की विचारणा

ससारी जीव की उपर्युक्त आत्मकथा सुनकर उसके भावार्थ को थोडा-थोडा समझने वाली अगृहीतसकेता मन मे चकित हुई । इस आत्मकथा को सुनकर प्रज्ञाविशाला के मन मे* तीव्र सवेग उत्पन्न हुआ और वह सोचने लगी—

---

* पृष्ठ ६८५

मै ऐसा समझती हूँ कि ससारी जीव को लगे समस्त पापो में से महामोह और परिग्रह अति भयकर है। इसका कारण यह है कि जब ससारी जीव को सम्यग्दर्शन का परिचय नही हुआ था और वह किसी भी प्रकार के गुणो से रहित था तब क्रोधादि पापो ने उसे अनर्थ-परम्परा मे झोका, उसे नचाया, इसमे तो आश्चर्य ही क्या ? किन्तु सम्यग्दर्शन का परिचय होने और गुण प्राप्त करने के पश्चात् भी महामोह और परिग्रह ने इसे दीर्घकाल तक ससार के सभी स्थानो मे भटकाया, इसीलिये ये दोनों अतिप्रबल अनर्थकारी हैं ।

जहाँ-जहाँ महामोह और परिग्रह होते है, वहाँ-वहाँ क्रोधादि तो होते ही है, क्योकि इस समस्त समुदाय का नायक महामोह ही है। परिग्रह भी इस सब का आश्रय स्थान है, क्योंकि यह लोभ का मित्र है और लोभ महामोह की सेना मे मुख्य अधिकारी है । अत. संसारी जीव के गुणो के घात के लिए ये दोनो मूलतः नायक हो तो इसमे भी क्या आश्चर्य ? वैसे क्रोधादि भी प्राणी के सद्गुणो का नाश करने मे समर्थ है, किन्तु ये दोनो उच्चस्तर पर पहुचे हुए प्राणी को भी नीचे गिराने मे समक्ष है, इसीलिये ये अति दारुण कहे जाते हैं। महामोह के बिना क्रोधादि तो हो ही नही सकते, क्योकि वे तो बेचारे पैदल सैनिको जैसे हैं । इन्हे आज्ञा देने वाले सेनापति तो ये दोनो ही हैं। सिद्धि-प्राप्ति के इच्छुक प्राणियो के लिये विशेष रूप से अनुक्रम से इनके दोषो का यहाँ दिग्दर्शन कराया गया है। ससारी जीव के समस्त अनर्थों के जनक ये दोनो ही हैं। गुरु महाराज इस वास्तविकता को नित्य ही अपने उपदेश द्वारा लोगो को बताते रहते है, चेतावनी देते रहते हैं, फिर भी लोग इन दोनों पापियो का त्याग नही करते, तब क्या किया जाय ? कोविदाचार्य ने श्रुति को दुष्टा कहा था, पर मूर्ख मनुष्य बार-बार उसी मे आसक्त होते है, उसके हाथ मे फसकर उसके खिलौने बन जाते है ।[१००५–१०२०]

प्रज्ञाविशाला को गाढ चिन्तन मे सलग्न देखकर भव्यपुरुष ने पूछा—कहिये माताजी ! आप क्या सोच रही हैं ?

उत्तर मे प्रज्ञाविशाला ने कहा—वत्स ! पहले तू निराकुल होकर ससारी जीव की पूरी आत्मकथा सुनले, शीघ्रता न कर। मेरे मन मे जो विचार उठे हैं वे मैं तुम्हे बाद मे सुना दू गी। इसकी आत्मकथा अब लगभग समाप्त होने आ रही है, अतः तू पहले इसे ध्यान पूर्वक सुनले ।

यह सुनकर राजकुमार भव्यपुरुष आदर सहित चुप हो गया। ससारी जीव * पुन. अपनी आत्मकथा का शेष भाग सुनाते हुए कहने लगा ।

[१०२१–१०२४]

* पृष्ठ ६८६

विशद

वहि्न अगृहीतसकेता ! इसके पश्चात् भवितव्यता मुझे भद्रिलपुर नगर के राजा स्फटिकराज की पत्नी विमला रानी की कूख में ले गई । वहाँ मैं उनके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ और मेरा नाम विशद रखा गया । राजवैभव के आनन्द का उपभोग करते हुए, क्रमशः बढते हुए मैं युवावस्था को प्राप्त हुआ । एक समय मेरा सुप्रबुद्ध मुनि से मिलन हुआ । इनकी सुसगति से मुझे जैन-शासन का बोध हुआ । हे भद्रे ! उस समय सेनापति सम्यग्दर्शन, महात्मा सदागम और राजकुमार गृहिधर्म से मेरी पुनः मित्रता हुई । वहाँ मैंने व्रतो का पालन किया और मेरी आत्मा तात्त्विक श्रद्धा से पवित्र हुई । इस स्थिति मे मैं वहाँ लम्बे समय तक रहा । मात्र सूक्ष्म पदार्थों का पृथक्करण करने योग्य गहन ज्ञान मुझे नही हुआ था, पर मै धीरे-धीरे प्रगति कर रहा था । परिणाम स्वरूप मेरा अन्तरग मित्र पुण्योदय फिर से प्रकट हुआ और मेरे साथ अधिकाधिक प्रीति बढाता गया ।

गमनागमन

पुण्योदय के प्रताप से मै तीसरे देवलोक मे गया जो विबुधालय का एक भाग है । वहाँ मैंने शब्दादि पाँचो इन्द्रियो के सुन्दर/प्रशस्त भोगो को खूब भोगा । देवलोक मे तो इन्द्रिय भोगो की विपुलता रहती ही है । सात सागरोपम काल तक मैं देवलोक मे रहा, फिर मानवावास मे आया, वहाँ से फिर विबुधालय मे गया । हे भद्रे ! यो अनेक बार मेरा आवागमन होता रहा । सक्षेप मे, मेरे तीनो मित्रो के साथ मैंने बारह ही देवलोको को कई बार देखा । बीच-बीच मे कभी-कभी मेरे मित्र मुझे छोड भी जाते थे, पर क्रमश. इन तीनो मित्रो के साथ मेरे सम्बन्ध धीरे-धीरे दृढ होते जा रहे थे । इसके पश्चात् मेरी पत्नी भवितव्यता ने बारहवें देवलोक से मुझे वापस मानवावास मे भेजा, उसका वर्णन अब आगे करता हूँ ।

[१०२५-१०३३]
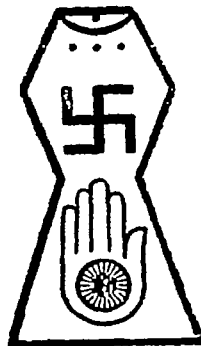
उपसंहार

विमलमपि गुरूणा भाषितं भूरिभव्याः,
प्रबलकलिलहेतुर्यो महामोहराजः।
स्थगयति गुरुवीर्योऽनन्तससारकारी,
मनुजभवमवाप्तास्तस्य मा भूत वश्याः ॥१०३४॥

अनेक प्रकार के प्रबल षड्यन्त्र खडे करने वाला, ससार को अनन्त काल तक बढाने वाला और महान् शक्तिशाली यह महामोह महाराजा है। गुरु महाराज के विशुद्ध एव पवित्र उपदेश को, बारम्बार विवेचन पूर्वक स्पष्ट की हुई बात को भी जो दबा देता है, निर्जीव कर देता है, दूर कर देता है ऐसा प्रबल यह महामोह राजा है। अतः हे भव्य प्राणियो! मनुष्य जन्म प्राप्त कर कभी इस मोहराजा के वशीभूत न बने। [१०३४]

सकलदोषभवार्णवकारण,
त्यजत लोभसख च परिग्रहम्।
इह परत्र च दुःखभराकरे,
सजत मा बत कर्णसुखे ध्वनौ ॥१०३५॥

परिग्रह लोभ का मित्र है, सभी दोषो का कारण है और ससार-समुद्र मे डुबाने वाला है, अत इस परिग्रह का त्याग करे। इस भव और परभव मे दु.ख के भार से आप्लावित ध्वनि-सुख (श्रवणेन्द्रिय के माने हुए सुख मधुर-ध्वनि) मे आसक्ति न रखे। [१०३५]

एतन्निवेदितमशेषवचोभिरत्र,
प्रस्तावने तदिदमात्मधिया विचिन्त्य।
सत्य हित च यदि वो रुचितं कथञ्चि-
त्तर्ण तदस्य करणे घटना कुरुध्वम् ॥१०३६॥

अनेक घटनाओ से इस खण्ड (प्रस्ताव) मे उपर्युक्त बात को स्पष्ट किया गया है। आत्मदृष्टि से आप लोग इस विषय मे विचार करे और यदि आपको इसमे से कोई भी बात सत्य एव हितकारी लगती हो और उसके प्रति आप मे रुचि उत्पन्न हुई हो तो ऐसे हितकारी कथन को आप शीघ्र अपने जीवन मे सक्रिय आचरण रूप से उतारने का प्रयत्न करे। [१०३६]

उपमिति-भव-प्रपञ्च कथा का महामोह, परिग्रह,
श्रवणेन्द्रिय के फल का वर्णन करने वाला
सातवा प्रस्ताव समाप्त।

उपमिति-भव-प्रपंच कथा

८. अष्टम प्रस्ताव

पात्र-परिचय

स्थल	मुख्य पात्र	परिचय	सामान्य पात्र	परिचय
सप्रमोद नगर (वहिरंग)	मधुवारण	सप्रमोद नगर का राजा		
	सुमालिनी	मधुवारण राजा की पटरानी		
	गुणधारण	संसारी जीव, मधुवारण-सुमालिनी का पुत्र		
	कुलन्धर	गुणधारण का मित्र		
साह्लाद मंदिर (वन)	कनकोदर	गन्धसमृद्ध नगर का राजा		
	कामलता	राजा कनकोदर की पटरानी		
गन्धसमृद्ध नगर	मदनमंजरी	ससारी जीव गुणधारण की पत्नी, कनकोदर-कामलता की पुत्री (भविष्य में होने वाली सुललिता और अगृहीत-सकेता)	लवलिका	मदनमजरी की सखी, नरसेन और वल्लरिका की पुत्री
			अमितप्रभ	गगनवल्लभपुर के विद्युद्दत विद्याधर का पुत्र
			भानुप्रभ	गान्धर्वपुर के नाग-केसरी विद्याधर का पुत्र
			रतिविलास	रथनुपुर के रति-मित्र विद्याधर का पुत्र
			धवलिका	महारानी काम-लता की दासी
			कालनिवेदक	समय-सूचक प्रहरी
			चटुल	कनकोदर विद्या-धर का अनुचर
			कल्याण	गुणधारण का अनुचर

(अन्तरंग)	पुण्योदय सदागम सम्यग्दर्शन सात राजा	गुणधारण के अन्तरग मित्र
	सुखासिका	गुणधारण की अन्तरग सखी
	कन्दमुनि	छद्मस्थ विद्वान् साधु, भविष्य मे होने वाली महाभद्रा और प्रज्ञाविशाला
	निर्मलाचार्य	केवलज्ञानी, उपदेशक

—दशकन्या परिचय—

चित्तसौन्दर्य नगर (अन्तरंग)	शुभपरिणाम	चित्तसौन्दर्य नगर का राजा
	निष्प्रकम्पता	राजा शुभपरिणाम की रानी
	चारुता	राजा शुभपरिणाम की रानी
	१. क्षान्ति	रानी निष्प्रकम्पता की पुत्री
	२ दया	रानी चारुता की पुत्री
शुभ्रमानस नगर (अन्तरंग)	शुभाभिसन्धि	शुभ्रमानस नगर का राजा
	वरता	राजा शुभाभिसन्धि की रानी
	वर्यता	राजा शुभाभिसन्धि की रानी
	३ मृदुता	रानी वरता की पुत्री
	४ सत्यता	रानी वर्यता की पुत्री
विशद मानस नगर (अन्तरग)	शुद्धाभिसन्धि	विशदमानस नगर का राजा
	शुद्धता	राजा शुद्धाभिसन्धि की रानी
	पापभीरुता	राजा शुद्धाभिसन्धि की रानी
	५. ऋजुता	रानी शुद्धता की पुत्री
	६. अचौरता	रानी पापभीरुता की पुत्री

शुभ्रचित्तपुर (अन्तरंग)	सदाशय	शुभ्रचित्तपुर का राजा		
	वरेण्यता	राजा सदाशय की रानी		
	७. ब्रह्मरति	सदाशय-वरेण्यता की पुत्री		
	८. मुक्तता	सदाशय-वरेण्यता की पुत्री	धर्म शुक्ल	दो अन्तरग श्वेत पुरुष
	९. विद्या	सेनापति सम्यग्दर्शन की पुत्री		
	१०. निरीहता	चारित्रधर्मराज-विरति की पुत्री	पीता पद्मा शुक्ला	तीन सुन्दर परिचारिकाएँ (लेश्याएँ)
	जनतारण	गुणधारण का पुत्र		

ग्रैवेयक १ २:३.४ ५	ग्रैवेयक देव	ससारी जीव देव के रूप मे

सिहपुर (वहिरंग)	गंगाधर	ससारी जीव, महेन्द्र-वीणा का पुत्र
	सुघोषाचार्य	जैनाचार्य, गगाधर के उपदेशक

शंखनगर (वहिरंग)	महागिरि	शखनगर का राजा		
	भद्रा	राजा महागिरि की रानी	ऋद्धि गौरव रस गौरव साता गौरव	शैलराज के अन्तरग सहयोगी
	सिह	ससारी जीव, महागिरि-भद्रा का पुत्र		
	धर्मबधु	मुनि, सिह के धर्म गुरु	आर्त्तशय रौद्राभिसन्धि	गौरवो के अनुयायी
			कृष्णा, नीला, कापोता	परिचारिकाएँ, लेश्याएँ, आर्त्ता-शय और रौद्राभि-सन्धि की सेविकाएँ

पंचाक्ष पशु संस्थान	आयुष्य	अन्तरग का एक स्वतत्र राजा
विबुधालय	अत्यन्त अबोध	एकाक्ष निवास का राज्यपाल
मानवावास	तीव्र मोहोदय	एकाक्ष निवास का सेनापति

समस्त पात्र-सम्मिलन

क्षेमपुरी	युगन्धर	क्षेमपुरी का राजा	प्रियंकरी	दासी
	नलिनी	राजा युगन्धर की रानी		
शंखनगर	अनुसुन्दर	ससारी जीव, चक्रवर्ती, चोर	पुरन्दर	अनुसुन्दर चक्रवर्ती का पुत्र
चित्तरम उद्यान				
मनोनन्दन चैत्य				
हरिपुर (बहिरंग)	भीमरथ	हरिपुर का राजा		
	सुभद्रा	राजा भीमरथ की रानी		
	समन्तभद्र	भीमरथ-सुभद्रा का पुत्र, आचार्य, सदागम	सुघोष	आचार्य समन्तभद्र के गुरु
	महाभद्रा	भीमरथ-सुभद्रा की पुत्री, समन्तभद्र की बहिन, प्रज्ञाविशाला, कन्दमुनि का जीव, प्रवर्तिनी साध्वी	दिवाकर	गधपुर के रविप्रभ और पद्मावती का पुत्र, महाभद्रा का पति

चोर-सम्बन्धी रचना

रत्नपुर (बहिरंग)	मगधसेन	रत्नपुर का राजा	अकुशल	द्रव्य, चोरी की वस्तु
	सुमंगला	राजा मगधसेन की रानी	कर्ममल	भस्म, शरीर पर लेपन
	सुललिता	मगधसेन-सुमगला की पुत्री, मदनमञ्जरी का जीव, अगृहीतसकेता	राजस्	सोनागेरु का हथछापा
			तामस्	मसी का चादला
			रागकल्लोल	कणेर की माला
			कुविकल्प-सन्तति	सकोरो की लम्बी माला
			पापातिरेक	टूटा हुआ मिट्टी का ठीकरा (शिर पर)

			असदाचार	गधा (बैठने के लिए)
			दुष्टाशय	राजपुरुषो से वेष्टित
			विवेकीजन	पापो की निन्दा करने वाले
			कषाय	उद्धत बालक
			संभोग	शब्दादि विषय, फूटा ढोल
			बहिर्लोकविलास	दुर्जनो का अट्टहास्य
शखपुर (बहिरग)	श्रीगर्भ	शखपुर का राजा, अनुसुन्दर चक्रवर्ती (ससारी जीव) का मामा		
	कमलिनी	राजा श्रीगर्भ की रानी, महाभद्रा की मौसी		
	पुण्डरीक	श्रीगर्भ-कमलिनी का पुत्र भव्यपुरुष, सुमति, आचार्य समन्तभद्र के पट्टधर		
	संसारी जीव	कथानायक, अनुसुन्दर चक्रवर्ती		
	अवधि	सद्बोध का मित्र		

	अमृतसार	गाधारराज-पद्मिनी का पुत्र, ससारी जीव की प्रगत आत्मा	धनेश्वर	आचार्य पुण्डरीक का पट्टधर आचार्य

१. गुणधारण और कुलन्धर

गुणधारण कुमार *

मानवावास मे एक सप्रमोद नगर था। यह नगर अनेक अकल्पनीय उत्तम गुणो से विभूषित था और इसमे निरन्तर उत्सव होते रहते थे। जैसे मेघ पृथ्वी को जल का दान देकर उपजाऊ बनाते है वैसे ही यहाँ के नागरिक प्राथियो को दान रूपी जल से सिंचित कर हर्षित करते थे। हृष्ट-पुष्ट नागरिक अपनी मन्द गति से झूमकर चलते हुए मानो इन्द्र के ऐरावत हाथी का भ्रम उत्पन्न करते थे। यहाँ की ललनाये रूप-लावण्य और वस्त्राभूषणो से देवागनाओ जैसी लग रही थी। उनके पलक झपकने मात्र से वे देवियो से भिन्न दिखाई देती थी। इस नगर मे मधुवारण नामक राजा राज्य करता था जो शत्रु रूपी हाथियो के गण्डस्थल को छिन्न-भिन्न करने वाला, अत्यन्त पुरुषार्थी और विख्यात कीर्त्ति वाला था। यह राजा राज्यधन को प्रजा का धन मानकर उसे इस प्रकार व्यय करता था कि जिससे अधिकाधिक लोकोपयोगी कार्य हो सके। यह इतना आत्मविश्वासी था कि उसकी स्त्री अत्यन्त रूपवती होने पर भी उसने रणवास मे कोई पहरेदार नही रखा था। उसकी रूप-लावण्य से परिपूर्ण, कमल जैसी आँखो वाली, उत्तम कुलोत्पन्न, अनेक गुण विभूषित सुमालिनी नामक महारानी थी। इसने राजा को अपने हृदय मे बसा लिया था, फिर भी वह स्वय राजा के चित्त मे बसी हुई थी अर्थात् इनमे दो शरीर एक मन जैसा अटूट प्रेम था। [१–७]

हे भद्रे अगृहीतसकेता! मेरी स्त्री भवितव्यता की प्रेरणा से मैंने पुण्योदय के साथ इस निपुण धर्माचारिणी महादेवी सुमालिनी की कुक्षि मे पुत्र रूप से प्रवेश किया। हे अनघे! योग्य समय पूर्ण होने पर मैं कूख से बाहर आया। मेरे शरीर के सब अवयव सुन्दर थे। मेरा मित्र पुण्योदय भी मेरे साथ ही बाहर आया। मेरा जन्म होते ही चारो तरफ आनन्द फैल गया, बाजे बजने लगे, सगीत होने लगा और पूरा राजभवन हर्ष मे डूब गया। उस समय जो बधाइयाँ दी गईं, उनका वर्णन अशक्य है। मेरे पिताजी को भी अत्यन्त आनन्द हुआ। मनमोहक रास, नृत्य और विलास होने लगे, बाजे बजने लगे, लोगो को पुरस्कार वितरित किये गये, भोजन प्रचुर मात्रा मे वितरित किया गया, गायन की महफिलें जमने लगी, मद्य की मस्ती मे मस्त लहरी लोग इधर-उधर घूमने लगे, सुन्दर स्त्रियो के साथ वामन नृत्य करने लगे, कुबडे और कचुकी हास्य-विनोद करने लगे और याचको के मनोरथ पूर्ण किये गये। इस प्रकार जनमानस को आश्चर्यचकित करने वाला चमत्कारिक रूप से मेरा

---

* पृष्ठ ६८७

जन्मोत्सव मनाया गया जिससे सर्वत्र आनन्द और बधाइयों के शब्द गूंजने लगे। योग्य समय पर मेरे पिता ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक मेरा नाम गुणधारण रखा। दूध पिलाने वाली, कपडे पहनाने वाली, स्नान कराने वाली, खिलाने वाली और गोद मे लेने वाली पाँच धायो द्वारा मेरा पालन-पोषण होने लगा। जिस प्रकार स्वर्ग में देव अनेक प्रकार के सुखो का अनुभव करते है* वैसे ही सुख सागर मे उन पॉच धात्रियो के द्वारा पालित मै बडा होने लगा। [८–१४]

गुणधारण और कुलन्धर की मैत्री

मेरे पिता के सगोत्रीय भाई विशालाक्ष नामक राजा थे। मेरे पिताजी और उनके मध्य ऐसी गाढ मैत्री थी कि दोनो एक दूसरे पर प्राण न्यौछावर करते थे। इनके एक कुलन्धर नामक पुत्र था। मेरे पिता का कुलन्धर पर अतिशय स्नेह होने से वह सप्रमोद नगर मे ही रहता था। कुलन्धर और मेरे बीच भी प्रगाढ स्नेह था। धीरे-धीरे मित्रता बढती गई और हम दोनो गाढ मित्र हो गये। कुलन्धर अतिशय विशुद्ध हृदय वाला, सुन्दर, रूपवान, भाग्यशाली, प्रवीण, सर्वगुण-सम्पन्न और वास्तव मे कुल का दीपक ही था। इस शुद्ध बुद्धि वाले सद्गुणी मित्र के साथ मै बडा होने लगा और हम दोनो मे परस्पर सद्भावपूर्वक प्रगाढ़ स्नेह बढता ही गया। फिर हमने साथ रहकर कला का अभ्यास किया, साथ-साथ खेले और साथ ही साथ कामदेव के मन्दिर स्वरूप युवावस्था को प्राप्त हुए। [१५–१९]

सुन्दरी का मोहन

हमारे नगर से थोड़ी ही दूर पर मेरुपर्वत के नन्दनवन जैसा अति मनोरम आह्लादमन्दिर नामक श्रेष्ठ उद्यान था। हम दोनो को यह उद्यान अत्यन्त प्रिय था। इसे देखते ही हमारे नेत्रों को शान्ति प्राप्त होती थी और हमारा चित्त आह्लादित होता था, अतः हम प्राय. प्रतिदिन वहाँ जाते थे। [२०–२१]

एक दिन प्रातः हम इस उद्यान मे गये तो हमने दूरवर्ती दो स्त्रियो को स्पष्टतः देखा। इनमे से एक तो विशाल नेत्रो वाली और अपने रूप-लावण्य एव विलास से कामदेव की पत्नी रति की भी परिहास करने वाली थी। दूसरी स्त्री इतनी सुन्दर नही थी। पहली सुन्दरी ने अपने भौहे रूपी धनुष से दृष्टिबाण मेरी तरफ फेंके। उसके दृष्टिपथ मे आते ही मैं पूरा का पूरा इन बाणो से बिध गया। फिर एक आम्र वृक्ष की शाखा पर विलास-पूर्वक लटक कर उस चारु अग वाली ने झूला झूलने के बहाने अपने उन्नत उरोजो का प्रदर्शन कर मेरा मन मोह लिया। उस समय उसके बाह्य चिह्नो से मैंने उसके आन्तरिक भाव को जान लिया। उसका मन भी चकित, विस्मित, स्नेहयुक्त और विचारमग्न होकर अति लज्जित हो गया हो ऐसा मुझे लगा। मन और नेत्रो को आनन्दित करने वाली उस सुन्दर ललना के प्राकृतिक सद्भाव एव अर्पण करने योग्य हाव-भावो को देखकर मेरा चित्त आह्लादित

* पृष्ठ ६८८

हो गया। उस समय क्षणभर मे मै सोचने लगा कि कहीं यह कामदेव की पत्नी रति तो नही है ? साक्षात् इन्द्राणी तो नही है ? या विष्णु-हृदय-स्थित लक्ष्मी ही तो कही शरीर धारण कर नही आ गई है ? हे सुमुखि ! विचार ही विचार मे मैं कामदेव के पुष्पबाणो से बिध गया और मेरा मानस विकार-ग्रस्त हो गया। मेरे पास ही खडे मेरे मित्र कुलन्धर ने कुछ जिज्ञासा पूर्वक मेरी तरफ देखा। मुझे लगा कि यह भी मेरे मन की बात भाप गया है। फिर मैंने अपने मुँह पर प्रकट होने वाले भावों को छिपाकर बात को उडाने का प्रयत्न किया। मेरे मन मे उस समय यह विचार भी आया कि "विवेकी पुरुषों को परस्त्री के सामने कामुक दृष्टि से नही देखना चाहिये, प्रतिष्ठित लोगो के लिये यह तो बडी लज्जा की बात है।" ओह ! मेरे मित्र ने यदि मुझे पराई स्त्री पर कुदृष्टि से झाँकते देख लिया होगा तो वह अपने मन मे क्या सोचेगा ? मैंने लज्जित होकर* उसकी दृष्टि बचाकर बार-बार उसकी तरफ देखा और यह जानने का प्रयत्न किया कि उस पर मेरी मनोवृत्ति का क्या प्रभाव हुआ है ? कला-कुशल कुलन्धर ने मेरे हृदय के भाव जान लिये थे, अत. उसने भी बात को घुमाते हुए मुझसे कहा—कुमार ! हम बहुत समय से यहाँ खेल रहे है, अब मध्याह्न भी हो रहा है, अधिक रुकने से क्या लाभ ? चलो घर चले। मैंने भी तुरन्त कहा—हाँ भाई ! तुम्हारी जैसी इच्छा, चलो चले। फिर हम दोनो अपने-अपने भवनो मे चले गये और दिवसोचित शेप कार्य सम्पन्न किये। [२२-३७]

गुणधारण की काम-विह्वलता

रात मे जब मैं अकेला अपने पलग पर सोया तो खटाक से मेरी कल्पना मे फिर वह मृगनयनी प्रमदा आ खडी हुई। हे भद्रे ! यदि मेरा पवित्र अन्तरंग मित्र पुण्योदय मेरे साथ नही होता और मेरी सहायता नही करता तो इस प्रमदा ने मेरे चित्त पर छाकर, न मालूम कितना बडा काँटा मेरे हृदय मे चुभा कर घाव कर दिया होता और न जाने मेरी क्या गत बन गई होती, यह तो कहना ही असम्भव है। किन्तु, केवल निष्पाप पुण्योदय के निकट होने के कारण ही वह प्रमदा मेरे लिये अत्यधिक घातक/बाधक नही बन सकी, क्योकि निर्दोष पुण्योदय मित्र सासारिक पदार्थो पर प्राणियो के मन को दृढ एव बन्धनरहित बना देता है। फिर भी उस कमल-नयनी की स्मृति से मुझे सहज चिन्ता हो गई कि वह कौन होगी ? किसकी पत्नी होगी ? इन्ही विचारो मे मुझे नीद आ गई और प्रात काल हो गया।

पुनः उद्यान-गमन : कामलता-मिलाप

प्रातः कुलन्धर फिर मेरे पास आया। प्रमदा को फिर से देखने की किंचित् इच्छा से मैंने उससे पूछा—क्यो मित्र ! आज फिर आह्लाद-मन्दिर उद्यान मे चले ?

कुलन्धर ने मुस्कराते हुए कहा—क्यो, क्या कोई चाबी वहाँ भूल आये हो क्या ?

---

* पृष्ठ ६८९

मुझे लगा कि, अरे ! कुलन्धर ने मेरे मन की बात जान ली है। ऐसा सोचकर मैंने कहा—मित्र ! अब परिहास छोड़ो, चलो हम फिर उद्यान में जाकर देखे कि वह कौन है ? किसकी पत्नी या पुत्री है ? हमे यह परीक्षा करनी है कि वह कन्या योग्य है या नही ? ऐसा मत सोच कि मै परस्त्री को भी ग्रहण कर लूँगा। पर, यदि वह कुमारी कन्या होगी तो इन्द्र द्वारा पीछा किये जाने पर भी मैं उसे नही छोड़ूंगा।

कुलन्धर ने आश्वासन दिया—भाई ! शीघ्रता मत कर। पहले उद्यान में चलकर उसे ढूँढते है, फिर तुझे जैसा अच्छा लगेगा वैसा ही करेंगे।

तदनन्तर हम दोनो उद्यान मे गये और उस स्थान को देखा जहाँ कल उन दोनो स्त्रियो को देखा था। पर, वे वहाँ दिखाई नही दी, जिससे मेरे मन मे उस मृगनयनी से मिलने और उसे प्राप्त करने की कामना से सहज उद्वेग भी हुआ और मन भी पीड़ित हुआ।* वन मे चारो तरफ ढूंढते हुए हम दोनो एक आम्रवृक्ष के नीचे बैठे ही थे कि हमारे पीछे पत्तो की मर्मर ध्वनि से किसी के चलने का आभास हुआ। गर्दन घुमाते ही मैंने दो स्त्रियो को देखा। उनमे से एक तो मध्यम वय की सुशोभना सुन्दर स्त्री थी और दूसरी उसके साथ वाली सामान्य। [३८–५४]

हम दोनो खडे हुए और गर्दन झुकाकर नमन किया। मुझे गौर से देखकर मध्यमवय की स्त्री की आँखो मे हर्ष के आँसू आ गये और वह बोली—वत्स ! तेरी उम्र मुझसे भी अधिक हो। फिर कुलन्धर से बोली—वत्स ! आयुष्मान हो। मुझे आप दोनो से एक आवश्यक बात कहनी है, थोड़ी देर बैठो।

कुलन्धर ने कहा—जैसी माताजी की आज्ञा। तत्पश्चात् उस प्रौढा ने अपने हाथो से भूमि स्वच्छ की। हम सब स्वच्छ जमीन पर बैठ गये और उस स्त्री ने अपनी कथा प्रारम्भ करते हुए कहा—वत्स ! सुनो—

२. मदनमंजरी

विद्याधरी का कथन

विद्याधरो के निवास स्थान वैताढ्य नामक विशाल पर्वत पर एक गन्धसमृद्ध नगर है। विद्याधरो का चक्रवर्ती कनकोदर राजा यहाँ राज्य करता है। मैं उसी की पत्नी कामलता महादेवी हूँ। दिन, माह और वर्ष वीत गये पर मुझे एक भी सतान नही हुई। मेरे वन्ध्यापन से मैं और मेरे पति दोनो ही उद्विग्न एव व्यथित थे। हमने पुत्र-

---

* पृष्ठ ६६०

प्राप्ति के लिये अनेक औषधियो का सेवन किया, ग्रहशान्ति करवाई, सैकडो मानताएँ मानी, निमितज्ञो से भविष्य पूछा, मंत्रज्ञों से जाप करवाये, तन्त्रज्ञो से यन्त्र बनवाकर हाथ मे बाँधे, अनेक जड़ी बूटियें पी, अनेक टोटके किये, अवश्रुतियाँ निकालवाईं, भविष्य पूछा, मादलिये पहने, प्रश्न पूछे, प्रशस्त स्वप्नो का अर्थ पूछा, योगिनियों की प्रार्थना की। सक्षेप मे ऐसा कोई उपाय शेष न रहा जो सन्तति-प्राप्ति के लिये हमने न किया हो। अन्त मे कुछ समय पश्चात् मेरी प्रौढावस्था मे मुझे गर्भ रहा। महाराजा अत्यधिक प्रसन्न हुए।

मदनमंजरी का जन्म

योग्य समय पर मैंने एक पुत्री को जन्म दिया। उसके शरीर की कान्ति इतनी अधिक दीप्तिमान थी कि वह अपने तेज से चारो दिशाओ को प्रकाशित कर रही थी। इस सुसमाचार को जानकर राजा को अपार हर्ष हुआ। उसने खूब बधाईयाँ बाँटी। शुभ दिन मे सगे-सम्बन्धियो को बुलाकर सन्मानित कर उनके समक्ष उसका नाम मदनमजरी रखा। मदनमजरी सुख मे पल रही थी और वह सभी को अत्यन्त प्रिय थी।

स्वयंवर मण्डप

मेरे पति को नरसेन नामक योद्धा से अत्यन्त स्नेह था। उसके भी वल्लरी के समान कोमल पुत्री थी जिसका नाम लवलिका था। मदनमजरी और लवलिका में परस्पर प्रगाढ प्रेम था। दोनो ने एक साथ सर्व कलाओ का अभ्यास किया। अनुक्रम से मदनमंजरी ने तरुणाई प्राप्त की। वह अत्यन्त रूपवती और अधिक पढी-लिखी होने से ऐसा सोचकर कि 'उसके योग्य पति का मिलन कठिन है' वह पुरुषद्वेषिणी बन गई। जब लवलिका द्वारा उसके पुरुषो के प्रति ऐसे विचार मालूम हुए, तो मुझे हार्दिक खेद हुआ। जब मैंने महाराजा को यह बात बताई* तब वे भी चिन्ताग्रस्त हो गये कि, अब इस कन्या का विवाह कैसे होगा? अन्त मे महाराजा को एक बात सूझी। उन्होने स्वयवर मण्डप की रचना कर सभी विद्याधर राजाओ और राजकुमारो को निमन्त्रित कर दिया। सभी विद्याधर राजा आने लगे। उनका योग्य सन्मान कर एक ऊँचे मञ्च पर सभी को अलग-अलग योग्य स्थानो पर बिठाया गया। स्वयवर मण्डप के मध्य मे महाराजा कनकोदर अपने परिवार के साथ बैठे। मदनमजरी को सुन्दर वस्त्राभूषण, मेहदी, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों एव पुष्पहारो से सजाकर उसकी सखी लवलिका के साथ हम सब ने स्वयवर मण्डप मे प्रवेश किया। देवाङ्गनाओ के सौन्दर्य का भी उपहास करने वाली मदनमजरी के लावण्य को देखकर सभी विद्याधर राजाओ के चित्त उद्वेलित हो गये और वे निर्निमेष होकर एकटक उसे देखते हुए चित्रलिखित से स्तब्ध हो गये। मैंने मदनमजरी को प्रत्येक

* पृष्ठ ६६१

राजा का परिचय देना प्रारम्भ किया। प्रत्येक के नाम, गोत्र, वैभव, निवास स्थान, सौन्दर्य, गुण, आयुष्य, राज्यचिह्न आदि का परिचय दिया। जैसे—

पुत्रि! देख, यह विद्युद्दत राजा के पुत्र अमितप्रभ विद्याधर है। गगन-वल्लभ नगर के स्वामी हैं। बहुत ऋद्धिवान है। देवता जैसे सुन्दर है। सर्वकलाओ मे प्रवीण हैं। इनकी पताका मे सुन्दर मोर का चिह्न है जो बिजली जैसा चमक रहा है। [५५-५६]

वत्से! ये गान्धर्वपुर नगर के स्वामी महाराजा नागकेसरी के पुत्र भानुप्रभ है। ये बहुत शक्तिशाली, ऋद्धिवान, अत्यन्त मनोहर आकृतियुक्त, अनेक विद्याओ में प्रवीण, गुणो के भण्डार और बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके ध्वज मे गरुड़ सुशोभित है। [५७-५८]

हे मदनमजरि! देख, ये रथनुपुर-चक्रवालपुर के महाराजा रतिमित्र के पुत्र रतिविलास है। ये अढलक सम्पत्ति और ऋद्धि-सम्पन्न है। इनका शरीर स्वर्ण जैसा सुशोभित है। ये सर्व विज्ञान के सागर और गुणो की खान हैं। इनके ध्वज मे सुन्दर बन्दर का चिह्न है। [५९-६०]

स्वयंवर-भंग

जैसे-जैसे मैं प्रत्येक राजा या राजपुत्र का वर्णन करते हुए धीरे-धीरे मदन-मंजरी के साथ-साथ आगे बढ रही थी वैसे-वैसे मदनमजरी का मुँह उतरता जा रहा था। वह विषाद को प्राप्त होती जा रही थी। [६१]

जैसे कोई निर्भागी स्त्री अपनी सौत के गुणो को सुनकर खिन्न हो जाय, आपत्ति-ग्रस्त योद्धा शत्रु-सेना की शक्ति को सुनकर उदास एव निरुत्साह हो जाय, अभिमानी वादी जैसे प्रतिवादी के अतिशय को देखकर पीला पड़ जाय, ईर्ष्यालु वैद्य दूसरे कुशल वैद्य को आता देखकर जैसे पीछे हट जाय या गर्विष्ठ ज्ञानी की अन्य विज्ञानी के नैपुण्य को देखकर मन की जैसी स्थिति हो जाय वैसी ही स्थिति उस समय विद्याधर नृपतियो का वर्णन सुनकर मदनमजरी की हो रही थी। उसने तो अपनी दृष्टि को भी ऊपर नही उठाया, नीचे दृष्टि किये वह अत्यन्त म्लानमुखी हो गई। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। 'अरे! इसको क्या हो गया' इस चिन्ता से मैंने कहा—पुत्रि! क्या तुझे इन विद्याधर राजाओं मे से कोई पसन्द आया? क्या बात है? क्यो कुछ भी नही बोलती? मदनमजरी ने तुरन्त उत्तर दिया—माताजी! अब हम शीघ्र* इस मण्डप से चलें। मैंने सब के दर्शन कर लिये। मुझे तो इनमे से कोई भी योग्य नही लगा। इनके बनावटी वर्णन सुन-सुन कर मेरा सिर दर्द करने लगा है।

पुत्री का उत्तर सुनकर मैं चिन्तित एव खिन्न हो गई। सोचा कि कहीं यह पागल तो नही हो गई? जब मैंने महाराजा कनकोदर को सब बात बताई तब वे भी

* पृष्ठ ६६२

चिन्तातुर हो गये और बोले—'इसे शीघ्र राजमन्दिर मे ले जाओ और इसकी मानसिक स्थिति से कही इसका शरीर भी अस्वस्थ न हो जाय इसका ध्यान रखो।' पति के आदेश से मैं शीघ्र ही पुत्री को लेकर स्वयवर मडप से निकली और राजभवन मे आ गई।

मेरे पास बैठी हुई मदनमजरी की सखी इस लवलिका को भी इस घटना से वहुत चिन्ता हुई। वह बोली—माताजी ! अब आपने मेरी सखी के विवाह के लिये क्या उपाय सोचा है ? मुझे तो कुछ नही सूझता।

मैंने कहा—लवलिका ! हमे भी कुछ उपाय नही सूझता। तेरी सखी तो वहुत गर्वीली है, इसे कोई राजा भी पसद नही आता। अब तू ही इससे पूछकर कोई उपाय ढूँढ। हमारी दृष्टि मे जितने भी उपाय थे, उन्हे हमने कार्यान्वित कर देख लिया है। हम मन्दभाग्यो को तो अब कोई उपाय दिखाई नही देता। कहते-कहते मेरे नेत्रो से मोतियो की माला के समान बड़े-बडे आँसू टपक पड़े और मैं रोने लगी।

लवलिका ने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा—माताजी ! आप दु:खी न हो। मैं अपनी सहेली से पूछूँगी। वह स्वय विनीत-शिरोमणि है, अत: माता-पिता को संतप्त करने वाली नही वनेगी। मेरे पूछने पर वह अवश्य इस विषय मे कुछ न कुछ वतायेगी। ऐसा उत्तर देकर लवलिका ने मुझे तनिक आश्वस्त किया।

उस समय स्वयवर मण्डप मे एकाएक ही खलबली मची। किसी भी विद्याधर राजा का वरण किये बिना जब मदनमजरी को वापस लौटते देखा, तब सभी राजाओ को ऐसा लगा जैसे उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया गया हो। रत्न भण्डार के लुट जाने पर व्यक्ति की जैसी स्थिति होती है, या मुद्गर की मार से जैसे विषण्ण वदन हो जाते है, अथवा आकाश मार्ग मे चलते हुए आकाश गामिनी विद्या के नष्ट होने पर गगन-चारियों की जैसी मन:स्थिति होती है वैसे ही वे सब शून्य, म्लानमुख, उदास और क्रोधित हो गये। कनकोदर राजा से एक शब्द भी कहे बिना वे सब स्वयवर मण्डप से निकल कर एक दिशा मे चले गये।

स्वप्न-दर्शन : फल

इस घटना से कनकोदर राजा अत्यधिक शोक-सन्तप्त हुए। वह एक दिन उन्हे एक वर्ष जैसा लगा। जैसे-तैसे रात हुई। नियमानुसार प्रतिदिन सध्या समय राज्य सभा जुडती थी, उसमे भी वे उपस्थित नही हुए। उल्टा मुँह कर पलग पर पड गये। पलग पर इधर से उधर करवट बदलते हुए बिना नीद के ही सारी रात व्यतीत हो गई। अन्त मे मन अधिक भारी होने पर ऊषाकाल मे थोडी आँख लगी। आँख लगते ही राजा को स्वप्न आया। स्वप्न मे राजा ने दो पुरुष और दो स्त्रियो को देखा। उन्होने महाराज से पूछा—महाराज कनकोदर ! जाग रहे हैं या सो गये ?

उत्तर मे मानो महाराज ने कहा—वह जग रहे हैं।

उन्होने कहा—'सुनो, शोक छोडो। मदनमजरी के लिये पहले से ही वर ढूँढ लिया गया है, वही उसका पति होगा। अब मदनमजरी के लिये दूसरे पति को ढूँढने की कोई आवश्यकता नही है। हमने ही उसे विद्याधर राजाओ का द्वेषी बनाया है। हम उसका विवाह अन्य के साथ नही होने देगे।' इतना कहकर स्वप्न के चारो व्यक्ति अदृश्य हो गये।

इसी समय प्रातःकालीन नौबत बज उठी। राजा भी उठे और मन मे हर्षपूर्वक स्वप्न के अर्थ का विचार करने लगे। * ठीक इसी वक्त समय-सूचक कर्मचारी ने कथन किया—

हे लोगो! यह उदय होता सूर्य सब को शिक्षा दे रहा है कि आप कोई न सताप करे, न हर्षित हो और न घबराये ही। जैसे मैं अनादि काल से नित्य उदय होता हूँ, तेजस्वी होता हूँ और अस्त हो जाता हूँ वैसे ही प्रत्येक भव मे तुम्हारा भी उदय, प्रकर्ष और अस्त निश्चित है। [६२-६३]

समयसूचक के कथन पर राजा ने विचार किया कि, अरे! स्वप्न का जो अर्थ उसने सोचा था उसका यह कालनिवेदक समर्थन ही कर रहा है। जैसे स्वप्न मे देवरूपी चार व्यक्तियो ने उसको कहा कि मदनमजरी का पति उन्होने पहले से ही देख रखा है, जैसे सूर्य प्रतिदिन उदय, मध्य और अस्त होता है, ठीक वैसे ही मनुष्य भी प्रत्येक जन्म मे सुख-दु ख, लाभ-हानि और गमन-आगमन प्राप्त करता है। यह सब प्रत्येक प्राणी के लिये पहले ही से निश्चित होता है, अत इस विषय मे किसी को शोक नही करना चाहिये। मदनमजरी के पति के विषय मे भी जब यह पहले से ही निश्चित है तब चिन्ता करने से क्या लाभ? ऐसा सोचते हुए राजा निश्चिन्त/आश्वस्त हुए और उनकी व्याकुलता दूर हुई।

वर-शोधन के लिये पर्यटन

इधर लवलिका मदनमजरी के पास गयी और उससे सीधा प्रश्न किया कि, इस विषय मे अब क्या करना चाहिये?

उत्तर मे मदनमजरी ने कहा—यदि मुझे माता-पिता आज्ञा दे तो मैं स्वय सारी पृथ्वी का भ्रमण कर, यथेप्सित योग्य वर को ढूँढ कर उसके साथ विवाह करूँ।

लवलिका ने मदनमजरी के प्रस्ताव को मुझे बताया और मैने महाराज से बात की। उन्होने सोचा कि 'पुत्री ने योग्य प्रस्ताव ही रखा है। स्वप्न के चार व्यक्तियो द्वारा कहे गये इसके पूर्व निर्णीत पति को ढूँढने का/प्राप्त करने का सम्भवतः यही उपाय उपयुक्त है।' इस विचार के फलस्वरूप उन्होने मदनमजरी को पृथ्वी-भ्रमण/देशाटन की आज्ञा दे दी। उनकी सम्मति मे मेरी सम्मति तो साथ ही थी।

---

* पृष्ठ ६९३

मदनमंजरी अपनी सहेली लवलिका को साथ लेकर वर ढूँढने और समस्त भूमण्डल का अवलोकन करने निकल पडी। उसे गये कुछ दिन व्यतीत हुए। हमारा पुत्री पर अत्यधिक प्रेम था, अतः हम उसकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। हमे एक-एक दिन व्यतीत करना अत्यन्त दूभर लग रहा था।

लवलिका का संदेश

कुछ दिनों पश्चात् एक दिन अचानक यह लवलिका उतरा हुआ चेहरा लेकर हमारे पास आई। एक तो यह अकेली थी और चेहरा भी उतरा हुआ था, अत· झट से हमारा हृदय बैठ गया और हमे सदेह हुआ कि मदनमदरी का क्या हुआ? "स्नेह सर्वदा शका कराता है, स्नेही का अहित पहले दिखाई देता है।" हमारी भी यही गति हुई। लवलिका ने हमे प्रणाम किया तब हमने पूछा—लवलिका! राजकुमारी का कुशल मगल तो है?

लवलिका—हाँ, माताजी! मदनमजरी कुशलपूर्वक है।

मैंने पूछा—तब मदनमजरी अभी कहाँ है?

लवलिका—माताजी! सुने, हम यहाँ से निकल कर अनेक ग्रामो, नगरो मे घूमी, अनेक घटनाओ से पूर्ण सारी पृथ्वी का अवलोकन किया, कई स्थानो पर गयी और कई लोगो से परिचय हुआ। पृथ्वी पर कैसी-कैसी अद्भुत घटनाये घटती हैं और कैसे भिन्न-भिन्न स्वभाव के व्यक्ति रहते हैं, इसका अनुभव किया। घूमते-घूमते हम सप्रमोद नगर पहुँची। इस नगर के बाहर स्थित आह्लादमन्दिर उद्यान है। बाहर से यह उद्यान बहुत सुन्दर लग रहा था, अतः इसे अच्छी तरह देखने का हमे कौतूहल हुआ। हम थोडी देर खडी रहकर देखने लगी। वहाँ हमने ऊपर से ही देवता जैसी अत्यन्त सुन्दर आकृति के धारक दो आकर्षक राजकुमारो को देखा। उन दो मे से एक को देखते ही मेरी प्यारी सहेली कामदेव के बाण से घायल हो गई। मदन-ज्वर से पीडित मेरी सखी मेरे साथ बगीचे मे उतरी।* हम दोनो उनको दिखाई दे सके ऐसे आम्रवन मे एक आम्रवृक्ष के निकट रुकी। मेरी सखी तो उनमे से एक राजकुमार को अपलक/एकटक देख रही थी। मुझे ऐसा लगा कि उस राजकुमार की भी दृष्टि मेरी सखी पर पड गई है।

मेरी सखी उस समय ऐसे अपूर्व रस का अनुभव करने लगी कि मानो किसी ने उसे सुखसागर मे तरबतर कर दिया हो, मानो उसके पूरे शरीर पर किसी ने अमृत की वृष्टि की हो। माताजी! वर्षा ऋतु मे घन-गर्जन को सुनकर जैसे मयूरी हर्षित हो जाती है वैसा ही रोमाच उसके सारे शरीर मे हुआ। कदम्ब पुष्प की तरह उसका मुख विलास से मधुर हो गया और उसका सम्पूर्ण शरीर रस से भीगा हुआ दिखाई दिया। मानो रस-वृष्टि से नृत्य कर रही हो, बार-बार लज्जित हो

---

* पृष्ठ ६६४

रही हो। मानो विशाल आँखो से हस रही हो। इस प्रकार वह एकचित्त कुमार पर दृष्टि जमाये रही। [६४–६७]

मेरी सहेली को एकचित्त रस मे डुबकियाँ लगाते देख मै भी बहुत हर्षित हुई। मैंने सोचा कि, अहो ! मेरी सखी सचमुच अत्यन्त ही चतुर है और इसकी अभिरुचि भी कितनी विशिष्ट है। मुझे लगता है कि राजकुमारी उस कमनीय युवक पर आकर्षित हुई है। अहा ! कैसा सुन्दर उसका स्वरूप ! कैसी लावण्यता। अहा सचमुच इन दोनो का सम्बन्ध हो जाय तो वह कामदेव और रति के सम्बन्ध जैसा ही होगा ! अहा ! यह युगल जोड़ी तो सचमुच विधाता ने ही बनाई है। मुझे लगता है कि आन्तरिक प्रेम युक्त इस मिलन से हमारी इच्छा पूर्ण हुई है। [६८–७१]

मै इस प्रकार सोच ही रही थी कि वह युवक किसी कारण से तत्काल अपने मित्र के साथ उठा और वहाँ से चल पडा। उनके जाते ही मेरी सहेली की आँखे तरल हो गई, मानो उसका धन-भण्डार नष्ट हो गया हो इस प्रकार अत्यन्त विह्वल हो गई। [७२–७३]

तब मैने उससे कहा—सखि ! यदि तुझे यह तरुण पसद आया हो तो चलो हम आपके माता-पिता के पास चले। मुझे विश्वास है कि यह अवश्य ही इस नगर के राजा मधुवारण का पुत्र होगा। अन्य ऐसा आकर्षक रूपवान कौन हो सकता है ? अत· पिताजी की आज्ञा लेकर उसका वरण किया जाय। अब विलम्ब करने की क्या आवश्यकता है ?

मदनमजरी—सखी लवलिका ! मुझे तो वह पसद आया है, पर मेरे मन मे एक शका है जिससे दु ख होता है। मुझे लगता है कि उसने मुझे पसद नही किया है, अन्यथा वह इतनी शीघ्रता से उठकर क्यो चला जाता ?

लवलिका—नही सखि ! ऐसा मत कह। तू जरा सोच, क्या उसकी दृष्टि तेरी तरफ नही थी ? क्या तेरी तरफ देखते हुए उसकी आँखो मे तुझे सतोष दिखाई नही दिया था ? फिर तू ऐसी बात क्यो करती है ? मैं तो यहाँ तक कह सकती हूँ कि वसन्त ऋतु मे जैसे भ्रमरो को रसाल आम्रमञ्जरी पर रुचि होती है, उससे भी अधिक वास्तविक रुचि उसको तुझ पर हुई है, इसमे कोई सदेह नही। हे सुमुखि ! तू अपने मन से शका को निकाल दे। उसे तुझ पर प्रेम हुआ है और वह चतुराई से यहाँ से दूर चला गया है। अत. चलो हम माता-पिता के पास चले और उन्हे सारा वृत्तान्त बताये। [७४–७६]

लवलिका ने आगे बताया कि उसके उपर्युक्त कथन से मदनमजरी को कुछ सात्वना मिली, कुछ स्वस्थ हुई,* पर उसने यहाँ लौटने से इन्कार किया। वह बोली—सखि ! अभी मुझ मे यहाँ से चलने की शक्ति नही है। मेरा शरीर अस्वस्थ

* पृष्ठ ६९५

है। मैं अभी इस उद्यान को छोडकर कही नही जा सकती। तुम शीघ्रता से जाओ और माता-पिता को सब समाचार बतला दो।

माताजी ! मैंने सोचा कि सखी ने जो निर्णय किया है, उसमे परिवर्तन की कोई गुंजाइश नही है। अत मैंने एक विशाल वृक्ष की कोटर मे ठण्डे पत्तो की शय्या बनाकर उस पर उसे सुलाया और उसको शपथ दिलवायी कि वह उस स्थान से तनिक भी इधर-उधर नही जायेगी और असमजसकारी कोई कदम नही उठायेगी। तदनन्तर तलवार जैसे काले बादलो को चीरती हुई मैं वेगपूर्वक यहाँ आ पहुँची हूँ। अब आप जैसा उचित समझे वैसा करे।

पिता का निर्णय

लवलिका से उपर्युक्त सारा वृत्तान्त सुनकर मेरे स्वामी महाराजा कनकोदर ने मुझ से कहा—देवि ! तुम शीघ्र मदनमजरी के पास जाओ और उसे आश्वस्त करो। मै सब सामग्री एकत्रित कर तुम्हारे पीछे-पीछे शीघ्र ही पहुँच रहा हूँ। अपने गुप्तचर चटुल ने अभी-अभी मुझे यह गुप्त सदेश दिया है कि स्वयवर मण्डप से उठकर बिना मुझसे मिले जो विद्याधर राजा चले गये थे वे बहुत क्रोधित हैं। अतः मेरा सब प्रकार से सन्नद्ध होकर वहाँ आना ही ठीक रहेगा। मुझे कुछ भेंट भी ले जानी चाहिये। भेंट के लिये कुछ सामग्री एकत्रित करने मे भी मुझे कुछ समय लगेगा। अत. तुम शीघ्र जाकर उसे धैर्य बन्धाओ।

महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने अपनी प्रिय दासी धवलिका को साथ लिया और लवलिका को मार्ग-दर्शन के लिये आगे कर, हम सब इस उद्यान मे आ पहुँची।

माता का आगमन

यहाँ पहुँचते ही मैंने ठण्डे पत्तो की शय्या पर बैठी और योगिनी की भाँति किसी एक ही विषय के ध्यान मे मग्न पुत्री मदनमजरी को देखा। वह इतनी एकाग्र थी कि हमारे आने का भी उसे पता नही लगा। हम सब जाकर उसके पास मे बैठ गये। फिर लवलिका ने उसके ध्यान को भग करते हुए कहा—सखि ! माताजी आई हैं और तुम यो ही बैठी हो ?

लवलिका की बात सुनकर पुत्री की एकाग्रता टूटी। उसने आलस्य मोडा, आँखे झपकायी और सम्भ्रम पूर्वक उठकर मेरे पाव छूए। मैंने आशीष दी—पुत्रि ! चिरजीवी हो। तू मुझ से भी अधिक आयुष्यमान्, पतिव्रता और सौभाग्यवती हो। तेरा हृदयवल्लभ तुझे शीघ्र प्राप्त हो। फिर मैंने उसे ऊपर उठाया, आलिगन किया, गोद मे बिठाया, मुख चूमा, सिर सूँघा और पुनः कहा—पुत्रि ! थोड़ा धैर्य धारण कर, शोक का त्याग कर। देख, मुझे ऐसा लग रहा है कि तेरी इच्छा अब शीघ्र ही पूरी होगी। तेरे पिताजी भी शीघ्र ही यहाँ आ रहे हैं अब तेरी इच्छा पूर्ति मे थोडी घडियाँ ही शेष रह गई हैं।

'मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ?' धीरे से कह कर नीचा मुँह किये वह वही वैठी रही।

उस समय सूर्य अस्त हुआ। सर्वत्र अन्धकार फैल गया। आकाश मे तारे जगमगाने लगे। चकवे चकवी की जोड़ी का वियोग हुआ। कमल बन्द हो गये। पक्षी अपने-अपने घोसलो मे चले गये। उल्लू चारो तरफ उड़ने लगे।* भूत, वैताल प्रसन्न हुए। आकाश मे चन्द्रमा उग आया और उसकी शुभ्र चान्दनी चारों ओर फैल गयी। हमने पुत्री के मन को प्रसन्न रखने के लिये सारी रात कहानियाँ और अन्य चुटकले आदि सुनाकर वड़ी कठिनाई से बिताई।

प्रातः सूर्य के उदय होने पर मैंने लवलिका से कहा—लवलिका ! थोड़ी देर आकाश मे खड़ी रहकर देखो, महाराजा कनकोदर आ रहे हैं या नहीं ? उन्हे इतनी देरी कैसे हो गयी ? अभी तक नही आये। लवलिका आकाश मे उड़ी, ऊपर जाकर थोडी देर स्थिर रही, फिर अत्यन्त हर्ष के साथ वापस भूमि पर आ गई। मैंने पूछा, अरे बहुत अधिक हर्ष हो रहा है, क्या बात है ? महाराजा पधार गये क्या ?

लवलिका—नही, माताजी ! महाराज तो अभी नही आये हैं, पर कल वाले दोनो राजकुमार यहाँ आ पहुँचे है। वे मेरी सखी को ढूँढते हुए पूरे उद्यान मे फिर रहे हैं, पर हम जिस स्थान पर वैठे हैं, वह अति गहन होने से हम उनकी दृष्टि-पथ मे नही आये है। उनमे से एक जो मेरी सखी के हृदयवल्लभ है, मेरी सखी को न देखकर कुछ खिन्न हो रहे थे, तब उनके मित्र ने कहा—भाई गुणधारण ! कल हम जिस आम्रवृक्ष के नीचे वैठे थे और जहाँ से तुमने उस पवनचालित कमलपत्र जैसी चचल नेत्रो वाली और हृदय को चुराने वाली युवती को देखा था, उसी स्थान पर फिर चले, इधर-उधर फिरने से क्या लाभ ? भाग्य अनुकूल होगा तो वही उससे भेट (मुलाकात) हो जाएगी।

राजकुमार ने मित्र की बात स्वीकार की और दोनो कुमार अभी इसी आम्रवन मे आ गये हैं। माताजी यही मेरे हर्ष का कारण है।

मदनमजरी—माताजी ! ऐसी कृत्रिम बाते बनाकर यह क्यों मुझे ठग रही है ? मदनमजरी ने लवलिका की सब बात झूँठी मानी और निःश्वास छोडते हुए कहा। उसे विश्वास दिलाने के लिये लवलिका ने सैकडो सौगन्ध खायी, पर पुत्री मदनमजरी को उस पर विश्वास नही हुआ।

इस प्रसग को समाप्त करने के लिये मैंने कहा—लवलिका ! शपथे लेने से क्या लाभ ? तू मेरे साथ चल और कुमार को मुझे वता। उन्हे यही लाकर पुत्री को दिखादें जिससे इसे वास्तविक आनन्द प्राप्त हो सके। लवलिका के हाँ कहने पर दासी धवलिका को वहाँ छोड़ हम दोनो तुम्हारे पास आयी हैं।

---

* पृष्ठ ६९६

कुमार ! मेरी पुत्री दुष्कर रुचिवाली होने से साधारणतः किसी को पसंद ही नही करती । अभी उसके प्राण कण्ठ तक आ गये है । कृपया उठकर चलिये, उसे देखिये और सभालिये । [७७]

मेरे और कुलन्धर के सामने इस प्रकार अपनी आप-बीती सुनाकर मदनमजरी की माता कामलता विद्याधरी चुप हो गई ।

----

३. गुणधारण-मदनमंजरी-विवाह

दर्शन से रसानुभूति

महारानी कामलता की आपबीती पूरी होने पर मैंने अपने मित्र कुलन्धर की ओर देखा । उसने कहा—भाई कुमार ! मैंने भी सब बात सुनी है, चलो, इसमे क्या आपत्ति है ? पश्चात् हम दोनो वहाँ से उठे और सब मिल कर वहाँ आये जहाँ मदनमंजरी थी । कामलता ने मदनमजरी का जैसा वर्णन किया था वैसी ही स्थिति उसकी हो रही थी । उसके दर्शन कर मुझे ऐसा लगा जैसे मैं सुखसागर मे डुबकियाँ लगा रहा हूँ, रति-रसपूर्ण समुद्र मे उतर गया हूँ, आनन्दानुभूति मे डूब गया हूँ, मानो मेरे सर्व मनोरथ पूर्ण हो गये हो, मेरी सभी इन्द्रियाँ आनन्दित हो गई हो तथा समग्र महोत्सवो के समूह वहाँ एकत्रित हो गये हो ।*

मुझे देखते ही मदनमजरी भी 'अरे ! यह तो सचमुच वही है' सोचकर हर्षित हो गई । 'बहुत लम्बे समय बाद दिखाई दिये' इस विचार से उत्कठित हो गई (यद्यपि २४ घण्टे से अधिक नही बीते थे, पर विरही प्रेमियो के लिये तो यह भी बहुत लम्बा समय होता है) । पर, 'वे अभी यहाँ कैसे हो सकते हैं' ऐसा तर्क करने लगी । 'कही वह स्वप्न तो नही देख रही है' इस विचार से खिन्न हो गई । 'अरे ! वे तो सचमुच वही है' इस निर्णय से उसका विश्वास जमा । 'इतना लम्बा विरह सहकर वह कैसे जीवित रह सकी' इस विचार से लज्जित हुई । 'अब ये मुझे स्वीकार करेंगे या नही' इस विचार से उद्विग्न हो गई । पर, 'ये तो मेरे सामने ही देख रहे हैं' जान कर प्रमुदित हुई । मदनमजरी को उस समय अनेक प्रकार के मिश्र रसो का अनुभव हुआ । उसका शरीर रोमाचित हो गया, पसीने से भीग गया,

* पृष्ठ ६९७

श्वासोच्छ्वास तेज हो गया और वह हृदयहारी मधुरलता की तरह कापने लगी। मुझे वह ललित ललना अपने स्निग्ध कपोल और चञ्चल नेत्रो से उस समय वर्णनातीत अत्यन्त प्रीति रस मे डूबती हुई नजर आई। [७८]

उस समय कामलता ने मौन तोड़ा—क्यों पुत्रि! अब तो तुझे लवलिका की बात पर विश्वास हुआ? प्रश्न सुनकर स्मित हास्य से मेरे हृदय को रंजित करती हुई और हास्य सुधा से अपने कपोलो को उज्ज्वल (रक्ताभ) करती हुई मदनमंजरी अधोमुखी होकर नीचे देखने लगी। इस दृश्य से सभी हर्षित हुए।

कनकोदर आगमन

उसी समय महाराज कनकोदर वहाँ आ पहुँचे। चारो तरफ जगमगाते रत्नो की देदीप्यमान प्रभा से आकाशमार्ग उद्योतित हो गया। राजा के साथ वाले विद्याधर मानो महान् ऋद्धिमान देव हों ऐसा प्रतीत होने लगा। उनके मध्य मे महाराज कनकोदर दूर से इन्द्र की भाँति आकाश मे सुशोभित होने लगे। उन्होने अपने विमान मे अनेक रत्न भर रखे थे जिनकी शोभा अवर्णनीय थी। आकाश से सप्रमोदपुर नगर को देखकर वे सभी धीरे-धीरे आह्लाद-मन्दिर उद्यान मे उतरने लगे और हम सब अत्यन्त विस्मयपूर्वक उन्हे नीचे उतरते हुए देखते रहे।
[७९–८१]

कनकोदर राजा के नीचे उतरते ही हम सब खड़े हो गये और मस्तक झुकाकर उन्हे प्रणाम किया। सभी अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठे। महाराजा कनकोदर ने प्रेम पूर्ण दृष्टि से कुछ समय मेरी तरफ देखा। फिर 'यह वही होना चाहिये' ऐसा मन मे निश्चय होने से प्रसन्नचित्त होकर उन्होने महारानी कामलता की ओर देखा। चतुर लोग आस-पास की परिस्थितियों से अनुमान द्वारा सब कुछ समझ जाते हैं। चतुर कामलता भी राजा के आन्तरिक भाव को समझ गई और उसने संक्षेप मे राजा को सब कुछ बता दिया।

अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए राजा बोले—देवि! अभी तक हम अपनी पुत्री की अभिरुचि को अति दुर्लभ कहा करते थे। हमे यह भी संदेह था कि यह कभी किसी पुरुष को स्वीकार भी करेगी या कुवारी ही रहेगी, पर इसने तो ऐसे पुरुषरत्न को पसद किया है कि इस पर लगे दुष्कर रुचि के आरोप को झुठला दिया है। सच ही है, इन्द्राणी इन्द्र के अतिरिक्त अन्य को कैसे स्वीकार कर सकती है? राजा के अभिप्राय का कामलता ने समर्थन किया और कहा कि, हाँ ऐसा ही है, इसमें क्या सदेह है?

मदनमंजरी का पाणिग्रहण

यह चर्चा चल रही थी कि महाराजा के पास अतिवेग से उनका गुप्तचर चटुल आया और उनके कान मे कुछ गुप्त सदेश दिया। दूत को विसर्जित कर राजा ने कामलता से कहा—'ऐसे आवश्यक कार्य मे देरी उचित नही है' यह कहकर राजा

ने पास ही बैठे कुलन्धर से परामर्श किया और उसी स्थान पर सक्षिप्त विधि से अपनी कन्या का विवाह मुझ से कर दिया।

आनन्दपूर्वक विवाह-कार्य सम्पन्न कर राजा ने वज्र, वैदूर्य, इन्द्रनील, महानील, कर्केतन, पद्मराग, मरकत, चूड़ामणि, पुष्पराग, चन्द्रकान्त, रुचक, मैचक आदि बहुमूल्य रत्नो से भरे अपने विमानो को * कुलन्धर को बताते हुए कहा—भद्र राजपुत्र ! ये विमान मैं पुत्री को दहेज मे देने के लिये लाया हूँ। जिस प्रकार हमारी पुत्री से विवाह कर कुमार ने हमारे आनन्द मे वृद्धि की है, उसी प्रकार हमारे इन विमानो मे भरी हुई वस्तुओ को भी कुमार ग्रहण करे, ऐसा हमारा अनुनय है।

चतुर कुलन्धर ने उत्तर मे कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। इसमे अनुनय का अवकाश ही कहाँ है ? "बडे लोगो को जब जैसी इच्छा हो वैसी आज्ञा दे सकते है, राजपुत्रो से पूछने या कहने का तो प्रश्न ही नही उठता।" उत्तर सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उनको लगा कि वे कृत-कृत्य हो गये हैं, उनका जीवन सफल हो गया है। 'पुत्री मदनमजरी आज सचमुच सन्तुष्ट और निश्चिन्त हुई है' इस विचार से महारानी कामलता भी परम सन्तुष्ट हुई और लवलिका आदि राजा का पूरा परिवार हर्षित हुआ।

"पुत्री के जन्म पर शोक होता है, बड़ी होने पर चिन्ता होती है, विवाह योग्य होने पर संकल्प-विकल्प होते हैं और दुर्भाग्य से ससुराल मे दु खी रहे या विधवा हो जाय तो गाढ दु:खकारी होती है। अपने अनुरूप, रुचि के अनुकूल, धर्मिष्ठ और धनवान योग्य वर को पुत्री प्रदान करने पर निश्चिन्तता प्राप्त होती है।" इसी के अनुसार रत्नराशि के साथ मदनमजरी को मुझे प्रदान कर राजा और समस्त परिजन प्रमुदित थे। [८२-८४]

युद्धातुर विद्याधर दल

इसी समय सप्रमोद नगर पर बादलो की तरह छायी विद्याधरो की एक बड़ी सेना आकाश मार्ग से आती हुई दिखाई दी। इन सैनिको के पास अनेक चक्र, तलवारें, भाले, बर्छे, बाण, शक्तिबाण, फरसे, धनुष, दण्ड, गदा, नेजे आदि शस्त्र-अस्त्र थे; जिनकी चमक से आकाश प्रकाशित हो रहा था। यह सेना अति विकराल, युद्धातुर, विजय-मद-गर्वित और असंख्य गगनचारी योद्धाओ तथा सेनापतियो से सुसज्जित थी। इसके योद्धा अपने सिंहनाद, करतल ध्वनि और जयनाद से आकाश को गुजा रहे थे। इसके सैनिक कवच, शिरस्त्राण (टोप) आदि से सज्जित होकर क्रोधान्ध अवस्था में लडने को तैयार होकर आये थे। हमने सिर उठाकर देखा तब तक तो युद्धाभिमान से स्पर्धा करती हुई यह पूरी सेना आकाश मे हमारे सिर के ऊपर आ पहुँची। [८५-८९]

---

* पृष्ठ ६९८

राजा कनकोदर ने गर्जनापूर्वक अपने सैनिकों को हाक लगाई। विद्याधर योद्धाओ ! शीघ्र तैयार हो जाओ। चटुल गुप्तचर ने मुझे अभी-अभी यह गुप्त संदेश दिया था वह स्पष्टतः प्रत्यक्ष हो गया। चटुल ने बतलाया था कि पुत्री के स्वयंवर मण्डप से क्रोधित होकर मेरे से संभाषण किये विना ही गये हुये राजा मात्सर्य और द्वेष से अन्धे होकर आपस में मिल गये हैं। अपने गुप्तचरो द्वारा उन्हे पता लग गया है कि मदनमंजरी का विवाह गुणधारण से हो रहा है। वे समझते हैं कि विद्याधर होने के नाते वे जमीन पर चलने वाले गुणधारण से अधिक उत्तम है। अतः वे कैसे सहन कर सकते है कि उनकी विद्यमानता मे मदनमजरी किसी साधारण पुरुष से विवाहित हो ! इसीलिये वे सब युद्धातुर होकर लड़ने के लिये आये है। मेरे वीरों ! जैसे गरुड़ कौओ पर टूट पड़ता है वैसे ही इनके इस आह्लाद-मन्दिर बगीचे में उतरने के पहले ही इन पर टूट पड़ो और इनके मिथ्याभिमान को नष्ट कर इन्हें मिट्टी में मिला दो। मुझे तुम्हारी वीरता पर पूरा विश्वास है, अत अपनी वीरता दिखाकर स्वामी का मान रखो। [९०–९५]

राजा की रणगर्जना सुनकर वे सभी योद्धा तैयार होकर* जमीन से आकाश मे चढ़ने को तत्पर हुए। यह दृश्य देखकर मैने (गुणधारण) सोचा कि, ओह ! मेरे लिये यहाँ खून की नदियाँ बहे, इन लोगो का विनाश हो, यह तो ठीक नही है। [९६–९७]

स्तम्भन और शान्ति

उसी समय एक अप्रत्याशित घटना घटी, उसे भी सुने। किसी ने दोनों सेनाओ को स्तम्भित कर दिया। जमीन पर खड़ी कनकोदर की सेना और आकाश मे खडी विपक्षी विद्याधरों की सेना दोनो चित्रलिखित-सी जहाँ की तहाँ स्तम्भित हो गई, पुत्तलिकाओ के समान स्थिर हो गई। उनका गर्वगर्जन, उनकी सब हलन-चलन, यहाँ तक कि आँखो की पुतलियाँ तक भी हिलनी बन्द हो गई। दोनो सेनाये एक दूसरी को नि शब्द और चित्र-लिखित-सी दशा में देखकर आश्चर्य-चकित रह गई। [९८–१००]

आकाश-स्थित सेना ने मुझे और मदनमजरी को श्रेष्ठ आसन पर बैठे देखा। मुझे देखकर उन सब के मन मे विचार आया—अहा ! इस कुमार का कैसा सुन्दर रूप है ! कैसी आकृति है ! क्या कान्ति है ! कैसे सुन्दर गुण है ! कितना धैर्य है ! कितनी स्थिरता है ! अहा ! विचारशीला मदनमजरी ने सचमुच ही इस महात्मा पुरुष को अपनी परीक्षा के बाद ही पति बनाया है। नि.सदेह इसी महापुरुष ने अपने तेज से हमको स्तम्भित कर दिया है। देखो, यह मदनमजरी और अपने मित्र के साथ स्वस्थ बैठा है और हम सब स्तम्भित है। हमने इस पुरुषरत्न को

---

* पृष्ठ ६९९

मार डालने की इच्छा की, यह बहुत ही बुरा किया, इसी महापाप के फलस्वरूप ही स्तम्भित हुए हैं । यह महापुरुष ही हमारा स्वामी है, हम सब उसके सेवक है ।

क्षमा और आनन्द

इस विचार के आते ही उनकी ईर्ष्याग्नि शान्त हो गई, अत: जिसने उनको स्तम्भित किया था, उसी ने उन्हे तत्क्षण पुन· स्वतन्त्र कर दिया । स्वतन्त्र होते ही वे सब नभचारी तुरन्त नीचे आये और मेरे चरणो मे गिर पड़े । उन्होने अपने दोनो हाथ जोडकर ललाट पर लगाकर कहा—'नाथ ! हमारे अपराध क्षमा करे । अब हम आपके दास हैं । हमारी जो भूल हुई उसके लिये क्षमा-प्रार्थी है ।' हे भद्रे ! उनकी क्षमायाचना को देखकर कनकोदर राजा का अभिमान भी नष्ट हुआ जिससे उनकी सेना भी स्तम्भन से मुक्त हुई । सभी विद्याधर हाथ जोड़कर परस्पर क्षमा-याचना करने लगे । सभी की आँखो मे हर्ष के आँसू आ गये । सब परस्पर सगे भाइयो के समान गले मिले । [१०१–१११]

मधुवारण आदि को आनन्द

किसी के द्वारा मेरे पिताजी (मधुवारण राजा) को भी ये समाचार ज्ञात हुए और वे भी उस आह्लाद मन्दिर उद्यान मे आ पहुँचे । दूर से उनको आता देख मैं खड़ा हो गया, मेरे साथ अन्य सभी विद्याधर उनका सन्मान करने खडे हो गये । मैंने और मदनमजरी ने पिताजी के चरण-कमलो मे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । मेरी माताजी आदि सभी अन्त.पुरवासी, मन्त्रि-मण्डल और बहुत से नगर निवासी भी यहाँ आ गये थे । हम सब ने सब को यथोचित नमन आदि किया । विद्याधरो ने भी उनका यथायोग्य सन्मान किया जिससे सभी हर्षित हुए । [११२–११४]*

मेरे पिताजी अत्यधिक आनन्द से रोमाचित हो गये, आनन्दाश्रुओ से उनके नेत्र भीग गये और अत्यन्त हर्ष से मुझ को आलिगन मे जकड़ लिया । [११५]

मित्र कुलन्धर ने विनयावनत होकर उस समय पिताजी को सब वृत्तान्त सक्षेप मे सुनाया जिससे उपस्थित समुदाय को पूरी घटना की जानकारी हो गई । सभी विद्याधर हाथ जोड़कर मेरे पिताजी से कहने लगे—प्रभो ! गुणधारण कुमार हमारा देव है, हमारा स्वामी है । आपके इस चिरजीवी पुत्र ने हमे जीवन-दान दिया है । यह धन्य है । कृतार्थ है । महाभाग्यवान है । इन्होने इस पृथ्वी को सुशोभित किया है । इनमे अकल्पनीय शक्ति-पराक्रम है । इनके जैसा अन्य गुणवान मनुष्य इस ससार मे हमारे देखने मे नही आया । [११६–११८]

विद्याधरो को मेरी स्तुति करते देख मेरे पिताजी और माता सुमालिनी अत्यन्त प्रसन्न हुए । मेरे वैभव को देखकर सम्पूर्ण राजमन्दिर निवासी परिजन,

---

* पृष्ठ ७००

सैनिक, नगरनिवासी, बालक और वृद्ध सभी अत्यन्त हर्षित हुए। 'जिन्हे हम अपना मानते है उन्हे ऋद्धि-सिद्धि या मान प्राप्त होने पर प्रसन्नता हो, इसमे क्या आश्चर्य? हमारी कल्पना से भी अधिक ऋद्धि-सिद्धि अपने प्रेमीजन को मिलती देखकर तो अपार हर्ष होता ही है।' अत्यन्त आनन्दित लोगो ने फिर हमारा नगर प्रवेश महोत्सव किया। 'अत्यधिक प्रसन्नता होने पर मानव क्या-क्या नही करता!' [११९-१२१]

प्रवेश महोत्सव के समय विद्याधर आकाश मे चलने लगे। मै अपने पिताजी के साथ उनके पीछे जयकुजर नामक मुख्य हाथी की अम्बाडी पर बैठा था। मेरे पीछे दूसरे हाथी पर कुलन्धर बैठा था। हथनियो पर माताजी आदि स्त्रीवर्ग बैठा था। हमारे आगे लोगो का विशाल समूह चल रहा था। कोई नाच रहे थे, कोई विलास (हँसी ठठोली) कर रहे थे, कोई हर्ष के आवेश मे उच्च स्वर से गा रहे थे। कुछ ने पुष्पहार और कुछ ने सुन्दर वस्त्राभूषण पहने रखे थे, जिससे सभी लोग देवता जैसे सुशोभित हो रहे थे। अत्यन्त प्रमोद और मानसिक सुखभार के कारण उस समय वह उद्यान नन्दनवन और वह नगर देवलोक जैसा लग रहा था। अत्यन्त विशाल नितम्ब और सुन्दर उरोजो वाली ललित ललनाएँ हर्षपूर्वक नृत्य गान कर रही थी। ऐसे सैकड़ो प्रकार के विलासो सहित हमारा नगर प्रवेश हुआ। [१२२-१२५]

मेरे पिताजी ने कनकोदर राजा के सभी विद्याधरो तथा दोनो तरफ की सेनाओ के सभी योद्धाओ का उचित दान और सत्कार-सन्मान किया। हे अगृहीत-सकेता! मेरा वह पूरा दिन ऐसे बीता मानो वह दिन रत्नमय हो, अमृतरचित हो, सुखरस-पूर्ण हो। अधिक क्या कहूँ, वह दिन वर्णनातीत रूप से व्यतीत हुआ। इस दिन मुझे अत्यन्त आह्लाद हुआ। सब मनोरथो की सिद्धि हुई, कामदेव का सर्वस्व प्राप्त हुआ, मदनमजरी जैसी अतुलनीय सुन्दरी प्राप्त हुई और महामूल्यवान रत्नो का भण्डार प्राप्त हुआ। मेरे काम और अर्थ सम्बन्धी अकल्पनीय मनोरथ सिद्ध हुए। उस दिन मेरे माता-पिता को अत्यधिक सतोष हुआ, बन्धुवर्ग हर्षित हुआ और नागरिको ने महोत्सव मनाया। शत्रु मेरे वश मे हो गये जिससे भी मेरा मन अत्यन्त हर्षित हुआ। पूरे दिन अत्युन्नत दशा का अनुभव किया और रात्रि के प्रथम प्रहर तक पिताजी के पास रहकर हमने बहुत प्रकार से आनन्दोत्सव मनाया। [१२६-१३१]

इसके पश्चात् रात्रि का शेष भाग * मदनमजरी के साथ सर्व सामग्री से पूर्ण महल मे बिताया। देवता देवलोक मे जैसा सुख भोगते हैं वैसे ही सुख का मैंने उस रात अनुभव किया। सुरतामृत सुख के प्रेमसागर मे गहरी डुबकी लगाने का अनुभव किया। पर, मेरी किसी भी विषय मे अत्यन्त लोलुपता नही थी, इससे मैं कही अत्यन्त आसक्त नही हुआ।

---

* पृष्ठ ७०१

सुरत-सुख का अनुभव करने के पश्चात् हम निद्राधीन हुए। प्रातः मदनमजरी के साथ उठा और उठकर उसी के साथ माता-पिता के पास जाकर उन्हे प्रणाम किया और फिर मैं अपने सभी प्रभातकालीन कर्त्तव्यो मे लग गया। [१३२-१३४]

---

४. कन्दमुनि : राज्य एवं गृहिधर्म-प्राप्ति

कुलन्धर का स्वप्न

मेरा मित्र कुलन्धर दूसरे दिन प्रातः मेरे पास आया और बताया कि उसने रात मे एक बहुत सुन्दर स्वप्न देखा है। स्वप्न मे उसने स्पष्टरूप से पाँच व्यक्ति देखे जिसमे से तीन पुरुष और दो स्त्रियाँ थी। उन्होने बताया कि गुणधारण अभी जो सुखसागर मे डुबकियाँ लगा रहा है, वह सब नि.सदेह हमने ही उसके लिये उपलब्ध कराया है। हे कुलन्धर ! भूतकाल मे उसके सम्बन्ध मे जो कुछ अच्छा हुआ और भविष्य मे जो कुछ होगा, वह सब हमारा ही किया हुआ था और होगा। इस प्रकार सूचित कर वे पाँचो पुरुष तुरन्त अदृश्य हो गये। हे कुमार ! ये पुरुष कौन थे ? उन्होने किस प्रकार की योजना से तुझे सारे सुख उपलब्ध करवाये ? यह स्वप्न से ज्ञात नहीं हो सका। [१३५-१४०]

स्वप्न-फल-विचार

मैंने कहा—भाई कुलन्धर ! इस स्वप्न का वृत्तान्त पिताजी आदि को बताये जिससे वे हमे इसके वास्तविक भावार्थ को स्पष्टतः समझा सके। फिर कुलन्धर राज्यसभा मे गया। राज्यसभा मे विद्वत्समूह बैठा था। पिताजी और राज्यसभा के समक्ष बुद्धिमान कुलन्धर ने स्वप्न की बात कह सुनाई। पिताजी एव सभी विद्वानो ने स्वप्न के अर्थ पर अलग-अलग विचार किया, फिर सभी ने एकमत होकर निम्न फलार्थ निश्चित किया। ऐसा लगता है कि अमुक देव गुणधारण के अनुकूल हुए है। उन्होने ही कुमार के लिये कल्याणमाला निर्मित की है, ये सब सुख-साधन उपलब्ध कराये है। कुमार की सभी अनुकूलतायें उन्ही के प्रताप से है। उन्होने ही प्रसन्न होकर कुमार के मित्र को स्वप्न मे आकर यह सब बताया है कि यह सब कल्याण-परम्परा हमारे द्वारा सर्जित है। [१४१-१४५]

विद्वानो द्वारा किये गये स्वप्न-निर्णय को मैने भी सुना; क्योकि उस समय मैं भी राज्यसभा मे उपस्थित था। पहले महारानी कामलता ने मेरे श्वसुर

कनकोदर के स्वप्न की जो वात कही थी उसमें दो पुरुषों और दो स्त्रियों ने कहा था कि उन्होने मदनमजरी के लिये पति ढूँढ रखा है। इस स्वप्न की वात मुझे पूर्णत: याद थी। मेरे मन में शका हुई कि श्वसुर के स्वप्न मे चार व्यक्ति थे और कुलन्धर के स्वप्न मे पाँच, तो कौन से ऐसे देव है जिन्हे मेरी अनुकूलता के लिये इतनी चिन्ता रहती है, फिर इस चिन्ता का कारण क्या है ? इन स्वप्नो के पीछे कोई गहन कारण होना चाहिये, जो इस समय तो समझ मे नही आता, पर जब कभी किसी अतीन्द्रिय विषय के ज्ञाता मुनि महाराज का संयोग मिलेगा * तब ही उनसे पूछकर स्पष्ट निर्णय कर सकूँगा। इसके अतिरिक्त इसका सतोषजनक निर्णय असभव है। मेरे मन मे स्वप्न के अर्थ के प्रति सन्देह होने पर भी पिताजी एवं विद्वानो के अविनय से बचने के लिये मैंने प्रकट रूप से स्वप्नार्थ में कोई दोष नही निकाला और उनके निर्णय को मान्य किया। [१४६-१५१]

जो विद्याधर राजा कनकोदर से लड़ने आये थे और जो आखिर मे मेरे सगे हो गये थे, उन्हें राजा कनकोदर के साथ कुछ दिन हमारे राज-मन्दिर में ठहराया था। उनका योग्य आदर सत्कार किया गया। आनन्दामृत मे स्नान कर, मेरे प्रति सेवकत्व स्वीकार कर कुछ दिनो वाद वे सब अपने-अपने स्थानो को लौट गये। [१५२-१५३]

मर्त्यलोक में देवसुखानुभव

मदनमजरी के साथ रतिसुखसागर मे डूवकर अनेक प्रकार की लीलाओ मे मेरे दिन व्यतीत होने लगे। देवलोक मे देवता जैसे सुखो का अनुभव करते है वैसे सुखो का मैंने मर्त्यलोक मे अनुभव किया। दिन-प्रतिदिन प्रेमरस का अधिकाधिक पान करने लगा। आनन्दरसामृत प्रतिदिन वढता ही गया और सद्भावपूर्वक उसका मिलाप अधिकाधिक सुख देने लगा। हमारा प्रेमबन्ध अधिक सुदृढ होता गया। हमारे आह्लाद मे निरन्तर प्रसार होता गया और हमारी प्रेम गोष्ठी विशेष दृढ होती गई। राज्यकार्य की चिन्ता पिताजी करते थे। अनेक राजा मुझे नमस्कार और प्रणाम किया करते थे। हे विशालाक्षि ! ऐसे सुन्दर सयोगो मे मुझे तो चिन्ता की गन्ध भी नही आती थी। मेरे दिन सुख मे व्यतीत हो रहे थे। विद्याधर अनेक सुगन्धित फूलो के पुष्पहार ले आते थे, सुन्दर आभूषण आदि सर्व पदार्थ ले आते थे। इस प्रकार हमारी सभी इच्छाओ की तृप्ति होने से सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति हो रही थी। यद्यपि मेरा शरीर इस सुखसागर मे अवगाहन करता था तथापि मेरी आत्मा इसमे तनिक भी लुब्ध/आसक्त नही होती थी। हे चार्वङ्गि ! इस प्रकार अपनी सुन्दर पत्नी मदनमजरी और सन्मित्र कुलन्धर के साथ आनन्द करते हुए मेरा समय व्यतीत हो रहा था। [१५४-१५८]

---

* पृष्ठ ७०२

कन्दमुनि समागम

एक दिन मै अपने मित्र और पत्नी के साथ आह्लादमन्दिर उद्यान मे गया। वहाँ मैंने कन्द नामक मुनीश्वर के दर्शन किये। इन महान ओजस्वी यतीन्द्र को देखकर मैंने अत्यन्त विनयपूर्वक नम्र बनकर योग्य नमस्कार किया तथा धर्म सुनने और प्राप्त करने की बुद्धि से शुद्ध जमीन देखकर उनके सामने बैठा। कन्द मुनि ने हृदयाह्लादकारिणी कर्णप्रिय मधुर धर्मदेशना दी। मैं उनकी देशना को अत्यन्त आदरपूर्वक सुन रहा था तभी, हे भद्रे ! मेरे अन्तरग मे पूर्व परिचित दो सुबन्धु आविर्भूत हुए, जिन्हे मैंने तुरन्त पहचान लिया। उनमे से एक तो ये महात्मा सदागम थे और दूसरा मेरा परम मित्र सम्यग्दर्शन था। हे सुलोचने ! गुरु महाराज के उपदेश से प्रबोधित होकर मैंने इन दोनो को अपने हितेच्छु के रूप मे पहचाना और गुरुवचन से जागृत होकर उन्हे उसी भाव से स्वीकार किया। [१५९-१६४]

पहले मै जब विबुधालय मे था तब वेदनीय राजा के मुख्य भाई सातावेदनीय नामक राजा से मेरा घनिष्ठ परिचय हुआ था। वह मुझ पर बहुत मैत्रीभाव/स्नेह रखता था, मेरा पक्ष लेता था और मुझ पर अत्यधिक आसक्त रहता था। विबुधालय की मेरी मित्रता को याद कर वह मेरे साथ ही सप्रमोद नगर आया था। पर, अभी तक उसने छिपकर ही मुझे सुख का आस्वादन करवाया था। मेरे पुराने मित्रो सदागम और सम्यग्दर्शन का पुन. परिचय होते ही यह भी मुझ से स्पष्टत· प्रत्यक्षरूप से मिल गया और मेरी सुख-प्राप्ति की योग्यता को इसने गुरु महाराज के समक्ष ही अनन्त गुणी बढा दी। इसके पश्चात् सातावेदनीय राजा की मित्रता और सहायता से मुझे स्त्री और रत्न-प्राप्ति से उत्पन्न होने वाले सुख मे अनन्तगुणी वृद्धि हो गई।* जिस प्रकार मैंने सम्यग्दर्शन और सदागम को स्वीकार किया था वैसे ही उस समय मेरी पत्नी मदनमजरी और मित्र कुलन्धर ने भी गुरु महाराज के समक्ष ही महात्मा सदागम और सेनापति सम्यग्दर्शन को अपने हितेच्छु के रूप मे स्वीकार किया। ऐसे सुन्दर परिवर्तन से अत्यधिक प्रसन्न होकर पवित्र मुनिराज ने फिर से अधिक विशुद्ध धर्मोपदेश दिया। [१६५-१७०]

चारित्रधर्मराज और सद्बोध की विचारणा

इधर चित्तवृत्ति अटवी मे महामोह आदि राजा जो घेरा डालकर पड़े थे वे कुछ शक्तिहीन हुए, कुछ नरम हुए, काँपने लगे और भय से घेराव छोडकर दूर-दूर जा बैठे। बहिन अगृहीतसकेता ! उस समय चारित्रधर्मराज के मन मे कुछ सतोष हुआ और उसे प्रकट करते हुए उन्होने अपने मत्री सद्बोध से कहा—मन्त्रिवर ! अभी अच्छा अवसर आ गया लगता है, बहुत सी अनुकूलताएँ बढ रही हैं, अत अभी तुम पुत्री विद्या को लेकर ससारी जीव के पास चले जाओ। अभी अधिक लाभ

* पृष्ठ ७०३

होने की सभावना है, क्योंकि चित्तवृत्ति अटवी कुछ अधिक उज्ज्वल हुई लगती है। हम पर डाला गया घेरा कुछ कम हुआ है, शत्रु भी अपने से कुछ दूर चले गये है, अतः कर्मपरिणाम महाराजा को पूछ कर यदि वे आज्ञा दे तो पुत्री विद्या को लेकर शीघ्र ससारी जीव के पास चले जाओ। हमारे गुप्तचरो से मुझे अभी-अभी संदेश मिला है कि ससारी जीव कुमार गुणधारण अभी कन्दमुनि के समक्ष वैठा है, अतः यदि तुम अभी पुत्री को लेकर पहुँच जाओगे तो वह अवश्य तुम्हे स्वीकार कर लेगा। [१७१-१७६]

सद्बोध मत्री ने राजा के विचार सुने, उनके विषय मे अपने मन मे विचार किया और वास्तविकता को ध्यान मे रखते हुए योग्य निर्णय सोचकर कहा—

देव ! आपका कथन ठीक है, इसमे कोई सदेह नही, पर मेरे विचार से अभी इस विषय मे थोड़ा कालक्षेप और करना चाहिये। योग्य अवसर की प्रतीक्षा करते हुए कुछ ढील देनी चाहिये, क्योंकि ससारी जीव के पास अभी कुछ समय उसके दो अन्तरग मित्र पुण्योदय और सातावेदनीय रहने वाले है। अभी कुछ समय तक उसके ये दोनो मित्र उसे भोग फल देगे। अभी उसे पुण्य का उदय वहुत भोगना शेष है और शब्दादि सुख का पूर्ण लाभ प्राप्त करना है। इन दोनो मित्रो का कुमार पर अधिक स्नेह है, अतः वे उसे विषय सुख का आस्वादन करवाना चाहते है। इसलिये अभी वे गुणधारण कुमार को आग्रह पूर्वक घर (संसार) मे रखेंगे। फलत जब तक ससारी जीव इन दोनो मित्रो के आग्रहानुसार आचरण करते हुए घर/ससार मे रहकर शब्दादि स्थूल विषयो को सुख का कारण समझे तब तक विद्या को उसके पास ले जाना मुझे तो किसी प्रकार योग्य नही जँचता। मेरा तो यह प्रस्ताव है कि अभी कुमार गृहिधर्म को उसकी पत्नी के साथ शीघ्र ही ससारी जीव के पास भेजना चाहिये। अभी ससारी जीव के समय और आस-पास के संयोगो को देखते हुए यदि कुमारश्री को सपरिवार वहाँ भेजा जाय तो वह अधिक समुचित होगा और जिस कार्य को सिद्ध करने की आपकी इच्छा है, उसमे साधक भी आगे जाकर वही बनेगे। हे देव ! कुमार की पत्नी सद्गुणरक्तता तो ससारी जीव को अत्यन्त इष्ट होगी। मुझे लगता है कि कुमार के वहाँ जाने से गुणधारण भावपूर्वक उनका आदर करेगा और उन्हे अपने सम्बन्धी के रूप मे स्वीकार कर लेगा। [१७७-१८४]

पहले भी जब-जब ससारी जीव के पास सदागम था तब-तब उसने अपने कुमार गृहिधर्म को वहुत वार द्रव्य (उपचार) से देखा है। फिर सम्यग्दर्शन भी अपने कुमार गृहिधर्म को अपने साथ लेकर ससारी जीव के पास जाता रहा है, क्योंकि अपने सेनापति को गृहिधर्म कुमार पर अत्यधिक स्नेह है। सम्यग्दर्शन के ससारी जीव के पास जाने के वाद दो से नौ पल्योपम पृथकत्व काल मे भी उसने * भावपूर्वक गृहिधर्म को अपनी सगति मे रखना स्वीकार किया था। पहले जब-जब

---

* पृष्ठ ७०४

ससारी जीव ने सदागम और सम्यग्दर्शन को पुन-पुन. देखा है, तब-तब उसने गृहिधर्म को भावतः स्वीकार किया है और ऐसी परिस्थिति असख्य बार आई है। हे देव! वर्तमान मे गुणधारण मेरे अथवा सदागम के अधिक निकट आ रहा है, अत गृहिधर्म का उसके पास जाना विशेष अनुकूल रहेगा। अतः मेरे विचार मे अभी कुमार गृहिधर्म उसके पास जाये और उसे अपने गुणो से विशेष प्रसन्न करे। जब वह प्रसन्न हो जायगा तब मेरे और मेरे जैसे अन्य लोगो का भी उसके पास जाने का समय आ जायेगा। [१८५–१९०]

देव! दूसरी बात यह है कि अभी कुमार गृहिधर्म के वहाँ जाने से वह अपने शत्रु महामोह आदि को अधिक त्रास दे सकेगा और चित्तवृत्ति अटवी विशेष रूप से अधिक शुद्ध होगी। गृहिधर्म वहाँ होने से वह बार-बार ससारी जीव को प्रेरित करता रहेगा जिससे वह हमे देखने की इच्छा से हमारी ओर उन्मुख होगा। उसकी आत्मा को अधिकाधिक शान्ति और सुख प्राप्त होगा, उसके मन मे अधिकाधिक सतोष होगा, उसके कर्म निर्बल बनेगे और उसके ससार-भ्रमण का भय दूर हो जायगा। गृहिधर्म के ये चार बडे गुण है। अतएव इन परिस्थितियो मे अभी गृहिधर्म को वहाँ भेज देना चाहिये। फिर अवसर देखकर हम सब उसके पास चलेंगे। [१९१–१९४]

गृहिधर्म समागम

चारित्रधर्मराज को सद्बोध मत्री का परामर्श समयानुसार उचित लगा और उसके विचार नीतिसम्मत एव निर्मल लगे, अत. उन्होने शीघ्र ही व्यवस्था कर अपने छोटे पुत्र गृहिधर्म को निर्देश दिया। इस कार्य के लिये पहले कर्मपरिणाम महाराजा की आज्ञा ली गई। तत्पश्चात् गृहिधर्म मेरे (ससारी जीव गुणधारण के) पास आने के लिये निकल पड़ा। जिस समय मैं आह्लादमन्दिर उद्यान मे कन्दमुनि के समक्ष बैठकर व्याख्यान सुन रहा था, उसी समय वह मेरे पास आ पहुँचा और मुनि ने मुझे श्रावकधर्म का उपदेश देकर उसे प्रकट किया। उसकी पत्नी सद्गुणरक्तता और उसके बारह कर्मचारी (श्रावक के १२ व्रत) भी उसके साथ थे। मैंने उन सब को बान्धव-बुद्धि से मुनि महाराज के समक्ष ही स्वीकार किया, स्वागत किया और उन सब का यथोचित आदर किया। मेरे मित्र कुलन्धर ने भी उसी समय गृहिधर्म, उसकी पत्नी और उसके १२ कर्मचारियो को अन्तरग से स्वीकार किया। इस समय हमे अतिशय आनन्द प्राप्त हुआ। [१९५–१९९]

स्वप्नफल-पृच्छा

गृहिधर्म को स्वीकार करने के बाद मैने कन्दमुनि से स्वप्न मे आये चार और पाँच व्यक्तियो के विषय मे पूछा। कनकोदर और कुलन्धर को जो स्वप्न आये थे उनके अन्तर को बताते हुए उन स्वप्नो का पूरा वृत्तान्त मुनिराज को कह सुनाया और उसके भावार्थ को जानने की जिज्ञासा उनके समक्ष प्रस्तुत की।

कन्दमुनि बोले—भाई गुणधारण! तेरे स्वप्नो का भावार्थ अतीन्द्रिय ज्ञानी गुरु के अतिरिक्त कोई नही बता सकता। मेरे गुरु निर्मलसूरि केवलज्ञान रूपी सूर्य

से उद्योतित/प्रकाशित है, पर वे अभी दूर देश मे विहार कर रहे है । हे भद्र ! जब मैं उनके चरण-वन्दन के लिये जाऊँगा, तब तेरी शका का समाधान उनसे पूछू गा । मुझे विश्वास है कि दोनो स्वप्नो के विषय मे तुझे जो सन्देह है उस बारे मे वे स्पष्ट निर्णय दे सकेगे । वे महाज्ञानी है, अत. स्वप्न के भीतरी आशय/रहस्य को बराबर समझते हैं । [२००–२०४]

उत्तर मे मैंने कहा—भगवन् ! यदि आपके गुरु महाराज निर्मलाचार्य स्वय ही यहाँ पधार सके तो कितना अच्छा हो ! [२०५]*

कन्दमुनि—हे महाभाग ! मैं तेरे कहने से गुरु महाराज के पास जाऊगा और उन्हे यहाँ पधारने की प्रार्थना करू गा । मुझे विश्वास है कि वे स्वय यहाँ पधार कर तेरे मनोरथ पूर्ण करेगे । अथवा उनकी आत्मा केवलज्ञान के प्रकाश से लोकालोक के समग्र भावो को जानती है, अतः तेरे मन के भावो को जानकर, मेरे बिना बुलाये भी वे स्वय यहाँ पधार सकते है । जब तक वे यहाँ न पधारें तब तक तुम्हे सदागम और सम्यग्दर्शन के साथ गृहिधर्म का पूर्ण आदर करना चाहिये । [२०६–२०८]

गुरु महाराज के मधुर एव कर्णप्रिय अन्तिम उपदेश को मैंने अत्यन्त आदर-पूर्वक स्वीकार किया और कहा– भगवन् ! आपकी बहुत कृपा । मेरी पत्नी ने भी भगवान के वचनो को स्वीकार किया । हे भद्रे ! फिर गुरु महाराज को मुहुर्मुहुः विनयावनत होकर मस्तक झुकाकर वन्दन कर मैं अपनी पत्नी और मित्र के साथ उद्यान मे से अपने राजभवन मे आ गया । तत्पश्चात् महाभाग्यवान कंदमुनि भी अन्य मुनियों के साथ अपने गुरु निर्मलाचार्य के पादपद्मों का वन्दन करने वहाँ से विहार कर गये । [२०९–२११]

गुणधारण को राज्य-प्राप्ति

हे अगृहीतसकेता ! इसके कुछ दिनो बाद मेरे पिता मधुवारण धर्म का सेवन करते हुए समाधि-मरण पूर्वक परलोक पधार गये ।

मेरे बान्धवजनो, मन्त्रियों और सेनापति ने अत्यन्त हर्षित होकर महान् आनन्द से मेरा राज्याभिषेक किया । उस समय सभी प्रकार के योग्य महोत्सव आदि मनाये गये । मुझे राज्य-प्राप्त होते ही सारा राज्य मण्डल मेरा अनुरागी हो गया, शत्रु मेरे वशवर्ती हो गये, विद्याधर तो पहले ही वश मे थे । देवता भी नतमस्तक होकर मेरी आज्ञा मे रहने लगे । मेरा कोष, आज्ञा और समृद्धि भी बढ़ने लगी । धनुष-बाण चलाये बिना और क्रोध किये बिना ही मेरा राज्य निष्कटक हो गया । सुखो की प्राप्ति होने पर भी मेरा मन उनमे लवलेश भी लुब्ध नही हुआ । मैं रात-दिन सदागम और सम्यग्दर्शन की अधिक प्राप्ति का प्रयत्न करने लगा । पुण्योदय से सयुक्त होकर गृहिधर्म का आदर करने लगा । सातावेदनीय राजा मुझे निरन्तर

* पृष्ठ ७०५

आह्लादित करता रहा। हे सुन्दरागि! इस प्रकार पत्नी मदनमजरी और मित्र कुलन्धर के साथ उद्यम करते हुए और स्वर्गोपम लीला सुख भोगते हुए, आनन्द-समुद्र मे डुबकियाँ लगाते हुए मेरा-बहुत समय व्यतीत हो गया। [२१२-२२०]

---

५. निर्मलाचार्य : स्वप्न-विचार

निर्मलाचार्य का पदार्पण

एक दिन कल्याण नामक मेरे एक परिचारक ने मेरे पास आकर मुझे विनयपूर्वक नमस्कार किया और बोला—देव! आह्लाद मन्दिर उद्यान में देव-दानवो से पूजित अचिन्त्य महिमा वाले महाभाग्यवान् निर्मलाचार्य महाराज पधारे है, यही सूचना देने के लिये मैं आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ [२२१–२२२]

हे भद्रे! सेवक के उपर्युक्त वचन सुनते ही मुझे अवर्णनीय आनन्द हुआ। मानो मैं अपने शरीर, राजभवन, नगर और सम्पूर्ण त्रैलोक्य मे भी न समा पाऊ इतना आनन्द हुआ।* ऐसे शुभ समाचार देने वाले सेवक को मैंने संतुष्ट चित्त होकर एक लाख मोहरें पारितोषिक में दी और उसे प्रसन्न कर विदा किया। [२२३–२२४]

हे भद्रे! फिर मे अत्यन्त आदरपूर्वक अपने मित्र कुलन्धर और पत्नी मदनमजरी को साथ लेकर सूरिमहाराज को वन्दन करने के लिये नगर से बाहर निकल पड़ा।

देवताओ द्वारा स्वर्ण-निर्मित देदीप्यमान अति सुन्दर कमल पर सूरि महाराज विराजमान थे। इनके आस-पास अनेक मुनि, देव, दानव, विद्याधर आदि मर्यादापूर्वक बैठे थे। सबके मस्तक झुके हुए थे और उन सबको केवली भगवान् सुन्दर धर्मोपदेश दे रहे थे। [२२५–२२७]

दूर से ही आचार्यश्री के दर्शन होते ही अत्यन्त आनन्द से मेरा पूरा शरीर रोमाच से विकसित हो गया। मेरे साथ अधीनस्थ राजा थे, उन्होने और मैंने भी राज्य के पाँच चिह्न छत्र, तलवार, मुकुट, वाहन और चामर का त्याग कर दिया, उत्तरासग धारण किया और आचार्यश्री के अवग्रह मे प्रवेश किया। (३½ हाथ दूर रहकर) हम सब ने विधिपूर्वक आचार्यश्री को द्वादशावर्त वन्दन किया और योग्य

---

* पृष्ठ ७०६

क्रमानुसार अन्य मुनियो को भी वन्दन किया। केवली भगवान् और मुनियों से आशीर्वाद प्राप्त कर, पुन. पुनः नमन कर, शुद्ध निर्जीव जमीन देखकर बैठ गये। मुझे अत्यन्त प्रमोद हुआ और मेरी अन्तरात्मा अतिशय प्रसन्न हुई। केवली भगवान् ने भव्य जीवो के कर्मविष को नष्ट करने के लिए अमृतवृष्टि के समान मधुरामृत वाणी से देशना प्रारम्भ की। [२२८-२३२]

धर्मदेशना

भव्य प्राणियो ! यह ससार-चक्र जो निरन्तर घूमता ही रहता है और जो अनेक प्रकार के भयकर दुःखो से परिपूर्ण है, उसमे धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु ऐसी नही है जिसकी शरण ली जा सके। यहाँ मृत्यु के लिये ही जन्म होता है। रोग-वहन के लिये ही शरीर प्राप्त होता है। वृद्धावस्था के हेतुभूत यौवन आता है। वियोग के लिये ही सयोग का समागम होता है। इसमे अनेक प्रकार की स्थूल सम्पत्तियो की प्राप्ति भी दुःख के लिये ही होती है। अतः शरीर, यौवन, सयोग और सम्पत्तिया जिन्हे आप बहुत ही कीमती समझते हो, हे सासारिकजनो ! वे सब दुःख की ही कारणभूत है। प्राणियो के सम्बन्ध/सम्पर्क मे आने वाली संसार की एक भी वस्तु ऐसी नही है जो उसके दु ख के लिये न हो। सासारिक पदार्थों मे सुख की आशा करना मरुस्थल में जल की आशा करना है। आप पूछेंगे कि फिर सुख कहाँ है और सुखी कौन है ? जो अमूर्त्त दशा को प्राप्त हो गये हैं, जो सर्व भावो को जानते हैं, जो त्रैलोक्य से भी ऊपर (सिद्धगति) मे पहुँच गये है, जिन्होने सभी प्रकार के संग का त्याग कर दिया है, ऐसे महात्मा गण ही सुखी हैं। सर्व प्रकार के राग-द्वेष आदि, द्वन्द्वो से जो मुक्त हैं, जिनकी सब प्रकार की पीडा/बाधा नष्ट हो गई है और जिनके सभी सत्कार्य सिद्ध हो गये है, ऐसे महात्माओ के सुख का तो कहना ही क्या है ?

जिस प्राणी का ससार मे जन्म ही नही होगा, उसे न बुढापा सतायेगा और न मृत्यु। जब जन्म, जरा, मृत्यु का अभाव हो जाता है तब सभी दुःखो का अभाव स्वत. ही हो जाता है। सब दुःखो का नाश होने पर ही परमानन्द भाव की प्राप्ति होती है, शाश्वत सुखो की प्राप्ति होती है, अत सिद्धो का सुख अव्याबाध होता है।

अथवा संसार मे रहने वाले भी जिन महापुरुषो ने बाह्य और आन्तरिक परिग्रह का त्याग कर दिया है, जो नि स्पृह/इच्छारहित हो गये है, जो सतुष्ट हैं, जो ध्यानमग्न हैं, जो समता रूपी अमृत का पान करते है, जो सगरहित हैं, जो अहकार रहित हैं और जिनका चित्त निर्मल हो गया है, ऐसे सुसाधु महात्मा शरीर धारण करते हुए भी परम सुखी है।*

---

* पृष्ठ ७०७

इस संसार में सभी प्राणी सुखी होना चाहते हैं, पर सुख सुसाधुता के अतिरिक्त कही प्राप्त हो नही सकता है। अत हे महासत्वों ! इस पर विचार करे और इसे आचरण मे उतारे। यदि आप लोगो को मेरी बात युक्तिसगत प्रतीत होती हो तो आप भी इस असार ससार का त्याग करे और सुसाधुता को अगीकार करे। [२३३–२४३]

हे अगृहीतसकेता ! उस समय मेरे कर्म कुछ क्षीण हो गये थे, अत. आचार्य-प्रवर का उपदेश मुझे रुचिकर और सुखकारी प्रतीत हुआ। [२४४]

मैंने मन मे सोचा कि भगवान् ने जो सुख का कारण बताया है उस पर मुझे आचरण करना चाहिये। हे भद्रे ! इस प्रकार मेरी दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा जागृत हुई। [२४५]

संशय-निवेदन

आचार्यश्री की मन को प्रमुदित करने वाली वचनामृत-वृष्टि के पूर्ण होने पर कन्दमुनि ने दोनो हाथ जोड़कर ललाट पर लगाते हुए खड़े होकर आचार्यश्री से पूछा—भगवन् ! इस ससार मे किस प्राणी को समय व्यतीत करना दुष्कर होता है ?

आचार्य—गुरु के समक्ष जिसे अपनी जिज्ञासा के बारे मे कुछ पूछना हो, उसे जब तक पूछने का अवसर न मिले तब तक समय बिताना कठिन होता है।

कन्दमुनि—भगवन् ! यदि ऐसा ही है तो गुणधारण राजा के मन के सदेह को दूर करने मे आप पूर्णरूपेण समर्थ है, अत उसे दूर करने की कृपा करे।

आचार्य—बहुत अच्छा ! मैं इसका सदेह दूर करता हूँ, सुनो।

मैंने (गुणधारण) कहा—भगवान् की महान् कृपा। फिर मैंने कन्दमुनि से कहा—आपने मेरे सदेह के विषय मे आचार्यश्री से पूछकर बडी कृपा की, मैं आपका बहुत आभारी हूँ।

कन्दमुनि—राजन् ! आप केवली भगवान् की कृपा के योग्य है, अब भगवान् के वचन ध्यानपूर्वक सुने।

मैं अधिक विनयी बनकर मस्तक झुकाकर स्थिर चित्त होकर बैठ गया, तब निर्मलाचार्य ने कहा—हे गुणधारण राजन् ! तेरे मन मे यह सदेह है कि राजा कनकोदर ने स्वप्न मे जिन चार व्यक्तियो को देखा वे कौन थे ? फिर कुलन्धर ने स्वप्न मे पाँच व्यक्ति देखे वे कौन थे ? वे किस प्रकार तेरे कार्यों को सिद्ध करते हैं ? वे देव थे या और कोई ? एक ने चार और दूसरे ने पाँच क्यो देखे ? ये दोनो स्वप्न-मात्र थे या इसका कुछ गहन अर्थ भी है ?

गुणधारण—हाँ, भगवन् ! आपने जैसा फरमाया वैसा ही सदेह मेरे मन में है।

संशय-निवारण

आचार्य—राजन्! यह तो बड़ी लम्बी कथा है। इसे आद्योपान्त कैसे कहा और सुनाया जा सकता है?

गुणधारण—यदि ऐसा है तब भी आप कृपाकर यह समस्त वार्ता मुझे सुनाकर मेरा संदेह दूर करें।

तब भगवान् निर्मलाचार्य ने असव्यवहार नगर से लेकर अभी तक की मेरी सारी आत्मकथा संक्षेप में सुना दी।

तत्पश्चात् आचार्य ने कहा—राजन्! तेरी चित्तवृत्ति मे अनेक नगर-ग्रामों से व्याप्त एक बड़ा अन्तरग राज्य है। इस राज्य से तेरे हितेच्छु चारित्रधर्मराज आदि को बाहर निकाल कर महामोह आदि शत्रुओ ने दीर्घ काल से इस पर आधिपत्य कर लिया था। इसका कारण यह था कि महाराजा कर्मपरिणाम भी* अभी तक तुम्हारे प्रतिकूल होने के कारण महामोहादि के बल को पुष्ट करते रहते थे किन्तु अभी-अभी वे तेरे अनुकूल हुए हैं। इन्होने ही अपनी महारानी कालपरिणति को तेरे समक्ष किया है और तेरी पत्नी भवितव्यता को प्रसन्न किया है, अपने विशेष अधिकारी स्वभाव को भी तेरे पास भेजा है और तुम्हारे मित्र पुण्योदय को प्रोत्साहित किया है। इन्होने ही महामोहादि शत्रुओ का तिरस्कार कर उन्हे कुछ दूर भगाया है और चारित्रधर्मराज आदि को आश्वासन दिया है। इन्होने ही आज से पूर्व तुझे अनेक सुख-परम्परा के मार्ग दिखाये है। इनकी अनुकूलता से ही तुझे सदागम से स्नेह हुआ और सम्यग्दर्शन से मित्रता हुई है। सदागम और सम्यग्दर्शन के प्रति तेरे स्नेह के फलस्वरूप ही महाराज कर्मपरिणाम तेरे प्रति अधिक से अधिक अनुकूल होते रहे है। यही कारण है कि तूने विबुधालय मे परिवार सहित निवास करते हुए विशिष्टतर सुख-परम्परा प्राप्त की। कर्मपरिणाम महाराजा ने तेरे मित्र पुण्योदय को प्रोत्साहित किया जिससे तूने मधुवारण राजा के यहाँ जन्म लिया और बहिरग राज्य मे तुझे मदनमजरी जैसी पत्नी प्राप्त हुई। यह पुण्योदय विशिष्ट उत्तम प्रकृति का है। इस पुण्योदय ने एक समय विचार किया कि तुझे इस प्रकार के सुख-समूह प्राप्त कराने मे उसका क्या स्थान है? क्योंकि, समस्त कार्यो की सघटना तो पूर्ववर्णित चार महापुरुष ही करते है। इसी विचार से यथेच्छ रूप धारण करने वाले पुण्योदय ने कनकोदर राजा को स्वप्न मे उन दो पुरुषो और दो स्त्रियो के दर्शन कराये, वे थे:—कर्मपरिणाम महाराजा, कालपरिणति महारानी, स्वभाव और भवितव्यता। इन्होने ही स्वप्न मे राजा को कहा था कि मदनमजरी के लिये पहले से ही वर ढूढ़ कर रखा है, अत. अन्य वर ढूढने की आवश्यकता नही है। इसी ने मदनमजरी को विद्याधरो से विमुख किया था। यह सब पुण्योदय के कार्य का ही दर्शन था। परन्तु, अपनी महानुभावता के कारण वह

---

* पृष्ठ ७०८

स्वय स्वप्न मे अदृश्य रहकर कर्मपरिणाम आदि के मुंह से ही यह बात कहलाई कि वे ही सब कुछ कर्त्ता-धर्ता है।

बाद मे जब कर्मपरिणाम को यह ज्ञात हुआ तो उन्होने कहा—आर्य पुण्योदय ! गुणधारण को तुमने ही सब प्रकार का सुख प्राप्त करवाया है। फिर भी तुमने स्वय को प्रच्छन्न रखकर हम को इसका कर्त्ता बतलाया यह तो उचित नही है।

पुण्योदय—देव ! आप ऐसा न कहे। मैं तो आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ। परमार्थ से तो आप ही कर्त्ता हैं। वही मैंने स्वप्न मे कनकोदर को बताया, इसमे अनुचित क्या है ?

कर्मपरिणाम—आर्य ! यह सत्य है, फिर भी परम हेतु तो तुम्ही हो। तुम्हारे बिना हम भी किसी को सुख प्राप्त नही करवा सकते, अत तुम्हे भी स्वप्न मे यह बात स्वय कहनी चाहिये। जब तक तुम ऐसा नही करोगे तब तक हमारे चित्त को शान्ति नही मिलेगी।

पुण्योदय*—जैसी देव की आज्ञा। तत्पश्चात् कुलन्धर को स्वप्न मे पाँच मनुष्य दिखाये, जिसमे चार तो पूर्वोक्त कर्मपरिणाम, कालपरिणति, स्वभाव और भवितव्यता ही थे और पाचवाँ स्वय पुण्योदय था। पुण्योदय ने स्वप्न के माध्यम से यह बताया कि समस्त कार्यो की सफलता ये पाँचो ही प्रदान करते है।

हे राजन् गुणधारण ! इस विवेचन से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि ये चारो और ये पाँचो कौन थे ? वस्तुतः ये चारो और पाँचो ही आपके समस्त कार्य-कलापो की सघटना/योजना करते रहते हैं। अत. आपकी जिज्ञासा का समाधान हो गया होगा ? सशय न करे।

---

* पृष्ठ ७०६
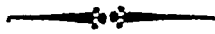
६. कार्य-कारण-शृंखला

पुण्योदय के कार्य

स्वप्नो के विषय मे मेरे मन में उठे सदेह का निराकरण होने से मैं उत्साहित हुआ और मैंने इस अपूर्व अवसर का यथाशक्य लाभ उठाने के लिये आचार्यश्री से कुछ अन्य प्रश्न पूछने का निश्चय किया। मैंने (गुणधारण) सविनय पूछा—

गुरुदेव! मदनमजरी की प्राप्ति के बाद भी मुझे जो निरुपम सुख की प्राप्ति हुई, क्या उसे भी कर्मपरिणाम आदि चारो महापुरुषो की प्रेरणा से पुण्योदय ने ही उपलब्ध करवाई है?

आचार्य—राजन्! वह सब पुण्योदय ने ही किया है। यही नही, पहले भी उसने तुझे कई बार अनेक प्रकार से सुख प्राप्त करवाये है। नन्दीवर्धन के भव मे कनकमजरी से सम्बन्ध, रिपुदारण के भव मे नरसुन्दरी से सम्बन्ध, वामदेव के भव मे विमलकुमार जैसे सद्गुणी मित्र की प्राप्ति, धनशेखर के भव मे अनेक प्रकार के महर्घ्य रत्नों की प्राप्ति, घनवाहन के भव मे कलकरहित अकलंक जैसे मित्र से निश्छल गाढ स्नेह आदि सभी सुख इसी ने प्राप्त करवाये हैं। इसने तुझे अनेक बार राज्य प्राप्त करवाया और सभी स्थानों पर अनेक प्रकार की सुख सुविधाये प्राप्त करवाई। पर, दुःख है कि तूने कभी भी न तो इस पुण्योदय मित्र से परिचय ही किया और न कभी उसकी शक्ति को ही पहिचाना। इसके विपरीत सर्व दोषो के केन्द्रस्थान हिंसा, वैश्वानर, मृषावाद, शैलराज, स्तेय, बहुलिका, मैथुन, सागर, परिग्रह और महामोह आदि का पक्ष लिया। बिना पुण्योदय को पहचाने तूने अपने होने वाले लाभो की प्राप्ति इन दारुण दोषो के समूह हिसा आदि से हुए ऐसा माना। हितेच्छु को न पहचान कर शत्रुओ को मित्र माना।

गुणधारण—भगवन्! जब मित्र पुण्योदय मुझे पहले भी सुख-परम्परा प्रदान करने का हेतु रहा है, तब बीच-बीच मे इतने दुःख मुझे क्यो हुए? अनन्त काल तक मुझे क्यो यहाँ से वहाँ भटकना पड़ा?

आचार्य—राजन्! तेरा प्रश्न बहुत विशाल है। यदि तुझे इसका स्पष्टीकरण जानना ही है तो मुझे प्रारम्भ से ही सब कुछ बताना पड़ेगा जिससे कि तेरे समस्त सदेह दूर हो।

गुणधारण—भगवन्! मुझ पर कृपाकर सब कुछ विस्तार से समझाइये।

कर्मपरिणाम के दो सेनापति

आचार्य—भूपति ! याद करो, तुम्हे अभी मैंने बतलाया था कि जब तुम असव्यवहार नगर मे कौटुम्बिक के रूप मे ससारी जीव के नाम से रहते थे तभी से तुम्हारी चित्तवृत्ति मे अनादि काल से अन्तरग राज्य रहा ही है, जिसमे चारित्र-धर्मराज आदि की और महामोहादि नरेन्द्रो की दोनो सेनाये रहती है। ये दोनो सेनाये सर्वदा एक दूसरे के विरुद्ध रही है। कर्मपरिणाम महाराज को महामोह के प्रति कुछ अधिक प्रेम है; क्योकि ये दोनो एक ही जाति के है। यद्यपि ये महाराज तेरी शक्ति पर निरन्तर सूक्ष्म दृष्टि रखते है * तथापि ये दोनो पक्षो के मध्य साधारणतया निष्पक्ष जैसे रहते है। वास्तव मे तो ये महाराजा प्रज्वलित अग्नि जैसे हैं और जब जिस पक्ष की प्रबलता देखते है तब उस पक्ष को प्रश्रय (टेका, बढावा) देते रहते हैं। यह स्थिति अनादि काल से चल रही है।

कर्मपरिणाम महाराजा के दो सेनापति है, एक का नाम पापोदय है और दूसरा यही पुण्योदय है। पापोदय प्रकृति से ही अत्यन्त भयकर और तेरे प्रतिकूल व्यवहार करने वाला है, अतएव महामोहादि तेरे शत्रुओ की सेना का एक भाग जो अत्यन्त दूषित है, रौद्र है, भयकर है, क्रूर है और नितान्त असुन्दर है उसका सेनापति यह बन बैठा है। पुण्योदय तेरे अनुकूल है इसलिये कर्मपरिणाम की सेना का दूसरा भाग जो सुन्दर और श्रेष्ठ है, तेरा बन्धुरूप है, वह उस चारित्रधर्मराज आदि की शुभ सेना का सेनापति बना हुआ है। जब तू असव्यवहार नगर मे था तब से ही यह पापोदय स्पष्ट रूप से तेरे साथ लगा हुआ है। यह इतना स्पष्ट था कि तेरी पत्नी भवितव्यता ने भी कभी तुझे इसका विशेष परिचय कराने का प्रयत्न नही किया। नृपति गुणधारण ! तुम्हे संसार मे जहाँ-तहाँ भटकाने वाला यह पापोदय ही है। एक के बाद एक होने वाली तेरी दु.ख-सन्तति का कारण भी यह पापोदय ही है। हिंसा आदि तेरे अनर्थकारी शत्रुओ को तूने मित्र माना और तुझे हितकारी पुण्योदय को पहचानने भी न दिया, इन सबका कारण यह पापोदय ही है।

राजन् ! इस पापोदय ने तेरे चित्तवृत्ति अन्तरग महाराज्य मे से स्वय तुझे ही बाहर निकाल फेंका है, तुझे पदभ्रष्ट किया है और तेरी आज्ञा का पालन करने वाले, तेरे एकान्त हितेच्छु चारित्रधर्मराज आदि अन्तरग बल (सेना) को मार भगाया है। तेरा एकान्त अहित करने वाली महामोह आदि की सेना को तुझे सन्तोषदात्री मित्रो की सेना जैसी बताई है, उनके प्रति तेरे मानस मे आसक्ति उत्पन्न की है। स्वय भी ठगने मे कुशल और अपने को छिपाने मे समर्थ होने से पापोदय ने स्वय को तुम्हारा प्रेमी और हितेच्छु प्रकट किया है। यद्यपि उस समय पुण्योदय

---

* पृष्ठ ७१०

भी तेरे पास रहता था, पर वह तुझे पापोदय से अनुबद्ध देखकर तेरा अधिक हित नही कर सकता था। बीच-बीच में उसकी भलमनसाहत के अनुसार वह तुझे थोडा-थोड़ा सुख देता था, किन्तु कल्याण-परम्परा को प्राप्त करवाने मे वह कारणभूत नही बन पाता था। इसमे पुण्योदय का कोई दोप नही था। समस्त दोप तो पापोदय का ही था।

गुणधारण—गुरुदेव ! फिर पापोदय अभी चुपचाप कैसे वैठा है ?

आचार्य—देखो, राजन् ! यह पापोदय भी स्वतन्त्र नही है। यह भी कर्म-परिणाम, कालपरिणति, स्वभाव, भवितव्यता आदि के अधीन है। इन चारो महापुरुषो ने मिलकर अभी पापोदय को तुझ से दूर निकाल, भगा दिया है। जब से इन चारो महापुरुषो की आज्ञा लेकर सदागम तेरे पास आया है तब से उन्होने पापोदय को निर्बल बना दिया है। तभी से यह पापोदय तुझ से दूर खिसक कर वैठ गया है और तुझे दु:ख पहुँचाने का हेतु नही वन सका है। परिणामस्वरूप तेरे सम्बन्ध मे पुण्योदय को अधिक अवकाश मिला है, सुअवसर मिला है। हे भूप ! बीच-बीच मे जब-जब ऐसी परिस्थिति आई है तब-तब भी तुझे सदागम पर अधिक प्रीति हुई है* और सदागम के प्रताप से तुझे सुख की प्राप्ति हुई है। ये चारों महापुरुष जब भी पापोदय को तेरे निकट भेजते तभी तू फिर सदागम का साहचर्य छोड़ देता और पापोदय के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के दु ख भोगता। [२४६–२४८]

हे नृप ! ये चारो महापुरुष विचार-विमर्श पूर्वक एकमत होकर तेरे सम्बन्ध मे विचार करते थे और तेरे समस्त कार्यक्रम निश्चित करते थे। इस ससार में उन्होने अनन्तबार पुण्योदय को तुझ से मिलाया, पापोदय को छिपाकर सदागम से तेरा मिलाप कराया। फिर जब उन्होने अपने तेज से गृहिधर्म के साथ सम्यग्दर्शन को तेरे पास भेजा तब उन्होने पापोदय को तुझ से अधिक दूर कर दिया और तेरी चित्तवृत्ति मे जो उसकी सेना पडाव डाले हुए थी उसे भी पापोदय को दूर ले जाना पडा। इससे तुझे अधिक सुख प्राप्त हुआ। फिर पुण्योदय के साथ तेरा अधिक गाढ सम्बन्ध हुआ और चारो महापुरुषो ने तुझे पुण्योदय के साथ विबुधालय भेजा। वहाँ से तुझे फिर मानवावास मे लाया गया और यहाँ तुझे अनेक प्रकार की कल्याण-परम्परा प्राप्त करवाई। एक बार फिर इन चारो महापुरुषो ने पापोदय और उसकी सेना को तेरे निकट भेजा, जिससे तेरे सम्बन्धियो ने भी तेरा त्याग कर दिया और तुझे महान दु ख प्राप्त हुए। इस प्रकार तुझे असख्य बार सुख मिला और गया, दुःख मिला और गया। सुन्दर और दूषित वस्तुओ का सयोग और वियोग भी अनेक बार हुआ।

राजन् ! इस राजमन्दिर मे (सप्रमोदनगर मे मधुवारण राजा के घर मे) तेरा जन्म होने से पूर्व तुझे अनेक बार सुन्दर-असुन्दर वस्तुओ का सयोग-वियोग प्राप्त हो चुका है। अभी इन चारो महापुरुषो की आज्ञा से पापोदय अपनी सेना को लेकर

---

* पृष्ठ ७११

तुझ से बहुत दूर जाकर चुपचाप बैठा है। अभी कर्मपरिणामादि चारो ने महाभाग्यशालीय सातावेदनीय राजा और पुण्योदय को तेरे निकट भेजा है और वे तुझे सुख पहुँचा रहे है। हे भूप! अभी उनका पापोदय पर विशेष प्रेम नही होने से पवित्र पुण्योदय तेरे प्रति जागृत हुआ है। पुण्योदय ने तुझे बहुत सुख-परम्परा प्राप्त करवाई है और उसमे भी लोलुपता-रहित शान्त एवं प्रशस्त मानसिक स्थिति प्राप्त करवाई है। [२४६-२५६]

सक्षेप मे तेरे सभी सुन्दर-असुन्दर कार्यो के हेतु ये चारो महापुरुष ही है। इन्ही चारो मनुष्यो को स्वप्न मे देखा गया है, इसमे कोई सदेह नही। जब ये महापुरुष तुझ से प्रतिकूल होते है तब पापोदय को आगे कर तुझे अनेक प्रकार के दु:ख और त्रास प्रदान करते है और जब ये अनुकूल होते हैं तो पुण्योदय को आगे कर भिन्न-भिन्न कारणो से अनेक प्रकार के सुख प्राप्त करवाते है। अभी तक तुझे जो कुछ भी शुभ या अशुभ प्राप्त हुआ है या भविष्य मे होगा उन सब के निश्चित रूप से हेतु ये चारो महापुरुष ही हैं। [२६०-२६३]

स्वयोग्यता

गुणधारण—गुरुदेव! सुख-दु.ख, शुभ-अशुभ प्राप्त तो मुझे ही होते है? इनका अनुभव तो मैं ही करता हूँ, फिर क्या मैं स्वय इनके विषय मे कुछ नही कर सकता? क्या मै निरर्थक ही हूँ?

आचार्य—नही, राजन्! ऐसा नही है। अभी मैंने जिन महापुरुषो और सेनापतियो की बात की है, वे सब तो तेरे ही पारिवारिक जन हैं, उन सब का नायक तो तू स्वय ही है।* ये चारो महापुरुष तेरे विकास-क्रम की योग्यता की परीक्षा करने के पश्चात् ही निर्णय लेते है। फिर उस निर्णय के अनुसार ही तेरे सुख-दु ख-प्राप्ति के कारण बनते है, अत: तेरे सभी कार्यों मे तेरी स्वय की योग्यता (विकास) ही मुख्य कारण है। अत हे नृप! अभी या भूतकाल में तूने जो कुछ भी अच्छे-बुरे अनुभव किये है, उन सब का मुख्य कारण तेरा स्वयं का विकास है, कर्मपरिणाम आदि तो सहकारी कारण है। अनादि काल से तेरा यह विकास-क्रम तुझ से सयुक्त है और उसी के अनुसार तेरा यह सब भव-प्रपञ्च (ससार-विस्तार) का निर्माण होता है। तेरी स्वय की योग्यता के बिना ये कर्मपरिणाम आदि बेचारे शुभाशुभ आदि कुछ भी नही कर सकते। अत अपने सभी अच्छे-बुरे कार्यो का प्रधान कारण (हेतु) तुम्हारा स्वय का विकास-क्रम ही कहा गया है। वस्तुत तुम स्वय इनके नियोजक हो। [२६४-२७०]

कार्यों का परम कारण सुस्थितराज

गुणधारण—नाथ! आपने मेरे कार्यों की साधना हेतु जिन कारणो को बताया, उनके अतिरिक्त भी अन्य कोई कारण शेष रह गया है जिसे मैं अभी तक न जान सका हूँ?

---

* पृष्ठ ७१२

आचार्य—राजन् ! सुनो—निरन्तर आनन्द-सन्दोह से पूर्ण, निरामय, अति मनोहर एक निर्वृ त्ति नामक नगर है। वहाँ अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द से परिपूर्ण सर्वज्ञ सर्वदर्शी सुस्थित नामक महाराजा राज्य करते हैं। यही महाराजा सपूर्ण जगत के परमेश्वर है, विश्व के प्रभु है और ससार के सभी प्राणियो के अच्छे-बुरे सभी कार्यों के परम कारण भी यही है। ऐसी सिद्ध आत्माएँ अनेक है, पर गुण की दृष्टि से वे सब एक ही है, अत: आचार्यों ने उन्हे एक ही बताया है। ये सब अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न आत्माएँ है, अत महात्माओ ने इन्हे ही परमेश्वर कहा है। ये ही बुद्ध है, ये ही ब्रह्मा है, ये ही विष्णु हैं, ये ही महेश्वर हैं, ये ही अशरीरी है और ये ही जिन है। तत्त्वद्रष्टा महात्मा इन्हे इन्ही नामो से पहचानते हैं। तेरी कार्य-परम्परा के कारण ये अपनी इच्छा से नही बनते, क्योकि ये तो वीतराग है, राग-द्वेष और सर्व इच्छाओ से रहित हैं। कोई भी कार्य बिना इच्छा के नही होता और जहाँ इच्छा होती है वहाँ राग-द्वेष होता ही है, किन्तु वीतराग परमात्मा मे तो राग-द्वेष हो ही नही सकता। फिर वे तुम्हारी सुन्दर या असुन्दर कार्य-परम्परा किस प्रकार करते है ? तथा किस प्रकार कार्य निष्पत्ति होती है ? मै तुझे स्पष्टत: समझाता हूँ। इन सिद्ध भगवान् ने सभी लोगो को अनुशासन मे रखने के लिये एक अपरिवर्तनीय, त्रिकाल, स्पष्ट और निश्चल विधान बना रखा है। उस विधान की आज्ञाओ का सभी लोगो को पालन करना चाहिये। ये आज्ञाएँ निम्न है :—

१ अपनी चित्तवृत्ति को अन्धकार-रहित करे और उसे गौ-दुग्ध, मुक्ताहार, ओसकण, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान श्वेत, शुद्ध और प्रकाशमान करे।

२. महामोह राजा और उसकी सेना को, जो भयकर ससार के कारण है, अपने शत्रु रूप मे पहचाने और प्रति क्षण उन्हे नष्ट करने का प्रयत्न करे।

३. चारित्रधर्मराज और उनकी सेना जो महान कल्याणकारी है, उन्हे अपने हितेच्छु और मित्र रूप मे पहचाने और सर्वदा उनका पोषण करे।

विधाता की/सिद्ध प्रभु की यह हितकारिणी आज्ञा त्रिकाल सिद्ध है और* सभी लोगो के लिये समान है, अत उनकी आज्ञा का पालन करने वाले सभी अनुयायियो का यह कर्त्तव्य है कि वे पूजा, ध्यान, स्तवन, व्रत-आचरण आदि के द्वारा इन आज्ञाओ का पालन करे और इन्हे अपने जीवन मे उतारे। जिन आचरणो का निषेध किया गया है, उन्हे करने से आज्ञा-भग होता है। इन महाराजा ने द्वादशांगी (१२ अगो) मे बहुत-सी बाते कही है, पर उन सबका सार उपरोक्त आज्ञाओ मे आ जाता है । इन आज्ञाओ का यह माहात्म्य है कि जो व्यक्ति जितने अश मे इनका पालन करता है वह उतने ही अश मे सुखी होता है। चाहे वह इन आज्ञाओ का स्वरूप जानता हो या न जानता हो। जो प्राणी इन आज्ञाओ का

* पृष्ठ ७१३

उल्लंघन करता है या इनके विपरीत आचरण करता है, वह इनका स्वरूप जानने पर भी दु.खी होता है। मोह के वशीभूत प्राणी जितने अश मे इन आज्ञाओ का उल्लंघन करता है उतना ही दु खी होता है और जितने अंश मे इनका पालन करता है उतना ही सुखी होता है। अतएव यह स्पष्ट है कि समस्त प्राणियो को इसकी आज्ञा का उल्लघन करने से दु'ख और आज्ञा-पालन से सुख प्राप्त होता है। [२७१-२६०]

त्रैलोक्य मे एक भी ऐसी अच्छी-बुरी घटना या उसका एक अशमात्र भी ऐसा नही जो उपर्युक्त आज्ञा की अपेक्षा रखे बिना घटित होता हो, अर्थात् इस ससार में होने वाली सभी क्रियाएँ, प्राणी की सभी प्रवृत्तियो के परिणाम, मन वचन काया की प्रवृत्ति आदि सब कुछ इस सिद्ध-आज्ञा के अप्रतिहत नियमो के अनुसार घटित होती हैं। इसीलिये ये सिद्ध प्रभु राग-द्वेष और इच्छारहित होने पर भी और हमसे इतनी दूर निर्वृत्ति नगरी मे रहने पर भी सभी कार्यों के परम कारण है, ऐसा समझे। [२६१-२६२]

हे गुणधारण! ससार के सभी भले-बुरे कार्यों के परम हेतु वे सिद्ध भगवान् ही हैं, इसमे कोई सशय नही है। तुझे पूर्व मे जो विविध प्रकार के दु.ख हुए वे सभी उनकी आज्ञा के उल्लघन के कारण ही हुए। अभी उनकी आज्ञा का कुछ अश मे पालन करने से तुझे थोड़ा-थोडा सुख प्राप्त होता जा रहा है। जब तू उनकी आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन करेगा तब तुझे वास्तविक सच्चे सुखसदोह का रस ज्ञात होगा। तेरे सभी कार्यो के लिये उपर्युक्त कारणो मे से कुछ कारण मुख्य है और कुछ गौण हैं। इन सबको तुझे तेरे कार्यो के कारण रूप मे बराबर समझ लेना चाहिये। हे राजन्! उपर्युक्त कारणो मे से एक की भी अनुपस्थिति मे कार्य-सिद्धि नही हो सकती। सक्षेप मे, उपर्युक्त सभी हेतुओ को कार्य-सिद्धि के लिये कारण-समाज/हेतुसमूह के रूप मे जानना चाहिये। [२६३-२६७]

गुणधारण—भगवन्! क्या आपने कार्य के सभी कारणो को बता दिया है? क्या इतने ही कारण है? अथवा अन्य भी कारण है जो बताने मे शेष रह गये है?

आचार्य—राजन्! प्राय. सभी हेतुओ को मैंने बता दिया है। इन सभी कारणो के एकत्रित होने पर ही कार्य सिद्ध होता है। नियति (भाग्य) और यदृच्छा आदि एक दो कारण और भी है पर वे भवितव्यता के अन्तर्गत ही आ जाते है।

हे सुलोचनी अग्रहीतसकेता! इस प्रकार गुणधारण के भव मे मेरे स्वप्न सम्बन्धी सन्देह का आचार्यश्री निर्मलसूरि केवली ने विस्तृत रूप से स्पष्टतया निराकरण किया, जिससे मेरी शका नष्ट हुई और मैंने हाथ जोड़कर आचार्य के वचनोक्ते शिरोधार्य किया। [२६८-३०१]

७. दस कन्याओं से परिणय

सैन्य-स्तम्भन का कारण

अवसर का लाभ उठाकर मैने निर्मलाचार्य केवली से विद्याधरो की सेनाओ के स्तम्भन के विषय मे मेरे मन मे जो अति आश्चर्य हो रहा था उस विषय मे भी प्रश्न पूछ ही लिया*—प्रभो ! मेरे समक्ष जब विद्याधरो की सेना युद्ध करने आई थी तब दोनों ही सेनाओ का आकाश और भूमि पर स्तम्भन किस कारण से हुआ था और किसने कर दिया था ?

आचार्य—राजन् ! उसमे भी अन्तिम कारण पुण्योदय ही है। इसी ने अन्य कारणो को प्रेरित किया है। इसी की शक्ति और प्रेरणा से वनदेवता तुझ पर प्रसन्न हुए और दोनो सेनाये स्तम्भित हो गई। तुम्हारी इच्छा थी कि तुम्हारे कारण से विद्याधरो मे परस्पर खून की नदी न बहे इसीलिये उन्हे स्तम्भित किया था। फिर तेरी इच्छानुसार ही उन्हे स्तम्भन से मुक्त भी कर दिया था और उन्हे तेरे भाई जैसा बना दिया था। इस प्रसग मे वनदेवता ने जो कार्य किया वह भी वस्तुतः पुण्योदय ने ही किया था, क्योकि वनदेवता को प्रेरित करने वाला भी यही निष्पाप पुण्योदय ही था। हे नरोत्तम ! यह पुण्योदय दूसरो को प्रेरणा देकर सब प्रशस्त कार्य दूसरो से करवाता है, स्वयं कोई कार्य नही करता। इसका स्वभाव है कि वह काम का यश सदा अन्यो को दिलाता है। इसी प्रकार पापोदय भी अन्य द्वारा अशुभ कार्य करवाता है और अपयश का भागी अन्यो को बनाता है। हे नृप ! ससार मे जो भी भले-बुरे कार्य होते है उनके हेतु कुछ अन्य ही दिखाई देते है, पर वास्तव मे वे हेतु गौण होते हैं, मुख्य हेतु तो पुण्योदय या पापोदय ही होते है। पहले भी तुझे जो अनेक प्रकार के दु ख भिन्न-भिन्न कारणो से हुए है, उनके पीछे भी मुख्य कारण यह पापोदय ही रहा है। हे गुणधारण ! अब पुण्योदय का समय आया है तो वह भी भिन्न-भिन्न साधनो से तुझे सुख पहुँचा रहा है, पर बाह्य-वस्तुएँ तो निमित्त मात्र है, वास्तविक कारण तो पुण्योदय ही है। [३०२–३१२]

शुभाशुभ बाह्य निमित्त

गुणधारण—भगवन् ! मेरे समस्त सदेह अब नष्ट हो गये हैं। आपके वचनो को मैंने सक्षेप मे इस प्रकार समझा है—जब मैं अज्ञान से निर्वृत्ति नगर स्थित परमेश्वर सुस्थित महाराज की आज्ञा का उल्लघन करता हूँ और अपनी चित्तवृत्ति को भावान्धकार से मलिन करता हूँ तथा महामोहादि की सेना का पोषण करता हूँ तब मेरे इस व्यवहार को देखकर कर्मपरिणाम, कालपरिणति, स्वभाव

---

* पृष्ठ ७१४

और भवितव्यता ये चारो महापुरुष मेरे प्रतिकूल हो जाते है तब कर्मपरिणाम का सेनापति पापोदय मेरे विरुद्ध अपनी सारी सेना लेकर आ जाता है एवं अनेक अन्तरंग और बाह्यकारणो को प्रेरित कर मुझे अनेक प्रकार से पंक्तिबद्ध दुःख पहुँचाता है। जब मैं अपनी स्वयोग्यता विकास-क्रम से, भगवान् सुस्थित महाराजा की कृपा से, यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर इनकी आज्ञा का पालन करता हूँ और भावान्धकार के प्रक्षालन से अपनी चित्तवृत्ति को निर्मल बनाकर चारित्रधर्मराज की सेना को प्रसन्न करता हूँ, तभी मेरे इस व्यवहार से कर्मपरिणाम आदि चारो महापुरुष मेरे अनुकूल होते हैं। पश्चात् कर्मपरिणाम का सेनापति पुण्योदय अपनी सेना के साथ मेरे पास आता है* तथा बाह्य एव अन्तरंग साधनो को प्रेरित कर मुझे सुख-परम्परा प्रदान करता है। इन सभी कारणों का समूह ही कार्य को उत्पन्न करता है, इनमे से अकेला कोई भी कारण कुछ भी कार्य उत्पन्न नही कर सकता।

सम्पूर्ण सुख की जिज्ञासा

भगवन्! जैसा आपने बतलाया कि पुण्योदय ने ही मुझ इस प्रकार का किंचित् सुख प्राप्त करवाया है। आपके इन वचनो से मेरे मन मे कुतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। मैं सोचता हूँ कि जिस दिन मुझे मदनमञ्जरी की प्राप्ति हुई उसी दिन मुझे दहेज मे महामूल्यवान रत्नो की प्राप्ति हुई, चिन्तन मात्र से विद्याधरों का युद्ध रुका, दोनो सेनाओ मे भ्रातृभाव हुआ और वे मेरे सेवक बने, माता-पिता को सतोष हुआ, नगर में आनन्द महोत्सव हुआ, नगरवासी प्रमुदित हुए, विद्याधर मेरे घर आये, पिताजी ने उनका आतिथ्य सत्कार किया, मेरा यश सर्वत्र फैला, अत वह दिन सुखो से परिपूर्ण होने के कारण मुझे अमृतोपम प्रतीत हुआ। इसके पश्चात् मदनमञ्जरी से प्रेम सम्बन्ध बढा, कन्दमुनि के दर्शन हुए, सातावेदनीय, सदागम, सम्यग्दर्शन और गृहिधर्म से मित्रता हुई, राज्य प्राप्ति हुई। मैं यथेच्छ सुखो मे विलास करने लगा। इन यथेच्छ सुखो के सन्मुख मुझे देवलोक के सुख भी तुच्छ प्रतीत हुए। फिर आपके दर्शन हुए, सन्देह-निवारण हुआ। आपके मुखकमल के दर्शन और वचनामृत श्रवण से मुझे जो सुखातिरेक की प्राप्ति हो रही है वह वचनातीत है। इतने सारे सुख को आपने पुण्योदय द्वारा सम्पादित थोड़ा-थोड़ा सुख या सुखाश कहा, इसका क्या तात्पर्य है? यदि यह सुखाश मात्र है तो फिर सम्पूर्ण सुख क्या है? यह जानने की मेरे मन मे जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। कृपया समझाये कि सम्पूर्ण सुख किस प्रकार का होता है?

आचार्य—राजन्! सम्पूर्ण सुख का स्वरूप तो तुम अपने अनुभव से ही समझ सकोगे। उसे बताने से क्या लाभ?

गुणधारण—प्रभो! मुझे वह अनुभव कब और किस प्रकार होगा?

---

* पृष्ठ ७१५

सम्पूर्ण सुख का हेतु दस कन्याओं से लग्न

आचार्य—राजन् ! जब तुम्हारा विवाह दस कन्याओ से होगा, जब उनके साथ तुम्हारा अत्यन्त सद्भावपूर्वक प्रेम-सम्बन्ध होगा, जब तुम इनके साथ अत्यन्त आनन्दपूर्वक उद्दाम लीला-विलास करोगे तब तुम्हे जो सुख होगा उसकी अपेक्षा से तुम्हारा वर्तमान सुख तो सुख का अंश मात्र ही है ।

गुणधारण—प्रभो ! मैं तो मदनमंजरी का भी त्याग कर आपके चरण-कमलो मे दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ तब फिर मेरा नयी दस कन्याओ से परिणय कैसे होगा ?

आचार्य—तुझे अवश्य ही इन कन्याओ से परिणय करना होगा । उनसे सयुक्त होने पर ही* तुम दीक्षा ले सकोगे । उनके साथ दीक्षा लेने मे कोई कठिनाई या कोई विरोध नही होगा । फिर उनके बिना दीक्षा का अर्थ भी क्या है ? उनके समान कुटुम्बियो के अभाव मे तेरा दीक्षा लेना व्यर्थ है । उनके बिना तेरा विकास नही हो सकता । अत पहले तुम इन दस कन्याओं से विवाह करो, फिर नियमपूर्वक मैं तुम्हे दीक्षित करूँगा ।

'भगवन् ! आप यह क्या कह रहे है ?' मैं अपने मन मे चकित हो रहा था तभी कन्दमुनि ने प्रश्न किया—गुरुदेव ! गुणधारण को जिन कन्याओ से विवाह करना है, वे कौन-सी है ?

आचार्य—यह तो बहुत प्राचीन वृत्तान्त है । मैं पहले तुम्हे सुना चुका हूँ, वे ही दस कन्याये है, नवीन नही है ।

कन्दमुनि—गुरुदेव ! मैं तो यह बात भूल गया हूँ । मुझ पर अनुग्रह कर यह सब पुन बताने की कृपा करे कि उन कन्याओ के क्या नाम है ? वे कहाँ रहती हैं ? कौन-कौन उनके सम्बन्धी है ?

आचार्य—सुनो ! चित्तसौन्दर्य नगर के राजा शुभपरिणाम की निष्प्र-कपता और चारुता नामक दो रानियो से उत्पन्न क्रमश क्षान्ति और दया नामक दो कन्याएँ है ।

शुभ्रमानस नगर के शुभाभिसन्धि राजा की वरता और वर्यता नामक दो रानियो से उत्पन्न मृदुता और सत्यता नामक दो कन्याएँ है ।

विशदमानस नगर के शुद्धाभिसन्धि राजा की शुद्धता और पापभीरुता नामक दो रानियो से उत्पन्न ऋजुता और अचौर्यता नामक दो कन्याएँ है ।

शुभ्रचित्तपुर नगर के सदाशय राजा की वरेण्यता रानी से उत्पन्न ब्रह्मरति और मुक्तता नामक दो कन्याये है ।

सम्यग्दर्शन की अपनी एक मानसी कन्या विद्या है ।

---

* पृष्ठ ७१६

महाराज-चारित्रधर्मराज और विरति देवी की पुत्री निरीहता है ।

हे आर्य ! ये दस कन्याओ के नाम, उनके माता-पिता के नाम और उनके निवास स्थान है ।

कन्दमुनि—नाथ ! आपकी बडी कृपा । अब कृपया यह बताइये कि महाराजा गुणधारण को ये कन्याएँ कैसे प्राप्त होगी ?

आचार्य—महाराजा कर्मपरिणाम कालपरिणति आदि के साथ विचार कर, उनकी अनुमति प्राप्त कर, पुण्योदय को आगे कर, उन-उन नगरो मे जाकर, उन कन्याओ के माता-पिता को अनुकूल कर, उन समस्त कन्याओ को महाराज गुणधारण को दिलवायेंगे । महाराज गुणधारण को तो केवल सद्गुणो का अभ्यास करते हुए अपनी आत्मयोग्यता बढानी चाहिये जिससे कि कर्मपरिणाम उनके अनुकूल हो ।* कर्मपरिणाम के अनुकूल होने पर कन्याओ के माता-पिता स्वतः ही प्रसन्न होकर कन्यादान के लिये तैयार हो जायेंगे और दसो कन्याये भी स्वत ही इनकी अनुरागिणी बन जायेगी । इससे गुणधारण और दसो कन्याओ के मध्य अकृत्रिम प्रेम होगा । ऐसा स्वाभाविक प्रेम-बन्ध अत्यन्त सुदृढ होगा और किसी के तोड़ने से नही टूटेगा ।

कन्दमुनि—भगवन् ! इसमे कहने की बात ही क्या है ? आपके वचनो का यथार्थत. पालन कर और सद्गुणो का अभ्यास कर महाराज गुणधारण नाम को सार्थक करेंगे । वे आपकी आज्ञानुसार ही करेंगे । नाथ ! आप केवल विशेषरूप से यह आदेश दें कि उन कन्याओ की प्राप्ति के लिये कौन से सदगुण सतत अनुशीलन करने योग्य है ?

अनुशीलनीय गुण

आचार्य—आर्य ! सुनो—

१. क्षान्ति कन्या को प्राप्त करने के इच्छुक को सभी प्राणियो से मैत्री रखनी चाहिये । अन्यो द्वारा किये गये पराभव को सहन करना चाहिये । उसके द्वारा पर-प्रीति का अनुमोदन करना चाहिये । पर-प्रीति के सपादन से आत्मा पर अनुग्रह होता है, ऐसा समझना । आत्मा का पराभव करने से दुर्गति प्राप्त होती है, अत ऐसी आत्मा की निन्दा करना । जो मुक्तात्मा दूसरो को कभी क्रोधित नही करते, वस्तुतः वे धन्य हैं, फलत उनकी प्रशंसा करना । हमारा तिरस्कार करने वाले हमारी कर्म-निर्जरा के हेतु है, अत उन्हे हितकारी समझना । ससार को असार बताने वाले को गुरु-भाव से स्वीकार करना और सदा अपने अन्त करण को निश्चल/स्थिर बनाना ।

२ दया कन्या को प्राप्त करने के अभिलाषी को किसी भी प्राणी को लेशमात्र भी सन्ताप नही पहुँचाना चाहिये, सभी प्राणियो के प्रति बन्धु-भाव का

* पृष्ठ ७१७

व्यवहार करना चाहिये और परोपकार मे प्रवृत्ति करनी चाहिये। दु:ख मे पड़े प्राणियो के प्रति उपेक्षा नही रखनी चाहिये और समस्त जगत के प्राणियो के प्रति आह्लादकारी भावो को धारण करना चाहिये।

३. हे आर्य! मृदुता कन्या को प्राप्त करने के लिये जातिमद, कुलाभिमान, बलाभिमान, रूपगर्व, तपगर्व, धनगर्व, श्रुत-अहकार, लाभमद, और अन्य के प्रति प्रेम रखने के मद/अभिमान का त्याग करना चाहिये। नम्रता धारण करनी चाहिये, विनय का अभ्यास करना चाहिये तथा अपने हृदय को नवनीत-पिण्ड जैसा मृदु बना लेना चाहिये।

४. सत्यता कन्या की प्राप्ति करने के लिये दूसरो का मर्मोद्घाटन नही करना चाहिये, चुगली नही करनी चाहिये, निन्दा नही करनी चाहिये, कटु भाषण का त्याग करना चाहिये, कपटपूर्ण वक्रोक्ति छोड देनी चाहिये, परिहास (हँसी-मजाक) का त्याग करना चाहिये, असत्य या अर्धसत्य का त्याग करना चाहिये, वाचालता का त्याग करना चाहिये, अतिशयोक्ति रहित यथार्थता का उद्घाटन करना तथा सदा सत्य, प्रिय और मृदु बोलने का अभ्यास करना चाहिये। उक्त सद्गुण अनुशीलक के प्रति सत्यता स्वयमेव स्वत ही अनुरागिणी बन जाती है।

५. ऋजुता की प्राप्ति के लिये कुटिलता का त्याग करना चाहिये, सर्वत्र सरल स्वभाव रखना चाहिये, दूसरो को ठगने की प्रवृत्ति छोड़नी चाहिये, मन को विशुद्ध रखना चाहिये, अपना व्यवहार सदा स्पष्ट रखना चाहिये,* विचारो मे सदा उच्चता रखनी चाहिये और अपने अन्त करण को सदा दण्ड जैसा सीधा रखना चाहिये। ऐसा करने से ऋजुता स्वत ही अनुरागिणी बन जाती है।

६. अचौर्यता कन्या की कामना करने वाले को पर-पीडन से डरना चाहिये, परद्रोह-बुद्धि का त्याग करना चाहिये, पर-धन-हरण-कामना का त्याग करना चाहिये। सदा यह लक्ष्य मे रखना चाहिये कि पर-धन के अपहरण से कितनी निन्दा होती है, कितनी त्रास/पीडा होती है, कितनी दुर्गति होती है, अत: चोरी का सर्वथा त्याग करने से अचौर्यता स्वयमेव अनुरागवती होकर वरण करती है।

७. हे आर्य! मुक्तता को प्राप्त करने के लिये विवेक को आत्ममय करना चाहिये, आत्मा को बाह्य और अन्तरग परिग्रह से अलग देखना चाहिये, परिग्रह प्राप्त करने की इच्छा का दमन करना चाहिये। जैसे पानी मे रहकर भी कमल पानी से अलग रहता है वैसे ही अपने अन्त करण को सदा अर्थ और काम से अलग रखना चाहिये।

८ हे कन्दमुनि! ब्रह्मरति की प्राप्ति के लिये सुर-नर-तिर्यञ्च की सभी स्त्रियो को माता के समान समझना चाहिये। जहाँ वे रहती हों वहाँ नही रहना चाहिये, स्त्री-कथा नही करनी चाहिये, उनकी शय्या पर बैठना नही चाहिये, उनके

---

* पृष्ठ ७१८

शरीर के अंगोंपांगो को अनिमेष दृष्टि से टकटकी लगाकर नही देखना चाहिये, जहाँ युगल रति-क्रिया कर रहे हो ऐसे स्थानो के निकट मे नही ठहरना चाहिये, पहले किये गये भोग-विलास का स्मरण नही करना चाहिये, गरिष्ठ और चटपटा भोजन नही करना चाहिये, प्रमाण से अधिक भोजन नही करना चाहिये, शरीर-शृ गार नही करना चाहिये और रति-अभिलाषा का सर्वथा दमन कर देना चाहिये ।

९. विद्या कन्या के अभिलाषिक को यह सोचना चाहिये कि सब पुद्गल द्रव्य, देह, धन, विषय आदि अनित्य हैं, शरीर अपवित्र पदार्थों से भरा है, अन्तत ये सभी दु ख-स्वरूप हैं और आत्मा पुद्गल से भिन्न स्वभाव वाली है । अतएव सब प्रकार के कुतर्क-जालो को तहस-नहस कर देना चाहिये और वास्तविक वस्तु-तत्त्व पर पूर्णरूपेण चिन्तन-मनन करना चाहिये । ऐसे सद्गुण-धारक को सद्बोध स्वय बुलाकर सम्यग्दर्शन की आत्मजा विद्या को प्रदान करता है ।

१०. निरीहता कन्या के इच्छुक को यह सोचना चाहिये कि इच्छाये चित्त-संताप को बढ़ाने वाली हैं । भोग-अभिलाषा मन को उद्वेग देने वाली है । जन्म मृत्यु के लिये ही होता है । प्रिय का सयोग भी वियोग के लिये ही होता है । रेशम का कीडा जैसे अपने शरीर में से रेशम के तन्तु निकाल कर स्वय ही उसमे बँध जाता है वैसे ही प्राणी अपने संसार-विस्तार मे स्वय ही निविड बन्धनो मे बँध जाता है । वस्तुओ के सग्रह करने की प्रवृत्ति क्लेश को बढाने वाली है । सर्व प्रकार के सग एव सम्बन्ध उद्विग्नता बढाने वाले हैं, प्रवृत्ति दु ख-रूप है और निवृत्ति ही सुख-स्वरूप है । ऐसे विचार निरन्तर करते रहने चाहिये । ऐसे विचारक के प्रति निरीहता कन्या प्रगाढानुराग धारण करती है ।

हे राजन् ! उपर्युक्त सभी सद्गुणो का अभ्यास तुझे निरन्तर करना चाहिये जिससे वे दस कन्याएँ तुझे प्राप्त हो सकें । ऐसा करते हुए योग्य अवसर के प्राप्त होने पर कर्मपरिणाम महाराज जब चारित्रधर्मराज को सेना के साथ तेरे पास भेजेंगे तब उस सेना के प्रत्येक योद्धा मे जो-जो सद्गुण हैं उनका अभ्यास तुझे करना होगा और उन्हे अपने जीवन मे उतारना होगा, जिससे उन सब का अनुराग तुम्हारे प्रति आकर्षित हो । फिर तो वे स्वामी-भक्त सुभट महामोह की सेना को शीघ्र मार भगायेंगे ।* इस प्रकार तुझे भावराज्य की प्राप्ति होने पर तुम अपने स्वय के बल से भाव-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे और इन दस कन्याओ के साथ आनन्द-सुख भोगते हुए अनन्त सुख को प्राप्त करोगे । अतएव तुम्हे उन उपर्युक्त समस्त सद्गुणो का अनुष्ठान करना चाहिये ।

लग्न सम्बन्धी उपाय-चिन्तन

कन्दमुनि—गुरुदेव ! गुणधारण राजा की यह अभिलाषा कितने समय मे पूर्ण होगी ?

---

* पृष्ठ ७११

आचार्य—मात्र छः महीनो मे ।

गुणधारण—नाथ ! शीघ्रता कीजिये । मेरा मन प्रव्रज्या (दीक्षा) लेने के लिये अत्यधिक उतावला हो रहा है । मुझे तो अभी दीक्षा दीजिये । छ मास का समय तो अत्यन्त लम्बा है । मेरे लिये इतनी प्रतीक्षा करना बहुत कठिन है । कृपया अब अधिक विलम्ब मत कीजिये ।

आचार्य—राजन् ! शीघ्रता व्यर्थ है । जिन सद्‌गुणो का अनुष्ठान/आचरण करने के लिये अभी मैंने कहा है, वे सद्‌गुण ही परमार्थ से दीक्षा है । द्रव्यलिग (साधु का वेष) तो तुमने पहले भी अनन्त वार लिया है, पर सद्‌गुणो का आचरण भली प्रकार नही करने से, भावलिंग न होने से उस वेष से तुम्हारा कोई वास्तविक विकास न हो सका, तुम कोई विशिष्ट गुणो का सम्पादन नही कर सके । अत. पहले मेरे द्वारा उपदिष्ट इन सद्‌गुणो का अनुशीलन करो, फिर दीक्षा लेना ।

कन्दमुनि—गुरुदेव ! दस कन्याओ मे से पहले किससे और वाद मे किससे लग्न होगा ?

आचार्य—आर्य ! गुणधारण राजा जव मेरे द्वारा उपदिष्ट सद्‌गुणो का अनुशीलन और आचरण करेगा तव थोडे समय वाद सद्‌बोध मन्त्री अपनी कन्या विद्या को लेकर राजा के पास आयेगा और विद्या का लग्न राजा से करेगा । फिर वह राजा के पास ही रहेगा । यह मन्त्री वहुत ही कुशल, अनुभवी और अवसर का जानकार है । वह इतना विश्वसनीय है कि उसके रहते हुए हमारे जैसो को उपदेश देने की आवश्यकता ही नही रहेगी । अत· उसके आने के पश्चात् वह स्वय ही सव कुछ वता देगा । राजा गुणधारण को तो मात्र उसके परामर्श को प्रमाणीभूत मानकर उसके अनुसार कार्य करते रहना होगा ।

गुणधारण—भगवन् ! आपकी महान कृपा । अव मैं आपके निदश की प्रतीक्षा करूँगा । तत्पश्चात् अपने परिवार और सेवको सहित आचार्य भगवान् को वन्दन कर मैं वापस अपने नगर मे लौटा आया ।

८. विद्या से लग्न : अन्तरंग युद्ध

विद्या से लग्न

मैं केवली भगवान् निर्मलाचार्य के आदेशानुसार उच्च सद्गुणो का अभ्यास और भगवत् पर्युपासना करता हुआ अपना समय व्यतीत करने लगा । अन्यदा उच्च भावनाओ का चिन्तन करते-करते एक समय मुझे नीद आ गई । नीद से आँख खुलने पर भी वही भावना मन मे बसी हुई थी जिसका विचार करते-करते नीद लग गई थी, अत. मेरी भावना प्रबलता से बढती गई और वह गाढतर होती गई । जब थोड़ी रात बाकी रह गई तो मुझे अत्यन्त प्रमोद हुआ । मैं चकित होकर इधर-उधर देख ही रहा था कि इतने मे सद्बोध मन्त्री विद्याकुमारी को साथ लेकर मेरे समीप आ पहुँचे । मैं विस्मित दृष्टि से उनको देखता रहा ।

मैंने सद्बोध के समीप विद्या को देखा कि वह कुमारी नेत्रो को आनन्द-दायिनी, सर्व अवयवो से सुन्दर, आस्तिक्य रूपी सुन्दर मुख वाली, उज्ज्वल एव निर्मल नेत्रो वाली, तत्त्वागम और सवेगरूपी उरोजो वाली तथा प्रशम रूपी मनोहर नितम्ब वाली थी । वह स्पृहणीय, सर्वगुण-सम्पन्न और चित्त को निर्वाण (शान्ति) प्राप्त कराने वाली थी । मैं एकाग्र दृष्टि से उस कुमारी विद्या को पर्याप्त समय तक* देखता रहा ।

उसी रात्रि को उसी समय सद्बोध मन्त्री ने सदागम आदि की साक्षी मे पवित्र विद्या का लग्न मुझ से कर दिया । सब को अत्यन्त आनन्द हुआ । इस प्रकार वह रात्रि आनन्द से पूर्ण हुई । [३१३-३१६]

प्रात काल होते ही मैं उठा और अपने परिवार के साथ आचार्यश्री के पास गया और उनको तथा अन्य सभी साधुगणो को वन्दन किया । फिर विनयपूर्वक हाथ जोडकर निर्मलाचार्य को रात्रि का पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और आचार्यश्री से पूछा—भगवन् ! रात को मुझे ऐसी कौनसी अत्यन्त सुन्दर और उच्च भावना हुई कि जिससे मेरा चित्त हर्षोल्लास से भर गया ? [३१७-३१९]

आचार्य—राजन् ! सुनो, कर्मपरिणाम राजा अभी तुम्हारे सद्गुणो से तुम पर प्रसन्न हो गया है । अत वह स्वय सद्बोध के पास गया और उसे प्रोत्साहित किया कि वह अपनी कन्या विद्या को लेकर तुम्हारे पास जावे और विद्या का लग्न तुम से करदे । तव मन्त्री ने चारित्रधर्मराज आदि से परामर्श किया और विद्या को लेकर तुम्हारे पास आने के लिये प्रस्थान कर दिया [३२०-३२२]

---

* पृष्ठ ७२०

महामोहराज की सेना में खलबली : युद्ध

इस समाचार को सुनते ही महामोह आदि शत्रुओ मे खलबली मच गई। पापोदय की अध्यक्षता मे वे इस पर विचार करने लगे।

विषयाभिलाष बोला—यदि हत्यारा सद्बोध संसारी जीव के पास पहुँच गया तो समझ लो कि हम सब बे-मौत मर गये। इसलिये हम सब को मिलकर, उसके मार्ग को रोक कर यथाशक्य उसके वहाँ पहुँचने मे बाधा डालनी चाहिये।

उत्तर मे पापोदय ने कहा—आर्य! अभी जब कि हमारे स्वामी कर्मपरिणाम महाराजा स्वय उनके पक्ष मे है तब हम क्या कर सकते है? जब तक वे हमारे पक्ष मे थे तब तक हम प्रबल थे। महाराजा के दोनो सेनाओ के प्रति तटस्थ रहने पर भी हम उनसे युद्ध करते है और वह हमारा कर्त्तव्य भी है। पर, अभी तो सद्बोध कर्मपरिणाम महाराजा की आज्ञा से ही संसारी जीव के पास शीघ्रता से जा रहा है, तब उसे रोकना कैसे उचित हो सकता है? इस समय महाराजा का मेरे पास युद्ध करने का कोई आदेश भी नहीं है, इसीलिये उन्होने हमे उससे दूर बिठा रखा है। ऐसी परिस्थिति मे अभी सद्बोध को उसके पास जाने देना चाहिये और हमे योग्य अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये। अवसर आने पर हम उसे समझ लेंगे। [३२३–३३१]

यह सुनकर ज्ञानसंवरण राजा के होठ क्रोध से फडक उठे। वह शीघ्र युद्ध के लिए जाने को उद्यत हुआ और कडक कर बोला—यदि मेरे जीवित रहते मेरा प्रतिपक्षी सद्बोध बिना किसी रुकावट के ससारी जीव के पास चला जाता है, तो मेरा जीना व्यर्थ है। इस प्रकार भयभीत होने से तो मेरा जन्म मात्र माता को क्लेश देने वाला ही माना जायगा।* तुम लोग भय से शिथिल पड गये हो तो तुम्हारी इच्छा, आओ या न आओ, मैं तो यह चला उसे रोकने। [३३२–३३४]

लज्जा के मारे पापोदय आदि भी ज्ञानसंवरण के पीछे-पीछे चले और सब ने जाकर सद्बोध मन्त्री के मार्ग को रोक लिया, पर उनके मन मे यह शका थी कि न जाने अब क्या होगा? "अनैक्य और संशय विनाश के कारण होते हैं" यह तो जगत् प्रसिद्ध ही है। [३३५–३३६]

इधर चारित्रधर्मराज की सेना भी सद्बोध मन्त्री के साथ चलते हुए उस स्थान पर पहुँच गई जहाँ ज्ञानसवरण और पापोदय आदि अपनी सेना के साथ उसका मार्ग रोके खडे थे। दोनो सेनायें परस्पर एक-दूसरे को ललकारने लगी, सिंहनाद/गर्जना करने लगी, युद्ध-वाद्य बजने लगे और उनमे भीषण युद्ध छिड़ गया। एक तरफ अत्यन्त श्वेत शख के समान सुन्दर सफेद रग की सेना थी तो दूसरी तरफ काले भौंरो के समान कृष्ण रग वाली सेना थी। दोनो का परस्पर युद्ध ऐसा लग

---

* पृष्ठ ७२१

रहा था मानो गगा और यमुना का सगम हो रहा हो। रथी योद्धा रथ वालों से, हाथी वाले हाथियो की घनघटा के समक्ष, घोडे वाले घोडे वालों से और पदाति पैदल सैनिको से लड रहे थे। युद्ध मे सैकडो सैनिक जमीन पर गिर कर लोट रहे थे। प्रत्यक्ष मे योगियो को भी विस्मित करने वाला, अत्यन्त उद्‌भट पुरुषार्थ को प्रकट करने वाला और अनेक योद्धाओ से सकीर्ण दोनो सेनाओ का तुमुल युद्ध चल रहा था। [३३७-३४१]

दोनो सेनाओ के भीषण और सशयकारक इस भयकर युद्ध के समाचार सुनकर कर्मपरिणाम महाराजा इस विकट परिस्थिति मे मन ही मन मे सोचने लगे कि, अरे इस समय मुझे प्रत्यक्षत. (खुल्लमखुल्ला) किसी एक सेना का पक्ष नही लेना चाहिये। क्योकि, इससे मनों मे भेद की रेखा खिच जायेगी। मुझे तो दोनो ही सेना वाले तटस्थ मानते है, अत प्रकट रूप से एक का पक्ष लेने से दूसरे रुष्ट हो जायेंगे। मेरा प्रकट पक्षपात देखकर महामोहादि मेरे मित्र मुझ से अलग हो जायेंगे। असमय मे ऐसी विकट परिस्थिति अपने हाथो उत्पन्न करना युक्तिसगत नही है। यद्यपि अभी मुझे चारित्रधर्मराज की महाबली सेना प्रिय लग रही है और ससारी जीव के सद्‌गुण भी अच्छे लग रहे हैं तथापि ससारी जीव का क्या विश्वास ? वह फिर दोषो की तरफ झुक सकता है और तब जिन पर मैं सदा से आश्रित हूँ उन मेरे बन्धु महामोहादि के बिना मेरी क्या गति होगी ? अत. मेरे लिये अभी यही हितकारक होगा कि अभी मैं प्रच्छन्न रूप से ही चारित्रधर्मराज की सेना को पुष्ट करूँ, जिससे यदि पापोदय आदि उससे पराजित हो जाये तब भी भविष्य मे महामोहादि मेरे बन्धु मुझ से विरुद्ध नही होगे। इस प्रकार मन मे सम्यक् रीत्या निश्चय कर कर्मपरिणाम ने गुप्तरूप से तुम्हारे पास आकर मदुपदिष्ट तुम्हारी भावनाओ मे वृद्धि की। [३४२-३४६]

हे गुणधारण ! जब तुम इस प्रकार उच्चतर भावना पर आरूढ थे तभी सद्‌बोध मन्त्री की सेना प्रबल हो गई। कहा भी है कि "मणि, मन्त्र, औषधि और भावना की अचिन्त्य शक्ति * अद्‌भुत/आश्चर्यकारक होती है।" जैसे-जैसे तेरी विशुद्ध एव उच्च भावना बढती गई वैसे-वैसे युद्ध में महामोहादि स्वत. ही निर्बल होते गये, हारते गये। क्षणभर मे सद्‌बोध की सेना का प्राबल्य बढता गया और उसने पापोदय की सेना को जीत लिया। महामोहादि समस्त शत्रुओ को लहूलुहान कर दिया और ज्ञानसवरण राजा को विशेष रूप से चूर-चूर कर दिया। पापोदय आदि निस्तेज और निष्पन्द हो गये, ठण्डे पड़ गये और सद्‌बोध जीतकर विद्या सहित तुम्हारे निकट आने लगा। उस समय हे राजन् ! युद्ध का शुभ परिणाम देखकर तू भी सद्‌बोध मन्त्री के निकट गया और तेरे मन मे अत्यधिक हर्षोल्लास हुआ। फिर तो सद्‌बोध मन्त्री ने आकर विद्या का लग्न तुझ से कर ही दिया।

* पृष्ठ ७२२

इसके पश्चात् की घटनाये तो राजन् ! तुम जानते ही हो। कल रात तेरी भावनाओ मे जो वृद्धि हुई और हर्षोल्लास हुआ उसका कारण अब तुम्हारी समझ मे नि सन्देह रूप से आ गया होगा। [३५०-३५८]

अन्तरंग शत्रुओं की वर्तमान और भविष्य की स्थिति

गुणधारण--भगवन् ! पापोदय, ज्ञानसवरण, महामोहादि शत्रु अब क्या कर रहे हैं ?

आचार्य—अभी वे मात्र समय व्यतीत कर रहे है और अवसर की ताक मे बैठे है। जो खिचकर के बाहर आये वे नष्ट हो गये (उदय मे आये वे भोग कर समाप्त हो गये), जो तेरी चित्तवृत्ति मे निर्बल होकर लुक-छिपकर बैठे हैं (उपशम-भाव को प्राप्त है) वे अवसर की प्रतीक्षा मे हैं और अवसर आने पर ये मात्सर्यग्रस्त सभी सगठित होकर भीषण युद्ध के लिये एकदम तैयार हो जायेंगे। हे महाराज ! ऐसा अवसर आने पर तुम्हे सद्बोध मन्त्री के परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिये। उसके सहयोग से चारित्रधर्मराज के एक-एक योद्धा को लेकर तुझे प्रतिपक्षी सेना के एक-एक योद्धा पर भिन्न-भिन्न ढग से प्रहार कर उन्हे पराजित करना चाहिये। [३५९-३६२]

गुणधारण—जैसी भगवान् की आज्ञा।

इसके बाद मासकल्प (शेषकाल) समाप्त होने पर आचार्य प्रवर अन्यत्र विहार कर गये।

---
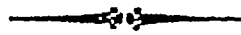
९. नौ कन्याओं से विवाह : उत्थान

धर्म, शुक्ल पुरुष और पीतादि परिचारिकायें

आचार्यश्री के उपदेशानुसार मैं विशेप रूप से अनुष्ठान करने लगा जिससे मेरा अन्त करण अधिकाधिक शुद्ध होता गया। मेरा शरीर भी कसौटी पर चढा और सद्बोध मन्त्री को मैंने अपनी चित्तवृत्ति मे प्रवेश करवाया।

फिर एक दिन मन्त्री ने मुझे समाधि नामक दो पुरुष बताये। उनका रग श्वेत था। वे अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवान दर्शनीय और सुखदायी थे। उनका परिचय कराते हुए सद्बोध ने कहा—देव ! इन दोनो मे से एक का नाम धर्म और दूसरे का नाम शुक्ल है। समाधि इनका सामान्य नाम (गोत्र) है। ये दोनो तुम्हारे अन्तरग

मे प्रवेश करने वाले हैं, अत. इनका पूर्ण आदर-सत्कार करना चाहिये। मैंने मन्त्री के कथन को स्वीकार किया।

तत्पश्चात् मंत्री ने विद्युत (तेजस्) पद्म और स्फटिक (शुक्ल) वर्ण की सुन्दर आकृति वाली सुख-स्वरूपी तीन लेश्या गोत्रीय स्त्रियो को बताया। इनके नाम पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या बताये। इनका परिचय कराते हुए मन्त्री ने कहा—

देव ! ये तीनो स्त्रियाँ धर्म की सेविकाये है और शुक्ल लेश्या विशेष रूप से शुक्लध्यान की परिपोषक है। ये तीनो अत्यन्त उपयोगी, योग्य और लाभदायक है, [३६३]* अतः इनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार करे। इनके बिना तुम्हारे उपकारी धर्म और शुक्ल दोनों पुरुष तुम्हारे पास नही रह पायेगे। तुम्हे जिस राज्य की प्राप्ति करनी है उसमे मुख्य सहायक ये दोनो पुरुष हैं, अतः तुम्हे इन तीनो स्त्रियो का अच्छी तरह पोषण करना चाहिये। मैंने कहा—बहुत अच्छा, मै ऐसा ही करूँगा।

वैवाहिक तैयारियाँ

अब मै चित्तवृत्ति मे प्रवेश करने लगा। उपर्युक्त तीनो लेश्याओ के निर्देशानुसार प्रवृत्ति करने लगा। विद्या के साथ विलास करने लगा। सद्बोध के साथ बार-बार मन्त्रणा करने लगा और सदागम, सम्यग्दर्शन तथा गृहिधर्म का सन्मान करने लगा। इस प्रकार करते हुए मुझे आचार्यश्री के विहार के बाद लगभग पाँच माह बीत गये। अन्त मे मेरे सद्गुणो से कर्मपरिणाम राजा मेरे अनुकूल हुए। फिर वे स्वय चित्तसौन्दर्य आदि नगरो मे गये और शुभपरिणाम आदि राजाओ को मेरे अनुकूल कर उन्हे अपनी कन्याओ का लग्न मेरे साथ करने को प्रेरित किया। अनन्तर सेनापति पुण्योदय को आगे कर कालपरिणति आदि अपने परिवार को लेकर मेरे पास आये। कन्याओ से विवाह के लिये उन्होंने मुझे मेरी चित्तवृत्ति मे प्रवेश करवाया। तदनन्तर कर्मपरिणाम महाराज ने शुभपरिणाम आदि चारो राजाओ को सन्देश भेजा कि वे सभी सात्विकमानसपुर मे आये हुए विवेक पर्वत के शिखर पर स्थित जैनपुर मे आ जाये। चारो राजा अपने परिवार सहित वहाँ आ पहुँचे। सब का आदर-सत्कार किया गया और सब ने मिलकर लग्न का दिन निश्चित किया।

महामोह की सेना में घबराहट

इधर महामोह की सेना एकत्र हुई और सब मिलकर इस विषय पर विचार करने लगे। विषयाभिलाष मन्त्री बोला—देव ! यदि ससारी जीव क्षान्ति आदि नौ कन्याओ से विवाह कर लेगा तो हम सब की तो मौत ही है, अतः अब हमे इसकी उपेक्षा नही करनी चाहिये। विषाद का त्याग कर साहसपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। कहा भी है कि .—

---

* पृष्ठ ७२३

"जब तक कार्य का अन्त दिखाई न दे तब तक भले ही डर लगता रहे, किन्तु प्रयोजन के प्राप्त होने पर तो निर्भय होकर प्रहार करना चाहिये।" [३६४]

महामोहराज ने मन्त्री के कथन का अनुमोदन किया, सभी योद्धाओं ने उसका समर्थन किया, युद्ध की सामग्री तैयार की गई और सेना को तैयार रहने की आज्ञा दी गई। थोडे ही समय मे सारा सैन्य सन्नद्ध होकर आ पहुँचा। सेना मे युद्धोत्साह था, किन्तु सब के मन मे यह भय अवश्य था कि 'महाराजा कर्मपरिणाम अभी उनके विरुद्ध हैं' अतः वे सब व्याकुल भी हो रहे थे।

भवितव्यता से परामर्श

अन्त में विचार कर वे देवी भवितव्यता के पास आये और उससे सविनय पूछा—

हे भगवति! इस परिस्थिति मे हमे क्या करना चाहिये?

भवितव्यता ने कहा—भद्रो! अभी युद्ध का समय नही है। अभी मेरा आर्यपुत्र (पति) सुधर गया है, आदरणीय बन गया है। कर्मपरिणाम महाराज के अभी उसके प्रति उच्च विचार हैं। फिर शुभपरिणाम आदि बडे-बड़े राजा भी उसके पक्ष मे हैं। दोहरी मदद और सहयोग से मेरे आर्यपुत्र ससारी जीव को अपने सैन्य-बल के निरीक्षण की उत्सुकता जाग्रत हुई है। ऐसे संयोगों मे महाराजा उसे उसका सैन्यबल अवश्य दिखायेंगे और वे आर्यपुत्र उसका पोषण भी अवश्य करेंगे। अतः यदि तुम अभी * युद्ध करोगे तो तुम सब का प्रलय एव नाश हो जायेगा। अत. अभी तुम सब चुपचाप छिपकर योग्य अवसर की प्रतीक्षा करो। जब अवसर आयेगा तब मैं स्वय तुम्हे सूचित कर दूगी। तुम तो जानते ही हो कि मैं सदाकाल तुम सब के कार्यों का विशेष ध्यान रखती हूँ। फिर तुम्हे इस विषय में चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है?

भवितव्यता के परामर्श से उन्होने प्रकट-युद्ध का विचार छोड दिया, किन्तु अपनी-अपनी योगशक्ति से मेरी चितवृत्ति मे छिप कर बैठ गये।

मोह-कल्लोल और सद्बोध

उनके प्रभाव से मेरे मन के घोडे दौडने लगे। आचार्यश्री ने कहा था कि "इन कन्याओ से विवाह के पश्चात् ही वे तुझे दीक्षा देगे" पर, यह दीक्षा तो बाहुओं से स्वयम्भूरमण समुद्र को तैरने जैसी दुष्कर है। मरण पर्यन्त साधुओं की अति कठिन नैष्ठिक क्रियाओ का पालन करना होगा। शरीर मे रोगादि आतंको की भी सम्भावना है। फिर सुख से पाले पोषे गये मेरे इस शरीर से यह सब कैसे होगा? दीर्घकाल तक मे रूखा-सूखा भोजन कैसे करूगा? कातरहृदया बेचारी मदनमजरी अभी जवान है, उसे जीवन-पर्यन्त मेरा वियोग सहना अत्यधिक कष्टदायक होगा। यह सब सोचते हुए मेरा चित्त थोड़ा विचलित हुआ।

---

* पृष्ठ ७२४

पुन मैंने सोचा—अभी इन कन्याओं का विवाह स्थगित कर दूँ। अभी क्यो न जवानी का मजा लूट लूँ ? ये कन्याये तो मेरे हाथ मे ही हैं, यौवन ढल जाने पर इनसे लग्न कर दीक्षा ले लूगा।

सद्वोध मन्त्री की अनुपस्थिति मे मेरे मन के घोडे दौड ही रहे थे कि तभी मन्त्री आ गये। मैंने अपना अभिप्राय मन्त्री को सुनाया।

सद्वोध मन्त्री वोले—देव ! आपने यह ठीक नही सोचा। यह आत्महित का क्षतिकारक, परमसुख का वाधक और आपके अज्ञान का सूचक है। आप जैसे व्यक्ति के ऐसे विचार स्वाभाविक नही है। यह तो दुरात्मा महामोहादि का विलास है। गुप्त धन को हस्तगत करने के समय जैसे वेताल विघ्न डालने के लिये आकर खडे हो जाते हैं वैसे ही चित्तवृत्ति मे छुपे हुए वे दुष्ट आपकी सिद्धि मे विघ्न डालने के लिये ठीक अवसर पर आ पहुँचे हैं, पर आप अपनी आत्मा को उनसे न ठगने दे।

मन्त्री की बात मुझे जँच गई। मैंने पूछा—आर्य ! फिर मुझे क्या करना चाहिये ?

सद्वोध—आपको अपने बल से ही उन्हे हटाना चाहिये।

गुणधारण—मेरा कौनसा बल (सैन्यबल) है ? बतलाइये।

सद्वोध— मैं तुम्हे तुम्हारा बल दिखलाने को तैयार हूँ किन्तु यह अधिकार कर्मपरिणाम महाराजा को ही है।

कर्मपरिणाम महाराजा वहाँ उपस्थित ही थे। उपर्युक्त बात-चीत सुनकर उन्होने कहा—आर्य ! मेरी आज्ञा से तुम्ही इन्हे इनके बल को बतला दो। परमार्थ से वह मेरे द्वारा ही बताया गया समझा जायेगा।

सद्बोध ने महाराजा की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

स्वबल-दर्शन

तब सद्वोध मन्त्री ने मुझे चित्तसमाधान मण्डप मे प्रवेश करवाया।* वहाँ विद्यमान चारित्रधर्मराज और उसकी सेना को मुझे दिखाया। उन्होने मुझे प्रणाम किया और मैंने भी प्रत्येक का सन्मान किया। इस सैन्य-निरीक्षण के समय मै उच्चतम पद पर आसीन था और वे सब मेरे अधीनस्थ सैनिक थे। उन्होने तुरन्त चतुरग सेना को तैयार किया और शत्रुओ को मार भगाने के लिये व्यूह रचना की।

उनके रण उल्लास को देखकर मेरे अधीनस्थ राजाओ ने भी उन सब को सन्मानित कर प्रसन्न किया। [३६५]

महामोहादि शत्रु दूर से ही इस तैयारी को देखकर भयभीत एव पागल हो गये और पापोदय को आगे कर वे सब मृत्यु के डर से भाग खड़े हुए। तब उनके

* पृष्ठ ७२५

निवास स्थान को तोडकर, चित्तवृत्ति अटवी को स्वच्छ किया गया । शत्रुओ के नाश और विजय के उपलक्ष मे उन्हे जयध्वज प्रदान किया गया । भागे हुए शत्रुओ मे से कुछ का नाश/क्षय हुआ और कुछ बगुले की तरह चुपचाप छुपकर (उपशान्त होकर) बैठ गये । [३६६–३६८]

लग्न-समारम्भ

तदनन्तर अत्यन्त आनन्द पूर्वक मेरा अतिमनोरम विवाह-महोत्सव प्रारम्भ हुआ । मेरे इस उत्सव को देखकर मेरे अन्तरग बन्धु बहुत हर्षित हुए । पहले अष्ट मातृका की स्थापना की गई और उनकी विधिवत् पूजा की गई । हे भद्रे ! तब सद्बोध मन्त्री ने उन आठ माताओ की अलग-अलग क्या शक्ति है ? इसका निम्नप्रकार से वर्णन किया—

१. जब मुनि लोग जैनपुर मे चलते है तब इस माता के प्रभाव से ३½ हाथ दूर तक दृष्टि रखकर चलते है, जिससे मार्ग मे किसी प्रकार का व्याक्षेप न हो और किसी जीव की विराधना न हो (ईर्या समिति) ।

२. यह माता अपने प्रभाव से मुनियो से सद्वाक्य, पवित्र वाक्य ही बुलवाती है । वे यथातथ्य, हितकारी और अत्यन्त सीमित शब्दो मे बोलते है (भाषा समिति) ।

३ तीसरी माता भोजन का समय होने पर मुनियो से सर्वप्रकार के दोष-रहित निर्दोप भोजन की शोध करवाती है और उसे सीमित मात्रा मे ही खाने की आज्ञा देती है (एपणा समिति) ।

४. चौथी माता के प्रभाव से मुनि लोग किसी पात्र आदि वस्तु को लेने या रखने के समय उसे अच्छी तरह देखकर, प्रमार्जित कर सावधानी से लेते या रखते है (आदानभाण्डमात्रनिक्षेपण समिति) ।

५ पाँचवी माता मुनियो से बचा हुआ आहार, मल, मूत्र आदि का त्याग करना हो तो पहले शुद्ध निर्जीव भूमि देखकर त्याग करवाती है, जिससे किसी जीव को त्रास न हो (परिष्ठापनिका समिति) ।

६ छठी माता के प्रभाव से साधुओ का मन निरन्तर आकुल-व्याकुलता से रहित रहता है । यदि उनके मन मे कोई दोष उत्पन्न हो गये हो तो इसके प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं (मनोगुप्ति) ।

७. यह माता अपने प्रभाव स साधुओ से कारणो के अभाव मे सर्वदा मौन धारण करवाती है । कारणवश बोलना आवश्यक हो तो वे दोषरहित और बहुत सक्षिप्त ही बोलते हैं (वचनगुप्ति) ।

८. आठवी माता के प्रभाव से साधु लोग प्रयोजन के अभाव मे अपने शरीर को कछुए की तरह संकुचित कर रखते हैं। कारणवश चलना-फिरना आवश्यक हो तो यह कायिक दोषो से बचाती है (कायगुप्ति)।

प्रथम दिन जैनपुर मे इन आठ मातृकाओ की स्थापना कर विधिपूर्वक पूजा की गई। [३६९–३८०]

पश्चात् चित्तसमाधान-मण्डप-स्थित निःस्पृहता वेदी को विशेष रूप से स्वच्छ कर सज्जित किया गया। चारित्रधर्मराज ने अपने तेज से वहाँ एक विस्तीर्ण अग्निकुण्ड निर्मित कर उसे प्रदीप्त किया। लग्न के समय की जाने वाली सभी यथोचित तैयारियाँ पूर्ण की गई।* फिर तेजस्, पद्म और शुक्ल लेश्याओ ने वधुओ के स्नान, विलेपन, वस्त्राभूषण आदि कार्य सानन्द सम्पन्न किया। इन्ही माताओ ने और मेरे सामन्तो तथा राजाओ ने मुझे भी स्नान, विलेपन आदि कराकर वस्त्राभूषण से सज्जित किया। [३८१–३८४]

तत्पश्चात् सानन्द लग्न विधि प्रारम्भ हुई। सद्बोध मन्त्री स्वय पुरोहित बने। उन्होने कर्म रूपी समिधा (लकडियो) को अग्नि में डालकर यज्ञ प्रारम्भ किया और इसमे सद्भावना रूपी आहुतिया देने लगे। अञ्जली भर-भर कर कुवासना रूपी लाजा को अग्निकुण्ड मे डालने लगे। सदागम स्वय ज्योतिषी बना और उसकी उपस्थिति मे वृष लग्न के अमुक अश मे मेरा क्षान्ति कन्या से पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। इस विवाह के होते ही शुभपरिणाम आदि राजा और निष्प्रकपता आदि रानियां अत्यन्त हर्षित और प्रमुदित हुये। फिर उसी वृष लग्न मे मेरा दया आदि आठ कन्याओ से विवाह सम्पन्न हुआ। फिर मैं जीववीर्य नामक अति विस्तृत सिंहासन पर अपनी सभी पत्नियो के साथ बैठा। चारित्रधर्मराज आदि सब को इस विवाह महोत्सव से अतिशय हर्ष हुआ और वे प्रमुदित होकर अनेक प्रकार का विलास करने लगे।

वैश्वानरादि उपशान्त

मेरा जब विद्या से परिणय हुआ था तभी से परमार्थत महामोह निर्बल हो गया था। पर, वह पूरे समुदाय की आत्मा था, सारभूत नेता था। कहावत है कि "रस्सी जल जाने पर भी उसका बट नही जाता" अत. जली हुई रस्सी के समान अभी भी वह मेरे समीप ही था। क्षान्ति आदि कन्याए वैश्वानर आदि शत्रुओ की प्रबल विरोधिनी होने से वे तो सब भागे ही, पर चारित्रधर्मराज ने तो पापोदय सहित महा-मोह की पूरी सेना को भगा दिया। महामोह छिपकर चुपचाप बैठा था, पर अब वह त्रस्त होकर हिंसा, वैश्वानर आदि नौ लोगो के साथ मुझ से बहुत दूर जा बैठा। मेरे शत्रु अभी पूर्ण नष्ट नही हुए थे, पर वे शान्त हो गये थे जिससे मुझे प्रमोद हुआ।

---

* पृष्ठ ७२६

अपनी दस श्रेष्ठ पत्नियो से आलिगित होकर, अपने सैन्य वल और परिवार से घिर कर अब मैं अन्तरग विलास मे उद्दाम लीला का आत्म-साक्षात्कार स्वय अनुभव करने लगा। इस आत्मिक सुख के अनुभव से अब मुझे निर्मलाचार्य के कथन की सत्यता पर पूर्ण विश्वास हुआ। [३८५-३९१]

अब शुभपरिणाम राजा और निष्प्रकपता रानी से उत्पन्न अन्य अनेक कन्याओ—धृति, श्रद्धा, मेधा, विविदिषा, सुखा, मैत्री, प्रमुदिता, उपेक्षा, विज्ञप्ति, करुणा आदि का विवाह भी मुझसे कर दिया गया।

इन सब सुभार्याओ के साथ अब मुझे जिस अत्यन्त आनन्द और अलौकिक रस का अनुभव हुआ वह अवर्णनीय था। मैंने सोचा कि निर्मलाचार्य ने पूर्व मे मुझे जिस सम्पूर्ण सुख के अनुभव की वात कही थी,* उसका साक्षात्कार अब मुझे हो रहा है। इस प्रकार मैं अब सप्रमोद नगर मे रहता हुआ प्रमोदातिरेक का अनुभव कर रहा था। इसी समय आचार्यश्री मुनिमण्डल सहित विहार करते हुए वापस सप्रमोदपुर आ पहुँचे और उसी आह्लाद मन्दिर उद्यान मे ठहरे। उनके आने के समाचार मिलते ही मै तुरन्त अत्यन्त आदरपूर्वक उद्यान मे गया और श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक वन्दन किया। [३९२-३९७]

द्रव्यतः मुनिवेषधारण

अपने दोनो हाथ जोडकर ललाट पर लगाते हुए, हे बहिन अगृहीतसकेता! मैंने आचार्यश्री से निवेदन किया—भगवन्! आपके आदेशानुसार अब तक मैंने समस्त कार्य पूर्ण कर लिये है, अत. हे नाथ! अब मुझे दीक्षित करने की कृपा करे।

आचार्य वोले—राजन्! तुम्हे भावदीक्षा तो स्वत ही प्राप्त हो गई है, अब क्या दीक्षित करे? विशेषत. जो श्रमण रूप मे अनुष्ठान करने का था उसे तो तुमने घर मे रहते हुए भी सम्पन्न कर ही लिया। वस्तुत तुम भावश्रमण तो बन ही गये। फिर भी विद्वान् लोक-व्यवहार का उल्लघन नही करते, अत हे नृपति! अब तुम्हे द्रव्यदीक्षा प्रदान करेगे। क्योकि, भावदीक्षा के साथ-साथ बाह्य वेष भी आत्मोन्नति का निमित्त कारण बनता है, अतएव तुम्हे द्रव्यदीक्षा भी प्रदान करते है। [३९८-४०३]

मैंने कहा—भगवान् की वहुत कृपा।

तत्पश्चात् आठ दिन तक जिन-पूजा, मुनिजनो की पूजा, नगरवासियो को आनन्दित और वन्धुवर्ग की सार-सभार करते हुए, याचको को इच्छानुसार दान देते हुए, अपने पुत्र जनतारण का राज्याभिषेक कर और तत्समयोचित समस्त कार्य सम्पन्न कर मैं मदनमजरी, कुलन्धर और प्रधान नागरिको के साथ निर्मलाचार्य के पास विधि-पूर्वक दीक्षित हुआ।

---

* पृष्ठ ७२७

शास्त्राभ्यास : अनशन

तदनन्तर मैने समस्त साधु-क्रियाओ का अभ्यास किया, सदागम का गाढ प्रेमी बना और उसके द्वारा उपदिष्ट ग्यारह अगशास्त्रो तथा कालिक और उत्कालिक सूत्रो का अध्ययन किया। सम्यग्दर्शन का अत्यन्त प्रेमी हुआ और चारित्रधर्मराज के प्रति मेरा प्रेम बढता ही गया। उसके सैन्य का निकटता से परिचय प्राप्त किया और सयम तथा तपयोग से उसका पोषण किया। प्रमत्तता नदी आदि शत्रुओ के क्रीडास्थलो को भग्न कर चित्तवृत्ति को निर्मल किया। इस प्रकार गुरु-चरणो की सेवा और मुनिचर्या का पालन करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। अन्त मे मैने सलेखना अगीकार कर अनशन किया। मेरी दिनचर्या को देखकर भवितव्यता मुझ पर प्रसन्न हुई और उसने मुझे दूसरी नवीन गुटिका देकर विबुधालय के कल्पातीत विभाग मे प्रथम ग्रैवेयक देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न किया।

वहाँ अत्यन्त मनोहर दिव्य पलग पर अतिसुन्दर मूल्यवान सुकोमल वस्त्र बिछा हुआ था। अत्यन्त निर्मल आकृति मे मैं वहाँ बहुत सुखपूर्वक रहा।* मैं प्रथम ग्रैवेयक मे तेईस सागरोपम तक रहा। वहाँ मेरा सम्पूर्ण जीवन सर्व प्रकार की विघ्न बाधाओ से रहित, शान्त और सुखानुभव पूर्ण बीता और मैंने सुखामृत का साक्षात् अनुभव किया। [४०४-४०५]

सिंहपुर में गंगाधर

हे भद्रे! मेरी पत्नी भवितव्यता के प्रभाव से तेईस सागरोपम के अन्त मे मनुजगति के ऐरावत विभाग मे सिहपुर नगर मे महेन्द्र क्षत्रिय की पत्नी वीणा की कुक्षि से मैं पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। यहाँ मेरा नाम गगाधर रखा गया। यहाँ मेरे पराक्रम की बहुत प्रसिद्धि हुई। [४०६-४०७]

योग्य उम्र के प्राप्त होने पर अच्छा यश प्राप्त करने के पश्चात् मुझ जाति-स्मरण ज्ञान हुआ। मैंने सुघोष नामक आत्मानुभवी आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और उनके सान्निध्य मे पूर्ववत् साधु की सभी क्रियाओ का अनुष्ठान किया। अन्त मे सलेखना/अनशन आदि किया। भवितव्यता के प्रभाव से यहाँ से मैं दूसरे ग्रैवेयक मे गया। [४०८-००९]

इस प्रकार अनुक्रम से फिर मनुष्य हुआ, दीक्षा ली, विधिपूर्वक पालन किया, अन्त मे सलेखना/अनशनादि पूर्वक तीसरे ग्रैवेयक मे गया। इस प्रकार पाँच बार मनुजगति मे भावदीक्षा ग्रहण कर उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ और पाँच बार ग्रैवेयक मे उत्तरोत्तर बढता हुआ गया। हे अगृहीतसकेता! इस प्रकार मेरी स्थिति प्रवर्धित होती गई। अन्तिम पाँचवे ग्रैवेयक मे मैं सत्ताईस सागरोपम काल तक रहा। वहाँ मुझे चित्त को नितान्त शान्त करने वाली, सुख-समूह को प्राप्त कराने वाली अतिसुन्दर और अत्यन्त पवित्र कल्याणमाला प्राप्त हुई। [४१०-४१२]

---

* पृष्ठ ७२८

१०. गौरव से पुनः अधःपतन

सिंह की दीक्षा

भवितव्यता के प्रभाव से मैं पाँचवे ग्रैवेयक से फिर छठी बार मनुज गति के धातकी-खण्ड-स्थित भरत क्षेत्र मे शखनगर मे महागिरि राजा की भद्रा रानी की कुक्षि से सुन्दर रूपवान पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुआ। यहाँ मेरा नाम सिह रखा गया। राजवश मे जन्म होने से मुझे भोग की सभी सुन्दर सामग्री यथेष्ट रूप मे प्राप्त हुई।

अनुक्रम से मैं युवावस्था को प्राप्त हुआ। हे सुलोचने! उस समय मैने धर्मबन्धु नामक विद्वान् मुनि के दर्शन किये। उनके उपदेश से मैने राज्य-वैभव का त्याग कर भागवती दीक्षा ग्रहण की। हे चारुगामिनि अगृहीतसकेता! इस बार मैंने साधुओ की सर्व क्रिया-कलापो का अभ्यास किया, चरण-करण क्रिया मे अच्छी तरह उद्युक्त हुआ, उग्र विहार किया और सद्भाव-पूर्वक सूत्र और अर्थ का अभ्यास करने का प्रयत्न किया। [४१३-४१६]

आचार्यपद-प्राप्ति . यश और सन्मान

थोडे ही समय मे मैंने द्वादशागी (बारह अगो) का अभ्यास कर लिया तथा मुझे चौदह पूर्व सहित द्वादशागी प्राप्त हो गई। सदागम मेरे पास अतिशय प्रेम-पूर्वक सगे भाई के समान रहने लगा। पहले भी मैंने अनेक बार बहुत ज्ञान प्राप्त किया था पर पूरे चौदह पूर्वो का ज्ञान कभी प्राप्त नही हुआ था। इस बार तो पूरे चौदह पूर्वो का विशिष्ट ज्ञान मैंने खेल ही खेल मे प्राप्त कर लिया। सदागम के सम्बन्ध से मुझे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ। [४१७-४१९]

मेरे गुरु धर्मबन्धु ने जब देखा कि मैंने सभी सूत्र-अर्थ का अभ्यास सम्यक् रीति से कर लिया है तब उन्होने मुझे श्री सघ के समक्ष आचार्य पद पर स्थापित कर दिया। उस समय अतिशय प्रमुदित होकर देव, दानव और मनुष्यो ने चमत्कार-पूर्ण महोत्सव किया। लोगो ने, देवताओ ने और गुरुजी ने भी मेरी श्लाघा/प्रशसा की कि 'अहा! इतनी छोटी उम्र मे इतना सारा ज्ञान ग्रहण किया, अत. तुम धन्य हो! तुम्हारा अवतार सफल है!' मेरे आचार्य-पद-महोत्सव पर लोकबन्धु जिनेश्वर

देव की वस्त्र, आभूषण, मालाओ से पूजा की गई और सम्पूर्ण सघ की भोजन से तथा वस्त्रादि की प्रभावना से सविधि पूजा की गई। [४२०–४२३]*

धीरे-धीरे मेरी ख्याति इतनी बढ गई कि सभी देव, मुनि और सज्जन पुरुष मेरे गुणो तथा मेरी ज्ञान महिमा से मेरे प्रति अधिकाधिक आकर्षित होते गये। अनेक महाविद्वान् शिष्य मेरा विनय करने लगे। अपने गच्छ के अतिरिक्त अन्य गच्छों के धुरन्धर पण्डित भी मेरे पास आने लगे। जैसे-जैसे मेरी प्रसिद्धि बढ़ती गई वैसे-वैसे मेरा काम भी बढ़ता गया। [४२४–७२५]

मै अनेक ग्रामो, नगरो और राजधानियो मे विहार/भ्रमण करता हुआ प्रत्येक स्थान पर विद्वत्तापूर्ण सुन्दर व्याख्यान देता, अनेक स्थानो पर सभाओ को प्रसन्न करता हुआ कीर्तिपताका फहराता रहा।

बड़े-बड़े वाद-विवादो मे विपक्षी कुतीर्थियो के मत्त हस्ति-दल के कुम्भ-स्थलो को मैंने अपनी भाषा रूपी अकुशो से तोड दिया, विदीर्ण कर दिया। जब मै स्वशास्त्र और परशास्त्र के गहन/रहस्यपूर्ण ज्ञान की बाते विस्तार से समझाता तब बड़े-बडे सेनापति, सामन्त और महाराजा भी उच्च स्वर मे अत्यन्त प्रशस्त शब्दो मे मेरा यशोगान करते, मेरी कीर्तिपताका फहराते और मेरे यश का पटह बजाते। वे इतने मधुर शब्दो में प्रशसा करते कि जिसका वर्णन अशक्य है। उदाहरण स्वरूप वे कहते—हे नाथ ! आप सचमुच धन्य है, भाग्यवान है, आपका जीवन सफल है, इस मृत्युलोक मे आकर आपने पृथ्वी को सुशोभित किया है, अलकृत किया है, आप वास्तव मे परमब्रह्म रूप है, पृथ्वी के शृ गार हैं, धर्म के दीपक हैं, निरपवाद है, सच्चे सिंह हैं, आपने अपने नाम को सार्थक किया है। अनेक तीर्थिक, वादी और नास्तिक भी मेरी स्तुति करते थे और मेरे समक्ष सिर झुका कर चलते थे। प्रशसा के साथ-साथ लोग मेरी सेवा और पूजा भी करने लगे।

इस प्रकार मैं आचार्य के रूप मे सब लोगो का प्रिय नेता और अग्रगण्य बन गया। हे अगृहीतसकेता ! इसी बीच एक विशेष घटना घटित हुई, वह भी सुनो। [४२६–४३२]

भवितव्यता की सजगता

मेरी ऐसी अद्भुत ऋद्धि-सिद्धि और यश को देखकर मेरी पापिन पत्नी भवितव्यता ईर्ष्या के कारण मुझ से रुष्ट हो गई। उसे ध्यान आया कि पूर्व मे जब महामोहराजा के सैनिको ने उससे राय पूछी थी, तब उन्हे योग्य अवसर की प्रतीक्षा करने को कहा था। मुझ पर विश्वास कर आशा से वे बेचारे चुप हो गये थे। मुझे लगता है, अब उनका कार्य-सिद्धि का योग्य अवसर आ गया है। यदि मैं उन्हे सूचित कर दू गी तो वे अपनी शक्ति का प्रयोग कर प्रसन्न और सुखी हो सकेंगे।

* पृष्ठ ७२६

हे भद्र ! इस प्रकार सोचकर भवितव्यता ने पापोदय आदि सभी को कह दिया कि अब तुम्हारा कार्यसिद्ध करने का समय आ गया है । 'घर की फूट से घर नष्ट' होने की कहावत मुझ पर चरितार्थ हुई । फिर उसने कर्मपरिणाम आदि जो निर्दोष वन्धुत्व से मेरे अनुकूल हो गये थे तथा जिसने अपनी शक्ति से उन्हे निर्बल, चेष्टारहित और मूढ जैसा बना दिया उन्हे पुन प्रेरित किया । [४३३–४३८]

मोह की प्रबलता : विषयाभिलाष का परामर्श

महामोह ने पापोदय को मुख्य सेनापति बना कर फिर व्यूह रचना की और मेरे सम्मुख आने के लिये निकल पडे । मेरी पत्नी के कहने से वे लोग निकल तो पडे, पर पूर्व की विपदाओ को स्मरण कर मन ही मन भयभीत हो रहे थे और अपनी विजय के प्रति आशकित हो रहे थे । विजय प्राप्त करने के लिये वे परस्पर विचार-विमर्श करने लगे । [४३९–४४०]

मन्त्रणा के समय विषयाभिलाप मंत्री बोला—भाइयो ! आज के अवसर को देखकर अपनी कार्यसिद्धि के लिये ज्ञानसवरण राजा मिथ्यादर्शन को अपने साथ लेकर ससारी जीव के पास जाय, फिर शैलराज ऋद्धिगौरव, रसगौरव और सातागौरव को अपने साथ लेकर उसके समीप पहुँच जाय,* उसके तुरन्त बाद आर्त्ताशय और रौद्राभिसन्धि को भेजना उपयुक्त रहेगा । इनके साथ ही तीनो परिचारिकायें कृष्ण, नील और कपोत लेश्याये भी स्वय ही जायेगी । हम सब अप्रमत्तता नदी के तीर पर पडाव डाले । इस नदी की मरम्मत कर इसमे पानी का प्रवाह एकत्रित करे । इसमे मण्डप आदि जो टूट गये है उनकी मरम्मत कर सुदृढ़ करे । इस प्रकार हमारी सेना नदी के तीर पर शिविर में रहेगी । सभी अपना कार्य सम्भाल लेगे तो बिना परिश्रम के हमारा प्रभाव जम जायेगा और हम अवश्य ही विजयी होगे ।

मत्री की बात मोहराजा और सारी सभा को रुचिकर लगी । सबने उसका समर्थन एवं अनुमोदन किया और तुरन्त ही उसे कार्यान्वित करना प्रारम्भ कर दिया ।

गौरव-गजारूढ

हे अगृहीतसकेता ! ये सब जब मेरे निकट आये तब मेरी क्या स्थिति हुई ? वह भी सुन । मेरे अत्यन्त गौरव, यश, सन्मान और पूजा को देखकर मेरे मन मे इस प्रकार तरगे उठने लगी—अहा ! मेरा अतुल तेज, गौरव और पाडित्य जगत मे अद्वितीय और असाधारण है । वास्तव मे मैं युगप्रधान हूँ । मेरे जैसा पुरुष न भूत काल मे कोई हुआ है, न भविष्य मे होने वाला है । सम्पूर्ण विद्याओ, कलाओ और अतिशयो ने स्वर्ग एव मर्त्य आदि लोको को छोडकर मुझ मे आश्रय लिया है । जब मैं राजा था तब मनुष्यो मे श्रेष्ठ था, सुन्दर स्वरूपवान था और भोगो मे पाला-पोषा गया था, अब मै श्रेष्ठतम आचार्य हूँ, कोई साधारण व्यक्ति नही ।

* पृष्ठ ७३०

मेरा कुल, तप, लक्ष्मी, तेज महान है और मेरी प्रज्ञा भी महान है। वास्तव मे महान व्यक्तियो का तो सब कुछ महान ही होता है। [४४१–४४७]

अध:पतन की संकलना

अहकारपूर्वक मेरे मन मे विकल्प उठ रहे थे, तरंगे उछल रही थी और मन के घोड़े दौड़ लगा रहे थे। यह देखकर शैलराज पुलकित हुआ और उसने अपना अनन्तानुबन्धी स्वरूप प्रकट किया।

जहाँ शैलराज होता है वहाँ मिथ्यादर्शन तो इसके साथ रहता ही है और ज्ञानसवरण को तो शैलराज के साथ विलास-क्रीडा करना बहुत ही अच्छा लगता है। ये तीनो मेरे पास आये और मेरे से घनिष्ठ सम्पर्क बढ़ाया। अन्त मे मै इनके वशीभूत हुआ, मेरा मन मलिन हुआ और शास्त्र के अन्दर का अर्थ/रहस्य जानते हुए भी अज्ञानी जैसा हो गया। मै स्वय शास्त्र पढता था, दूसरो को वाचना देता था, उन पर व्याख्यान देता था, तथापि मिथ्यादर्शन आदि के चक्कर मे इनका गूढार्थ बरावर नही समझ पाता था। परिणाम स्वरूप मै ऊपर-ऊपर के साढे चार पूर्व पूर्णरूप से भूल ही गया, शेष पूर्वो का ज्ञान भूला नही था। [४४८–४५२]

प्रमत्तता के प्रवाह में

हे पापरहित भद्रे ! मेरे शत्रुओ ने इस समय मेरी चित्तवृत्ति मे स्थित प्रमत्तता नदी मे प्रयत्नपूर्वक वाढ पैदा कर दी जिससे पूर्वोक्त तीनो गौरव संज्ञक पुरुष अपनी-अपनी शक्ति से विशेष उछल-कूद मचाने लगे–

अहा ! मेरा कितना विशाल शिष्य समुदाय है ! कितने सुन्दर वस्त्र एव* पात्रो की प्राप्ति है ! देव, दानव, मानव मेरी पूजा करते है। अणिमा (सूक्ष्म रूप बनाने की) आदि विभूतियाँ मेरे पास है। मैं इस प्रकार के अभिमान मे और अधिक सिद्धियाँ प्राप्त करने की कामना करता रहा। (ऋद्धि गौरव)

मुझे जो-जो रसवाले आस्वाद्य पदार्थ मिलते थे, उनके प्रति मनमे आसक्ति पैदा हो गई और उनकी प्राप्ति के प्रति अति लोलुपता उत्पन्न हो गई। रस वाले पदार्थ न मिलने पर मैं लोगो से उनकी माग भी करने लगा, जो साधुधर्म के विरुद्ध था। (रस गौरव)

कोमल शय्या, आसन, सुन्दर व सूक्ष्म रेशमी वस्त्र, नये-नये खाद्य पदार्थ मिलने पर मेरे शरीर को सुख और सतोष मिलता। इन वस्तुओ की प्राप्ति के प्रति भी मेरा लोलुपता बढती गई। (साता गौरव)

इन तीनो गौरवो के वशीभूत होकर मैंने उग्र विहार करना छोड दिया और शिथिलाचारी बन गया। फिर आर्त्ताशय ने मेरे चित्त की शाति का हरण कर लिया और मैं दुष्ट सकल्प करने लगा। साधुवेष मे होने से रौद्राभिसन्धि यद्यपि मुझे

* पृष्ठ ७३१

अधिक हानि नही पहुँचा सका, पर वह मेरे पास खडे-खड़े देखता रहा । कृष्ण, नील और कपोत लेश्याये भी अपने स्वामी की सहायता करने लगी, उनके कार्यों को गति देने लगी और मुझे अधम मार्ग पर धकेलने लगी ।

इधर चित्तवृत्ति मे चित्तविक्षेप मण्डप और तृष्णावेदी निर्मित और सज्जित करली गई । उसके ऊपर विपर्यास सिंहासन लगा दिया गया । फलस्वरूप चारित्र-धर्मराज आदि का समस्त परिवार चित्तवृत्ति महाटवी मे छिप गया । इस समय मै साधुवेष का धारक होकर भी मिथ्यादृष्टि हो गया । [४५३-४६४]

११. पुनः भव-भ्रमण

मेरे शत्रुओ को अब पूरा अवकाश मिल गया । वे सब प्रबल हो गये और सब सगठित होकर मुझ से शत्रुता करने लगे । सब ने मेरी पत्नी भवितव्यता से विचार किया और आयुष्यराज को बुलाया ।

फिर भवितव्यता ने आयुष्यराज से कहा—भद्र ! मेरे आर्यपुत्र (पति) को किसी योग्य मनोहर स्थान पर भेजना है, अतः इनके जैसे कर्म वालो के निवास योग्य रमणीय स्थान मुझे बतलावें । [४६५-४६६]

आयुष्यराज—देवि ! इनका स्थान तो पहले से ही निर्णीत है । इसमे पूछना ही क्या है ? तुम्हारे पति के वर्तमान चरित्र से अप्रसन्न होकर कर्मपरिणाम महाराजा भी अभी महामोह के पक्ष मे हो गये हैं । इन्होने पापोदय सेनापति को अग्रेसर कर दिया है । मुझे एकाक्षनिवास नगर में नियुक्त किया है और साथ मे तीव्रमोहोदय तथा अत्यन्त अबोध सेनापति को भी बुलाया है । किसी कारण से कर्मपरिणाम महाराजा अभी सातावेदनीय पर भी अप्रसन्न है, अत उसका सर्वस्व हरण कर उसे अकिंचित्कर एव शक्तिहीन बना दिया है । अन्तिम आज्ञा यह दी है कि हम दोनो (आयु और भवितव्यता) ससारी जीव को उसके अन्तरग परिवार के साथ तीव्र मोहोदय और अत्यन्त अबोध को साथ लेकर एकाक्षनिवास नगर मे निवास करे । मैं आपको क्या बतलाऊँ ? आप स्वयं तो सब-कुछ जानती है और मुझ से ही उनके निवास स्थान के बारे मे पूछ रही है ? यह आपका प्रेम है कि आप

मुझ से ही कहलाना चाहती है। अन्यथा इसमे आपके लिये कुछ भी नवीन या अज्ञात नही है।

भवितव्यता—भद्र आयुष्क! यद्यपि आपकी बात ठीक है, तथापि जहाँ आपके जाने का निश्चित हुआ है वहाँ * पति के साथ मुझे तो अवश्यमेव जाकर रहना है। पर, अभी मेरे पति को उसकी आयु के एक तिहाई भाग तक और यहाँ रहना है, वह पूरा होते ही खेल-मात्र मे हम शीघ्र एकाक्षनिवास पहुँच जायेंगे। [४६७-४६८]

आयुष्यराज—देवि! आप सब जानती है, मैं क्या कहूँ? अब तो सिंह (ससारी जीव) शीघ्र ही वहाँ जाने के योग्य हो जायँ ऐसी सभी सामग्री तैयार करे तो अधिक अच्छा है। [४६९]

हे अगृहीतसकेता! इसके बाद तो सभी अति प्रबल हो गये और पूरे वेग से अपनी शक्ति का प्रयोग मुझ पर करने लगे। मुझे साधुधर्म से अत्यन्त शिथिल बना दिया और अनेक प्रकार से भ्रष्ट कर सुखलम्पट बना दिया। अब मुझे थोड़ी भी सर्दी, गर्मी, विघ्न, पीडा, परिषह सहन न होते और मैं सब प्रकार से अधिकाधिक स्थूल आनन्द कैसे प्राप्त हो यह सोचने लगा। सुख-प्राप्ति की आशा मे मैं अपने यथार्थ मार्ग का त्याग कर विपरीत मार्ग पर चल पड़ा। मेरा जीवन-मार्ग बदल गया। [४७०-४७१]

साधुजीवन के अन्त मे तो मैंने दैनिक क्रियाओं का भी त्याग कर दिया। मेरी चेतना मूढ हो गई और शरीर मे अनेक प्रकार की व्याधियाँ और दोष पैदा हो गये। ऐसी बाह्य और आन्तरिक तुच्छ दशा मे मैं अपने आत्म-लक्ष्य को भूल गया। उसी समय मेरी उस भव की गोली भी समाप्त हो गई।

भव-भ्रमण-परम्परा

तुरन्त ही मुझे दूसरी गोली दी गई जिससे मैं एकाक्षनिवास नगर पहुँचा और वहाँ मुझे पूर्व-वर्णित वनस्पति वाले मोहल्ले मे रखा गया। नयी-नयी गोलियाँ देकर मुझे इसी नगर मे अनेक स्थानो पर बहुत समय तक रखा गया।

फिर मुझे पचाक्षपशुसंस्थान मे ले जाया गया। वहाँ मेरी भावना कुछ विशुद्ध हुई जिससे मेरी स्थिति मे सहज परिवर्तन हुआ और मेरी सुख-प्राप्ति की लालसा पूर्ण हो ऐसी योजना आगे चलाई गई तथा मुझे विबुधालय भेजा गया।

विबुधालय मे जाने के बाद भी मैं कई बार पचाक्षपशुसंस्थान मे जा आया और वहाँ से फिर विबुधालय मे गया। इन दोनो स्थानों के बीच मेरा बार-बार आवागमन होने लगा। पचाक्षपशुसस्थान से मैं कई बार व्यन्तर और दानव जाति

* पृष्ठ ७३२

में जा आया। प्रसगवश यदा-कदा मुझे अकाम निर्जरा हो जाती जिससे शुभ भावना उत्पन्न होती और उसके वल पर मैं व्यन्तर देव वनता। [४७२–४७३]

कभी अधिक अच्छे परिणाम होने से मैं सौधर्म देवलोक भी हो आया। एक वार देव और एक वार पशु, यो मेरा भव-भ्रमण चलता ही रहा। इन १२ देवलोक के देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं। ये देवगण जिनेश्वर के जन्म कल्याणक आदि अवसरों पर महोत्सव करते है। इस आवागमन मे मुझे गृहिधर्म और सम्यग्दर्शन का भी फिर से सम्पर्क हुआ, जिससे मैंने दर्शनचारित्र मे प्रगति की और १२ में से ८ देवलोको मे जा आया। [४७४–४७५]

हे सुलोचने ! मैं अनेक वार मानववास मे भी गया। कर्मभूमि और अकर्मभूमि अन्तरद्वीपो मे मनुष्य वनकर वहुत समय विताया। अकर्मभूमि मे कभी १,२ और ३ पल्योपम तक रहकर कल्पवृक्षों से अपनी मनोवाञ्छाये पूर्ण की। यहाँ जितने पल्योपम का आयुष्य होता, उतने ही कोस का शरीर भी होता। वहाँ सुख पूर्वक रह कर आनन्द भोगा, सुख से आहार किया। वहाँ रहते हुए मेरे विचारो मे विशुद्धता आई। फिर मैं अपनी पत्नी के साथ विवुधालय मे गया। पूर्वोक्तविधि से नई-नई गोलिया प्राप्त कर वहाँ से अनेक वार अन्तरद्वीपो मे गया और वापस विवुधालय मे लौट आया। अन्तरद्वीपों मे मेरा आयुष्य असख्य वर्षो का रहा। [४७६–४८०]

जव मैं कर्मभूमि मे था तव अज्ञान के वशीभूत होकर जल और अग्नि मे झपापात किया, पर्वतो पर से कूदा, विष खाया, चारो तरफ अग्नि जलाकर और सूर्य का ताप सहा (पंचाग्नि तप किया), रस्सी पर उल्टा लटका,* ऐसे-ऐसे अनेक हठयोग के कर्म धर्म-वुद्धि से किये। पर, इन सव मे मेरा भाव शुद्ध था, इसलिये फिर विवुधालय मे गया। वहाँ किल्विषिक देव बना। फिर मनुष्य और व्यन्तर बना। मनुष्यगति मे घोर वाल (अज्ञान) तप किये, पर मन में क्रोध एव तपस्या का अधिक गौरव (अहकार) होने से भवनपति वना। देवगति की अधम जातियो मे भ्रमण करता रहा। मैं पुनः तापस के व्रत, अनुष्ठान और अज्ञानतप के प्रभाव से ज्योतिषी देवों मे भी अनेक वार घूम आया। यो मेरी पत्नी अनेक बार मुझे नीच गति के देवो मे और मनुष्य गति मे भटकाती रही। मैंने जैन द्रव्य-दीक्षा भी ली और तप से अपनी देह को तपाया, क्रिया-कलापो के साथ ध्यान और अभ्यासपरायण भी वना, पर सम्यग्दर्शन-रहित होने से मूढता के कारण सर्वज्ञ प्ररूपित एक भी पद, वाक्य अथवा अक्षर पर श्रद्धा नही की। हे भद्रे ! द्रव्य-दीक्षा के फलस्वरूप अनेक वार नौ ग्रेवेयक तक जा आया। वीच-वीच मे मानवावास भी आता रहा।

हे सुन्दरि ! मुझे इतना क्यो भटकना पड़ा ? इसका मूल कारण भी यही था कि मैं सिंह आचार्य के रूप मे शिथिलाचारी वना। यदि उसी समय मैंने अपनी

---

* पृष्ठ ७३३

चित्तवृत्ति को निर्मल बनाकर अपने शत्रुओं का नाश कर दिया होता तो मेरी प्रगति निश्चित रूप से हुई होती और मैं अपने राज्य पर आसीन होकर कभी का निर्वृत्ति नगर पहुँच गया होता। मेरा यह भव-भ्रमण मेरी स्वय की दुश्चेष्टाओ के फलस्वरूप हुआ, अन्य किसी का इसमें कोई दोष नही। [४८१–४६१]

इतना कहकर ससारी जीव मौन हो गया।

संसारी जीव आत्मकथा सम्पूर्ण।

१२. अनुसुन्दर चक्रवर्ती

संकेत-दर्शन

ससारी जीव के सिहाचार्य के उच्चतम पद से गिरकर वनस्पति में उत्पन्न होने और फिर अनन्त ससार-भ्रमण को सुनकर अगृहीतसकेता ने कहा—भाई ससारी जीव! अभी तुमने भव-भ्रमण का कारण अपनी दुश्चेष्टाये बताईं, किन्तु इस विषय मे मुझे लगता है कि अन्य और भी कारण हैं। यदि तुमने महाराजाधिराज सुस्थितराज की आज्ञा का सर्वदा स्थिर-बुद्धि से पालन किया होता तो ऐसी तीव्र अनर्थ-परम्परा नही भुगतनी पड़ती। तुम्हे जो अति दारुण दु ख उठाने पडे वे इतने भयकर है कि उन्हे सुनकर ही त्रास होता है। मेरी दृष्टि मे महाराजा की आज्ञा का उल्लघन भी तेरे भव-भ्रमण का प्रबल कारण है। [४६२–४६४]

इस सुन्दर विचार को सुनकर ससारी जीव आश्चर्यचकित रह गया और उसके मन मे अगृहीतसकेता के प्रति सन्मान पैदा हुआ। वह बोला—बहिन सुभ्रु! तुमने वास्तविक बात कह दी है; अभी तक तू बात का भावार्थ नही जानती थी, पर अब तो गूढार्थ बताकर सचमुच तू विचक्षणा हो गई है।

हे सुन्दरागि! अब मैं यह बताता हूँ कि मैंने चोर का रूप क्यो धारण किया। यह सुनकर अगृहीतसकेता ने प्रसन्न होकर कहा कि, भद्र! सुनाओ। मैं तो स्वय यह बात सुनना ही चाहती थी। [४६५–४६६]

अनुसुन्दर का परिचय

अगृहीतसकेता की इच्छा को जानकर ससारी जीव ने कहा—मेरी पत्नी भवितव्यता मुझे नौवे ग्रैवेयक से मनुजगति मे स्थित क्षेमपुरी नगरी मे लाई। हे सुन्दरि! यह तो तुम्हारे ध्यान मे ही होगा कि इस मनुजगति मे महाविदेह नामक अति सुन्दर और विस्तृत बाजार है। इस लम्बे-चौडे बाजार मे पक्तिवद्ध अनेक

छोटी-मोटी दुकानें है। इन्ही के मध्य मे अनेक छोटे-बडे सुन्दर नगर है।* इस बाजार के मध्य भाग मे क्षेमपुरी स्थित है। इस स्थान को सुकच्छविजय कहा जाता है। आप हम सभी अभी इसी क्षेत्र मे बैठे है और यह मनोरम क्षेमपुरी भी इसी विजय मे स्थित है। [४९७–५००]

इस क्षेमपुरी मे शत्रु रूपी अन्धकार का नाश करने वाला, सूर्य के समान तेजस्वी युगन्धर राजा राज्य करता था। वह महाप्रतापी, दिव्यकाति युक्त और कीर्तिवान था। इसके एक अत्यन्त प्रिय नलिनी नामक प्रसिद्ध पटरानी थी। राजा के दर्शन मात्र से उसका मुखकमल विकसित हो जाता था। वह बहुत भली, शात, सुशील और नम्र थी। सूर्य के दर्शन से जैसे कमलिनी प्रफुल्लित हो जाती है, वैसे ही वह राजा को देखकर विकसित हो जाती थी। हे अगृहीत-संकेता! मेरी पत्नी भवितव्यता ने मुझे पुण्योदय के साथ इसी की कुक्षि मे प्रवेश करवाया। [५०१–५०३]

जिस रात मैंने रानी की कूख मे प्रवेश किया उसी रात उस कमलनेत्री ने सुख-शय्या मे सोते-सोते चौदह महा स्वप्न देखे। स्वप्न देखकर रानी जागृत हुई और उसने प्रहृष्ट होकर अपने पति को वे गज आदि के स्वप्न सुनाये। राजा ने शात चित्त से ध्यानपूर्वक स्वप्न सुने। फिर बोला, देवि! तुम्हे सर्वोत्तम स्वप्न आये है। इनके फलस्वरूप कुलदीपक पुत्र होगा जो देव-दानव का पूजनीय महान चक्रवर्ती बनेगा। पति के इस प्रकार मनोरम वाक्य सुनकर रानी अति हर्षित हुई। उसके नेत्र विकसित हो गये और उसने स्वामी के फलार्थ को स्वीकार किया। पश्चात् वह प्रेमपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगी। समय पूर्ण होने पर माता ने मुझे जन्म दिया, अन्तरग मित्र पुण्योदय भी गुप्त रूप से मेरे साथ ही था। मेरी अत्यन्त सुन्दर आकृति को देखकर रानी मन मे अति प्रसन्न हुई। [५०४–५०८]

प्रियकरी दासी तुरन्त मेरे पिताजी के पास गई। अत्यन्त हर्षावेश मे गद्गद कंठ और हर्षोल्लसित नेत्रो से उसने पिताजी को मेरे जन्म की बधाई सुनाई। पुत्र-जन्म की बधाई सुन कर पिताजी हर्षित हुए, उनका पूरा शरीर रोमाचित हो गया और बधाई लाने वाली दासी को इच्छानुकूल पारितोषिक दिया। फिर पिताजी ने मेरा जन्म महोत्सव मनाने की आज्ञा दी। पिताजी के आदेश से उस समय चारों तरफ लोग जन्मोत्सव मनाने लगे। सुन्दर वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर लोग अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन करने लगे, रसपूर्वक नाचने-गाने लगे, बाजे बजाने लगे, मस्ती मे आकर हसी-ठिठोली करने लगे, समूह बनाकर उद्यानो मे जाने लगे, भोजन और मुखवास साथ मे लेकर वन-विहार को निकल पडे, स्वय के सन्मान मे वृद्धि हुई हो ऐसे हर्षोद्गार निकालने लगे, दान देने लगे और कामदेव का सन्मान करने लगे। सम्पूर्ण नगर और राज्य आनन्दोत्सव मे निमग्न हो गया। छः दिन तक महान उत्सव मनाया गया, लोगो ने अनेक प्रकार की उद्दाम/उत्कृष्ट लीला की और आनन्द किया। [५०९–५१३]

---

* पृष्ठ ७३४

छठे दिन की रात्रि को मेरे पिता और सगे-सम्बन्धी एकत्रित हुए और रात्रि-जागरण किया। जागरण महोत्सव इतना श्रेष्ठ था कि मर्त्यलोक मे स्वर्ग का भ्रम होता था। महान प्रमोदपूर्वक एक माह पूर्ण होने पर शुभ दिन देखकर मेरा अनुसुन्दर नाम रखा गया। पाँच धात्रियो द्वारा मेरा पालन-पोषण होने लगा। दिन-प्रतिदिन मैं बड़ा होने लगा। माता-पिता की विशेष देखरेख मे मेरा शरीर स्वस्थ रहा और क्रमशः बढने लगा। कुमारावस्था आने पर मेरे कलाभ्यास की सब व्यवस्था की गई और उसका लाभ उठाकर मैंने सकल कलाओ का अभ्यास किया तथा पुरुष के योग्य सभी कलाओ मे निष्णात बना। युवावस्था प्राप्त होने पर मुझे युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया गया। हे भद्रे! मेरे पिताजी एव नागरिको ने युवराज पद-महोत्सव अत्यन्त आनन्द और हर्षातिरेकपूर्वक मनाया। * थोड़े समय बाद सूर्याकारधारक पिताजी युगन्धर स्वर्गवासी हो गये।। सूर्यास्त के साथ नलिनी का विकास भी अस्त हो गया, अर्थात् मेरी पूजनीय माताजी नलिनी महादेवी का भी देहान्त हो गया। [५१४–५१८]

माता-पिता के स्वर्गवास के पश्चात् मेरे राज्याभिषेक का प्रसग चल ही रहा था कि मेरी शस्त्रशाला मे अतुलनीय चक्र आदि चौदह रत्न और यक्षों द्वारा रक्षित नौ निधान प्रकट हुए। मुझे चक्रवर्ती मानकर सुकच्छविजय के सभी राजा मेरे वशीभूत हुए तथा स्वय को अनुचर और मुझे स्वामी स्वीकार किया। प्रताप तेज से मैंने क्षेमपुरी मे रहकर ही समस्त छ खण्ड पृथ्वी को जीत लिया और सम्पूर्ण विजय क्षेत्र मे मेरी जीत का यश फैल गया। बत्तीस हजार मुकुट-बध राजाओ ने एकत्रित होकर १२ वर्ष तक मेरा राज्याभिषेक महोत्सव मनाया। प्रफुल्लित कमल जैसे नेत्रो वाली ६४ हजार ललनाओ के साथ मैंने भोग भोगे। अपनी सम्पूर्ण प्रजा को अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान करता हुआ और महान संपत्तिशाली तथा चक्रवर्तित्व युक्त होकर मैंने बहुत समय आनन्दपूर्वक व्यतीत किया। समस्त स्थूल सुखो का सीमातिरेक चक्रवर्ती को प्राप्त होता है। वह मनुष्यो मे सर्वोत्तम और राजाओ का राजाधिराज माना जाता है। मेरे सुखो और अनुकूलताओ का कितना वर्णन करूँ! हे चारुलोचने! सक्षेप मे ससार के वर्णनातीत उत्कृष्ट स्थूल सुख और सभी प्रकार के आनन्दो का मैंने अनुभव किया। इस प्रकार मैंने ८४ लाख पूर्व तक सुख भोगे, राज्य किया और आनन्द भोगा। जीवन के अन्तिम भाग मे अपने षट्-खण्ड राज्य का निरीक्षण करने मैं क्षेमपुरी से निकल पड़ा। मेरा राज्य कितना विशाल है और लोगो की स्थिति कैसी है, यह जानने के लिये मै सुकच्छविजय के अनेक नगरो और गावो मे घूमा। घूमते हुए मै शख नामक नगर मै आ पहुँचा। तत्पश्चात् सेना को पीछे छोडकर अपने पुत्र राजवल्लभ को साथ लेकर मे नन्दनवन जैसे चित्तरम उद्यान मे आया। [५१९–५२९]

---

* पृष्ठ ७३५

१३. महाभद्रा और सुललिता

महाभद्रा का परिचय

हे अगृहीतसकेता ! तुम्हे स्मरण होगा कि जब मै गुणधारण के भव मे था तब कन्दमुनि ने मुझे उपदेश दिया था । उस भव मे मेरी पत्नी मदनमजरी थी और मेरा मित्र कुलन्धर था । इनको भी भवितव्यता ने ससार मे बहुत भटकाया और अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे रूपो मे उन्हे उत्पन्न किया । कन्दमुनि ने एक बार बहुलिका के सम्पर्क से छल-कपट किया था, अत भवितव्यता कन्दमुनि के जीव को सुकच्छविजय के हरिपुर नगर मे ले आयी ।

इस नगर मे भीमरथ राजा और सुभद्रा रानी थी जिनके समन्तभद्र नामक एक पुत्र था । भवितव्यता ने सुभद्रा रानी की कूख मे कन्दमुनि के जीव को प्रवेश कराया और छल-कपट माया के कारण उसे स्त्रीलिंग प्रदान किया । अनुक्रम से उसका जन्म पुत्री के रूप मे हुआ और माता-पिता ने उसका नाम महाभद्रा रखा ।

राजकुमार समन्तभद्र को एक बार सुघोष मुनि के दर्शन हुए । उनका धर्मोपदेश सुनकर राजकुमार को वैराग्य हो गया । माता-पिता की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा ले ली, अभ्यास किया और थोड़े ही समय मे द्वादशांगी का ज्ञाता महाज्ञानी गीतार्थ हो गया । योग्य समझ कर गुरु महाराज ने उसे आचार्य पद पर स्थापित किया और वह संसार मे समन्तभद्राचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।*

अनुक्रम से राजपुत्री महाभद्रा भी युवती हुई । माता-पिता ने उसे गन्धपुर नगर के राजा रविप्रभ और पद्मावती रानी के पुत्र दिवाकर से विवाहित किया । कारणवश दिवाकर की मृत्यु हो गई । समन्तभद्राचार्य ने योग्य अवसर जानकर अपने ससारी रिश्ते की वहिन महाभद्रा को योग्य उपदेश दिया, ससार की अस्थिरता और आत्महितकारी मोक्ष का यथार्थ मार्ग बतलाया । प्रतिबुद्ध होकर महाभद्रा ने भागवती दीक्षा ले ली । विद्वान् भाई की बहिन भी विदुषी हुई । इसने भी गहन अध्ययन किया और थोडे ही समय मे द्वादशागी की ज्ञाता, गीतार्थ, शक्तिशालिनी साध्वी बन गई । उसकी योग्यता को देखकर आचार्य ने उसे प्रवर्तिनी के पद पर स्थापित कर दिया ।

---

* पृष्ठ ७३६

सुललिता का परिचय

एक बार अन्य साध्वियो के साथ प्रवर्तिनी महाभद्रा विहार करती हुई रत्नपुर आ पहुँची। यहाँ मगधसेन राजा राज्य करता था। उसकी महारानी का नाम सुमगला था। भवितव्यता ने मदनमजरी के जीव को सुललिता की पुत्री के रूप मे उत्पन्न किया। इसका नाम सुललिता रखा गया। क्रमशः वह तरुणी हुई, पर वह पुरुषद्वेषिणी बन गई। उसे किसी भी पुरुष का नाम, परिचय या उसकी छाया भी रुचिकर नही थी। उसे पति नाम की गन्ध से भी घृणा थी, अतः उसके माता-पिता उसके लग्न के विषय मे चिन्तातुर थे।

जव महाभद्रा प्रवर्तिनी का रत्नपुर मे पदार्पण हुआ तब मगधसेन राजा और सुमगला रानी भी उनको वन्दन करने उपाश्रय मे गये और अपनी प्रिय पुत्री सुललिता को भी साथ ले गये। प्रवर्तिनी को वन्दन कर उनसे मोक्षपदरूप कल्पवृक्ष को निश्चित रूप से उत्पन्न करने वाले बीज के समान "धर्मलाभ" का शुभाशीष प्राप्त किया। फिर उनसे अमृतप्रवाह जैसा शुद्ध धर्मोपदेश सुना।

यद्यपि भगवती का उपदेश अत्यन्त स्पष्ट था तथापि सुललिता बहुत भोली थी, अतः वह उसके अन्तरग भावार्थ को नही समझ सकी, तदपि पूर्वभव के राग के कारण वह प्रवर्तिनी के प्रति आकर्षित हुई और भगवती महाभद्रा के मुख-कमल को टकटकी लगाये देखती रही। फिर उसने पिता से कहा—हे तात! मुझे प्रवर्तिनीजी के चरण-कमलो की उपासना करनी है। यदि आप आज्ञा दे तो मैं भी उनके साथ सर्वत्र विचरण करूँ।

पुत्री की माग सुनकर रानी तो रो पडी, किन्तु राजा ने उसे रोककर कहा—देवि! रोने से क्या लाभ? पुत्री का मन जिस कार्य से प्रसन्न हो वह उसे करने देना चाहिये। उसके मन मे विनोद पैदा करने का यही उपाय है, इसी से वह ठीक होगी। मेरे मत से वह गृहस्थ रूप मे साध्वीजी के साथ भले ही रहे और विहार करे, पर हमसे पूछे बिना दीक्षा ग्रहण नही करे।

सुललिता ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया और साध्वीजी के साथ रह गई। माता-पिता अपने घर चले गये।

प्रवर्तिनी महाभद्रा के साथ सुललिता अनेक देशो मे घूमी। उसके ज्ञानावरणीय कर्म का उदय इतना अधिक था कि उसे एक भी पाठ याद नही होता था। साधु-साध्वी के आचार या श्रावक के आवश्यक भी उस वेचारी को नही आ पाया। आगम के पाठ समझाने पर भी उसे उसका भावार्थ समझ मे नही आया।

अन्यदा विहार करते हुए महाभद्रा साध्वी सुललिता के साथ शखपुर नगर आ पहुँची और नन्द सेठ के घर की पौषधशाला मे ठहरी।

१४. पुण्डरीक और समन्तभद्र

पुण्डरीक-परिचय

इस शखपुर नगर मे मेरे मामा श्रीगर्भ का राज्य था। उनकी रानी कमलिनी मेरी मामी थी और महाभद्रा प्रवर्तिनी की मौसी थी। इनके एक भी सतान नही थी।* कमलिनी रानी ने पुत्र-प्राप्ति के लिये अनेक मनोतियां मनाई दान दिये, वूटियाँ खाई। गुणधारण के भव में मेरा जो मित्र कुलन्धर था, उसने अपने अगले जन्म में अनेक प्रकार के शुभ कार्य किये, अतः भवितव्यता ने कुलन्धर के जीव को कमलिनी रानी की कूख मे प्रवेश करवाया। जिस रात को उसने रानी की कुक्षि मे प्रवेश किया, उसी रात रानी को स्वप्न आया कि एक सर्वागसुन्दर पुरुष उसके मुह से उसके शरीर मे प्रविष्ट हुआ और बाहर निकला तथा किसी अन्य पुरुष के साथ चला गया। रानी ने अपने स्वप्न की बात राजा को कह सुनायी। स्वप्न-वृत्तान्त सुनकर राजा को परम हर्ष हुआ, पर साथ मे कुछ विषाद भी हुआ। वह बोला—देवि! ऐसा लगता है कि तुम्हारे पुत्र होगा, पर कुछ समय बाद उसे किसी सुगुरु की प्राप्ति होगी और उनके उपदेश से प्रतिवोधित होकर वह दीक्षा ले लेगा। पुत्र-प्राप्ति की अभिलापा-पूर्ति से रानी कमलिनी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई, शेष बात उसने अनसुनी करदी। तीसरे महीने रानी को शुभ कार्य करने के मनोरथ (दोहले) उत्पन्न हुए, जिन सभी को राजा ने पूर्ण किया। समय पूर्ण होने पर रानी के पुत्र-जन्म हुआ। राजा श्रीगर्भ परम सन्तुष्ट हुआ। सारे नगर और राज्य मे पुत्र का जन्म-महोत्सव मनाया गया जिससे सभी लोगो को अत्यधिक आनन्द हुआ।

समन्तभद्राचार्य का संकेत

इधर समन्तभद्राचार्य को निर्मल केवलज्ञान प्राप्त हुआ और विहार करते हुए वे शंखपुर नगर आ पहुँचे तथा चित्तरम उद्यान मे ठहरे। नन्द सेठ की पौपध-शाला मे ठहरी हुई महाभद्रा साध्वी को जब पता लगा तो वे भी केवली महाराज को वन्दन करने उद्यान मे पहुँची। सुललिता को आचार्य के पधारने के समाचार किसी कारण से नही लग सका और महाभद्रा उद्यान में आचार्य को वन्दन करने गई है, यह भी वह नही जान सकी। महाभद्रा जब आचार्य के वहाँ थी तभी किसी ने कहा कि 'राजा के पुत्र हुआ है।' यह सुनकर केवली भगवान् ने कहा—इस राजपुत्र ने पूर्व भव मे अत्यधिक शुभ कार्यों का अभ्यास किया है। यद्यपि इसका जन्म राजा

---

* पृष्ठ ७३७

के यहाँ हुआ है तथापि यह अधिक समय तक राजभवन मे नही रहेगा। बडा होकर दीक्षा लेगा और सर्वज्ञ प्ररूपित आगम-शास्त्रो का धारक बनेगा।

यह सुनकर महाभद्रा अपने उपाश्रय मे वापस लौटी।

इधर राजपुत्र का नाम पुण्डरीक रखा गया और नामकरण महोत्सव मनाया गया।

सुललिता के सन्देह का निराकरण

इधर एक बार सुललिता घूमती हुई, अनेक प्रकार के कुतूहल देखती हुई चित्तरम उद्यान मे आ पहुँची। वहाँ उसने समन्तभद्राचार्य को श्रीसंघ के मध्य मे नवीन उत्पन्न राजपुत्र के गुणो का वर्णन करते हुए सुना। आचार्य कह रहे थे—'इसके अनुकूल बने कर्मपरिणाम महाराजा और कालपरिणति महारानी ने पुण्डरीक को मनुजनगरी मे उत्पन्न किया है। यह सर्वोत्तम गुणो से युक्त बनेगा। भव्यपुरुष जब सुमति/प्रशस्त बुद्धि वाला बन जाता है तब वह सर्वोत्तम गुणो का भण्डार बन जाता है, इसमे सदेह क्या है ?' सुललिता ने आचार्य के इस कथन को सुना। आचार्य ने यह बात बहुत से लोगो के समक्ष कही थी, जिसे सुनकर लोग अत्यन्त हर्षित हुए।

उपर्युक्त कथन सुनकर सुललिता को संदेह हुआ कि, 'इस राजकुमार के माता-पिता कालपरिणति और कर्मपरिणाम कैसे हो सकते है ? फिर वह मनुजगति मे कैसे उत्पन्न हो सकता है ? भविष्य मे होने वाले गुणो का वर्णन आचार्य अभी कैसे कर सकते है ?' वहाँ से जाकर उसने महाभद्रा प्रवर्तिनी को अपने मन की शका कह सुनाई। महाभद्रा ने सोचा कि सुललिता बहुत भोली है। यह सोचकर कि इसे प्रतिबोधित करने का यह अच्छा अवसर है। महाभद्रा ने कहा—भद्रे ! कर्मपरिणाम और कालपरिणति इसी के ही नही, ससारस्थ सभी जीवो के माता-पिता है। यह बात उन्होने उसे युक्तिपूर्वक भली प्रकार समझाई।

सदागम का परिचय

फिर उन्हे ध्यान आया कि इसकी सदागम के प्रति प्रीति उत्पन्न करनी चाहिये। यह सोचकर उसे जागृत करने की शुभ भावना से वे बोली—बहिन ! लोगो के मध्य मे जो बात कर रहे थे और जिनकी बात लोग ध्यान पूर्वक सुन रहे थे, उनका नाम सदागम है। तुमने उन्हे ध्यानपूर्वक देखा होगा ? इस बात मे तनिक भी सन्देह नही है कि ये महात्मा महान् शक्ति-सम्पन्न, विद्वान् और भूत-भविष्य के भावो के ज्ञाता है।* मुझे भी इस विषय मे इन महात्मा की कृपा से ही मालूम हुआ है। मेरा इनसे दीर्घकाल से परिचय है। वे अत्यन्त प्रभावशाली हैं।

* पृष्ठ ७३८

इस प्रकार उन्होने सदागम के माहात्म्य और राजपुत्र के जन्म से सदागम को होने वाले आनन्द का विस्तृत वर्णन कर सुललिता (अगृहीतसकेता) को समझाया।

यह सुनकर सुललिता ने कहा—भगवति ! जब आपका महापुरुष सदागम से इतना अधिक परिचय है तब आप मेरा भी उनसे परिचय कराइये। महाभद्रा (प्रज्ञाविशाला) ने हर्ष से इसे स्वीकार किया। तत्पश्चात् सुललिता को साथ लेकर महाभद्रा समन्तभद्राचार्य के पास आई। आचार्य को देखते ही सुललिता को अत्यधिक हर्ष हुआ। हर्षावेश मे वह बोली—भगवति ! ऐसे महात्मा पुरुष का आपने अभी तक मुझे दर्शन नही करवाया। मैं बहुत भाग्यहीन रही, दर्शनो से वचित रही। अरे ! आप तो सचमुच बहुत स्वार्थिनी हैं। खैर, अब आप इन महात्मा के मुझे प्रतिदिन दर्शन कराने की कृपा करावें, जिससे कि मैं भी आप जैसी विदुषी बन जाऊँ। महाभद्रा ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया।

उस दिन से दोनो प्रतिदिन आचार्य के पास आकर उनकी उपासना करने लगी। एक मासकल्प (एक माह) पूर्ण होने पर आचार्य ने कहा—महाभद्रा ! तुम्हारी जाघो की शक्ति क्षीण होने से अभी तुम विहार करने मे असमर्थ हो अत अभी शखपुर मे ही रहो। हम तो अब यहाँ से विहार कर अन्यत्र जायेंगे। अन्यदा फिर कभी हम यहाँ आयेंगे। तुम्हारे विशेष हित और जागृति के लिये ही हम पूरे एक माह तक यहाँ रहे। अन्यथा जिस क्षेत्र मे साध्विया विराजित हो वहाँ शेषकाल मे साधुओ को मासकल्प करने (एक माह) भी रुकने का अधिकार नही है, किन्तु रोगी की सहायता के पुष्ट आलम्बन से ही हम यहाँ एक महीने रुके। अब तुम्हे यहाँ रहकर राजपुत्र पुण्डरीक (भव्यपुरुष) का विशेष ध्यान रखना चाहिये और उसके अनुकूल कार्य करना चाहिये। योग्य अवस्था को प्राप्त होकर वह मेरा शिष्य बनेगा।

महाभद्रा ने आचार्य के वचन को स्वीकार किया और आचार्य श्री वहाँ से विहार कर अन्यत्र चले गये।

पुण्डरीक और समन्तभद्र का परिचय

क्रमश. पुण्डरीक बडा होने लगा। उसकी बाल्यावस्था समाप्त हुई और वह युवावस्था को प्राप्त हुआ। बुद्धि के साथ उसमे गुण भी प्रस्फुटित होने लगे और महाभद्रा से उसका स्नेह भी प्रतिदिन बढने लगा।

अन्यदा अनेक नगरो मे विहार करते हुए एक बार समन्तभद्राचार्य पुन शखपुर नगर के चित्तरम उद्यान मे पधारे। महाभद्रा को पता लगते ही स्वय पुण्डरीक को आचार्य भगवान् के पास ले गई। पुण्डरीक भावी भद्रात्मा था, इसलिये आचार्य भगवान् को दूर से देखकर ही उसके मन मे अत्यन्त हर्ष हुआ। वह उनके गुणसमूह को देखकर रंजित हुआ। केवली भगवान् के वचन सुनकर उसे उन पर अतिशय प्रीति हुई। उसकी बुद्धि शुद्ध थी, पर अभी उसे विशेष ज्ञान नही था, अभी

वह बहुत भोला था, अतः उसने महाभद्रा साध्वी से पूछा कि—भगवति ! ये महात्मा कौन हैं ? इनका नाम क्या है ?

प्रश्न सुनकर विचक्षणा महाभद्रा ने विचार किया कि राजपुत्र अत्यधिक सरल हृदय वाला है और इसकी चेष्टाओ से ऐसा लगता है कि यह आचार्य भगवान् के गुणों के प्रति आकर्षित हुआ है । अतः इस स्थिति का लाभ उठाकर इसके हृदय मे भगवान् के आगमो के प्रति प्रीति उत्पन्न करनी चाहिये और इसके मन मे उनके प्रति भक्ति जागृत करनी चाहिये । इस विचार से प्रवर्तिनी ने उत्तर मे कहा—वत्स ! इनका नाम सदागम है ।

उत्तर सुनकर पुण्डरीक ने पुन. पूछा—देवि ! यदि माता-पिता आज्ञा दें तो मैं इनके सान्निध्य मे आगमो का अर्थ ग्रहण करना चाहता हूँ ।

महाभद्रा ने कहा—यह तो बहुत अच्छी बात है ।

इसके पश्चात् महाभद्रा ने पुण्डरीक के माता-पिता कमलिनी* और श्रीगर्भ राजा को वह बात कही । इस प्रस्ताव से उन्हे भी अत्यन्त आनन्द हुआ । उन्होने बडे उत्साह और प्रेमपूर्वक पुत्र की इच्छा स्वीकार की और अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक अपने पुत्र को अभ्यास करवाने के लिये भगवान् को अर्पित कर दिया । तब से पुण्डरीक भगवान् के पास रह कर प्रतिदिन आगमो का अध्ययन करने लगा ।

१५. चक्रवर्ती चोर के रूप में

कोलाहल का कारण

इसी चित्तरम उद्यान के मनोनन्दन चैत्य मे समन्तभद्राचार्य सघ के समक्ष धर्मोपदेश दे रहे थे । उनके सामने बैठकर प्रवर्तिनी महाभद्रा और राजकुमार पुण्डरीक भी गुरु का उपदेश सुन रहे थे, तभी सुललिता भी वहाँ आ पहुँची । भव्य प्राणी केवली भगवान् के धर्मोपदेश मे तल्लीन हो रहे थे, तभी मेरी सेना का कोलाहल राजमार्ग पर होने लगा । कोलाहल और गड़गडाहट बढने लगी तो सभा मे स्थित सभी के कान चौकन्ने हो गये ।

* पृष्ठ ७३६

सुललिता ने महाभद्रा से पूछा—भगवति ! यह भारी आवाज और गडगडाहट कैसी है ?

महाभद्रा ने आचार्य की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—मुझे तो कुछ भी ज्ञात नही है ।

आचार्य ने देखा कि सुललिता और पुण्डरीक को प्रतिबोधित करने का यह अच्छा अवसर है, अत: वे बोले—अरे महाभद्रा ! क्या तुझे पता नही कि मनुजगति नामक प्रदेश मे विख्यात महाविदेह नामक बाजार मे हम सब अभी बैठे है । संसारी जीव नामक चोर आज चोरी के माल के साथ पकड़ा गया है । दुष्टाशय आदि दण्ड-पाशिको (सिपाहियो) ने उसे पकड़ कर, बाधकर, चोरी के माल साथ कर्मपरिणाम महाराजा के सन्मुख प्रस्तुत किया है । कर्मपरिणाम महाराज ने कालपरिणति, स्वभाव आदि से विचार-विमर्श कर चोर को फांसी का दण्ड दे दिया है । अभी अनेक राजपुरुष ससारी जीव को जन-कोलाहल के बीच बाजार मे से होकर, नगर से बाहर निकल कर पापी-पिंजर नामक वधस्थल पर ले जा रहे है । वहाँ लेजाकर उसे खूब मारा-पीटा जायगा और उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा । इसी कारण यह प्रबल कोलाहल हो रहा है ।

भगवान् की बात सुनकर सुललिता भोचक्की हो गई । महाभद्रा की तरफ दृष्टिपात करते हुए उस भोली ने पूछ ही लिया—भगवति ! हम तो शखपुर मे बैठे हैं, यह मनुजगति तो नही ? हम इस समय चित्तरम उद्यान मे बैठे है, यह महाविदेह बाजार कैसे हो गया ? यहाँ के राजा श्रीगर्भ है, कर्मपरिणाम नही ? फिर आचार्यप्रवर यह सब क्या कह रहे है ?

यह सुनकर आचार्यश्री ने कहा—धर्मशीला सुललिता ! तुम अगृहीतसकेता हो, तुम्हे मेरी बात का गूढ अर्थ समझ मे नही आया ।

सुललिता सोचने लगी कि केवली भगवान् ने तो मेरा नाम ही बदल दिया, दूसरा नामकरण कर दिया । फिर वह चुप होकर बैठ गई, पर उसके मुख पर भोलेपन और विस्मय के भाव स्पष्टत: झलक रहे थे, मानो भगवान् की बात का परमार्थ उसे तनिक भी समझ मे न आया हो ।

वध-मोचन का उपाय . कथा पर संप्रत्यय

विचक्षणा महाभद्रा ने भगवान् के कथन के रहस्य को समझ लिया कि भगवान् ने किसी पापी ससारी जीव के नरक गति मे जाने का स्पष्ट निर्देश किया है । वह दया के तीव्र आवेग के कारण करुणा से ओत-प्रोत हो गई । वह बोली—भगवन् ! आपने कहा कि चोर को मृत्यु-दण्ड दिया गया है, पर क्या चोर इस दण्ड से किसी प्रकार मुक्त नही हो सकता ?

आचार्य—जब इसे तेरे दर्शन होंगे और जब वह हमारे समक्ष आयेगा तभी उसकी मुक्ति हो सकेगी।

महाभद्रा—क्या मैं उसके सन्मुख जाऊँ ?

आचार्य—हाँ जाओ। इसमें क्या दुविधा है ?

फिर करुणा से ओत-प्रोत महाभद्रा मेरे सन्मुख आई और बोली—*भद्र ! भगवान् सदागम की शरण स्वीकार कर। इस प्रकार कहने के साथ ही महाभद्रा मुझे भगवान् के समक्ष ले आई। समस्त परिषदों ने वधस्थल पर ले जाते हुए मुझे चोर के वेष मे देखा। भगवान् को दूर से देखकर ही मुझे अवर्णनीय सुख प्राप्त हुआ। इस सुखानुभव से मुझे मूर्छा आ गई।

मूर्छा दूर होने पर मैंने भगवान् का शरण स्वीकार किया और भगवान् ने भी मुझे "मत डरो" कहकर आश्वस्त किया। भगवान् के आश्वासन से मुझे अभय-दान प्राप्त हुआ। राजपुरुष जो मुझे वधस्थल पर ले जाने आये थे वे भगवान् के प्रभाव से दूर भाग गये। पकड़ने वालो के भाग जाने और भगवान् की शान्त मुद्रा के सन्मुख होने से मैं सावधान/सजग हो गया। तत्पश्चात् जब तुमने मुझ से मेरा वृत्तान्त पूछा तब मैंने भगवान् समन्तभद्र का, महाभद्रा का, पुण्डरीक का और तुम्हारा समग्र कथानक विस्तार से कह सुनाया। यद्यपि तुमने अपना समस्त वृत्तान्त तो स्वयं अनुभव किया है, फिर भी स्वानुभव की प्रतीति अर्थात् तुम्हारा विश्वास जमाने के लिये और तुम्हे लाभान्वित करने के लिये उसे फिर से सुनाया, जिससे तुम्हे सम्प्रत्यय/विश्वास (प्रतीति) हो जाय कि ससारी जीव ने जो कुछ कहा वह स्पष्टत. निर्णीत बात ही कही है और अन्य सभी घटनाओ पर तुझे पूर्णत सम्प्रत्यय/विश्वास हो जाय। कहो, बहिन ! अब तुम्हे मेरी आत्मकथा पर विश्वास हुआ या नही ?

शका-समाधान

मुललिता ने कहा—मेरे आत्मानुभव के वृत्तान्त का मुझे विश्वास हुआ है, किन्तु एक शंका रह गई है जिसे मैं नही समझ पाई। यदि आप स्वय अनुसुन्दर चक्रवर्ती है तो फिर आपने चोर का रूप किसलिये धारण किया ?

ससारी जीव—भद्रे ! तुम दोनो को प्रतिबोधित करने के लिये ही मैंने बाहर से चोर का रूप धारण किया है। तुझे यह बताया गया था कि ससारी जीव नामक चोर चोरी के माल के साथ पकडा गया है और कर्मपरिणाम राजा की आज्ञा से उसे वध-स्थल पर ले जाया जा रहा है। तुझे ऐसा कहकर महाभद्रा मेरे पास आई। उनके दर्शन की कृपा से मुझे प्रतिबोध हुआ। मैंने सोचा कि यद्यपि अत्यन्त विशाल बुद्धिवाली महाभद्रा (प्रज्ञाविशाला) भगवान् द्वारा कथित मेरा अन्तरग चोर और चोरी का स्वरूप भलीभांति समझ गई है तथापि सुललिता (अगृहीत-

---

* पृष्ठ ७४०

सकेता) इस कथन के आन्तरिक रहस्य को लेशमात्र भी नही समझ पाई है। अतः यदि मैं चक्रवर्ती के रूप मे आचार्यप्रवर के सन्मुख जाऊँगा तो उस बेचारी का सदागम/गुरुवचन पर विश्वास उठ जायगा; क्योकि वह शुद्ध आगमो (सदागम) के भावार्थ को किञ्चित् भी नही जानती। उसे यह पता नही है कि इस चक्रवर्ती को ही भगवान् सदागम ने चोर कहा है। साथ ही मुझे लगा कि राजकुमार पुण्डरीक को भी मेरे चोर के रूप मे आने से ही बोध प्राप्त होगा, क्योकि यह भव्यपुरुष श्रेष्ठ मति (सुमति) वाला है और मेरा अथ से इति तक पूरा वृत्तान्त सुनकर वह उसके आन्तरिक भावार्थ को समझ जायगा। इसी के फलस्वरूप राजकुमार पुण्डरीक भी प्रतिवोध को प्राप्त होगा। इसीलिये मैंने वैक्रिय लब्धि से अपने आन्तरिक व्यवहार को सूचित करने वाले चोर के समस्त आकार-प्रकार को धारण किया।

अन्तरंग चौर्य-स्वरूप

अनुसुन्दर चक्रवर्ती द्वारा उपर्युक्त स्पष्टीकरण के वाद भी सुललिता के मन मे अनेक शकाएँ उठने लगी। सरल स्वभावी प्राणी अपने मन की शका को तुरन्त पूछ लेते है। अतः सुललिता ने पूछा—आपने जिस अतरग चोरी की बात कही, वह क्या है? इस चोरी के लिये इतनी अधिक पीड़ा और विडम्बना क्यो दी जाती है? अपनी आत्मकथा और उससे सम्बन्धित अन्य लोगो का समग्र विस्तृत * वृत्तान्त आपने कैसे जाना? कृपया इन सब के विपयो मे विस्तार से स्पष्टीकरण करिये। आपकी कथा नवीन प्रकार की और कुतूहल उत्पन्न करने वाली है, जितनी अधिक स्पष्ट होगी उतनी ही अधिक रसवर्धक होगी।

सभी प्रश्नो के उत्तर का मन में विचार कर सुललिता (अगृहीतसकेता) को प्रतिवोधित करने के लिये अनुसुन्दर से कहा—

अन्तिम ग्रैवेयक से मैं सुकच्छविजय की क्षेमपुरी नगरी के राजा युगन्धर और रानी नलिनी के पुत्र अनुसुन्दर के रूप मे उत्पन्न हुआ। जिस समय मेरा नामकरण महोत्सव हो रहा था उसी समय भवितव्यता ने महामोह आदि राजाओ को प्रोत्साहित करते हुए कहा था :—

भाइयो! यह अनुसुन्दर वर्तमान मे सम्यग्दर्शन से वहुत दूर हो गया है, अत अभी अपने स्वार्थ-साधन के लिये तुम्हे जो भी प्रयत्न करने हो वे कर लो। यदि एक वार भी यह सम्यग्दर्शन से मिल जायगा तो वह अपने वर्ग की शक्ति वढा लेगा। फिर पहले की भांति यह सम्यग्दर्शन तुम्हारा वाधक वनेगा और यह अनुसुन्दर भी त्रासदायक वनेगा। अभी तो थोड़े से प्रयत्न से वह तुम्हारे वश मे हो जायगा, पर सद्वोध आदि इसके सहायक हो गये तो फिर इसको वश मे करना अत्यधिक कठिन होगा। अत अभी ही जैसे वने वैसे इसको अपने वश मे करलो

* पृष्ठ ७४१

और इसकी चित्तवृत्ति का साम्राज्य अभी अपने अधीन कर निराकुल हो जाओ, अन्यथा पछताओगे। [५३०-५३३]

हे भद्रे ! भवितव्यता की सूचना को महामोह की सेना ने स्वीकार किया। जब मै छोटा बालक था तभी से इन्होने निरंकुश होकर मुझे चारो ओर से घेर लिया और मुझे पथभ्रष्ट करने लगे। मुझे अपने वश मे रखने के लिये वे अनेक प्रयत्न करने लगे। उन्होने मेरी बुद्धि और चेतना को अन्धा कर दिया जिससे मैं पूरे समय महामोह के परिवार के मध्य रहने लगा और अपने सद्बन्धुओ के परिचय को ही भूल गया। इस प्रकार मैं महामोह के साथ तन्मय हो गया। फिर मोहराजा और उसके महामायावी योद्धाओं ने मुझ पर अपनी शक्ति का पूर्ण प्रयोग किया। परिणाम स्वरूप मैं पाप मे पूर्ण रूप से रच-पच गया, पापार्जन-परायण हो गया। मैं कुमारावस्था मे ही मांस खाने लगा, शराब पीने लगा, जुआ खेलने लगा और प्राणियो को अनेक प्रकार की पीड़ा देने लगा। युवावस्था आते ही मैं लोगो की स्त्रियो, कन्याओ और विधवाओ को सताने लगा और वेश्यागमन करने लगा। चक्रवर्ती बनने पर तो महा आरम्भ और महा परिग्रह में आसक्त हो गया। पापोत्पादक समस्त दोषो का निरपेक्ष होकर सेवन करने लगा। इस प्रकार चारो तरफ सभी स्थानो पर मैं धन-सम्पत्ति और इन्द्रिय विषयो मे मूर्छित होता रहा। इन आसक्तियो के कारण बाह्य दृष्टि से मैं अपने को अत्यन्त सुखी अनुभव करने लगा। इस वातावरण मे रहते हुए मैंने महामोहादि रूप अपने भाव-शत्रुओ को अपना बन्धु माना और अपने पूर्व वृत्तान्त को पूर्ण रूप से भूल गया। [५३४-५४१]

पापी मित्रो के प्रसार की वृद्धि के परिणाम स्वरूप मैंने अपनी चित्तवृत्ति अटवी को मलिनतम बना दिया, चारित्रधर्मराज की सेना को पराजित अवस्था में चारो तरफ से घिरी हुई और दबी हुई अवस्था मे रहने दिया और अन्तरग की क्षान्ति आदि अन्तःपुरस्थ स्त्रियो की उपेक्षा की। बाह्य दृष्टि से मैं महान प्रभावशाली राजा के रूप मे प्रवर्धित होता रहा, किन्तु इधर कर्मपरिणाम राजा का राज्य भी अधिक प्रकाश मे आने लगा। पापोदय बलवान होता गया, और महामोह राजा की सम्पूर्ण सेना अधिक प्रबल होकर धूम मचाने लगी। उन्होने मेरी चित्तवृत्ति अटवी मे फिर से नगर बसाये, प्रमत्तता नदी मे बाढ पैदा कर दी, इस नदी के तद्विलसित द्वीप को विस्तृत किया और चित्तविक्षेप मण्डल को ढूढकर अधिक स्वच्छ कर दिया। तृष्णावेदिका को फिर से सम्मार्जन कर तैयार किया, * विपर्यास सिंहासन को सुसज्जित किया और महामोह राजा ने अपनी अविद्या रूपी शरीर का पोषण कर उसे पुष्ट कर लिया। इस प्रकार उन्होने पहले से उपस्थित सभी सामग्री का नवीनीकरण कर दिया।

सभी सामग्री के तैयार हो जाने पर परस्पर मत्रणा होने लगी। विषयाभिलाष मत्री ने कहा—प्रिय मित्र महीपालो ! आप सब मेरे परामर्श पर विचार

* पृष्ठ ७४२

करे । यह तो आप लोगो को स्मरण होगा कि पहले आप बुरी तरह हार चुके हैं । दिन-दहाडे आग के शोले/लपटे देख चुके है । इसलिये इस घटना को दोहराने की क्या आवश्यकता है । इस प्रसग मे थोडी सी उपेक्षा के कारण ही पहले हमारा लगभग नाश हो गया था । अत इस महत्त्व के विषय मे इस बार थोडी-सी भी उपेक्षा करना योग्य नही होगा । वीरो ! अभी से ऐसे प्रयत्न मे लग जाओ जिससे कि हमारा राज्य सदा के लिये निष्कटक रूप से स्थापित हो जाय । [५४२-५४४]

महामोह की पूरी सेना को विषयाभिलाप मत्री के ये विचार युक्तिसगत प्रतीत हुए । उन्होने पूछा कि, इस प्रसग पर उन्हे विशेष रूप से क्या-क्या करना चाहिये ? उत्तर मे मत्री ने तत्काल करने योग्य सभी कार्य वता दिये ।

जव मैं अधिक प्रोत्साहित हो गया तव उन्ही के उपदेश से कर्मपरिणाम राजा द्वारा उस क्षेत्र मे स्थापित कार्मण वर्गणा मे से मैंने पाप नामक द्रव्य को प्रचर मात्रा मे ग्रहण किया । उन्ही लोगो ने मुझ से यह चोरी करवाई और उन्होंने फिर कर्मपरिणाम राजा के समक्ष मेरी शिकायत की । कर्मपरिणाम राजा ने आज्ञा दी कि 'मुझे अनेक प्रकार से पीड़ित करते हुए पापी-पिंजर मे ले जाया जाय और वहाँ तडफा-तडफा कर मार दिया जाय ।' राजा की आज्ञा से अधम कर्मचारी प्रसन्न हुए । फिर उन्होने मेरे शरीर पर कर्मरज की राख (भस्म) लगाई, राजस् सोनागेरु के छापे लगाये, तामस घास से पूरे शरीर पर काले तिल-तिलक बनाये, मेरे गले मे प्रबल रागकल्लोल-परम्परा नामक कनेर-मुण्डों की माला पहनाई, कुविकल्प-सतति रूपी कौडियो की दूसरी लम्वी माला पहनाई, मेरे सिर पर पापातिरेक नामक फूटी मटकी का ठीकरा छत्र के रूप मे रखा, मेरे गले मे अकुशल नामक पापकर्म की पोटली लटकाई, असदाचार नामक गधे पर विठाया और यम जैसे दुष्टाशय आदि मोहराजा के कर्मचारियो ने मुझे चारो ओर से घेर लिया । विवेकी लोग मेरी निन्दा करने लगे, कषाय नामक डिम्भ (वच्चे) मेरे चारो ओर हो-हल्ला करने लगे, शव्दादि इन्द्रिय-सभोग रूपी फूटे नगारो की कर्कश आवाजें होने लगी और बाह्य प्रदेश निवासी विलास नामक उपद्रवी मनुष्य अट्टहास द्वारा मेरी हसी करने लगे । महामोहादि राजाओ ने ऐसी विकृत आकृति मे देशदर्शन के बहाने मुझे पूरे महाविदेह के वाजार मे घुमाया और वधस्थल की ओर ले चले । इसी आकृति मे मुझे इस चित्तरम उद्यान के निकट लाया गया ।

इसी समय तुम लोगो ने मेरी सेना की आवाज सुनी और साध्वी महाभद्रा मेरे पास आई ।

इधर मैंने सेना को पीछे छोड़ दिया और राजवल्लभ तथा अपने विशेष पुरुपो के साथ मैं इस चित्तरम उद्यान में आया । मेरे सुन्दर हाथी पर से मैं इस उद्यान के रक्त अशोक के वृक्ष के नीचे उतरा ।* यह दिव्य उद्यान मुझे बहुत रमणीय

---

* पृष्ठ ७४३

लगा, अत इसे देखने के लिये, मैं आगे बढा। मेरे साथ के विनीत एवं चाटुकार राजपुत्र मुझे "देव ! देव" कहते हुए मधुर भाषा मे उद्यान की शोभा दिखा रहे थे तभी मैंने दूर से महाभाग्यशालिनि महाभद्रा को साध्वी मण्डल के साथ आते देखा। उन्होने गुरु महाराज से मुझे वधस्थल पर ले जाते हुए सुना था। करुणा से ओतप्रात होकर वे मेरे पास आ रही थी, अत. मै प्राकृतिक दृश्य देखना बन्द कर कीलित दृष्टि के समान निश्चल एकटक उनकी ओर देखने लगा। हे सुन्दरि ! यद्यपि साध्वी जी नि.स्पृह, महाभाग्यशालिनि और महासत्वशालिनि थी, तथापि पूर्व काल के अभ्यास से मेरे प्रति प्रेमालु वनी, आकर्षित हुई। मुझे देखकर, गुरुदेव के वचनो पर विचार करती हुई मेरे निकट आई और "मैं नरकगामी जीव हूँ" इस विचार से अत्यन्त करुणापूर्वक मुझे स्थिर दृष्टि से देखने लगी। [५४५–५५१]

जब मै गुणधारण के भव मे था तब महाभद्रा का जीव कन्दमुनि के रूप मे था और मेरा उनसे अच्छा सम्पर्क/परिचय था। उनके प्रति बहुमान करने का बारम्बार अभ्यास होने से, विनम्रता का नियन्त्रण होने से, हृदय मे दृढ स्वीकृति होने से, गौरव से अत्यन्त भावित हृदय होने से तथा प्रेमभाव का अनुष्ठान होने से मेरे मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि 'अहा ! ये भगवति साध्वी कौन होगी ? इन्हे देखते ही मेरा हृदय आह्लादित, नेत्र शीतल और शरीर शान्त हो गया है, मानो मै अमृत कुण्ड मे डुबकी लगा रहा हूँ।' इस विचार के साथ ही मैने साध्वीजी को शिर झुकाकर प्रणाम किया और उन्होने भी मुझे धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हुए कहा :—

नरोत्तम ! यह मनुष्य जन्म मोक्ष प्राप्त करवा सकता है। उन्मार्ग के पथ पर चल कर आप इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ गवा रहे है, यह उचित नही है। आपको तो किसी अन्य मार्ग पर ही चलना चाहिये था। आपके स्वय के कर्म/अपराध के कारण आपने चोर की आकृति धारण की है और आपको वधस्थल पर ले जाया जा रहा है तथा आपको अनेक प्रकार की भाव-विडम्बनाएँ दी जा रही हैं। फिर कैसा राज्य ? कैसा विलास ? कैसे भोग और कैसी विभूतियाँ ? इनमे शान्ति और स्वस्थता कहाँ है ? महाराज ! मनमे तनिक सोचिये ! [५५२–५५४]

इतना कहते हुए महाभद्रा मुझे गौर से देखने लगी। देखते-देखते ही उनके मन मे भी विचार उठने लगे। विचारो के फलस्वरूप उन्हे जातिस्मरण ज्ञान हो गया जिससे कन्दमुनि के समय से लेकर आज तक के सभी सम्बन्ध और अपने सभी पूर्व-भव याद आ गये। फिर शुभ अध्यवसायो के फलस्वरूप उन्हे उसी समय अवधिज्ञान भी उत्पन्न हो गया, जिससे मेरा पूर्व-चरित्र भी उन्होने देख लिया। फिर वे प्रवर्तिनि महाभद्रा मुझे समझाने लगी।

राजन् ! याद करो, जब तुम गुणधारण के भव मे थे तब मेरे समक्ष उच्च प्रकार की धार्मिक क्रियाएँ/लीलाये करते थे, क्या भूल गये ? फिर क्षान्ति आदि अन्तरग कन्याओ से लग्न कर सुख सुविधाओं से पूर्ण हो गये थे और अन्त में

भावराज्य को प्राप्त कर लिया था, क्या वह भी भूल गये ? निर्मलसूरि ने आपको बहुत उपदेश दिया था, सम्पूर्ण अनन्त भवचक्र समझाया था और कार्य-कारण सम्बन्ध भी बताया था, क्या वह भी याद नही रहा ? * अरे भाई ! आपको ग्रैवेयक आदि मे जो प्रचुरता से सुख प्राप्त हुए हैं, वह सब सदागम की शरण का ही प्रभाव था, क्या वह भी भूल गये ? अरे राजन् ! अब अधिक मोहित मत बनो, अभी भी समझो। तुम पर करुणा कर तुम्हे प्रतिबोधित करने के लिये यथार्थ बात समझाने के लिये ही मै तुम्हारे पास आई हूँ [५५५–५५९]

महाभद्रा साध्वी जब मुझे उपयुक्त बोध दे रही थी तभी सद्बोध मत्री सम्यग्दर्शन के साथ मेरे पास आने का प्रयत्न करने लगे। पर, उनका मार्ग अन्तरंग शत्रुओ से अवरुद्ध होने से तथा पूरा मार्ग अन्धकार से आच्छन्न होने से वे मेरे पास नही आ सके। उसी समय भगवती महाभद्रा के वचन रूपी सूर्य की किरणो से प्रेरित जीववीर्य नामक श्रेष्ठ सिंहासन सूर्यकान्ति के समान प्रकाशित हो गया। सिंहासन के प्रकाशित होते ही तमस् रूपी अन्धकार नष्ट हो गया और मेरी चित्तवृत्ति अटवी में दोनो सेनाओ का भयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। सद्बोधमंत्री और सम्यग्दर्शन सेनापति ने जैसे ही प्रकाश देखा वे युद्ध-तत्पर हो गये और उन्हे घेर कर रखने वाली शत्रु सेना को अपने सुसज्जित बल से एक ही हमले/झटके मे मार भगाया तथा वे दोनो मेरे पास आ पहुँचे। [५६०–५६४]

उपर्युक्त घटना अप्रत्याशित रूप से अत्यल्प समय में ही घटित हुई। सद्बोध और सम्यग्दर्शन के मेरे पास आते ही मेरे मन में तर्क-वितर्क उठने लगे और महाभद्रा के कथन पर मैं गहराई से विचार करने लगा कि 'भगवती महाभद्रा क्या कह रही है ?' ऊहापोह करते-करते मुझे जातिस्मरण ज्ञान हो गया, जिससे गुण-धारण के समय से सभी अवस्थाये स्मृति मे आ गईं। सद्बोध मत्री ने यद्यपि युद्ध जीत लिया था, फिर भी अन्दर ही अन्दर युद्ध चालू ही रखा। मेरे मन के उच्च प्रकार के अध्यवसाय बढते जा रहे थे, तभी सद्बोध के मित्र अवधिज्ञान ने अपने शत्रु अवधिज्ञानावरण को जीत लिया और मेरे पास आगया। इसके बल से मैं असख्यात द्वीप-समुद्रो को और ससार के भवप्रपच को देखने लगा। सिंहाचार्य के भव मे मैंने जो पूर्वो का ज्ञानाभ्यास किया था और बाद मे जिसे मैं भूल गया था वह सब स्मृति पटल पर आ गया। ज्ञान का आवरण हटते ही ज्ञान का अतिशय भी जाग्रत हो गया। निर्मलसूरि ने पहले मुझे जो आत्म ससार-विस्तार बताया था वह मेरी आँखो के सामने तैरने लगा। इस पर विचार करते-करते मुझे अपने असख्य भव-परिभ्रमण का वृत्तान्त चलचित्र के समान दृष्टिपथ मे आने लगा। इन सब को दृष्टि मे रखते हुए तथा मुझे प्रतिबोधित करने के कारणों से प्रेरित होकर सुललिता को सत्य दर्शन कराने और पुण्डरीक को वस्तुज्ञान कराने के लिये मुझे

* पृष्ठ ७४४

चोर का रूप धारण कर यहाँ आना पड़ा। अन्तरग मे जो विडम्बनाये चल रही थी उन्हे ही बाह्य रूप मे प्रकट करते हुए मैं महाभद्रा के साथ यहाँ आया।

हे सुललिता ! उसके पश्चात् मेरा क्या हुआ ? यह तो तू स्वय ही जानती है। तूने मुझे जो-जो प्रश्न पूछे उन सबका उत्तर मैंने दे दिया है।

भद्रे सुललिता ! तुम स्वय ही मदमजरी हो जिससे मेरे मन मे स्नेहतन्तु अधिक दृढ हुआ है। तुम अभी भी परमार्थ के रहस्य को नही समझ सकी हो, अत्यन्त भोली हो, इस विचार से मेरे मन मे करुणा उत्पन्न हुई है। सदागम/सर्वज्ञ देव के आगमो के प्रति सन्मान उत्पन्न होने से तेरे कठिन कर्मो का नाश होगा और तू भी प्रतिबोधित होगी, इसी विचार से इन महात्मा सदागम के चरण-कमलो की कृपा से मैंने मेरी विस्तृत आत्मकथा को सक्षेप मे तुम्हे सुनाया। तेरे हृदय मे सदागम के प्रति बहुमान उत्पन्न हो इस पद्धति से सक्षेप मे कहते हुए भी यह अनन्त कथा छः माह मे भी बडी कठिनाई से पूरी हो सकती है, जिसे मैंने सदागम की कृपा से तीन प्रहर मे (नौ घटे मे) सुनाई और पूरी कथा मे मैंने तुम्हे अगृहीतसकेता के नाम से सबोधित किया। इस प्रकार सवेग को उत्पन्न करने वाले मेरे सम्पूर्ण भव-प्रपञ्च को तेरे कुतूहल को शात करने के लिये कहते-कहते मेरे मन मे भी वैराग्य उत्पन्न हो गया है।

हे भद्रे ! ऐसी * मेरी अन्तरग चोरी और विडम्बनाये थी। मेरा और मुझ से सम्बन्धित अन्य लोगो का जैसा वृत्तान्त मैंने जाना और अनुभव किया, वैसा तुझे कह सुनाया।

---

१६. प्रमुख पात्रों की सम्पूर्ण प्रगति

१. अनुसुन्दर चक्रवर्ती का उत्थान

सुललिता सरल स्वभावी और सहृदया थी। उसके हृदय पर ससारी जीव की आत्म-कथा का, विशेषकर अनुसुन्दर चक्रवर्ती की कथा का प्रचुर असर हुआ और उसके हृदय मे प्रशस्त शुभ भावनाये उठने लगी। कुमार पुण्डरीक भी कथा के भावार्थ को थोडा-थोडा समझ गया था और वह अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था। अभी तक वह मौन था। अब उसने चोर की आकृति में उपस्थित अनुसुन्दर चक्रवर्ती से पूछा—

---

* पृष्ठ ७४५

आर्य ! इस समय आपकी चित्तवृत्ति मे कैसी भावना हो रही है ? आपकी चित्तवृत्ति का प्रवाह अभी किस दिशा मे बह रहा है ?

अनुसुन्दर की चित्तवृत्ति : दीक्षा-ग्रहण की इच्छा

कुमार का प्रश्न और जिज्ञासा समयोचित ही थी। चक्रवर्ती की अन्तरंग चित्तवृत्ति पर इन सब घटनाओ का क्या प्रभाव हो रहा था, यह जानने योग्य ही था। उत्तर मे अनुसुन्दर ने अपनी चित्तवृत्ति का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया। वह बोला :—

भद्र ! सुनो--जब अत्यन्त संवेग मे आकर मैंने तुम्हारे समक्ष अपनी कथा सुनानी प्रारम्भ की थी तब चारित्रधर्मराज ने अपने मन मे सोचा कि अब योग्य अवसर आ गया है, अतः वे अपनी सेना को लेकर मेरे निकट आये। मार्ग मे सात्विकमानस नगर आया उसे अपने पराक्रम से आनन्दित कर दिया, विवेक पर्वत को अत्युज्ज्वल बनाया, पर्वत के शिखर पर स्थित अप्रमत्तत्व क्षेत्र को देदीप्यमान बनाया और जैनपुर को फिर से बसाया। चित्तसमाधान मण्डप को फिर से स्वच्छ किया, नि.स्पृहता वेदी की मरम्मत कर सुसज्जित की और वेदी पर जाज्वल्यमान किरणो से सुशोभित जीववीर्य सिंहासन को पुनः प्रतिष्ठित किया। अपनी सेना को पूर्णरूपेण सतोष हो ऐसी व्यवस्था की। सेना को तैयार कर, दुर्गों को सुदृढ बनाकर चारित्रधर्मराज मेरे पास आये। मेरे पास आते हुए महामोह राजा की सेना से उनकी टक्कर हो गयी। [५६५–७१]

मेरी चित्तवृत्ति के एक रमणीय किनारे पर दोनो सेनाओ के बीच भयकर युद्ध हुआ। मैंने वह महायुद्ध आँखो से देखा, वह अवर्णनीय महायुद्ध था। उस समय मैंने सेनापति सम्यग्दर्शन, सद्बोध मत्री और चारित्रधर्मराज का पक्ष लिया, जिससे अन्त मे चारित्र-धर्मराज की जीत हुई। देखते ही देखते क्षणमात्र मे विपक्षी सेना के कई योद्धाओ को मार कर चारित्रधर्मराज ने जय-लक्ष्मी प्राप्त की। शत्रुसमूह का निष्पीडन कर उन्होने मेरे चिरन्तन अन्त.पुर को अपने अधीन किया, अपना राज्य स्थापित किया और मेरे निकट आये।

महामोह राजा के सेवको का सब कुछ लुट गया। यद्यपि वे बेचारे जैसे-तैसे जीवित थे, तदपि निर्बल और क्षीण होने पर भी वे चोरी से इधर-उधर छिप गये थे।

प्रिय पुण्डरीक ! मेरी चित्तवृत्ति की वर्तमान मे यह अवस्था है। शत्रु भाग गये है जिससे मेरे श्रेष्ठ बन्धु हर्षित है। अब मेरी यह इच्छा हो रही है कि सर्वज्ञ प्ररूपित और त्रिजगद्-वन्द्य मुनिर्लिंग/मुनिवेष को ग्रहण कर महान् आत्मदान करूँ और मेरे अन्तरग बन्धुओ का भली प्रकार पालन-पोषण करूँ। [५७२–५७८]

अनुसुन्दर का दीक्षा-महोत्सव

अपनी चित्तवृत्ति की अलौकिक आन्तरिक स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए चक्रवर्ती ने अपनी वैक्रिय लब्धि को वापस खीचना प्रारम्भ किया और देखते ही देखते चोर का रूप एवं उसे दण्डित करने के सब साधन यिलुप्त हो गये * तथा चकवर्ती के सब स्वाभाविक चिह्न प्रकट हो गये। उसी समय मत्री, सेनापति आदि भी उनके सन्मुख उपस्थित हो गये। उनके मन-मन्दिर मे चारित्रधर्मराज की स्थापना हो चुकी थी और वे दीक्षा के माध्यम से उन्ही का पोषण करना चाहते थे। उसने अपने विचार अपने मन्त्री, सामन्त और सेनापति को बताये। सब को उनका कथन अवसरोचित प्रतीत हुआ।

उसी समय अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने अपने पुत्र पुरन्दर को सभी राज्य-चिह्न सौंप दिये और सभी राजाओ, सामन्तो, श्रेष्ठियो, मत्रियो और सेनापतियो को बता दिया कि अब से उनका राजा पुरन्दर है। सभी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। सभी ने उस समय भगवान् की अभिषेकपूजा आदि समस्त करणीय धर्म-क्रियायें की।

श्रीगर्भ राजा भी उसी समय अपने अन्त पुर से निकले और वहाँ आ पहुँचे। उन्होने सभी का यथायोग्य विनय किया, सभी को प्रणाम किया। पुन धर्म परिषद एकत्रित हुई और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया।

२. सुललिता को प्रतिबोध

इस अत्युत्तम घटना से मुग्धा सुललिता का चित्त चमत्कृत हुआ। उसे अत्यधिक नवीनता लगी। कुमार पुण्डरीक को भी अत्यन्त सतोष हुआ और विस्मय से उसके नेत्र आनन्द से स्फुरित होने लगे। अनुसुन्दर जैसे चक्रवर्ती सम्राट् का अपनी अतुल राज्य-ऋद्धि का त्याग कर दीक्षा ग्रहण को तत्पर होना, सुललिता और पुण्डरीक के लिये आश्चर्यजनक और सतोषकारक ही था। [५७९–५८०]

सुललिता को उद्‌बोधन

चक्रवर्ती अनुसुन्दर ने समन्तभद्राचार्य से दीक्षा प्रदान करने का अनुरोध किया जिससे आचार्य उन्हे दीक्षा देने को तैयार हुए। उस समय अनुसुन्दर के मन मे सहसा राजपुत्री सुललिता के प्रति करुणा उत्पन्न हुई और उसने उसे समझाने का अन्तिम प्रयत्न किया। वह बोला—मुग्धा सुललिता ! तू अभी भी आश्चर्यान्वित

* पृष्ठ ७४६

दृष्टि से इधर-उधर देख रही है, तो क्या तुझे अभी भी वोध प्राप्त नही हुआ ? ऐसा लगता है कि तुझे थोड़ा-थोडा भावार्थ तो समझ मे आया है, पर अभी भी तेरा चित्त सत्य और बाह्य दृष्टि के बीच झूल रहा है। क्या तू ने अभी भी परमार्थ तत्त्व का निर्णय नही किया ? तुझे प्रतिवोधित करने के लिये ही मैंने अपने सम्पूर्ण भव-प्रपञ्च को तुझे सुनाया। यह चरित्र ससार से प्रकर्ष वैराग्य उत्पन्न करने वाला है, यह तो तेरी समझ मे आया ही होगा ? फिर भी क्या तुझे अनन्त दु.खो से परिपूर्ण इस संसार कैदखाने पर निर्वेद उत्पन्न नही होता ? [५८१–५८६]

तू विचार कर असंव्यवहार नगर मे जीवो को कैसी वेदना होती है, यह मैंने अपने अनुभव से उपमान/रूपक द्वारा तुझे विस्तारपूर्वक वताया। भोली! क्या तू अभी भी उस पीडा को नही समझी ? या तेरे हृदय मे उसका महत्त्व पूर्णरूप से अकित नही हुआ ! तू चिन्तारहित होकर ससार कारागृह मे क्या देखकर अनुरक्त हो रही है ? क्या यथार्थ वस्तुस्थिति और अपने वास्तविक स्वरूप का अभी भी तुझे भान नही हुआ ? [५८७–५८८]

मैं एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय आदि भवों मे और तिर्यञ्च गति मे दीर्घ काल तक भटका हूँ। उस समय मुझे कैसे-कैसे दु:ख उठाने पडे, उसका विशदरूप से स्पष्ट विवेचन तेरे सम्मुख किया, क्या उसका भावार्थ तेरे मानसपटल पर तनिक भी अकित नही हुआ ! हे मुग्धे ! फिर क्यो निश्चिन्त होकर विलम्ब कर रही है ? तुझे दु खो के प्रति सच्चा त्रास क्यो नही होता ? [५८९–५९०]

हे बाले ! मोक्ष साधन के योग्य अतुलनीय मनुष्य जन्म प्राप्त कर भी मैंने हिंसा और क्रोध मे आसक्त रहकर जिस दु ख-परम्परा का अनुभव किया है, क्या तूने अपने हृदय मे उसके बारे मे सोचा है ? क्या तूने उसके गूढ रहस्य और भावार्थ को अपने मन मे उतारा है ? या मात्र इसे कल्पित कथा ही समझी है ? तुझे कथा के भीतर रहा हुआ भाव भी कुछ समझ मे आया है या काल्पनिक वार्ता (उपन्यास) पढने जैसा आनन्दाश्चर्य ही हुआ है ? [५९१–५९२]

मुझे मान और मृषावाद से कैसी पीडा सहन करनी पडी, चोरी और माया से कितनी व्यथाये हुई, लोभ और मैथुन मे अन्धा बनकर * मैंने जिन यातनाओं को सहन किया, उन सब को सुनकर भी क्या तेरा मन नही पिघला ? हे मुग्धे ! यदि ऐसा ही है तो तेरा मन वज्र का बना हुआ और कालसर्प-ग्रसित होना चाहिये। [५९३–५९४]

मैंने अपने अनुभव से तुझे बताया था कि महामोह और परिग्रह महान अनर्थ के कारण है और ये सभी दोषो के आश्रय स्थान है। अनुभव-सिद्ध अपनी इतनी विस्तृत आत्मकथा सुनाने पर भी तू मात्र विस्मित नेत्रो से देख रही है और उससे कुछ भी वोध प्राप्त नही करती, उसके भीतरी आशय को भी नही

---

* पृष्ठ ७४७

समझती ? इससे ऐसा लगता है कि सचमुच तू अगृहीतसकेता ही है । तूने अपना नाम सार्थक कर दिया है । ऐसा मैंने पुन. पुन: कहा । [५९५–५९६]

हे भद्रे ! याद कर, स्पर्शन आदि इन्द्रियो का परिणाम कैसा अतिदारुण होता है ? यह मैंने क्रमश. बाल, मन्द, जड, अधम, बालिश आदि के चरित्रो मे तुझे विस्तार पूर्वक बताया है, तब भी तेरे हृदय मे यह बात नही चुभी ? यदि तू इतनी स्पष्ट बात भी नही समझ सकती तो हे सुन्दरि ! तू एकदम मूर्ख, अज्ञानी और लकड़ी की मूर्ति जैसी ही है । [५९७–५९८]

इन्द्रियो को वश मे करने के लिये मनीषी ने जैसा आचरण किया, विचक्षणाचार्य ने जैसे वचन कहे, बुधसूरि ने जो उपदेश दिया, उत्तमकुमार ने जैसा आचरण किया और कोविदाचार्य ने जो विज्ञान बताया, यह सब जान-सुनकर किसे ससार से वैराग्य नही होगा ? कौन इससे दूर भागने को तत्पर नही होगा ? [५९९–६००]

हे भद्रे ! तुझे प्रतिबोधित करने के लिये ही मैने चित्तवृत्ति मे स्थित अन्तरग दोनो सेनाओ का स्वरूप बताया । एक सेना तेरी शत्रु है तो दूसरी तेरी बन्धु । इन दोनो सेनाओ मे निरन्तर लडाई होती रहती है, यह सब सुनकर भी तुझे बोध नही होता, फिर तो तुझे समझाने का कोई उपाय ही शेष नही है । [६०१–६०२]

हे बाले ! कनकशेखर और नरवाहन की सज्जनता, विमलकुमार का निर्मल शुद्ध चरित्र, हरिकुमार राजा का विस्मयकारक त्याग, अकलक का प्रशस्त विवेक और मुनियो के वैराग्योत्पादक अनेक रूप जानकर भी यदि तेरे हृदय पर असर नही होता तो वह कोरडा (कठोर मू ग) जैसा ही है, इसमे तनिक भी सदेह नही । अत. यदि तुझे कोई मेरे जैसा पुन - पुन. अगृहीतसकेता कहे तो हे मुग्धे ! तुझे रोष नही करना चाहिये, नाराज नही होना चाहिये । सचमुच तू उस नाम के योग्य ही है, ऐसा तेरे आचरण से ज्ञात हो रहा है । [६०३–६०७]

बाले ! जब तू स्वय मदनमजरी थी तब पुण्योदय आदि तुझे मेरे पास ले आये थे । उस समय पुण्योदय ने तुझे कितना लाभ पहुँचाया, क्या तू वह भी भूल गई ? स्वय तेरे द्वारा अनुभूत और समझाये गये सभी सन्दर्भ/प्रसग क्या तुझे याद नही ? उस समय के राज्य-सुख, मनोहर विलास और आनन्द को तू स्मरण तो कर । कन्दमुनि के सम्पर्क/प्रसग से कुलन्धर के साथ तुझे जिन-शासन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई, तू प्रबुद्ध हुई और तेरा उत्थान प्रारम्भ हुआ । फिर केवलज्ञानी निर्मलाचार्य ने * हम दोनो के सन्मुख ससार के प्रपञ्च को स्पष्ट शब्दो मे समझाया था, क्या यह भी तू भूल गई ? क्या उस समय तुझे कुछ भी बोध नही हुआ था ? यह सब तुझे फिर से याद दिला रहा हूँ तब भी तू शून्यचित्त होकर चुपचाप कैसे बैठी है ? हे बाले ! तुझे प्रतिबोधित करने, जागृत करने और सत्य-स्वरूप को समझाने के लिये मैंने पुन. इस भव-प्रपञ्च को तुझे सुनाया है । मैंने तुझे बताया है

* पृष्ठ ७४८

कि एक यात्री जैसे अन्य-अन्य स्थानो पर भिन्न-भिन्न भवनो मे निवास करता है, वैसे ही मेरा वास्तविक स्वरूप (आत्मस्वरूप) एक रूप होने पर भी यात्री की भाति मैंने विविध भव प्राप्त किये। पथिक के समान मै ससारी जीव हूँ। वस्तुत. भाव से एकरूप होनेपर भी इस ससार नाट्यशाला मे मैंने नये-नये रूप धारण किये और अनेक प्रकार के पात्रो का नाटक किया। यह सब सुनकर भी तुझे इस ससार-बन्दीगृह से निर्वेद नही होता, तब मैं क्या करूँ ? [६०८–६१६]

भद्रे ! अन्तरग के अनेक नगर, राजा और रानियो के नाम तुझ बताये और उनकी दस कन्याओ के नाम भी बताये। प्रत्येक के गुण कितने दिव्य, अद्भुत और अन्यत्र अप्राप्त हैं यह भी बताया। इनके विवाह का वर्णन भी किया और तुझे व्युत्पन्न करने (समझाने) के लिये अष्ट मातृका का वर्णन भी किया, यह सब सुनकर भी हे बालिके ! तुझे बोध नही हुआ, तेरे हृदय मे जागृति नही आई और तुझे संसार से वैराग्य नही हुआ, तो तू पत्थर जैसी है। तुझे इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है ? [६१७–६१९]

हे मुग्धे ! मेरे स्नेह से बंधी हुई तूने भी निर्मलाचार्य के पास दीक्षा ली थी, तपस्या कर स्वर्ग मे गई थी और वहाँ अनेक प्रकार के सुख भोगे थे। फिर भवचक्र मे भटकती हुई यहाँ आई, क्या तुझे कुछ भी याद नही है ? [६२०–६२१]

सम्यग्दर्शन को दोपी बताकर तीर्थंकर महाराजा की आज्ञा का उल्लंघन कर, उनकी आशातना कर मैंने अत्यधिक दु ख प्राप्त किये और अर्धपुद्गल-परावर्तन से कुछ कम समय तक मैं ससार मे भटका, यह सब कथा तुझ मे सवेग जागृत करने के लिये ही मैंने कही, पर क्या तू ने उस पर ध्यान दिया ?

याद कर, एक बार मैंने चौदह पूर्व तक का अध्ययन कर लिया था, पर अभिमान के दोप से पुन. अनन्तकाय आदि मे बहुत समय तक भटका। इतनी विद्वत्ता होने पर भी भटकना पड़ा, इस पर थोड़ा विचार तो कर ! ऐसी आश्चर्यजनक वार्ता सुनकर भी क्या तेरा मन चमत्कृत नही हुआ ? अरे ! ऐसी सच्ची और प्रत्यक्ष मे अनुभूत बाते तुझे सुनाई जिनमे से कुछ का तो तूने स्वय अनुभव किया है। फिर भी यह तो अद्भुत बात है कि तू सवेग-रहित के समान ही दिखाई दे रही है। मैंने तुझे जो कुछ कहा, उस पर सूक्ष्म बोध पूर्वक विचार कर, मनन कर और उसके अन्दर के भावार्थ को पुन – पुन समझ। हे बालिके ! तू घबरा मत, मोह मे मत पड़, सार को समझ और अब धर्माराधन मे देर मत कर। जब तू ऐसा करेगी तभी मेरा सारा प्रयत्न सफल होगा और अपनी आत्मकथा सुनाने मे जो परिश्रम मैंने किया है उसका भी मुझे फल प्राप्त होगा। [६२२–६२७]

३. पुण्डरीक को बोध

इतना कहकर अनुसुन्दर चक्रवर्ती चुप हो गये। पुण्डरीक राजकुमार जो वहीं बैठा-बैठा अनुसुन्दर की बात सुन रहा था वह बात के समाप्त होते ही मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। अचानक यह क्या हो गया ? इस विचार से सारी

सभा सम्भ्रान्त हो गई और कुमार के पिता श्रीगर्भ राजा तो पूर्णतः आकुल-व्याकुल हो गये । अरे पुत्र ! तुझे क्या हो गया ?* कहती हुई कुमार की माता कमलिनी कापने लगी । हवा करने पर धीरे-धीरे कुमार की मूर्छा दूर हुई और उसमे चेतना आने लगी ।

चेतना प्राप्त होते ही उत्फुल्ल लोचन होकर कुमार ने श्रीगर्भ राजा से कहा—पिताजी ! आपके यहाँ आने के पहले इन अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने अपनी वास्तविक स्थिति के अत्यन्त विरुद्ध चोर का रूप धारण किया था और अपनी सम्पूर्ण आत्मकथा सुनाते हुए बताया था कि उन्हे किन-किन कारणो से ससार मे भटकना पडा था । कथा सुनकर भी मुझे बोध नही हुआ था । मैने सोचा था कि विशाल प्रज्ञायुक्त (प्रज्ञाविशाला) देवी महाभद्रा से इस कथा के आन्तरिक रहस्य के सम्बन्ध मे पूछूगा । इसी बीच आप पधारे । परिषद् मे पुन. चक्रवर्ती अनुसुन्दर ने सुललिता को अनुशासित/प्रेरित/प्रतिबोधित करने के लिये कथा का कुछ भावार्थ सक्षेप मे सुनाया, जिसे सुनकर मेरा मन अकथनीय रूप से प्रमुदित हुआ । इस अवर्णनीय प्रमोद से मुझे सहिष्णुभाव प्राप्त हुआ, अन्तर मे चैतन्य जागृत हुआ जिससे मुझे मूर्छा आ गई । पर, इसी समय मुझे जाति-स्मरण ज्ञान हो गया । मुझे ध्यान आया कि पूर्व भव मे मै स्वय कुलन्धर था और ससारी जीव (गुणधारण) का अभिन्न मित्र था । उस समय निर्मलाचार्य ने इस अनुसुन्दर चक्रवर्ती का जो विस्तृत भव-प्रपच सुनाया था वह मैने भी सुना था । चक्रवर्ती ने चोर के रूप मे अभी जो अपनी आत्मकथा सुनाई यह वही थी जो निर्मलाचार्य ने सुनाई थी । यह सब स्मृति पथ मे आते ही मेरे मन का सदेह दूर हो गया और उसी समय मुझे इस ससार-वन्दीगृह से विरक्ति पैदा हो गयी । पिताजी ! अब आप मुझे आज्ञा दे ताकि मैं भी अनुसुन्दर के साथ ही दीक्षा ग्रहण करूँ ।

श्रीगर्भ और कमलिनि का दीक्षा-ग्रहण का निश्चय

पुत्र को दीक्षा की आज्ञा माँगते देखकर कमलिनि देवी तो एकदम रो पडी । श्रीगर्भ राजा ने पत्नी से कहा—देवि ! क्यो रोती हो ? याद करो —

स्वप्न मे तुमने एक पुरुष को मुख से प्रवेश करते और फिर बाहर निकलते देखा था । वही स्वप्न वाला उत्तम पुरुष यह पुण्डरीक है । यह महान् उत्तम गुणो से सम्पन्न है, शुद्ध धर्म का प्रसाधक है और मगल/कल्याण का भाजन है । भविष्य मे इसका उत्कृष्ट कल्याण/मगल होने वाला है, अत. इसे रोकना उचित नही है । मेरे विचार से तो अपने सत्य स्नेह/निष्काम प्रेम को प्रकट करने के लिये हमे भी इसी के साथ दीक्षा ले लेनी चाहिये । देवि ! अभी यह छोटी उम्र का है, भोग-सुख भोगने के योग्य है, फिर भी धर्म पथ पर आरुढ हो रहा है, तब हमारे जैसे वृद्धो का तो ससार-वदीगृह मे पड़े रहना कैसे उचित कहा जा सकता है ?

---

* पृष्ठ ७४६

राजा का विचार सुनकर रानी कमलिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई, हर्षावेश मे गद्-गद् वाणी से बोली—आर्य-पुत्र ! आपने बहुत ठीक कहा, मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार्य है।

इस प्रकार दोनो ने पुण्डरीक को दीक्षा की आज्ञा दी और उसी समय श्रीगर्भराजा और कमलिनी रानी ने भी दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय कर लिया। [६२८–६३२]

सुललिता को विषाद : प्रश्न

अनुसुन्दर के हृदयवेधी भाषण से राजपुत्री सुललिता का हृदय बिन्ध गया। पुण्डरीक और उसके माता-पिता के दीक्षा-तत्पर होने पर तो वह और भी सभ्रमित हो गई। उसमे सवेग उत्पन्न हुआ और उसने महाभद्रा साध्वी से हाथ जोडकर आक्रोश और विषाद के साथ कहा—देवि ! मैने पूर्व मे ऐसा क्या कठोर पाप किया कि मैं ऐसी हो गई। देखिये ! यह पुण्डरीक तो घटना के समय उपस्थित था, मात्र कथा सुन रहा था, जो न तो इसे उद्देश्य कर और न इसे बोध देने के लिये ही कही गई थी तब भी क्षणमात्र मे यह कथा के अन्तरग भावार्थ को समझ गया। सचमुच यह राजपुत्र धन्य है ! महाभाग्यशाली अनुसुन्दर ने अत्यन्त आदर पूर्वक मुझे उद्देश्य कर विस्तार पूर्वक कथा सुनाई, फिर भी मुझ भाग्यहीना को न तो कथा का भाव ही समझ मे आया और न बोध ही प्राप्त हुआ। मैं पशु की भाति गुमसुम बैठी रही।* अनुसुन्दर के एक वाक्य से इन तीनो भाग्यशालियो का ससार-सम्बन्ध भेद-ज्ञान पूर्वक छूट गया, पर मै तो ग्राम्यजनो के समान अन्धी जैसी शून्य बनी रही और इनके स्पष्ट बोध का वास्तविक लाभ मुझे अभी तक प्राप्त नही हुआ। हे भाग्यशालिनि ! आश्चर्य है कि जिसके लिये प्रयत्न किया गया उसे उसका लाभ नही मिला। मुझे लगता है कि इसमे कुछ गूढ रहस्य होना चाहिये। देवि ! यदि आप जानती हो तो आप बताइये, अन्यथा सदागम से पूछकर बताइये कि किस पाप के उदय से मुझे बोध नही हो रहा है ? [६३३–६४१]

सुललिता का समाधान

इतना कहते-कहते सुललिता की आँखो मे आँसू आ गये। उसके हृदय की अवस्था को देखकर अनुसुन्दर को दया आ गई। उसने कहा—(६४२)

मुग्धा सुललिता ! यदि तुझे अपने पूर्व पाप के बारे मे जानने की जिज्ञासा है तो मै बता देता हूँ, इसके लिये देवी महाभद्रा को कष्ट देने की आवश्यकता नही है।

सुललिता—आर्य ! यदि आप ऐसा करे तो बडी कृपा होगी। आप ही बताये।

अनुसुन्दर—सुनो, जब मै गुणधारण था तब मैने दीक्षा ली थी। उस समय तू मदनमजरी थी। तुझे भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और मेरे साथ तुमने भी

---

* पृष्ठ ७५०

दीक्षा ली । फिर तुमने क्रिया-कलापो का अभ्यास किया और अनेक प्रकार के तप किये । उस समय तुम्हारे चित्त मे एक दुर्बुद्धि पैदा हुई कि जो कुछ किया जाय उसके विषय में अधिक प्रचार/कोलाहल क्यो किया जाय ? इसके फलस्वरूप तुम्हे स्वाध्याय की शब्दध्वनि भी अच्छी नही लगती, नयी वाचना लेने (पाठ सीखने) की रुचि नही होती, प्रश्न पूछना अच्छा नही लगता, परावर्तना/पुनरावृत्ति करना लक्ष्य मे नही रहता, अनुप्रेक्षा/अभ्यास के विषय पर चर्चा करना भी अच्छा नही लगता और धर्मोपदेश देना या सुनना भी अच्छा नही लगता। फलत. तुम्हारा प्रचला (निद्रा) पर राग होने लगा, अभ्यास के प्रति उद्वेग होने लगा जिससे तुझे मौन रहना अच्छा लगने लगा । इतना अच्छा हुआ कि तुझे तीव्र अभिनिवेश (दुराग्रह) नही हुआ, जिससे तू ज्ञानाभ्यास करने वालो की विरोधिनी नही बनी । शास्त्राभ्यास करने वालो की बाधक या विघ्नकारक न बनी और उनके प्रति द्वेष नही रखा । धर्मशिक्षक गुरुओ के नाम को नही छिपाया और कोई बडी आशातना नही की । फिर भी कुबुद्धि के कारण ज्ञान के प्रति तुझ मे शिथिलता आई और प्रवृत्ति मे प्रमाद आने से तूने ज्ञान की थोडी आशातना की । इसके परिणामस्वरूप तूने ऐसा कर्म बाँधा कि ससार-चक्र मे असख्य काल तक भटकती रही और जड बुद्धि वाली बनी । जैसे-जैसे कर्म किये जाते हैं वैसे-वैसे ही कर्म बँधते है । उपेक्षा का भी फल प्राप्त होता है । हे सुललिता ! प्राय: प्राणी के भाव पूर्व-भव के अभ्यास से अनुसार ही बनते है । इस भव के भावो का पूर्व-भव के अभ्यास के साथ कितना गाढ सम्बन्ध होता है यह तू स्वय अपने पूर्व-भव के अभ्यास से जान सकती है । जैसे मदनमजरी के भव मे तू पुरुषद्वेषिणी थी, अत इस भव मे भी तुम पुरुषद्वेषिणी बनी । तुम्हारी सखियो ने जब देखा कि तुम ब्रह्मचर्य पर अधिक प्रेम रखती हो तब वे तुम्हे ब्राह्मणी कहने लगी । अब इन सब बातो से तुम्हारे मन मे कुछ मेल-मिलाप हुआ या नही ?

सुललिता—'आर्य ! आपके वचनो मे ऐसी कौनसी बात हो सकती है जिसका मिलन मन मे न होता हो ? आपका कथन सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट होता है, फिर भी मै निर्भागिनी उल्लू की तरह मूर्ख बनी खडी हूँ । आपका कथन इतना स्पष्ट होने पर भी मुझ दुर्भागिनी पर उसका कोई असर नही होता ।'* कहते हुए उसके नेत्रो से स्थूल मुक्तामाल के समान अश्रुओ की झडी लग गई । उसके रुदन और पश्चात्ताप से ऐसा लगने लगा जैसे उसे धर्म के प्रति लागणी पैदा हो गई हो ।

सदागम की शरण

सुललिता की मनोदशा को समझ कर अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने कहा—राजकुमारी ! अब विषाद छोडो । तुमने ज्ञान की थोडी-सी आशातना कर जो कर्म

* पृष्ठ ७५१

बांधा था, वह अब क्षीण हो चुका है। अब भगवान् सदागम की भक्ति करो, उनकी शरण में जाओ। प्राणियों के तत्त्वज्ञान का मूल सदागम की आराधना ही है। जैसे-जैसे सदागम की आराधना अधिक होगी वैसे-वैसे तत्त्वज्ञान में अधिकाधिक वृद्धि होगी। अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करने के लिये भगवान् सदागम सूर्य के समान है। तुम इनके चरण-कमलों मे आ पहुँची हो अतः तुम सचमुच भाग्यशालिनी हो।

अनुसुन्दर के वचन सुनकर, जैसे पवन लगने से अग्नि की ज्वाला भभक उठती है वैसे ही सुललिता के हृदय मे तीव्र संवेग रूपी अग्नि ज्वाला अधिक प्रज्वलित हुई। 'भगवान् समन्तभद्राचार्य स्वयं ही सदागम हैं' यह जानकर वह केवली भगवान् के चरणो मे झुकी और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक बोली—

हे जगत् के नाथ! महात्मा सदागम! अज्ञान रूपी कीचड मे फसी हुई मुझे बाहर निकालने मे आप ही समर्थ हैं। हे महाभाग! मुझ निर्भागिनी को शरण देने वाले आप ही हैं। आप ही मेरे स्वामी है, मेरे पिता हैं, मेरे सर्वस्व है। हे नाथ! इस सेविका को अब कर्म-मल से रहित कर विशुद्ध कीजिये। [६४३-६४४]

सुललिता को जाति-स्मरण ज्ञान

सदागम के सन्मान का अतिशय प्रभाव होने से, संवेग अधिक गहरा होने से, हृदय सरल होने से, भगवान् का महा कल्याणकारी सामीप्य होने से और उसका मोक्ष निकट होने से उसके कर्म का विशाल जाल पश्चात्ताप के प्रवाह मे वह गया। भगवान् के चरणो को अपने अश्रुओ से सिंचित करते हुए ही उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। मदनमञ्जरी आदि के भवो मे जो कुछ घटित हुआ था और जिसका वर्णन अनुसुन्दर ने अभी-अभी किया था वह सब उसे चलचित्र की भाति प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। उसके चित्त मे अधिक प्रमोद जागृत हुआ और वह उठकर अनुसुन्दर के चरणो मे गिर पड़ी।

अनुसुन्दर—सुललिता! यह क्या ?

सुललिता—आर्य! भगवत् कृपा से जो होता है वह मुझे भी अभी-अभी प्राप्त हुआ है। भगवान् की कृपा से अभी-अभी मुझे भी जाति-स्मरण ज्ञान हो गया है जिससे आपके कथन पर मुझे निर्णय एवं विश्वास हुआ है। परिणाम स्वरूप अब मैं भी संसार-बंदीगृह से छूटना चाहती हूँ, विरक्त हो गई हूँ। इस भाग्यहीन बालिका पर आपने और भगवान् सदागम ने आज बहुत उपकार किया है।

अनुसुन्दर—बालिके! यह निःसंदेह बात है कि भगवान् सदागम अपने भक्त पर अवश्य उपकार करते है। तुझे ज्ञात ही है कि भाव-चोरी करते हुए मैं पकड़ा गया था और नरक की ओर जा रहा था, उससे मुझे अभी-अभी भगवान् ने ही छुडाया है। पापी प्राणी भी सदागम को प्राप्त कर उनकी भक्ति करे तो वे अवश्य ही पाप से मुक्त होते हैं, यह संशय-रहित है। हे भद्रे! तुझे अति कठिनाई से बोध

हुआ, इससे घबराना नही चाहिये। चित्त मे हीन भावना या मैं मन्दभाग्या हूँ ऐसा नही सोचना चाहिये। पहले मै जब विपरीत मार्ग पर चल रहा था और अकलक आदि मुझे सीधे मार्ग पर लाने का प्रयत्न कर रहे थे तब प्रबल पापाधिक्य के कारण मुझ पर कोई प्रभाव नही हुआ था। जब मेरे पाप कर्म कम हुए और मैं अपनी योग्यता को प्राप्त हुआ तब जिनशासन मे प्रतिबोधित हुआ। इसमे मुझे तो तुझ से भी अधिक कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ी। सक्षेप मे, काल आदि हेतुओ के प्राप्त होने पर जब प्राणी के पाप नष्ट होते है तभी उसे बोध होता है और वह सन्मार्ग पर आता है। गुरु तो मात्र * सहकारी कारण और निमित्त बनते हैं।

[६४५-६५०]

सुललिता—आर्य ! आपका कथन सत्य है। मेरे मन मे जो दुर्भावना और शका पैदा हुई थी उन सब का अब नाश हो गया है। पर, मैंने पहले ऐसा निश्चय किया था कि 'माता-पिता की आज्ञा बिना दीक्षा नही लू गी' उस विषय मे अब मैं क्या करू ?

अनुसुन्दर—आर्ये ! घबराने की आवश्यकता नही। देख, तेरे माता-पिता भी यहाँ आ पहुँचे हैं।

४. सात दीक्षायें

मगधसेन-सुमंगला का आगमन

अनुसुन्दर की बात समाप्त होते-होते उद्यान के बाहर प्रबल कोलाहल होने लगा। थोडे ही समय मे मनोनन्दन जिन मन्दिर मे सुललिता के पिता राजा मगधसेन और उसकी माता सुमगला ने परिवार के साथ प्रवेश किया। सब ने जिनेश्वर भगवान्, आचार्य एवं साधुओ को नमस्कार किया। सुललिता ने भी उठकर अपने माता-पिता को नमन किया। फिर मगधसेन राजा ने अनुसुन्दर चक्रवर्ती को प्रणाम किया और सभी अनुसुन्दर के समीप बैठ गये। सुमगला ने भी सब को प्रणाम किया अपनी पुत्री सुललिता से मिलकर उसका मस्तक चूमा और उसके पास ही बैठ गयी। फिर हर्षावेग से गद्‌गद् होकर पुत्री से कहा—

---

* पृष्ठ ७५२

पुत्रि ! तुझे बहुत दिनो से नही देखा, अतः तुझे देखने की इच्छा से हम राज्य छोडकर यहाँ आये हैं। हे वत्से ! तेरे पिता को तो तेरे विना चैन ही नही पड़ता और मेरा हृदय तो तेरे स्नेह को लेकर निरन्तर दग्ध होता रहता है। तेरा हृदय कितना कठोर और निर्दय है कि तूने इतने दिनो से अपने स्वास्थ्य और कुशल-क्षेम के सम्बन्ध मे किसी के साथ समाचार भी नही भिजवाये। [६५१–६५३]

सुललिता का दीक्षा के लिये उद्यम

सुललिता—माताजी ! अधिक कहने की क्या आवश्यकता है ? आपका मुझ पर कितना स्नेह और सद्भाव है यह तो अभी प्रकट हो जायेगा। आपकी आज्ञा प्राप्त कर मै अभी पारमेश्वरी जैनमत की प्रव्रज्या लेना चाहती हूँ। यह दीक्षा अद्भुत लाभ प्राप्त कराने वाली और ससार-सागर से पार उतारने वाली है। इस समय न केवल आप मुझे दीक्षा लेने से रोकेगी, अपितु आप दोनो भी मेरे साथ निर्विकल्प होकर भागवती दीक्षा ग्रहण करेगे तो आपका मुझ पर जो स्नेह, सद्भाव है वह सर्व लोगो के समक्ष प्रकट हो जायेगा। अपने सच्चे प्रेम को प्रकट करने का यह अपूर्व अवसर है और मुझे विश्वास है कि आप अपने स्नेह को अवश्य प्रकट करेंगे। [६५४-६५७]

मगधसेन और सुमंगला की उच्च भावना

भोली सुललिता के मुख से ऐसा अलौकिक उत्तर सुनकर राजा मगधसेन अति हर्षित हुए एव विचारमग्न हो गये। पर, तुरन्त निश्चय कर सुमगला से बोले—देवि ! पुत्री ने तो हमारा मुह बन्द कर दिया है, हमे प्रारम्भ मे ही निरुत्तर कर दिया है। यह तो बहुत भोली थी, पर लगता है अब यह परमार्थ को समझने लगी है, अन्यथा ऐसा समयानुसार वचनविन्यास (वाणी) कैसे करती ? मेरा मानना है कि इसका वर्तमान निर्णय अयोग्य नही है। इसने ठीक ही कहा है, हमें भी इसके साथ दीक्षा ले लेनी चाहिये। इसी प्रकार इसके प्रति हमारा वास्तविक स्नेह प्रकट हो सकेगा। वैसे भी हम तो अब उम्र के अन्तिम छोर पर पहुँच गये है।

सुमगला—जैसी आपकी आज्ञा।

माता-पिता की बात सुनकर सुललिता अत्यन्त हर्षित हुई। माता-पिता का आभार प्रदर्शन करती हुई उसने उनके चरण छुए। फिर उनको सक्षेप मे अनुसुन्दर चक्रवर्ती आदि का वृत्तात सुनाया और यह बताया कि उसकी दीक्षा लेने की इच्छा कैसे हुई। * सुनकर माता-पिता अत्यधिक सन्तुष्ट हुए और उनके मन मे भाव-दीक्षा लेने के विचार उत्पन्न हुए। वे दोनो आचार्य के पास आये और अपनी दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। आचार्य ने भी उनके विचारो का अनुमोदन किया।

---

* पृष्ठ ७५३

दीक्षायें

अनुसुन्दर आदि की दीक्षा के अवसर पर मनोनन्दन उद्यान क्षणमात्र मे अनेक भव्य प्राणियो और मुनि महात्माओ से खचाखच भर गया। महान् आनन्दोत्सव होने लगा। आकाश से देवता भी नीचे उतरने लगे जिससे चारो ओर प्रकाश फैल गया। शहनाइयो और वाद्यो के स्वर और नाद से भुवन का मध्यवर्ती भाग सकीर्ण हो गया, अर्थात् उद्यान और मन्दिर का कोना-कोना गू ज उठा। अनेक प्रकार की वृहत् पूजाओ और सत्कार से उद्यान सुशोभित होने लगा। इस प्रसग पर अनेक भव्य प्राणी विविध प्रकार के दान दे रहे थे, परस्पर सन्मान कर रहे थे, सद्गायन गा रहे थे और करणोचित वैधानिक कार्यो का सम्पादन कर रहे थे। [६५८–६६१]

उसी समय मगधसेन राजा ने रत्नपुर का और श्रीगर्भ राजा ने शखपुर का राज्य भी अनुसुन्दर के पुत्र पुरन्दर को सौप दिया। राज्यकार्य चलाने की सारी व्यवस्था कर, तुरन्त अन्य अवसरोचित सभी कार्य पूर्ण किये।

पश्चात् समन्तभद्राचार्य ने अनुसुन्दर, पुण्डरीक, उसके माता-पिता, श्रीगर्भ और कमलिनी, सुललिता, उसके माता-पिता सुमगला और मगधसेन इन सातो व्यक्तियो को विधिपूर्वक भागवती दीक्षा प्रदान की। फिर उन्होने इन सब को सयम मे स्थिर करने के लिये अमृतोपम मधुर वाणी मे सवेग-वर्धक सद्धर्मदेशना दी। इसे सुनकर सभी लोग आनन्दित हुए। सब के मन मे शुभ भावो की वृद्धि हुई। तत्पश्चात् सभी अपने-अपने स्थान पर और देवता स्वर्ग मे चले गये। [६६२-६६५]

उपदेश समाप्त होने पर महाभद्रा आदि साध्वियाँ भी आचार्यप्रवर की आज्ञा लेकर अपने उपाश्रय मे चली गईं।

यह सब महोत्सव देखकर सूर्य ने सोचा कि वह तो आचार्यश्री के उपदेशानुसार करने मे असमर्थ है, अत· लज्जा के मारे वह अन्य द्वीप मे जाकर छिप गया (सूर्यास्त हो गया)।

सभी साधु अपनी आवश्यक क्रियाये (सामायिक, प्रतिक्रमण, वन्दन आदि) करने लगे। फिर स्वाध्याय और ध्यान मे मग्न हो गये। इस प्रकार रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो गया। [६६६-६६८]

अनुसुन्दर का स्वर्गगमन

उस समय अनुसुन्दर राजर्षि को मन मे अत्यन्त सतोष हुआ, अत्यन्त शान्ति हुई, कर्त्तव्यपूर्णता के मार्ग पर आने की प्रशस्त स्थिति का भान हुआ और अपना अहोभाग्य मानकर एकान्त मे ध्यान-मग्न हो गये। उनकी लेश्याये अधिक विशुद्ध होती गई और उपशम श्रेणी पर चढकर वे उपशान्त मोह गुणस्थान पर आरूढ हो गये। आचार्यप्रवर द्वारा जब अन्य मुनियो को ज्ञात हुआ कि अनुसुन्दर का मरणकाल निकट आ गया है, तब सभी उनके पास आ गये और उन्हे समाधि उत्पन्न करने

ग्रौर जागृत करने हेतु ग्रन्तिम ग्राराधना कराने लगे। उसी समय उनका ग्रायुष्य पूरा हुग्रा ग्रौर उनकी ग्रात्मा इस शरीर रूपी पिंजरे को छोड़कर सर्वार्थसिद्धि विमान में पहुँच गई, जहाँ वे तेंतीस सागरोपम की ग्रायुष्य वाले महान ऋद्धि वाले देवता बने।

दूसरे दिन इसका पता लगने पर चतुर्विध श्रमण संघ वहाँ एकत्रित हुग्रा। राजर्षि ग्रनुसुन्दर के मृत शरीर का विधिपूर्वक संस्कार कर परित्याग किया ग्रौर मनुष्यो तथा देवताग्रो ने उनकी पूजा की।

सुललिता का शोक-निवारण

सुललिता को एक ही दिन मे ग्रनुसुन्दर पर ग्रत्यधिक राग हो गया था। विशुद्ध धर्म का यथार्थ बोध कराने वाले इस महापुरुष के गुण ग्रभी उसके हृदय मे स्थिर हो रहे थे ग्रौर पूर्वकाल के दीर्घ ग्रभ्यास के स्नेह-तन्तुग्रो का जाल ग्रभी टूटा नही था। उनके उपकार के बोझ से दबी हुई ग्रौर ससार से ग्रभी-ग्रभी विरक्त हुई सुललिता के मन मे ग्रनुसुन्दर की ग्रचानक मृत्यु के समाचार से * कुछ खेद हुग्रा ग्रौर उसका मन शोकाक्रान्त हो गया। [६६९-६७१]

यह देखकर सुललिता को ग्रधिक स्थिर करने ग्रौर उसके शोक को दूर करने के लिये समन्तभद्राचार्य ने सभी के समक्ष सुललिता से कहा :—

ग्रार्ये! जिस नरपुंगव महापुरुष ने एक ही दिन मे ग्रपना कार्य सिद्ध कर लिया, साध्य के मार्ग पर कूच कर कृतकृत्य हो गया, उस महात्मा के लिये शोक करना उचित नही है। उसने तो ग्रसाध्य कार्य सिद्ध कर लिया। यदि वह ग्रधिक पाप कर्म के बोझ से ससार-समुद्र मे डूब गया होता ग्रौर यहाँ से नरक की तरफ प्रयाण किया होता तब तो उसके लिये शोक करना योग्य समझा जा सकता था, पर जो प्राणी विशुद्ध सद्धर्म को प्राप्त कर, ग्रपने पाप रूपी मैल को धोकर सर्वार्थसिद्धि विमान को जाये, उसके लिये तो शोक मनाना किसी भी दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता।

जिस प्राणी को सयम धर्म ग्रति दुर्लभ हो ग्रौर जो दु ख के बोझ से ससार मे भटक रहा हो, उत्तम व्यक्ति ऐसे प्राणी के लिये ही शोक करते हैं।

जो प्राणी सयमी होकर मृत्यु को प्राप्त करते है, उनके लिये विवेकीजन तनिक भी शोक नही करते। ससारचक्र मे रहते हुए भी ऐसे प्राणी जहाँ भी रहे वहाँ उन्हे ग्रानन्द ग्रौर ग्रान्तरिक सुख ही प्राप्त होता है, ग्रत उनके विषय मे शोक करना उचित नही है।

जिस प्राणी ने परलोक मे सुख देने वाले धर्म का सम्यक् प्रकार से ग्राचरण न किया हो, वह मृत्यु का सामना होने पर भय खाता है, पर जिस प्राणी ने सद्धर्म

---

* पृष्ठ ७५४

रूपी पाथेय/सबल को अपने साथ बाँध लिया है, वह तो मृत्यु की प्रतीक्षा करता है और मृत्यु के निकट आने पर तनिक भी नही डरता। उसे तो मृत्यु महोत्सव जैसी लगती है, उसके लिये तो मरण महान आनन्द का प्रसग है।

जिसने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूपी चार स्तम्भो से सुदृढ बनी और पाप को नाश करने वाली आराधना की हो उसे मृत्यु से क्या भय ? उसके लिये मृत्यु क्या है ? जिन मुनीश्वरो ने पाप-समूह को धोकर, आराधना कर, पण्डित मरण को प्राप्त किया है, वे तो पारमार्थिक आनन्द के जनक है, उत्पादक है और आनन्द स्वरूप हैं।

अतएव हे बाले ! अनुसुन्दर राजर्षि ने तो अनार्य कार्य से निवृत्त होकर अपना कार्य सिद्ध कर लिया है, कृतकृत्य हो गया है, अत उनकी मृत्यु पर कैसा शोक ? ऐसा शोक कैसे उचित कहा जा सकता है ? [६७२–६८२]

अनुसुन्दर का भविष्य

पुन सुन—अनुसुन्दर राजर्षि तो यहाँ से सर्वार्थसिद्धि विमान मे गये है। जब उनकी तेतीस सागरोपम की आयुष्य पूरी होगी तब वे वहाँ से स्थिति क्षय होने पर, च्युत होकर पुष्करवर द्वीप के भरतक्षेत्र की अयोध्या नगरी के गगाधर राजा और पद्मिनी रानी के पुत्र अमृतसार के नाम से जन्म लेगे। वहाँ वे देव जैसी समृद्धि को प्राप्त करेंगे और मनुष्य रूप मे देवताओ के समान दिव्यसुखो मे लालित-पालित होगे। यौवन प्राप्त होने पर वे समस्त कलाओ मे कुशलता प्राप्त करेंगे। फिर विपुलाशय आचार्य से बोध प्राप्त कर, माता-पिता को समझा कर पारमेश्वरी दीक्षा ग्रहण करेंगे। इनकी आत्मा अत्यधिक विशुद्ध होती जायेगी वे और साधु जीवन मे बहुत समय तक महान तप करेंगे। अन्त मे अपने समस्त कर्मजाल को काटकर समाधिपूर्वक आगे बढेंगे और ससार के प्रपच को छोडकर शिवालय/मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

[६८३–६८७]

हे आर्ये ! इस प्रकार अनुसुन्दर राजर्षि तो भव्य प्राणियो के लिये अत्यन्त प्रमोद के कारण है। ऐसे महापुरुष के मृत्यु-प्रसग पर किसी प्रकार का शोक-सन्ताप करना ही नही चाहिये। [६८८]

आचार्य से अनुसुन्दर राजर्षि का भविष्य सुनकर मुनि पुण्डरीक ने आचार्य को प्रणाम कर पूछा—भगवन् ! राजर्षि अनुसुन्दर का भविष्य तो मैंने आपसे सुना,* किन्तु उनकी चित्तवृत्ति मे सर्वदा साथ रहने वाले जो अच्छे-बुरे लोग थे उनका क्या होगा ? वह भी बताने की कृपा करे। [६८९–६९०]

अन्तरँग बल का आविर्भाव

आचार्य—पुण्डरीक ! सर्वार्थसिद्धि विमान से जब अनुसुन्दर का जीव अमृतसार के रूप मे जन्म लेगा और सर्व सग का त्याग कर भाव-दीक्षा ग्रहण करेगा तब

* पृष्ठ ७५५

क्षान्ति, दया, मृदुता, सत्यता, ऋजुता, अचौर्यता, ब्रह्मरति, मुक्तता, विद्या और निरीहता आदि उसकी अन्तरग पत्नियाँ जो इतने समय तक प्रच्छन्न थी, पुन उसकी चित्तवृत्ति मे प्रकट होगी। इसके साथ ही चारित्रधर्मराज की सेना भी प्रकट होगी। तत्पश्चात् अन्तरग राज्य मे धृति, श्रद्धा, मेधा, विविदिषा, सुखा, मैत्री, प्रमुदिता, उपेक्षा, विज्ञप्ति, करुणा आदि अन्तरंग पत्नियाँ भी पहले की भाँति उसकी चित्तवृत्ति मे आविर्भूत होकर अतिशय सुख-सदोह प्रदान करेगी। इस प्रकार इस महात्मा को अत्यन्त आनन्द एव आह्लाद से परिपूर्ण अन्तरग राज्य प्राप्त होगा और इस राज्य का भोग करते हुए वह अपने अन्तरग शत्रुओ का जड-मूल से नाश कर देगा। तदनन्तर महावली अमृतसार मुनि अन्तरग राज्य को अविकृत करता हुआ अन्त मे क्षपक श्रेणी पर आरूढ होगा (सातवे गुणस्थान से सीधे १३वे गुणस्थान की प्राप्ति) और चार घाती कर्मो (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय) का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त करेगा तथा विश्व पर अनेक प्रकार से अनुग्रह करता हुआ अन्त मे केवली समुद्घात कर, समस्त योगो का निरोध कर, आयुष्य के अन्तिम भाग मे शैलेशीकरण सत्क्रिया द्वारा शेष चार कर्मों (वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र) का भी निर्दलन कर देगा। उस समय उसके सभी कार्य सिद्ध होंगे, सभी क्रियाओ का अन्त हो जायेगा, सुन्दर कार्यो का सुन्दर परिणाम प्राप्त होगा और अपने सभी अन्तरग वन्धुओ सहित वह निर्वृत्ति नामक सुन्दर नगरी का सुराज्य प्राप्त कर उसके फलो का आस्वादन करेगा। तत्पश्चात् वह अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त दर्शन से युक्त वनेगा। उसकी सभी रुकावटो एव पीडाओ का नाश होगा और उसके ये सर्वभाव उसे सर्वकाल के लिये प्राप्त होगे। यही उसके अन्तरग सत्कुटुम्व का भविष्य है। [६९१–७०१]

अव इसके दूसरे अन्तरग कुटुम्व का भविष्य भी सुनो। इधर राजर्षि अपनी कुभार्या भवितव्यता जो लम्वे समय से उसके साथ है, उसका त्याग कर देगा। महामोह राजा की शक्ति क्षीण हो जाने से वह भवितव्यता शोकमग्न हो जायगी और सोचेगी कि, अरे! मैंने दुर्वुद्धि के कारण महामोह की सेना का पक्ष लेकर अच्छा नही किया, परिणामस्वरूप आज मेरे समस्त मनोरथ भग /छिन्न-भिन्न हो गये है। अरे रे! मैं तो सव कुछ जानने का घमण्ड करती थी, परन्तु जो वात विश्व मे सब लोग जानते हैं, जिसे वालवृन्द भी वोलते रहते है उस तात्त्विक वात को मैं नही जान सकी। सव लोग जानते है कि जो स्थिर पदार्थो को छोडकर अस्थिर पदार्थो के पीछे दौडता है, उसके स्थिर पदार्थ नष्ट होते हैं और अस्थिर पदार्थ तो नष्ट होने वाले है ही। मैंने स्थिर भावो को नही पहचाना। इसमे मेरा भी क्या दोष ? यह वात तो रूढ हो गई है कि लोग अपने वास्तविक प्रयोजन से प्राय घवरा जाते हैं, अत. मैं भी घवरा गई तो क्या हुआ ? ऐसा विचार और निश्चय करते हुए कुभार्या भवितव्यता अमृतसार को छोडकर, शोक का त्याग कर चुप हो जायगी और अन्य लोगो के कार्य मे जुट जायगी। [७०२–७०७]

हे पुण्डरीक मुनि ! अनुसुन्दर राजर्षि के अन्तरग राज्य के लोगो के भविष्य के विषय मे मैंने तुझे सक्षेप मे बता दिया है ।*

समन्तभद्राचार्य से विस्तृत वृत्तान्त सुनकर पुण्डरीक आदि साधु बहुत प्रसन्न हुए और सुललिता का शोक दूर हुआ । [७०८–७०९]

१७. द्वादशांगी का सार

इसके पश्चात् सुललिता का मन अत्यधिक सवेग रग मे रग गया । वह सोचने लगी कि, उसे बोध होने मे बहुत कठिनाई हुई, अत वह अवश्य ही गुरुकर्मी/भारी कर्मी तो है ही । ऐसा गुरुकर्मी जीवरत्न सवेग के पवन मात्र से शुद्ध नही हो सकता, उसे शुद्ध करने के लिये तो तीव्र तप रूपी प्रचण्ड अग्नि की महती आवश्यकता है । इस विचार से वह धन्या सुललिता गुरु महाराज की आज्ञा लेकर उनके आदेशानुसार प्रयत्न पूर्वक महाकष्टदायक तप से अपने आत्मरत्न को शुद्ध करने लगी । अर्थात् जो बालिका एक समय धर्म के स्वरूप को समझती भी नही थी, वही अब अपनी आत्मा की शुद्धि का मार्ग ढूँढने लगी और प्रत्येक प्रसग पर गुरु महाराज की आज्ञा लेकर महातप करने लगी । [७१०–७१२]

सुललिता का महातप

उसने जो महान तपस्या की उसका सहज ध्यान दिलाने के लिये सक्षेप मे वर्णन करते है .—

एक, दो, चार, पॉच आदि उपवास रूपी अनेक प्रकार के रत्नो की माला वाले रत्नावली तप से वह रागमुक्त सुललिता साध्वी सुशोभित होने लगी ।

फिर अनेक प्रकार की चर्यायुक्त सुवर्ण की चार लड़ियो वाले हार के समान रमणीय कनकावली तप से वह विभूषित हुई ।

फिर वह महाभाग्यशालिनी उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला आदि तप रूपी मोतियो की लडियो वाले मुक्तावली तप से अलकृत हुई ।

---

* पृष्ठ ७५६

क्रीड़ा की इच्छा से निवृत्त होने पर भी सिंहिनी के समान पराक्रमी इस राजकन्या ने लीलापूर्वक लघु सिंहविक्रीडित एव वृहत् सिंहविक्रीडित तप किया।

फिर उसने शरीर के भूषण स्वरूप भद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरा प्रतिमाएँ ग्रहण की।

फिर विनष्ट पाप वाली महादेवी सुललिता वर्धमान आयविल तप द्वारा प्रतिक्षण वढती रही और अपने ज्ञान मे वृद्धि करती रही।

चन्द्रायण तप द्वारा इसने अपने कुल रूपी आकाश को चन्द्रलेखा के समान उद्योतित किया।

फिर निष्पापा सुललिता ने यवमध्य और वज्रमध्य की आसेवना की जिसकी वजह से वह देवी ससार वन्दीगृह के प्रति एकदम नि स्पृहवृत्ति वाली हो गई। तपस्या से वह महान शक्तिशालिनी बन गई और उपर्युक्त तथा अन्य अनेक प्रकार के तपो से उसने अपने सब पाप धो डाले जिससे उसकी उत्थान-प्रगति निरन्तर वढती गई।
[७१३–७२१]

द्वादशांगी का सार : ध्यानयोग

इधर पुण्डरीक मुनि भी इतने ज्ञानाभ्यास-परायण हो गये कि कुछ ही समय मे वे शास्त्र के गहन अर्थ और सूत्र को समझने वाले गीतार्थ एव जितेन्द्रिय बन गये।

अन्यदा सम्पूर्ण आगम के विशुद्ध सार/ आन्तरिक आशय को जानने की इच्छा से उन्होने विनय पूर्वक गुरु महाराज से पूछा—भगवन्! बारह अग सूत्र रूपी द्वादशागी जो भगवान् द्वारा प्ररूपित है, वह तो समुद्र के समान अत्यन्त विशाल है. सक्षेप मे इसका सार क्या है? यह वताने की कृपा करे। [७२२–७२४]

आचार्य—आर्य! सम्पूर्ण जैन आगम का सार सुनिर्मल ध्यानयोग है। सभी बातो का रहस्य इसी एक शब्द मे आ जाता है। इसका कारण यह है कि जैन शास्त्रो के नीति विभाग मे श्रावको और साधुओ के लिये जो मूल और उत्तर गुणो का एव वाह्य क्रियाओ का वर्णन है उन सव का अन्तिम लक्ष्य ध्यानयोग ही कहा गया है। इन सभी गुणो और क्रियाओ का हेतु ध्यान-योग की साधना है। शास्त्र मे कहा गया है कि मुक्ति के लिये ध्यान-सिद्धि आवश्यक है और ध्यान-सिद्धि के लिये मानसिक चचलता को दूर करना परमावश्यक है,* जो अहिंसा आदि विशुद्ध अनुष्ठानो से ही साधी जा सकती है। अत सर्व अनुष्ठानो का अन्तिम साध्य मानसिक स्थिरता है, अर्थात् चित्त-शुद्धि ही अन्तिम लक्ष्य है। विशुद्ध एकाग्र मन ही सब से उत्तम प्रकार का ध्यान है। हे मुने! द्वादशागी का सार शुद्ध ध्यानयोग है, अत जिस प्राणी की इच्छा मोक्ष प्राप्त करने की हो उसे ध्यानयोग को सिद्ध करना चाहिये। शेष सभी मूल और उत्तरगुण रूपी अनुष्ठान ध्यानयोग के अग रूप मे ही स्थित है, इसीलिये इस ध्यानयोग को सव का सार कहा है। [७२५–७३०]

---

* पृष्ठ ७५७

गुरु महाराज के वचनामृत से सन्तुष्ट होकर शान्तात्मा पुण्डरीक महामुनि ने पुन. हाथ जोडकर ललाट से छूते हुए गम्भीर स्वर मे कहा—भगवन् ! जब मैं बालक था तब मुझे मोक्षमार्ग के प्रति बहुत कुतूहल था, बचपन मे उस मार्ग को जानने की जिज्ञासा थी, अत. मैंने कई कुतीर्थिक धर्मगुरुओ से इस विषय मे प्रश्न पूछे थे कि, हे भाग्यशाली महात्माओ ! सब विपयो का गूढ रहस्य और नि श्रेयस्कर/ मोक्ष-प्राप्ति का परम तत्त्व क्या है ? जो सब से महत्वपूर्ण सार हो उसे समझाइये। मेरे प्रश्न के उत्तर मे भिन्न-भिन्न मान्यता के गुरुओ ने मुझे भिन्न-भिन्न उत्तर दिये, जिनका सार सक्षेप मे निम्न है .— [७३१-७३४[

एक ने कहा—हिसा करो या कुछ भी करो किन्तु मुमुक्षु प्राणी को अपनी बुद्धि पर किसी प्रकार का लेप (आवरण) नही चढने देना चाहिये। उनका कथन था कि जैसे आकाश कभी कीचड से नही भरता वैसे ही सारे ससार को मार कर भी जिसकी बुद्धि पर लेप नही चढता, उस पर पाप का लेप भी नही चढता।

दूसरे ने कहा—जो प्राणी समस्त पापो का आचरण करके भी यदि एक बार भी महेश्वर का स्मरण करता है तो वह क्षणमात्र मे समस्त पापो से मुक्त हो जाता है। प्राणियो को छिन्न-भिन्न कर या सैकडो पाप करने पर भी जो विरुपाक्षदेव शिव का स्मरण करता है वह प्राणी पाप से मुक्त हो जाता है।

तीसरे ने कहा—पापो की शुद्धि के लिए विष्णु भगवान् का ध्यान करना चाहिये। विष्णु का ध्यान समस्त प्रकार के पापो का प्रक्षालन करने वाला है। उनका कथन था कि, स्वय अपवित्र हो या पवित्र या अन्य कैसी भी अवस्था मे हो पर जो पुण्डरीकाक्ष विष्णु भगवान का स्मरण करता है वह बाहर-भीतर से पवित्र हो जाता है।

कुछ लोगो ने पापाशन मत्र को पाप-विनाशक बताया।

कुछ ने वायु जाप को मोक्ष का साधन बताया। उनका कथन था कि हृदय-स्थित पुण्डरीक कमल ध्यान से खिलता है। वह विकसित दल सुन्दर और मन-भ्रमर को सुख देने वाला होता है। इस ध्यान-मार्ग पर जाकर मन-भ्रमर परमपद मे स्थापित हो जाता है। फिर मन मे नाद (ध्वनि) लक्षित/ गु जित होती है, वही परम तत्त्व है।

कुछ पूरक, कुम्भक और रेचक वायु द्वारा हृदय-कमल को विकसित करने के साधन को परम तत्त्व कहते है।

अन्य कहते है कि हृदय मे जो मोगरे के फूल, चन्द्र या स्फटिक जैसा श्वेत बिन्दु है, जो ऊपर-नीचे या अगल-बगल होता रहता है वही ज्ञान का कारण है।*

* पृष्ठ ७५८

अन्य कहते हैं कि, ॐ परम अक्षर (प्रणवाक्षर) के ऊपर और नीचे लेप की हुई अग्निशिखा के चलने पर उसकी जो मात्रा होती है, वही अमृत-कला कहलाती है ।

अन्य लोगो का मत है कि, नाक के अग्रभाग पर अथवा दोनो भौहो के मध्य तुषार (बर्फ) या मोती के हार जैसा स्वच्छ बिन्दु दो प्रकार का होता है, चल और स्थिर । इस बिन्दु को ध्यान का विषय कहा जाता है । जब यह बिन्दु आग्नेय मण्डप (कोण) मे मिलता है तब रक्तवर्णी, पूर्व मे पीतवर्णी, वायव्य कोण मे कृष्णवर्णी, पश्चिम दिशा मे श्वेतवर्णी होता है । जब चित्त निर्मल हो तो यह पीला होता है, क्रोधित हो तो लाल होता है, शत्रु-नाश के समय काला होता है और जब श्वेत होता है तब पुष्टिकारक होता है ।

अन्य कहते है कि, मुमुक्षु (मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वालो) को नाड़ी-मार्ग सिद्ध करना चाहिये । उन्हे जानना चाहिये कि ईडा और पिगला नाडियो का सचालन किस प्रकार होता है और उनका क्या कार्य होता है । नाड़ियो का सचार दाये या बाये किस प्रकार होता है, इसका वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिये और उस ज्ञान के द्वारा काल और बल का बाह्य ज्ञान प्राप्त कर, पद्मासन से बैठकर उच्च घटानाद सुनना चाहिये ।

कुछ ओकार के उच्चारण को ही परम शान्तिदायक मानते है । नाभि मे से सरल प्राण वायु निकलती है जो कमल के तन्तु जैसा आकार धारण कर मन्थर गति से सिर के अन्तिम भाग तक जाती है । वह मस्तक मे तालु स्थित ब्रह्मरन्ध्र से बाहर निकलती है । कुछ लोग उस प्राणवायु के सचार पर ध्यान केन्द्रित करने और उसे मन्द गति से सचालित करने का वर्णन करते है ।

कुछ लोग कहते है कि, सूर्य-मण्डल-स्थित आदिपुरुष अथवा हृदय-कमल-स्थित मूलपुरुष का ध्यान करना चाहिये और उसे ही अपने ध्येय रूप मे पहचानना चाहिये ।

कुछ बुद्धिमान, हृदय-आकाश मे स्थित सैकडो किरणो से जाज्वल्यमान अत्यन्त सुशोभित नित्य परमपुरुष का ध्यान करने और उसे ही अपना ध्येय बनाने का परामर्श देते हैं ।

कुछ, आकाश को ही ध्येय बनाने को कहते है ।

कुछ, चल-अचल सम्पूर्ण विश्व को ध्येय रूप से पहचानने को कहते हैं ।

कुछ, आत्मा मे रहे हुए चित्त को ध्येय रूप से पहचानने को कहते है ।

कुछ शाश्वत ब्रह्म को ही ध्येय रूप से जानने की सलाह देते है ।

[७५७]

हे महात्मन् ! जैसे आपने ध्यान-योग को ही द्वादशागी का सार बताया है वैसे ही भिन्न-भिन्न तीर्थिक धर्मगुरुओ ने भी भिन्न-भिन्न पद्धति से योग को सार के

रूप मे प्रतिपादित किया है। भगवन्! इन सब का अन्तिम सार तो ध्यान-योग ही हुआ। तव क्या ये सभी धर्मगुरु भी मोक्ष के साधक है? यदि सब का साध्य ध्यान के माध्यम से मोक्ष ही है तो फिर अलग-अलग योगियो ने ध्यान के भिन्न-भिन्न मार्ग क्यो वतलाये? मेरे मन मे इस सम्बन्ध मे प्रबल सशय है। हे नाथ! मेरे इस सदेहवृक्ष को आप अपने वचन रूपी हाथी की शक्ति से मूल सहित उखाड फेकिये, मेरे सशय का सतोषजनक स्पष्टीकरण करिये। [७५८-७६०]

समन्तभद्र—आर्य! तेरा प्रश्न प्रसगोचित है। तुम अभी जैनागम के सामान्य गीतार्थ वने हो, पर इसके गूढ रहस्य को बराबर नही समझ सके हो, इसीलिये ऐसा प्रश्न कर रहे हो। बात ऐसी है कि सभी धर्मगुरु कूटवैद्य (ऊँट वैद्य) जैसे है। जैन-धर्मज्ञ सद्वैद्य के शास्त्र रुपी महावृक्ष की एक-एक शाखा पकडने वाले है। इसीलिये तेरे मन मे प्रश्न उठा है। इसका स्पष्टीकरण कथा द्वारा करता हूँ, सुनो।

[७६१-७६२]

१८. ऊंट वैद्य कथा

एक नगर के प्राय. सभी निवासी अनेक प्रकार की महा व्याधियो से ग्रस्त थे। इस नगर मे एक महावैद्य (सच्चा वैद्य) था जो दिव्यज्ञानी,* समस्त सहिताओ का निर्माता, सर्व रोगो का नाश करने वाला और लोगो का उपकार करने की विशुद्ध भावना वाला था। पर, वहाँ के लोग पुण्यहीन थे इसलिये इस सच्चे वैद्य की वात नही मानते थे और उसके कथनानुसार कार्य नही करते थे। कुछ ही भाग्यशाली प्राणी इस वैद्य की बात मानते थे। यह वैद्य निरन्तर अपने शिष्यो को व्याख्यान देता था। वह व्याख्यान जो लोग सुनते थे उनमे से कुछ धूर्त लोग भी कतिपय वाते सीख लेते थे। इस प्रकार दूसरो से सुनकर, थोडा बहुत सीखकर "सौठ की गाठ से"

* पृष्ठ ७५६

वैद्य वने वहुत से धूर्त भी वैद्यक का धन्धा करने लगे थे । वहाँ के पुण्यहीन निवासियो के दुर्भाग्य से ऐसे ऊट वैद्य अधिक प्रसिद्ध हो रहे थे । ये नये वैद्य अपने आपको पण्डित मानते थे । इन्होने भी अपनी-अपनी नवीन सहिता वना डाली । इनमे से कुछ ने दूसरो से यथार्थ वैद्य के वचन सुनकर उनमे से कुछ को अपनी सहिता मे भी जोड़ दिया । कुछ ने अपने पाण्डित्य के घमण्ड मे सच्चे वैद्य के कथन से विपरीत वचनो से ही अपनी सहिता वनाई । नगर के रुग्ण नागरिक भिन्न-भिन्न रुचि वाले थे । किसी को एक वैद्य अच्छा लगता तो किसी को दूसरा । इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न वैद्यो को पसद करते । यो प्राय· सभी ऊट वैद्य प्रसिद्ध हो गये और उन्होने अपनी-अपनी वैद्यक शिक्षा की पाठशालाये खोल ली तथा स्वकीय शिष्यो को अपनी-अपनी सहितानुसार वैद्यक सिखाने लगे । सिखाते समय ये ऊट वैद्य अपने शिष्यो को इतना अधिक व्याख्यान पिलाने लगे कि वे संसार मे महावैद्य के रूप मे प्रसिद्ध हो गये । धीरे धीरे लोग वास्तविक मूल वैद्य को भूलने लगे और उनकी उपेक्षा तथा अनादर करने लगे ।

सच्चा वैद्य रोगो का निदान कर जो औषधि वताता, उसका विधि पूर्वक सेवन करने से लोग निरोग हो जाते थे । सच्चे वैद्य के जीवन काल मे जैसे उसने कई लोगो को रोगमुक्त किया था वैसे ही उसकी सुवैद्यशाला मे सीखे हुए उसके शिष्यो ने भी उसकी सहितानुसार उपचार कर अनेक लोगो को रोगमुक्त किया था । अतएव यह चिकित्सालय सव लोगो के लिये रोगो का उच्छेद करने वाला वना । [७६३–७६५]

कुछ रोगी जो इन नये ऊंट वैद्यो के पास उपचार कराने गये, वे बेचारे अनेक व्याधियो और पीडाओ से घिरते गये । उन वैद्यो के जीवनकाल मे जैसे उनका चिकित्सालय लोगो का अपकार करता था वैसे ही उनकी मृत्यु के वाद भी उनकी सहिता और उनके शिष्य लोगो को क्षति/ हानि पहुँचा रहे थे । [७६६–७६७]

इन नये वैद्यो की वैद्यशालाओ मे भी कभी-कभी रोगियो के रोग कम हो जाते थे या दैवयोग से कदाचित् एकदम मिट जाते थे । इसका कारण यह था कि इन्होने भी सच्चे वैद्य के कुछ वचन अपनी सहिता मे जोडे थे और कभी-कभी उसका अनुसरण करते थे । जव-जव ये ऊट वैद्य सच्चे वैद्य के वचनानुसार उपचार करते थे तव-तव रोग कम हो जाता था या कभी दैवयोग से रोगी स्वस्थ भी हो जाता था । [७६८–७७०]

कुछ दुर्बुद्धि वाले वैद्य अपनी दुष्ट बुद्धि से ही कार्य करते रहे और सच्चे वैद्य के वचन नही समझ सके, वे तो नितान्तरूप से व्याधि को बढाने वाले ही बने ।*
[७७१]

* पृष्ठ ७६०

सक्षेप मे कहे तो सच्चे वैद्य की वैद्यशाला ही रोग पर अकुश रखने वाली थी. और उसकी सहिता मे कही गई बातो का अनुसरण करने वाली वैद्यशालाये ही व्याधि को कम करने वाली थी। [७७२]

इस अन्तर का कारण यह था कि सद्वैद्य भलीभाति जानता था कि सभी व्याधिया वात, पित्त और कफ से होती हैं। इन तीनो दोषो और उनके निवारण के सम्यक् उपाय भी वह जानता था। कूट वैद्य यह बात नही जानते थे। तत्त्व-विरोधी होने के कारण वे इन्हे नही समझ सकते थे। यदि कभी किसी भाग्यशाली रोगी को उनसे लाभ हो जाता तो वह 'घुणाक्षर न्याय' (दैवयोग) से ही होता था। वस्तुत. रोगो की चिकित्सा करने वाला तो एक वह ही सद्वैद्य था। [७७३–७७५]

कथा का उपनय . सद्वैद्य

पुण्डरीक ! तेरे समक्ष जो वैद्य की कथा सक्षेप मे कही है वह तेरे संदेह को दूर करने मे सक्षम है। अत इस कथा का उपनय समझाता हूँ, सुनो—

उपर्युक्त कथा मे जिसे नगर कहा गया है, उसे संसार समझो। संसारी जीव सब प्रकार के रोगो से ग्रस्त है।

उस नगर मे एक सद्वैद्य था उसे परमात्मा/ सर्वज्ञ सद्वैद्य समझो। सर्वज्ञ केवलज्ञानी होते है, आगम रूपी शुद्ध सिद्धान्त उनकी सहिता है। वे सब लोगो पर उपकार करने वाले और कर्मरूपी भयकर रोगो को मिटाने वाले हैं। किन्तु, अधिकाश ससारी जीव गुरु-कर्मी होते है, अत वे सर्वज्ञ को परमेश्वर के रूप मे स्वीकार नही करते। कुछ लघुकर्मी भाग्यशाली भव्यप्राणी सर्वज्ञ परमेश्वर को सद्वैद्य के रूप मे स्वीकार करते हैं। जगद्गुरु सर्वज्ञ जब देवताओ और मनुष्यो की सभा मे अपने शिष्यो को प्रभावोत्पादक देशना द्वारा मोक्षमार्ग बतलाते हैं उस समय वहाँ कुछ अन्य मनुष्य और देव भी उपस्थित रहते है, उनमे से कुछ दूषित विचार वाले भी सर्वज्ञ की देशना सुनते है। [७७६–७८२]

वैद्यशाला

सर्वज्ञ की देशना अनेक नयो की अपेक्षा से गम्भीरार्थ वाली होती है। इस देशना को सुनकर कुछ मन्दबुद्धि जीव जिनकी चेतना मिथ्यात्व से आक्रान्त होती हैं, वे विपरीत कल्पनाये करते है और जिन-सद्वैद्य की सभा से निकलकर, सुने हुए उपदेश का कुछ अश पकड कर अपने शास्त्र बना लेते है। ऐसे मन्द-बुद्धि प्राणियो को कूट वैद्य (ऊट वैद्य) समझना चाहिये। [७८३–७८४]

इनमे से साख्य आदि कुछ आस्तिक लोगो ने अपने ग्रन्थो मे कुछ सुन्दर एवं उपयोगी बाते जिनवाणी, जैनागम के अनुसार लिखी और कुछ अपनी कल्पना के अनुसार लिखी। किन्तु, अपने पाण्डित्य का अभिमान तो पूर्ण ग्रन्थ पर रखा। अतएव यहाँ इन्हे ऊट वैद्य समझो। इनके शास्त्र भी सर्वज्ञ के कतिपय सद्वचनो से भूषित होने से ससार मे प्रसिद्ध हुए। [७८५–७८७]

अन्य वृहस्पति, सूत आदि दुष्ट नास्तिको ने जिनशास्त्र से विपरीत कल्पनाये कर बडी-बडी वाते की और अपनी वाचालता से ससार मे प्रसिद्ध हुए। कहावत भी है कि 'ससार मे चोर भी अपनी प्रगल्भता (वाक्पटुता) से प्रसिद्ध हो जाते है।' [७८८-७८९]

भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न रुचि वाले होते है, अत: अपनी-अपनी इच्छानुसार कुछ लोगो को * आस्तिक अच्छे लगते है तो कुछ को नास्तिक और कुछ को सर्वज्ञ एव उनके शिष्य। [७९०]

पुन वैशेपिक सूत्रकार कणभक्ष (कणाद) मुनि और न्यायसूत्र के प्रणेता अक्षपाद (गौतम) मुनि आदि धर्मगुरुओ ने अपने शास्त्र बनाये और उन्हे अपने शिष्यो को सिखाया। उन्होने अपना तीर्थ/धर्म प्रवर्तित किया और अपने शिष्यो के लिए अनुष्ठानो की भी एक लम्बी शृंखला बनायी। इस प्रकार भिन्न-भिन्न वैद्य-शालाये खडी हो गई। [७९१-७९२]

रोगी

ऐसा होने पर भी जिन कर्म-रोगियो की चिकित्सा सर्वज्ञ की सद्वैद्यशाला मे होती थी वे तो सचमुच भाग्यशाली थे क्योकि वे निश्चित रूप से नीरोग हो जाते थे। [७९३]

जो प्राणी आस्तिक धर्म गुरुओं से उपचार कराने गये उनकी कर्म-व्याधि कुछ-कुछ कम हुई और कभी-कभी कोई-कोई रोग से पूर्णतया मुक्त भी हुआ। इस लाभ का कारण सर्वज्ञ सद्वैद्य के वचन थे, क्योकि आस्तिको ने भी सर्वज्ञ-भाषित कुछ वचन अपने शास्त्रो मे गूथ दिये थे। अथवा उनमे से किसी-किसी को कभी जाति-स्मरण आदि ज्ञान भी हो जाता था जिससे सर्वज्ञ के वचन उसके हृदय मे स्थापित हो जाते थे। यही कारण है कि उनके कर्मरोग क्षीण हो जाते थे या कर्मरोगो से मुक्त हो जाते थे।

जिस प्रकार वैद्य शरीर मे रहे हुए वात, पित्त और कफ को पहचान कर रोगो की चिकित्सा करते हैं, उसी प्रकार सर्वज्ञ महावैद्य राग, द्वेप और महामोह रूपी त्रिदोषो को पहचान कर फिर चिकित्सा करते है। इसीलिये सर्वज्ञशाला और उनके शास्त्रो से बाहर रहने वालो के यहाँ कर्मरोग की चिकित्सा कदापि नही हो सकती। [७९७-७९८]

जो लोग स्वय नास्तिक है और जैन शास्त्र के पूर्णतया विपरीत है वे दुष्ट तो निश्चित रूप से ससार को बढाने वाले ही है। तदपि अर्थ और काम मे आसक्त गुरुकर्मी लोगो को जिनकी दृष्टि वर्तमान पर ही अधिक स्थिर रहती है, ये नास्तिक बहुत अच्छे लगते हैं। [७९९-८००]

---

* पृष्ठ ७६१

जैन दर्शन

हे आर्य पुण्डरीक ! अन्य तीर्थ (दर्शन) तीर्थकर महाराज के वचन मे से ही निकले हुए है । इसी कारण जैन-दर्शन व्यापक है, सब से ऊपर है और सब मे व्याप्त है । यही कारण है कि राग, द्वेष, महामोह के प्रतिपक्षी सत्य, जीव दया, ब्रह्मचर्य, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, औदार्य, शोभन वीर्य, अकिचनता (धनत्याग), लोभत्याग, गुरुभक्ति, तप, ज्ञान, ध्यान और अन्य इसी प्रकार के आस्तिक दर्शनो के अनुष्ठान स्वरूपत. सुन्दर और अच्छे तो लगते है, पर वे माँगे हुए आभूषणो के समान होने से सुशोभित नही होते । इसका कारण यह है कि वे सत्य, प्राणीदया, ब्रह्मचर्य आदि को अपनी कल्पना से गढे हुए अन्य वचनो के साथ मिला देते है और यज्ञ, होम आदि से जोड देते हैं । क्योकि, वे सर्वज्ञ-वचन के अतिरिक्त अन्य वचनो से उनका मिश्रण कर देते हैं, इसलिये वे उन आभूषणो से सुशोभित नही होते । सर्व प्रकार की उपाधियो से रहित, मात्र गुणो का ही प्रतिपादन करने वाला सर्वज्ञ-दर्शन सभी तीर्थो/ दर्शनो मे कतिपय अशो मे विद्यमान है । इस प्रकार सद्भावयुक्त सर्व-गुणसम्पन्न जैनदर्शन सर्वत्र व्याप्त है । मात्र वाह्य लिग (वेष) ही धर्म का कारण नही है ऐसा समझो । [८०१-८०७]

तुमने पूछा था कि भिन्न-भिन्न प्रकार के ध्यान-योग के बल पर क्या ये अन्य दर्शन वाले भी मोक्ष के साधक है या नही ? इस प्रश्न का अव मै स्पष्टीकरण करता हूँ । [८०८]*

वाह्य लिग : वेष

कुछ प्राणियो का आचरण दुष्ट होता है वे स्वय शुद्ध अनुष्ठान-रहित होते है । ऐसे लोग यदि ध्यान करते है तो वह दिखावा मात्र होता है । विवेकी लोगो को ऐसे दिखावे पर तनिक भी विश्वास नही करना चाहिये । जैसे धान का छिलका निकाले बिना चावल का मैल नही धुल सकता वैसे ही जीवन मे पहले आरम्भ-समारम्भादि छिलको को सदाचार और ध्यान के माध्यम से निकाले बिना अन्य कर्म-मल की शुद्धि नही हो सकती है । मलिन-आरम्भी लोगो की शुद्धि मात्र वाह्य ध्यान से नही हो सकती । जो तुच्छ सासारिक आरम्भ-समारम्भ करते रहते है, उनकी शुद्धि मात्र वाह्य ध्यान से नही हो सकती । आचरण और अनुष्ठानरहित लोगो को छिलके वाले चावल जैसा ही समझना चाहिये । [८०९-८११]

जो प्राणी समस्त प्रकार की उपाधियो से रहित होते है वे मोक्ष प्राप्ति के योग्य उच्चतम और श्रेष्ठ ध्यानयोग की साधना करते है, जिससे वे मोक्ष के साधक वनते है । उपाधिरहित होकर ध्यानयोग की साधना करने वाली निर्मल आत्मा चाहे किसी भी तीर्थ/दर्शन को मानने वाली हो, उसे भावत जैन शासन के अन्तर्गत ही समझना चाहिये ।

---

* पृष्ठ ७६२

अतएव मात्र जैन शासन/ दर्शन ही वास्तव मे संसार का नाश करने वाला है, अत जो भी दार्शनिक जैन शासन के अन्तर्गत है और समग्र उपाधियो से रहित हैं वे वाह्य वेष से भले ही अपने दर्शन को मानते हो, पर वे ससार का उच्छेद करने वाले होते है। [८१२–८१४]

संक्षेप मे, जैसे सर्व रोगो की उत्पत्ति का कारण वात, पित्त और कफ है, जिससे इनका शमन हो और प्राणी निरोग हो वही औपधि ससार मे उत्तम मानी जाती है वैसे ही कभी-कभी ऊट वैद्य द्वारा दी हुई औषधि भी परमार्थत 'घुणाक्षर न्याय' से सद्वैद्य-सम्मत औषधि के समान आरोग्यदायक हो जाती है। अत. जो-जो अनुष्ठान राग, द्वेष, मोहरूपी व्याधियो को नष्ट करने वाले और कर्ममल से परिपूर्ण आत्माओ को निर्मल करने वाले है, वे जैन शासन मे हो, अन्य दर्शनो मे हो, या कही भी हो, उन्हे सर्वज्ञ-दर्शन-सम्मत और अनुकूल ही समझना चाहिये। [८१५–८१८]

यह बात सदेहरहित है कि जो अनुष्ठान चित्त को मलिन करने वाले हो और मोक्ष मे रुकावट पैदा करने वाले हो वे चाहे जैन मुनियो या श्रावको (गृहस्थो) द्वारा आचरित हो, तव भी वे जैन-मत से वाहर है। तव अन्य दर्शन वाले जो चित्त को मलिन करने वाले और वाहर से दोप युक्त दिखाई देने वाले आरम्भादि अनुष्ठान करते हैं, उनके विषय मे तो कहना ही क्या? अतएव जो प्राणी भाव पूर्वक विशुद्ध भावनारूढ होकर ससारसमुद्र को पार कर लेते हैं, उसमे वाह्य वेप की चिन्ता का कोई कारण नही है। वस्तुत. विकास-क्रम मे मात्र वाह्य वेष को कोई स्थान नही है। [८१९–८२१]

माध्यस्थभाव

तेरी अन्य शका यह थी कि सभी को मोक्ष की साधना करनी है, पर सब के ध्येय भिन्न-भिन्न हैं, इसमे क्या परमार्थ है? इसमे निहित परमार्थ भी लक्ष्य पूर्वक समझ :—

दुप्ट वैचारिक तरगो के परिणामस्वरूप आत्मा पाप का बन्ध करती है और प्रशस्त शुभ विचारो से पुण्य का बन्ध करती है। जव आत्मा दोनो के प्रति उदासीन हो जाती है, अर्थात् वुरे के प्रति द्वेष और अच्छे के प्रति राग न करे तव वह पाप और पुण्य से भी अलग हो जाती हैं। जीव का यह स्वभाव है कि वह कभी अच्छे विचार और कभी वुरे विचार करता रहता है, जिससे पुण्य और पाप का बन्ध होता रहता है और वाद मे उसके फल भोगने पडते है। जो इन दोनो से मध्यस्थ रहता है, उदासीन वृत्ति धारण करता है वह पाप और पुण्य से मुक्त रहता है। [८२२–८२४]

जैसे, अपथ्य भोजन से शरीर मे व्याधियाँ पैदा हो जाती है वैसे ही भ्रम पैदा करने वाले और मन को मलिन करने वाले हिंसामय अनुष्ठानो से मन मे बुरे विचारो की तरगे उठती है।

इसी प्रकार स्थिरता और निर्मलता पैदा करने वाले अहिंसात्मक अनुष्ठानो से मन मे अच्छी विचार तरगे उठती है। जैसे, पथ्यकारी थोड़ा भोजन स्वास्थ्य-वर्धक होता है वैसे ही अहिंसामय अनुष्ठान अच्छी विचार तरगे उत्पन्न करते है।

तीसरा, उच्च ध्यान चित्त के सभी कर्मजालो का अन्त कर देता है। इस ध्यान मे चित्त उपर्युक्त अच्छी-बुरी विचार तरगो से मुक्त रहता है। यह माध्यस्थ भाव आत्मा के साथ लगे शुभ-अशुभ कर्मो को समाप्त करने मे कर्म-निर्जरा का कारण वनता है। [८२५-८२७]

जिस प्राणी को मोक्ष प्राप्त करना हो, कर्म से मुक्त होना हो उसे चित्त के सकल्प-विकल्प रूपी जालो का निरोध करना पडेगा और उसके लिए राग, द्वेष आदि का विच्छेद करने वाले नाना प्रकार के उपायो का सतत प्रयोग करना होगा। [८२८]

ऐसे उपाय चाहे अन्य तीर्थिको/ दर्शन वालो ने बताये हो अथवा जिन शासन मे कथित हो उससे कोई अन्तर नही पडता। वैसे उपाय भावतीर्थ मे व्याप्त होने से ध्येय भाव को दूषित नही करते। अर्थात् ध्येय का कोई आग्रह नही, मात्र उपाय भावतीर्थ मे होना चाहिये। उपाय ऐसा होना चाहिये कि जिससे राग-द्वेष का विच्छेद हो और चित्त के सकल्प-विकल्प दब जाये।

ऐसा कहा जाता है कि मुमुक्षु वाहर से विशुद्ध कर्त्तव्य करते हुए नाना प्रकार के ध्येयो का आश्रय लेकर भी मोक्ष प्राप्त करते है, इसका कारण माध्यस्थ भाव ही है। इतना अवश्य है कि परमात्मा को ध्येय बनाने पर जैसा सवेग प्राणी के चित्त मे उत्पन्न होता है, वैसा विन्दु आदि को ध्येय बनाने पर नही हो सकता। चित्त को जैसा सुन्दर या असुन्दर आलम्बन मिलता है वैसा ही उसका स्वरूप हो जाता है, यह अनुभव सिद्ध है। [८२९-८३२]

भिन्न-भिन्न जीवो की रुचि भी भिन्न-भिन्न होती है, किसी के चित्त की शुद्धि किसी आलम्बन से होती है और किसी की अन्य आलम्बन से। इसीलिये अन्त करण को विशुद्ध करने वाली मौनीन्द्रमार्ग की देशना अनेक प्रकार के आशयो से परिपूर्ण अनेक प्रकार की है। अत शुद्ध माध्यस्थ भाव धारण करने वाले, विशुद्ध अन्त.करण वाले किसी पुण्यात्मा प्राणी को विन्दु आदि ध्येयो से भी चित्त की शुद्धि हो जाय तो इसमे क्या आश्चर्य? [८३३-८३४]

कुछ मूर्ख प्राणी तत्त्व को जानकर भी विशुद्ध अन्त.करण और मध्यस्थता के अभाव मे विपरीत आचरण करते है जिससे वे अर्थ और काम मे प्रवृत्ति करते है। जवकि हमारे जैसे योगी उसी तत्त्वज्ञान के परिणाम स्वरूप एकदम निर्विकल्प होकर भ्रमण करते है। अर्थात् ऐसे राग-द्वेष के वशीभूत और मलिन अन्त करण वाले प्राणियो को ज्ञान भी विपरीत फल देता है। प्रखर सूर्योदय के समय भी

* पृष्ठ ७६३

निर्भागी उल्लू वृक्ष की कोटर के अन्धकार मे छुपा रहता है। इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त कर, वैराग्य का लाभ न उठाकर उल्लू जैसे प्राणी योग्य दृष्टि के अभाव मे अज्ञानान्धकार से घिर कर ससार-वृक्ष की कोटर मे छिपे रहते हैं। जब ज्ञान किरण से प्रदीप्त योग रूपी सूर्य हृदय मे प्रज्जवलित हो तब अर्थ और काम का इच्छा रूपी अन्धकार कैसे विद्यमान रह सकता है? अत निर्मल चित्त वाले, वैराग्य और अभ्यास के रसिक जीवों के आलम्बन अनेक प्रकार के हो सकते है, क्योकि ये आलम्बन ही अन्त मे उसे माध्यस्थ भाव की तरफ ले जाते है। इसीलिये अन्य कुतीर्थिको/दर्शन वालो ने जो ध्येय के अनेक भेद बताये हैं, वे जिन मत रूपी समुद्र से निकले बिन्दु के समान है। अन्य दर्शनो की श्रेणी ऊट वैद्य की वैद्यशालाओ के समान स्वरूप से तो कर्मरोग को बढाने वाली ही है, पर कभी-कभी जो उनका कर्मरोग घटता हुआ या नष्ट होता हुआ दिखाई देता है, उसका कारण भी वे सर्वज्ञ-वचन ही है जो कही-कही उनके शास्त्रो मे गूथे हुए हैं, ऐसा समझो। [८३५–८४२]

सद्वैद्य की वैद्यशाला के समान ही सर्वज्ञ-मत की शाला है और इनकी द्वादशागी रूपी सहिता ही कर्मरोग को नष्ट करने वाली है। लोगो मे कोई-कोई सुन्दर वचन व्याधिनाशक भी प्रचलित होते है, पर वे समस्त गुणो की खान द्वादशांगी मे व्याप्त वचनो मे से ही है, ऐसा समझना चाहिये। [८४३–८४४]

कुछ बुद्धिहीन दार्शनिक हिसा के अच्छे परिणाम बतलाते है और देव-देवी के स्मरण मात्र से पाप का नाश होना बतलाते है,* वे सब तत्त्वरहित है और उनके वचन युक्तिरहित तथा विवेकी पुरुषो के लिए हास्यास्पद है। [८४५–८४६]

१९. जैन दर्शन की व्यापकता

तत्त्व-जिज्ञासा

केवली समन्तभद्राचार्य के मुख से ध्यानयोग का स्वरूप सुनकर पुण्डरीक मुनि ने तत्त्व को विशेष स्पष्ट करने की अभिलाषा से आचार्यश्री से पुन प्रश्न किया —भगवन्! जैसे आप जैन दर्शन को व्यापक बताते है वैसे ही अन्य तीर्थिक/दार्शनिक भी अपने-अपने दर्शन को व्यापक बताते है। इसका क्या उत्तर है? जैसे सभी दार्शनिक अपने दर्शन की स्थापना करने वाले को सर्वज्ञ बताते है, दूसरे दर्शन का तिरस्कार करते है और अपने दर्शन की प्रशसा करते है। स्वय जिसे देव, धर्म, तत्त्व और मोक्ष मानते है, उसके प्रति दृढ आग्रह रखते है। वे स्वप्न मे भी स्वीकार

* पृष्ठ ७६४

नही करते कि अपने अतिरिक्त अन्य दर्शन भी सत्य दर्शन हो सकता है। अतः जैसे अन्य दार्शनिक अपने दर्शन का गर्व करते हैं वैसे ही हम भी अपने दर्शन का गर्व करते है। फिर हममे और उनमे क्या अन्तर है ? हे नाथ ! कृपया इसका स्पष्टीकरण करिये, ताकि मेरा मन सुमेरु शिखर के समान उन्नत हो जाये। [८४७—८५२]

जिज्ञासा का समाधान

स्वच्छ दन्तपक्ति से प्रस्फुटित किरणो के समान शोभित अधर वाले गुरु महाराज ने पुण्डरीक का मन आश्वस्थ हो सके ऐसा सदेह-रहित निम्न स्पष्टीकरण किया —

देव एक है

मैंने अभी जो जैन दर्शन को व्यापक बताया वह सम्यक्दृष्टि का, सत्य दृष्टि से देखने वालों का और गहन विचार तथा तत्त्वचिन्तन के परिणामस्वरूप किया गया निश्चय है। भेद-बुद्धि, तुच्छ-दृष्टि का परिणाम है। वह अपवित्रता से उत्पन्न होती है और प्राणी को मोहाभिभूत कर देती है। जो प्राणी तत्त्व को जानते है वे इस व्यापक दर्शन के अन्तर्गत आ जाते है। उनमे से ऐसी घवराहट पैदा करने वाली भेद-बुद्धि स्वत ही चली जाती है। ऐसे भेद-बुद्धि-रहित प्राणी को एक ही देव दिखाई देता है। वह देव सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, द्वेषरहित, महामोहादि का नाशक, सशरीरी होने पर सम्पूर्ण लोक का भर्ता तथा अशरीरी होने पर मोक्ष-प्राप्त परमात्मा ही हो सकता है। [८५३—८५७]

जब प्राणी अपने मन मे देव का उपर्युक्त स्वरूप निश्चित करता है तब उसके चित्त मे नाना प्रकार के शब्द कोई भेद-बुद्धि उत्पन्न नही कर सकते। वह तो स्वरूप पर ही दृष्टि रखता है, उसे नाम का मोह नही होता। फिर चाहे लोग ऐसे देव को बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जिनेश्वर या अन्य किसी भी नाम से सम्बोधित करे। यथार्थ दृष्टि वाला इनकी कोई अपेक्षा नही करता, उसके लिए शाब्दिक-भेदो से कोई अर्थ-भेद नही होता। [८५८—८५९]

जो देव के उपर्युक्त स्वरूप को पहचान कर उसका भजन करते है, उनके लिए तेरे-मेरे का प्रश्न ही नही उठता। 'यह देव मेरे है, तेरे नही' यह सब तो मत्सर भाव/झूठा भ्रम है। जो कोई भी भाव से उसकी साधना करता है, भाव से उसकी कामना करता है, उसका वह शिव/कल्याण करता है। सीग के भय से चाडाल को पानी पीने से नही रोका जा सकता। जिसके समग्र प्रकार के क्लेश नष्ट हो गये है, वही देव है, अत· उसके लिए तो सभी प्राणी समान हैं। जो भी उसे पहचानता है, उसकी मुक्ति होती है। गगा किसी की बपौती है ? ससारी आत्माये तो कर्मभेद से भिन्न-भिन्न प्रकार की ऊँच-नीच आदि भेद वाली होती है, किन्तु परमात्मा तो कर्म-प्रपच से रहित है, अत उनमे किसी प्रकार का भेद नही हो सकता। [८६०—८६३]*

* पृष्ठ ७६५

इस प्रकार सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परमात्मा आदि विशेषणों से युक्त, शुद्ध बोध का धारक, अशरीरी होने पर भी अपनी अनन्त शक्ति के प्रभाव से संसार से मुक्त कराने वाला एक ही देव है। जो भाग्यवान प्राणी ऐसे परमात्मा को सम्यक् प्रकार से पहचानते हैं और भाव से उसको स्वीकार करते है, उनके मन मे उसका सत्य-स्वरूप सुदृढ हो जाता है। ऐसी स्थिति मे उसके सम्बन्ध मे उनके मन मे किसी प्रकार के वाद-विवाद या मत-भेद का कारण ही कैसे उत्पन्न हो सकता है ?
[८६४-८६५]

कुछ अल्पज्ञ लोग परमात्मा को राग-द्वेष से युक्त मानते है। ऐसे अल्पज्ञ लोगों को तत्त्व के जानकार महापुरुष करुणा-बुद्धि से बार-बार समझाते रहते हैं कि सर्वज्ञ देव राग-द्वेष रहित ही होते है। [८६६]

तात्त्विक दृष्टि से देव का स्वरूप तेरे समक्ष प्रस्तुत किया। ये देव प्रमाणो से सिद्ध है, अत समस्त वादियो के मतानुसार भी एक ही हैं। सक्षेप में कहा जाय तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, रागद्वेषरहित और महामोह को नष्ट करने वाले देव एक ही है।
[८६७]

धर्म एक है

परमार्थ दृष्टि से देखा जाय तो ससार मे धर्म भी एक ही है। यह कल्याण-परम्परा का हेतु, स्वय शुद्ध और शुद्ध गुणो से परिपूर्ण है। ये शुद्ध गुण दस प्रकार के है। जैसे—क्षमा, मार्दव, शौच (पवित्रता) तप, सयम, मुक्ति, (लोभ त्याग) सत्य, ब्रह्मचर्य, सरलता और त्याग। पण्डित लोग इस दस लक्षण युक्त धर्म को पहचानते हैं और इसे स्वर्ग तथा मोक्ष का दाता मानते है। वे इसकी शक्ति के सम्बन्ध मे कभी वाद-विवाद नही करते। कुछ मूर्ख प्राणी धर्म की इससे विपरीत कल्पना करते है, किन्तु करुणार्द्र विद्वान् पुरुष उन्हे ऐसी विपरीत कल्पना करने से बार-बार टोकते है। प्रमाणों से सिद्ध होने वाला ऐसा धर्म भी एक ही है। हे पुण्डरीक ! इसका प्रतिपादन भी मैंने तेरे समक्ष कर दिया। [८६८-८७२]

मोक्ष-मार्ग एक है

तत्त्व सज्ञा वाला मोक्षमार्ग भी परमार्थ से एक ही है और विद्वान् पुरुष उसे एकरूप ही पहचानते हैं। जैसे, कोई इसे सत्व, कोई लेश्याशुद्धि, कोई शक्ति और कोई इसे योगियो को प्राप्त करने योग्य परम वीर्य कहते है। इसमे जो भेद दिखाई देते है वे नाम मात्र के है, अर्थ भेद तो किञ्चित् मात्र भी नही है। आचरण मे भी ध्वनि-भेद सुनाई पडता है, जैसे कोई अदृष्ट, कोई कर्म-सस्कार, कोई पुण्य-पाप, कोई शुभ-अशुभ, कोई धर्म-अधर्म और कोई इसे पाश कहते है। ये सब पृथक्-पृथक् पर्याय मात्र हैं। एक ही अर्थ को बताने वाले सत्व, वीर्य आदि भिन्न-भिन्न शब्द है। इनकी हानि या वृद्धि क्रमश ससार और मोक्ष का कारण होती है। पुण्य की हानि और पाप की वृद्धि से ससार मे सर्व प्रकार की विपत्तियाँ आती है और पुण्य की वृद्धि से सब प्रकार की विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। [८७३-८७७]

विशुद्धि की कोटिया (श्रेणियाँ) चार कही गई हैं—ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य और धर्म। जब सत्त्व, रजस् और तमस् से घिर जाता है तब प्रकाश अन्धकार मे बदल जाता है और उपर्युक्त ऐश्वर्य आदि चारो गुण विपरीत हो जाते है। रजस् के आवरण से वैराग्य के स्थान पर अवैराग्य हो जाता है और तमस् के आवरण से ऐश्वर्य के स्थान पर अनैश्वर्य, ज्ञान के स्थान पर अज्ञान और धर्म के स्थान पर अधर्म हो जाता है। रजस् और तमस् दोनो साथ रहते है। जहाँ एक होता हैं वहाँ दूसरे का होना अवश्यभावी है। रजस् और तमस् से घिरा हुआ मैल युक्त* सत्त्व सर्वथा ससार बढाने वाला और दु.खो का कारण होता है। जबकि वही निर्मल सत्त्व शक्ति से परिपूर्ण तथा सुख एव मोक्ष का कारण होता है। इस सत्त्व को निर्मल बनाने के लिये ही तप, ध्यान, व्रत आदि अनेक अनुष्ठान बताये गये है। यह शुद्ध सत्त्व ही परमदैवी / पारमेश्वरी तत्त्व भी है। सत्त्व-गोचर जो ज्ञान होता है वही यथार्थ ज्ञान है और इसके आश्रय मे जिस श्रद्धा का पालन किया जाता है वही वास्तविक श्रद्धा है। इस श्रद्धा को बढाने वाली क्रिया को ही सच्ची क्रिया कहा जाता है और उस सत्क्रिया के मार्ग पर चलने को ही सच्चा मोक्ष मार्ग। जिन महान् सत्त्वो ने शुद्ध बुद्धिपूर्वक सत् तत्त्व को पहचान लिया है, वे मेरु के समान निष्कम्प/निश्चल चित्त वाले हो जाते हैं, उनको किसी प्रकार की भ्रांति, शका या घबराहट नही होती। जो मूढ लोग शुद्ध-तत्त्व मार्ग से भ्रष्ट होकर जहाँ-तहाँ भ्रमण कर रहे है, इधर-उधर भटक रहे है, उन पर महान कृपा कर शुद्ध बुद्धि वाले महान सत्त्व उन्हे सत्य मार्ग बताते हैं, और उन्हे भटकने से बार-बार रोकते/टोकते हैं। मैंने तुम्हारे समक्ष सक्षेप मे अत्यन्त प्रशस्ततम सत्त्व का वर्णन किया। महान योगी इसी सत्तव का निर्णय कर अपने विशाल कार्यो को क्रियान्वित करते है। [८७८—८८८]

जैसे शुद्ध सत्त्व अविचल, एक और प्रमाणसिद्ध है वैसे ही मोक्ष भी अविचल, एक और प्रमाणसिद्ध है। यह अत्यन्त आह्लादकारी, सुन्दर और सुसाध्य है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य वाली, अमूर्त, एक ही रूप वाली आत्मा का निज स्वरूप मे रहना ही मोक्ष है। यही मोक्ष का लक्षण है। फिर उसे ससिद्धि, निर्वृत्ति, शान्ति, शिव, अक्षय, अव्यय, अमृत, ब्रह्म, निर्वाण या अन्य किसी भी नाम से पुकारा जाय, पर ये सब मोक्ष को ही ध्वनित करते हैं [८८९—८९१]

ये सभी प्रकार के कर्त्तव्य लेश्याशुद्धि के लिए ही है, लेश्याशुद्धि मोक्ष के लिये है और मोक्ष उपर्युक्त वर्णित लक्षण वाला है। अर्थात् जिससे आत्मा निज-स्वरूप मे स्थित हो वही मोक्ष है और आत्मा को निज-स्वरूप मे स्थित करने वाली लेश्याशुद्धि मोक्ष का कारण है। लेश्याशुद्धि की विशेपता या अल्पता के कारण देवगति या मनुष्य जन्म मे आनुषगिक रूप से जिन सुखो की प्राप्ति होती है, उन्हे भी मोक्ष-प्राप्ति के लिये त्याग करने योग्य कहा गया है। [८९२—९३]

---

* पृष्ठ ७६६

सद्देव और सद्धर्म को प्रकट करने वाले सत्-शास्त्र इसी प्रकार के मोक्ष का प्रतिपादन करते है। जो शास्त्र दृष्ट (अनुमान, प्रमाण) से, इष्ट (आगम प्रमाण) से अबाधित हो और जो सर्व प्रमाणो से प्रतिष्ठित हो ऐसा एक ही शास्त्र सर्वत्र व्यापक है। ऐसे शास्त्र को ही व्यापक शास्त्र माना गया है। यह उस एक शास्त्र का भावार्थ कहा गया है जिसमे विशेष प्रकार के भाव व्याप्त है, उन्हे समझ कर अपनी इच्छानुसार विविध शब्दो मे गूथा गया है। उसे वैष्णव, ब्राह्मण, माहेश्वर, बौद्ध या जैन किसी भी नाम से कहा जा सकता है। जब तक इसके मूल भाव का नाश न हो तब तक शब्दो के परिवर्तन से कोई अन्तर नही आता। विद्वान् पुरुष तो अर्थ देखकर ही प्रसन्न होते है, उसके आन्तरिक भावार्थ का विचार करते है, वे मात्र शब्द या नाम का आग्रह नही रखते। किसी गुणहीन मनुष्य को देव कहने मात्र से वह देव नही बन जाता, यदि देव शब्द से सम्बोधित करने मात्र से वह मनुष्य प्रसन्न होता है तो उसे मूर्ख ही समझना चाहिये। [८९४–८९९]

ऐसी अवस्था मे भी यदि अन्य दार्शनिक अपने-अपने दर्शन को व्यापक कहते है तो कहने दीजिये, इसमे झगडने की अथवा विवाद करने की कोई आवश्यकता नही है। हे पुण्डरीक महामुने! मोह के कारण जिनकी बुद्धि पर आवरण आ जाता है उनकी दृष्टि मे विकार पैदा हो जाता है। वास्तव मे तो दर्शन एक ही है, पर ऐसे विकारग्रस्त लोग ही दर्शन के अनेक भेद करते है, जो सचमुच झूठा मोह है।* जब प्राणी की बुद्धि पर से यह व्यामोह का पर्दा हट जाता है तब उसे सभी वस्तुएँ सद्बुद्धिगोचर होती है और जब उसे सद्दर्शन का भान हो जाता है तब उसमे थोडी सी भी भेद-बुद्धि नही रहती। शुद्ध दर्शन मे भेद-बुद्धि को कोई स्थान नही है। [९००–९०२]

सभी वादी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते है। जो आत्मा मोहनीय कर्मरूपी मैल से युक्त हो वह मोक्ष-मार्ग को देख या जान नही सकती। जब आँख मे मैल होता है तब स्पष्टत वस्तु का दर्शन नही होता। इसी प्रकार जब आत्मा के कर्म-मल का नाश होता है तभी उसे यथास्थित मोक्षमार्ग दिखाई देता है। ऐसी आत्मा चाहे जहाँ रहे, उसे स्वत ही मोक्ष-मार्ग दिखाई दे जाता है। ऐसी स्थिति मे प्राणी परमार्थ को प्रकट करने वाले सद्दर्शन को स्पष्ट देखता है और अपने झूठे आग्रह को छोड देता है। मनीषियो ने इसी स्थिति को भटके हुए को मार्ग पर लाना कहा है। विद्वानो का मत है कि जो प्राणी मूर्ख हो, गुणदोष की परीक्षा न कर सकता हो, ज्ञान-शून्य हो, ऐसा प्राणी सिद्धान्त रूप विषम दुरूह ज्ञान को कैसे प्राप्त कर सकता है? वस्तुत. मैं अच्छा तू खराब, मेरा दर्शन अच्छा तेरा खराब, यह सब बोलना/ मानना और ऐसी बाते करना तो स्पष्टत मत्सर/द्वेष का खेल है। [९०३–९०७]

* पृष्ठ ७६७

अधिक क्या कहूँ ? इस लोक मे जितने भी प्राणी यथावस्थित दृष्टि वाले है, वे सभी इस तात्त्विक शुद्ध दर्शन के अन्तर्गत आ जाते हैं। ऐसे विशाल दर्शन मे रहने वालों का तेरा-मेरा तो नष्ट ही हो जाता है, अत· वे किसी प्रकार का वाद-विवाद करते ही नही। कभी वाद करना भी पडे तो वे सब को समानता प्रदान करते हैं, सब के अन्दर गहराई मे रही हुई एकरूपता का भान कराते है। कुछ प्राणियो का कर्म-मल नष्ट नही होने से वे विपरीत दृष्टि वाले होते है, जिससे मात्सर्य और अभिमान मे आकर वे अपने दर्शन को ही व्यापक बताते हैं, उसी को सर्वव्यापक कहलवाने का दावा करते हैं। ऐसे जन्मान्ध तुल्य मनुष्यो को तो उत्तर न देना ही अच्छा है, अथवा यदि संभव हो तो ऐसे लोगो को तत्त्वमार्ग पर लाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस ससार मे मोह को नष्ट करने के समान अन्य कोई महत्तम उपकार नही है।
[९०८–९११]

पुण्डरीक ! तूने पूछा कि अन्य दार्शनिक अपने दर्शन को व्यापक बताते हैं, उसका क्या उत्तर है ? उसी विषय मे मैंने तुझे ऐसा उत्तर बताया है कि जिसका कोई प्रतिघात न हो, कोई काट न कर सके। बात ऐसी है कि जैन-दर्शन मे दृष्टिवाद नामक बारहवां अग-शास्त्र है जो समुद्र के समान विशाल है, इस मे सभी नयो (दृष्टियो) का समावेश है। इस सागर मे कुदृष्टि रूपी नदिया भी आकर मिल जाती हैं, यह सब तू इससे स्पष्ट समझ सकेगा। जब तू इसका अभ्यास करेगा तब तेरे समस्त सन्देहो का विलय/नाश हो जायेगा और तुझे पूर्ण विश्वास हो जायगा कि सर्वज्ञ महाराज के वचनो से अधिक श्रेष्ठ कोई वचन नही है। [९१२–९१४]

इस प्रकार समन्तभद्राचार्य ने पुण्डरीक मुनि के प्रश्नो का विस्तारपूर्वक समाधान किया।

२० मोक्ष-गमन

समन्तभद्र का मोक्ष-गमन

सैद्धान्तिक रहस्यो के ज्ञाता आचार्य समन्तभद्र की वाणी से पुण्डरीक मुनि के समस्त सदेह नष्ट हो गये। वे क्रमश द्वादशागी के पारगामी विद्वान् बने। आचार्य समन्तभद्र की कृपा से अनन्त गम-पर्याय युक्त सभी भावो को विस्तार पूर्वक जान गये। उन्होने गहन अभ्यास एव चिन्तन-मनन द्वारा आगम के रहस्य ज्ञान को हृदयगम किया। फिर आचार्यश्री ने इन्हे द्वादशांगी सूत्र की व्याख्या करने और गच्छ सभालने की आज्ञा दे दी। अपने आचार्य पद का स्थान पुण्डरीक मुनि को देते हुए समन्तभद्राचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। अपने पीछे शासन के रक्षक की स्थापना कर, योग्य व्यक्ति को उसके योग्य पद पर स्थापित कर वे अपने कर्त्तव्य से उऋण हुए और मन मे संतुष्ट हुए। पुण्डरीक मुनि को आचार्यपद पर प्रतिष्ठित करने की प्रसन्नता मे आठ दिन तक देवो और मनुष्यो ने विधि पूर्वक एव आनन्द से देव और सघ की पूजा-भक्ति की। * अन्त मे समन्तभद्राचार्य ने अपने शरीर रूपी पिजर को त्याग कर, कृतकृत्य होकर मोक्ष प्राप्त किया। [९१५–९२०]

पुण्डरीक का मोक्ष गमन

इसके पश्चात् पुण्डरीक आचार्य की भी प्रगति होने लगी। पहले उन्हे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ और बाद मे मन पर्यव-ज्ञान भी प्राप्त हो गया। पुण्डरीकसूरि शासनदीपक बने। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से कमलों को विकसित करता है वैसे ही उन्होने अपने उपदेश रूपी किरणो के तेज से भव्य प्राणियो की महामोह रूपी निद्रा को उड़ा दिया और उन्हे जाग्रत कर दिया। लोगो के उपकार को ध्यान मे रखकर ही उन्होने एक देश से दूसरे देश मे विहार किया, अपनी साधुचर्या मे स्थिर रहे, निरतिचार चारित्र का पालन किया और अनेक गुण-विभूषित शिष्य समुदाय को सगठित किया। उन्होने दान, शील, तप और भाव रूपी धर्म के चारो पायो का जीवन मे क्रमश पालन किया। जीवन के प्रथम भाग मे त्याग किया, दूसरे भाग मे शील (ब्रह्मचर्य) का पालन किया, तीसरे भाग मे उत्कृष्टतम तपस्या की और चौथे भाग मे भाव-धर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार धर्म-जीवन के चारो विभागो का आचरण कर, दिन की आकृति को धारण करने वाले इस जीवन को भव्य रूप से व्यतीत करते हुए जिनशासन को प्रकाशित किया। सूर्य रूप पुण्डरीकाचार्य ने जीवन के सन्ध्या काल मे अपने जीवन का अन्त निकट जान कर सलेखना (अन्तिम आराधना) अगीकार कर ली। [९२१–९२५]

---

* पृष्ठ ७६८

अन्तिम आराधना के समय को निकट जानकर पहले उन्होने अपने शिष्य-रत्न धनेश्वर को स्वकीय स्थान पर आचार्य पद पर स्थापित किया। धनेश्वर मुनि उच्च क्रियाओ के अभ्यासी थे। योग-क्रियाओ के पालक थे और सभी आगमो के गीतार्थ/निष्णात थे। क्रिया और ज्ञान मे पारगत शिष्यरत्न को आचार्य पद पर स्थापित कर आचार्य पुण्डरीक कृतकृत्य हुए। [९२६]

फिर आचार्य ने धनेश्वर को अनुज्ञा प्रदान कर, अपने सामने सब से आगे बिठाकर गच्छ का भार सौपा और अनुशासनात्मक निर्देश दिया—

हे महाभाग्यशालिन्! यह जिनागम ससार रूपी महापर्वतो को भेदने मे वज्र के समान है, पर वह बडी कठिनाई से सीखा जाता है। तुमने इसे सीखा है, अत. तुम धन्यवाद के पात्र हो। आज तुम्हे जिस पद का भार सौपा गया है वह ससार मे सब से उत्तम सत्सम्पदाओ का पद है, महास्थान है। यह आत्मसपत्तियो का सर्वोच्च-तम पवित्र स्थान है और पहले भी कई महासत्त्वधारी धीर-वीर-पुरुष इसको सुशोभित कर चुके हैं। हे वत्स! यह पद भाग्यशाली को ही दिया जाता है। जो महासत्त्व इस पद-भार को संभालता है, वह धन्य है। ऐसे भाग्यवान प्राणी इस पद को प्राप्त कर ससार से भी पार उतर जाते है। [९२७–९३०]

यह समस्त मुनिपुगवो का समूह ससार-अटवी से घबराकर अब से तेरी शरण मे है। तू इतना सक्षम है कि तू इन्हे ससार-अटवी से पार उतार सकता है, इसीलिये ये मुनि तेरी शरण मे आये है। [९३१]

भाग्यशाली प्राणी स्वय परमैश्वर्य युक्त निर्मल गुणपुन्जो को प्राप्त कर ससार से त्रस्त प्राणियो की रक्षा करते है। उन्हे ससार-भय से मुक्त करते है। ये संसारी जीव सचमुच भाव-रोग से पीडित है और तू यथार्थ भाववैद्य/भिषग्वर है, अतः तुझे इन उत्तम ससारी जीवो को भाव-व्याधि के दु ख से प्रयत्नपूर्वक छुडाना चाहिये। जो गुरु स्वय चारित्र और क्रिया मे अप्रमादी होता है, परोपकार मे उद्यमी होता है, मोक्ष पर दृढ लक्ष्य वाला होता है और ससार-बन्दीगृह से नि स्पृह होता है वही अन्य प्राणियो को दु.ख और व्याधि से छुडा सकता है।

तू इस स्थान/पद के सर्वथा योग्य है और तुझे ऐसी प्रेरणा करना कल्प है/ शास्त्र की आज्ञा है। इसीलिये मैने तुझे इतना प्रेरित किया है। सक्षेप मे तुझे अपने गच्छाधिपति पद के योग्य सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये। [९३२–९३५]

आचार्य पुण्डरीक के उपर्युक्त अनुशासनात्मक निर्देश को धनेश्वरसूरि नत-मस्तक होकर विनयपूर्वक सुनते रहे। तत्पश्चात् पुण्डरीकाचार्य ने अपनी दृष्टि अपने शिष्यो की तरफ घुमाई और कहा—हे शिष्यो! तुम सब को यह ध्यान रखना चाहिये कि धनेश्वरसूरि तुम्हे ससार-सागर से पार उतारने के लिये सचमुच एक सुदृढ जहाज के समान है। यदि तुम्हे सागर से पार उतरना है तो इस जहाज को कभी भी मत छोडना। तुम्हे सदा इनके अनुकूल बनकर रहना चाहिये, कभी भी इनके प्रतिकूल कोई कार्य नही करना चाहिये। सदा इनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये, जिससे कि तुम्हारा

गृह त्याग जैसा महान कार्य * सफलता को प्राप्त हो । यदि तुम इनकी आज्ञा का उल्लघन करोगे, या आज्ञा के प्रतिकूल चलोगे तो वह जगत्वन्धु तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन माना जावेगा । तुम जानते ही हो कि भगवान् की आज्ञा के उल्लंघन से इस भव तथा परभव में तुम्हे अनेक प्रकार की विडंवनाये प्राप्त होगी, अत· सदा इनकी आज्ञा में और इनके अनुकूल ही रहना । 'कुलवधु न्याय' से अर्थात् जैसे कुलवधु किसी भी प्रकार की स्खलना के कारण सास, ससुर, पति आदि से तिरस्कृत होने पर भी ससुराल और पति के चरणो को नही छोडती वैसे ही तुम्हे नियत्रण मे रखने के लिये यदि गुरु कुछ कटूक्ति भी कह दे तव भी तुम्हे जीवनपर्यन्त इनके चरण-कमलो को नही छोडना चाहिये, कभी इनका अनादर नही करना चाहिये ।

जो भाग्यशाली गुरु-चरणो की सर्वदा सेवा करते हैं वे ही वास्तव मे सच्चे ज्ञान के पात्र हैं ! ऐसे मुनियों का दर्शन निर्मल और चारित्र निष्प्रकम्प/स्थिर होता है । [९३९–९४१]

शिष्यों ने सिर झुका कर सद्धर्माचार्य के वचन स्वीकार किये और पुन.-पुनः गुरु महाराज को वन्दन किया । इस प्रकार अपने कर्त्तव्य को पूर्ण कर पुण्डरीकसूरि गण का त्याग कर किसी श्रेष्ठ पर्वत की गुफा मे चले गये । [९४२–९४३]

गुफा मे पहुँच कर वे स्थिर हो गये । महान् तपस्या के अनुष्ठान से उनके शरीर का रक्त-मास सूख गया और अस्थिपंजर मात्र रह गया । फिर भी धैर्यवान मनस्वी महर्षि ने परिषह सहन करने के लिये स्वय को एक शुद्ध शिला पर स्थिर कर दिया । फिर उन्होने भावपूर्वक पच परमेष्ठी मत्र का स्मरण प्रारम्भ किया । चित्त को नमस्कार मत्र मे एकाग्र कर, हृदय मे सिद्धो की स्थापना कर, दृष्टि को इधर-उधर से हटाकर प्रणिधान धारण किया । धर्मध्यान और शुक्लध्यान के हेतुभूत इस प्रणिधान को इन महान भाग्यवान आचार्य ने अत्यन्त विशुद्ध बुद्धिपूर्वक और तीव्र सवेग के साथ स्वीकार किया । इस प्रणिधान मे उन्होने निम्न चिन्तन किया.—

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य को प्राप्त करने मे तत्पर मेरी अन्तरात्मा एक ही है, मात्र वही मेरी है, इसके अतिरिक्त अन्य सभी का मैंने त्याग कर दिया है । राग, द्वेष, मोह और कपाय रूपी मैल को धोकर मैं विशुद्ध हो गया हूँ । अब मैं सच्चा स्नातक हो गया हूँ । सभी जीव मुझे क्षमा करे, मै सभी जीवो को क्षमा करता हूँ । मेरी आत्मा अव वैर-विरोध रहित होकर अत्यन्त शान्त और क्षेत्रज्ञ हो गई है । अभी तक मैंने किसी भी बाह्य वस्तु को अपनी समझ कर ग्रहण करने की भूल की हो, उसका अव मैं त्याग करता हूँ । [९४४–९५०]

महान् तीर्थंकर भगवान् (अरिहन्त), पापरहित सिद्ध भगवान्, विशुद्ध सद्धर्म और साधु मेरा मगल करे । त्रैलोक्य मे मैं इन चारो (अरिहन्त, सिद्ध, साधु और

* पृष्ठ ७६९

सद्धर्म) को ही सर्वोत्तम रूप से अगीकार करता हूँ। भवभीरु (संसार से भयभीत) होकर मैं इन चारों की शरण ग्रहण करता हूँ [६५१–६५२]

मैं सभी कामनाओ से निवृत होता हूँ। मेरे मन के विकल्पजालों का मै निरोध करता हूँ। अव मैं सभी प्राणियो का बन्धु हूँ और सभी स्त्रियो का पुत्र हूँ। सर्व प्रकार के मन, वचन काया के योगो का निरोध करने वाली शुद्ध सामायिक को अव मैंने ग्रहण कर लिया है। मैंने मन, वचन, काया की सभी चेष्टाओ का त्याग कर दिया है। हे परमेश्वर ! हे महान् उदार सिद्धो ! आप अपनी कृपा-दृष्टि इधर कीजिये, अपनी करुणा-दृष्टि मुझ पर डालिये। अभी मुझ मे प्रकर्ष सवेग उत्पन्न हुआ है, अत हे प्रभो ! मेरे द्वारा इस भव मे या अन्यत्र कभी भी कोई बुरा आचरण हुआ हो तो मैं उन सव की पुन.-पुन· निन्दा करता हूँ।

मै समस्त उपाधि से विशुद्ध हो गया हूँ, ऐसा मैं इस समय मानता हूँ। आगे सत्य-तत्त्व को तो केवली भगवान् ही जानते हैं। [६५३–६५६]

मै ससार-प्रपञ्च से विलग हो गया हूँ। इस समय मुझे एक मात्र मोक्ष की लगन लगी हुई है। जन्म-मरण का सर्वथा नाश करने वाले जिनेश्वर देव को मैने मेरी आत्मा को समर्पित कर दिया है। इन महात्माओ को सद्भाव पूर्वक मेरा चित्त अर्पित है। अव वे इस समय अपनी शक्ति से मेरे समस्त शेष कर्मों का नाश करे। [६५७–६५८]

इस प्रकार प्रणिधान एव आलोचना पूर्वक पुण्डरीक महात्मा ने शरीर के ममत्व का त्याग कर, नि.सग होकर एक शिला-खण्ड पर पादपोपगम (वृक्ष की तरह निश्चल होकर) अनशन धारण किया।

पादपोपगम की स्थिति मे विराजमान पुण्डरीकाचार्य को उस समय देवों और असुरो की ओर से अनेक भीषण उपसर्ग हुए जिनको उन्होने शान्तिपूर्वक अपने आतरिक तेज से सहन किया। पशु-पक्षी और मनुष्यो के उपसर्ग भी उन्होने उसी धैर्य से सहन किये।

इसके पश्चात् धर्म-ध्यान द्वारा उन्होने अपने अनेक कर्मों का नाश किया और शुक्लध्यान धारण किया और अपने वीर्य (सत्त्व) रूपी अग्नि के बल से समग्र तथा कर्मजालो को भस्मीभूत कर दिया। शुभ ध्यान की वृद्धि होते-होते क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर चारो घाती कर्मो को नष्ट कर अनन्त वस्तुओ के दर्शक केवलज्ञान को प्राप्त किया। [६५६–६६३]

उस समय उनके गुणो से आकर्षित होकर उनकी पूजा करने के लिये चारो प्रकार के देवता वहाँ एकत्रित हुए। किन्नरगण मधुर स्वर मे गाने लगे, आकाश मे देव-दुन्दुभि वजाने लगे, देवागनाये नृत्य करने लगी, देवगणो ने चारो तरफ के रज़ (कचरे) को साफ कर सुगन्धित जल और मनोहर पुष्पो की वष्टि की।

* पृष्ठ ७७०

चारो तरफ की दिव्यगन्ध से आकर्षित होकर भौंरो के झुड वहाँ गुंजारव करने लगे जिससे वह प्रदेश क्षणमात्र मे अति रमणीय और सुगन्ध से महक उठा। भक्तिरस मे लीन देवो ने चन्दन का केवली के शरीर पर लेप किया, दिव्य धूप से सुवासित किया और अपने तेजस्वी देदीप्यमान मुकुट युक्त सिरो को मुनीश्वर के चरणो मे झुकाकर उनकी स्तुति करने लगे तथा पाप-शुद्धि के लिए उनकी चरण-रज को अपने मस्तक पर लगाकर अपना अहोभाग्य मानने लगे।

इस प्रकार देवगण अतिशय प्रमोदपूर्वक मुनीश्वर के समक्ष खडे थे तभी उन्होने समुद्घात (एक साथ प्रवल वेग से कर्मों का नाश) अवस्था को प्राप्त किया। क्षणमात्र मे समुद्घात द्वारा अशेष कर्मो का समीकरण करते हुए तीनो योगो का निरोध करने लगे।

क्रमश· चौदहवें गुणस्थान पर पहुँचकर, शरीर के योग का भी निरोध कर, शैलेशी अवस्था को प्राप्त हुए। शैलेशीकरण कर अन्तर्मुहूर्त मे परमपद मोक्ष प्राप्त किया।

उस समय देवताओ ने उनकी विशेष रूप से महापूजा की और अपने कर्त्तव्य का पूर्णतया पालन करते हुए अत्यन्त आनन्दपूर्वक अपने पापो को नष्ट कर अपने-अपने स्थान को गये। [९६४–९७३]

महाभद्रा का मोक्षगमन

देवी महाभद्रा साध्वी ने भी प्रवर्तिनी के योग्य अपने कर्त्तव्य को पूरा किया और क्रमश. प्रगति करती हुई क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर सर्व कर्मो को भस्मीभूत कर मोक्ष पधारी। इन्होने भक्तपरिज्ञा अनशन (खाने-पीने का त्याग, पर चलने-फिरने का त्याग नही) द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। [९७४]

सुललिता का मोक्षगमन

सुललिता साध्वी ने पूर्व-वर्णित अनेक प्रकार के तप किये, परिणामस्वरूप जैसे रत्न खार से निर्मल हो जाता है वैसे ही उनका चित्तरत्न अधिक निर्मल होता गया। अन्त मे शरीर रूपी पिजरे को छोडकर कर्मो का क्षय कर इन्होने भी भक्त-परिज्ञा अनशन द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। [९७५–९७६]*

श्रीगर्भ का देवलोक-गमन : सामान्य प्रगति

श्रीगर्भ राजा तथा अन्य तपोधन साधुओ ने भी अनेक प्रकार के तपो की आराधना की और अन्त मे देवलोक गये। सुमंगला आदि साध्वियाँ भी देवलोक में गई।

अधिक क्या? सक्षेप मे कहा जाय तो मनोनन्दन उद्यान मे जितने भी प्राणी समन्तभद्राचार्य के चरणो के निकट आये थे और जिन्होने अनुसुन्दर का

* पृष्ठ ७७१

चरित्र सुना था उन सब की अन्तरग प्रगति हुई। जिन्होने दूर रहकर, विस्मित होकर मात्र कुतूहल से उपदेश सुना था उनका भी कल्याण हुआ। जिन-जिन भव्य प्राणियो ने यह कथा सुनी उनका मन भी निश्चिततया भव प्रपञ्च से विरक्त हुआ, थोड़े बहुत अश मे उन्हे भी वैराग्य प्राप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप कुछ श्रोताओ ने दीक्षा ली, कुछ ने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया, कुछ ने सम्यक्त्व प्राप्त किया और कुछ को सवेग प्राप्त हुआ। [९७७–९८१]

२१. उपसंहार

हे भव्यपुरुषो! मैने आपको महान् पुरुषो का यह वृत्तान्त सुनाया जिसे आपने भावार्थ सहित सुना/समझा। यदि आप इसे सम्यक् रीति से समझ गये है, तो आपको भी इसके अनुसार अनुष्ठान/आचरण करना चाहिये, जिससे कि इस प्रसग मे किया गया मेरा परिश्रम भी सफल हो। एक विशेप बात, मैंने इस ग्रन्थ मे जो वृत्तान्त प्रस्तुत किया है, वह प्राय सभी ससारी जीवो पर समान रूप से लागू होता है, तव स्वय के चरित्र से मिलते चरित्र को सुनकर भी यदि आप उसे जीवन मे उतारने मे विलम्ब करे, उसकी उपेक्षा करे तो वह किसी प्रकार आपके लिए योग्य नही कहा जा सकता। [९८२–९८५]

उपनयों का उपसंहार

कुमार पुण्डरीक इस जम्बूद्वीप स्थित पूर्व महाविदेह क्षेत्रवती सुकच्छ-विजय के शखपुर नगर मे श्रीगर्भ राजा और कमलिनी रानी का पुत्र हुआ। समन्त-भद्राचार्य ने जो शखपुर के चित्तरम उद्यान मे स्थित मनोनन्दन चैत्य मे विराज रहे थे तब वालक की पात्रता को देखकर उन्होने अनेक भव्य पुरुषो के समक्ष कहा था कि 'मनुजगति नगर मे अनुकूल वने कर्मपरिणाम महाराजा और काल-परिणति महारानी के सुमति या भव्यपुरुप नामक बालक का जन्म हुआ है।' साथ मे उन्होने यह भी कहा था कि 'यह बालक बडा होकर समस्त गुणो का आधार सर्वगुण सम्पन्न होगा।' यह वात तो आपके ध्यान मे ही होगी।

उपर्युक्त सभी वृत्तान्त लघुकर्मी भव्य पुरुषो पर समान रूप से घटित होता है। मनुष्य चाहे किसी क्षेत्र, नगर या स्थान मे जन्म ले, पर वे सब मनुजगति नगरी मे ही रहते हैं। बाह्यदृष्टि से उनके माता-पिता के भिन्न-भिन्न नाम भले ही हो, परन्तु वस्तुत तो वे सभी कर्मपरिणाम राजा और कालपरिणति रानी के ही पुत्र है। फिर उनके कुछ भी नाम क्यो न रखे गये हो, पर उनका सामान्य नाम भव्यपुरुष

ही रखा जाय तो कोई बाधा नही आती, उचित ही है। और, उनकी बुद्धि अच्छी होने से उन्हे सुमति भी कहा जा सकता है।

सदागम (सर्वज्ञ-भाषित आगम का प्रतिपादक) को पुरुष के आकार मे बतलाने वाले श्री समन्तभद्राचार्य ने इसीलिये पुण्डरीक को मनुजगति निवासी लघु-कर्मी सर्वगुणसम्पन्न सुमति/भव्यपुरुष की उपमा प्रदान की है, वह उचित ही है।

जैसे महाभद्रा ने समन्तभद्राचार्य के वचन सुनकर, तुरन्त प्रतिबोधित होकर दीक्षा ग्रहण करली और प्रज्ञाविशाला बन गई, उसी प्रकार संसार मे उत्तम पुरुष सर्वज्ञ-प्ररूपित आगम का उपदेश सुनकर तत्त्व का सम्यक् बोध प्राप्त करते है और उसे प्राथमिकता देते हुए शीघ्र ही साधु बन जाते हैं। परमार्थ से ऐसे पुरुषों को ही प्रज्ञाविशाल (विशाल बुद्धि वैभव वाले) कहा जाता है।*

सुललिता (अगृहीतसकेता) को जैसे पूर्व भव के अभ्यास के कारण महाभद्रा से गुणकारी स्नेह-सम्बन्ध हुआ, वैसे ही ससार के कुछ भारीकर्मी जीवो का जब भविष्य सुधरने वाला होता है तब ऐसे भव्य प्राणियो का किसी न किसी सुसाधु से अवश्य सम्बन्ध होता है और ऐसा सम्बन्ध उसके गुण-वृद्धि का कारण होता है। क्योकि, कल्याण-मित्र का योग सम्पत्ति को प्राप्त कराने वाला, योग्यता उत्पन्न करने वाला, गुण-रत्नो की खान भविष्य की कल्याण-परम्परा को सूचित करने वाला और जैसे अमृत का योग विष को नष्ट करता है वैसे ही कर्मरूपी महाकठिन विष को नष्ट करने वाला होता है।

जैसे महाभद्रा साध्वी ने समन्तभद्राचार्य के माध्यम से अपने उपदेश द्वारा सुललिता के हृदय मे सदागम के प्रति भक्ति उत्पन्न की और पुण्डरीक की धाय बनकर उसका सदागम/आचार्य से परिचय करवाया वैसे ही परहित मे तत्पर सुसाधु आज भी स्वभाव से ही गुरुकर्मी भव्य प्राणियो के प्रति अकृत्रिम स्नेहभाव रखते है और किसी भी प्रकार उनमे भगवान् के आगमो के प्रति भक्ति उत्पन्न करते है। क्योकि, किसी भी प्रकार यदि एक बार सर्वज्ञ के आगम पर भक्ति उत्पन्न हो जाय तो वह कर्मरूपी कचरे को धोकर साफ करने वाली, जीवरत्न को विशुद्ध बनाने वाली, भव-प्रपच से मुक्त करने वाली, तत्त्वमार्ग को बताने वाली और परमपद को प्राप्त करवाने वाली होती है।

अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने स्वय को ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् सुललिता और पुण्डरीक को संवेग उत्पन्न कराने हेतु उनके समक्ष अपने ससार-भ्रमण का सम्पूर्ण चरित्र उपमा/रूपक द्वारा विस्तार से सुनाया, वह भी प्राय सभी जीवो पर समान रूप से घटित होता है।

जब भी कुछ जीव मोक्ष जाते है तब वे लोकस्थिति के सार्वजनिक नियोग के अनुसार और कर्मपरिणाम की आज्ञा से ही जाते है और उतने ही जीव

* पृष्ठ ७७२

भवितव्यता के वशीभूत होकर असव्यावहारिक राशि से बाहर निकलते है। फिर भिन्न-भिन्न प्रकार से अनन्त भव-भ्रमण करते है। भटकते हुए बडी कठिनाई से उन्हे कभी मनुष्य भव प्राप्त होता है, किन्तु उसे भी वे हिंसा-क्रोध आदि दोषो के सेवन मे व्यर्थ गवा देते हैं और मोक्ष-साधन के दुर्लभ अवसर को खो देते है। कभी-कभी सद्गुण प्राप्त करने का अवसर मिलने पर नाममात्र की प्रगति करते है। यद्यपि दोष-सेवन के परिणामस्वरूप उनकी सामग्री तो नरकगामी होती है, तथापि संयोग से नदी मे घिसते-घिसते गोल बने पत्थर के समान सर्वज्ञ-प्ररूपित आगमो मे कथित अनुष्ठानों को करते-करते उन्हे सम्यक्ज्ञान प्राप्त होता है। तब वे स्वय समझते हैं और दूसरो को भी समझाते है कि यह ससार का प्रपञ्च एक नाटक जैसा है। जैसे नाटक मे पात्र भिन्न-भिन्न वेष धारण करता है वैसे ही प्राणी नये-नये शरीर धारण करता है। जैसे नर्तक अनेक स्थानो पर जाकर नृत्य करता है वैसे ही यह प्राणी समय-समय पर अनेक योनियो मे प्रवेश करता रहता है। जैसे नाटक मे अनेक प्रकार के झोपडे, घर, वगले, महल आदि बनाये जाते है वैसे ही ससार मे देव विमान, भवन आदि अनेक स्थान होते है। जैसे नाटक करने वालो का एक पूरा कुटुम्व होता है, टोली होती है, वैसे ही ससार मे प्राणी के भाई, बन्धु और कुटुम्बियो की पूरी टोली होती है। अतः यह सम्पूर्ण भव-प्रपञ्च नाटक जैसा लगता है। द्रव्य की अपेक्षा से परमार्थत. आत्मा एक ही है और अकेला है, पर मनुष्य आदि गति मे* उसे जो भिन्न-भिन्न नाम, पर्याय रूप से मिलते हैं, वे सब कृत्रिम है, झूठे हैं और अल्प समय के लिए है, अत. विवेकशील प्राणियो को इन पर्यायो पर विश्वास नही करना चाहिये। यह भव-प्रपञ्च लोकस्थिति के नियमानुसार होता है, कालपरिणति के सकेत से होता है और कर्मपरिणाम की सत्ता का ही यह परिणाम है। इसका स्वभाव और भवितव्यता इसी प्रकार की होती है। जीव की स्वय की भव्यता भी इसमे हेतु रूप रहती है। इस प्रकार लोकस्थिति, काल, कर्म, स्वभाव, भवितव्यता और निजभव्यता की परस्पर अपेक्षा से, इन सब कारण-समुदाय के एकत्रित होने पर भव-प्रपच उत्पन्न होता है। जव भव-प्रपच के कारणो का परिपाक हो जाता है तव इसी प्रपच का उच्छेद करने के लिये परमेश्वर की कृपा होती है। परमेश्वर का अनुग्रह निर्मल ज्ञान का हेतु बनता है और इस विशुद्ध ज्ञान के बल से ही आत्मा को यह वोध होता है कि मुझे जो सुख-दु ख अभी प्राप्त हो रहे है, या अभी मुझे ससार मे रहना पड़ रहा है, अथवा मेरा मोक्ष भी हो सकता है, वह सव परमेश्वर की आज्ञा का पालन न करने और करने से ही होता है। परमेश्वर की आज्ञा का पालन, लेश्याओ (आत्मपरिणति) की विशुद्धि और उनकी आज्ञा का उल्लघन आत्मा को मलिन करना है। इस विचार के परिणाम स्वरूप वह लेश्या को शुद्ध करने वाले सद्गुणो मे प्रवृत्त होता है और लेश्या को मलिन करने वाले समस्त दोषो से दूर हटता जाता है। इस प्रकार लेश्या को शुद्ध करते-करते अन्त मे उस पर पूर्ण विजय

* पृष्ठ ७७३

प्राप्त कर अलेशी (लेश्या रहित) हो जाता है। फिर अपने स्वाभाविक स्वरूप मे स्थित होकर स्वय ही परमेश्वर/परमात्मा वन जाता है।

स्वय समन्तभद्राचार्य को अनुसुन्दर चक्रवर्ती अर्थात् ससारी जीव का चरित्र प्रत्यक्ष ज्ञात हुआ था और महाभद्रा ने उनके कहने से इसे जाना था। इसी प्रकार सभी ससारी जीवो का चरित्र सर्वज्ञ के आगम को प्रत्यक्ष होता है और सुसाधु जव इसे दूसरो को सुनाते हैं तब प्रज्ञाविशाल (विशाल वुद्धि वाले) इसे स्वय समझ लेते है और उसका प्रतिपादन दूसरो के समक्ष करने मे भी स्वय सक्षम हो जाते है।

यह सम्पूर्ण चरित्र सुललिता (अगृहीतसकेता) को उद्देश्य कर सुनाया गया था, पुण्डरीक ने तो प्रासगिक रूप से सुना मात्र था। फिर भी वह लघुकर्मी होने से उसने शीघ्र ही इस अनुसुन्दर चक्रवर्ती का जीवन-चरित सुनकर, समझकर, अवगाहन कर उसे अपने जीवन मे कार्यान्वित कर लिया।

इसी प्रकार हे भव्यो! आगम और अनुभव से सिद्ध इस ससारी जीव के चरित्र को आप भली-भाति समझे, समझ कर उसे चरित्र/आचरण मे उतारे, कषायो का त्याग करे, कर्म आने के मार्ग आस्रव के द्वार बन्द करदे, इन्द्रिय-समूह पर विजय प्राप्त करे, समग्र मानसिक मलिनता के जाल को ध्वस करदे, सद्गुणो का पोषण करे, ससार के प्रपच/विस्तार का त्याग करे और शीघ्र ही शिवालय (मोक्ष) पहुँचे जिससे कि आप भी सुमति (सन्मति वाले) भव्यपुरुष वन जाये।

यदि आप मे भव्यपुरुष पुण्डरीक जितनी लघुकर्मिता न हो तो जैसे सुललिता को वार-बार प्रेरणा दी गई, बार-बार प्रेम पूर्वक समझाया गया, अनेक प्रकार के उपालम्भ दिये गये, पूर्व-भव की स्मृति दिला कर सचेत की गई, तब गुरुकर्मी होने पर भी वह प्रतिबोधित हुई, वैसे ही आप भी जागृत होकर बोध प्राप्त करे। अन्तर केवल इतना है कि यदि आप इस प्रकार बोध प्राप्त करेगे तो आपकी गणना प्रज्ञाविशालो की श्रेणी में नही होगी, किन्तु आप भी अगृहीतसकेता के नाम से पुकारे जायेंगे। यह अवश्य है कि गुरु महाराज को आपको प्रतिबोध देने मे कण्ठशोपण अधिक करना पडेगा, उन्हे वहुत कठिनाई उठानी पडेगी। पर, यह तो निश्चित है कि वे आपको प्रतिबोध देंगे और अन्त मे आप अवश्य प्रतिबोध प्राप्त करेगे।

जिस प्रकार सुललिता को सदागम के ऊपर बहुमान हुआ और उस वहुमान के प्रभाव से सुललिता को स्वय के दुश्चरित पर पश्चात्ताप हुआ, सद्गुणो पर पक्षपात/आकर्षण हुआ, फलस्वरूप उसके सकल कर्ममल का नाश हुआ वैसे ही आपको भी सदागम/सर्वज्ञागम पर तदनुरूप अन्त करणपूर्वक वहुमान रखना चाहिये जिसके परिणामस्वरूप आपको भी विशिष्ट सत्तत्त्व-वोध प्राप्त हो।

जिस प्रकार श्रेयास कुमार और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को जातिस्मरण ज्ञान हुआ, जिससे वे पूर्वभवो के बारे मे जान सके, उसी प्रकार ससारी जीव अनुसुन्दर चक्रवर्ती आदि को भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जाति-स्मरण ज्ञान के फलस्वरूप उसने अपने पूर्वभवों की ससार-भ्रमण की सारी आत्मकथा स्वय कही। यह शास्त्र

की आज्ञानुसार और युक्तियुक्त ही है;* क्योकि आगम मे मतिज्ञान की वासना असख्य काल तक रहती है, ऐसा कहा गया है। शास्त्र मे ऐसा एक भी वचन या उदाहरण नही है जिसमे यह बताया गया हो कि मतिज्ञान की वासना असख्य काल तक नही रह सकती। अनेक भवो के बाद भी यह वासना रह सकती है, अत अनुसुन्दर ने अपने भव-भ्रमण की कथा स्वय कही इसमे कोई विरोध नही है। [९८६–९८७]

ग्रन्थ का भावार्थ

प्रारम्भ से अन्त तक इस ग्रन्थ का भावार्थ निम्न है —

इस ससार मे ऐसी एक भी दुर्लभ वस्तु नही है जो कुशल-कर्म/पुण्य के विपाक के फलस्वरूप नही मिल सकती हो। पुण्य के प्रताप से सभी प्रकार के भोग और विपुल सुख प्राप्त हो सकते हैं, तथापि बुद्धिमान लोग शमसुख (शान्ति के साम्राज्य) को प्राप्त करना ही श्रेयस्कर समझते हैं। [९८८]

मनुष्य चाहे जितने उच्च पद पर पहुँच जाय, उच्चता की पराकाष्ठा प्राप्त करले, पर यदि वह पाप-कर्मो को अपना शत्रु न समझे तो वे प्रबल हो जाते है और तब वे प्राणी को इस भयकर ससार-समुद्र मे वेग से धकेल देते है। [९८९]

प्राणी ने यदि नरक मे जाने योग्य भयकर अशुभ पाप-कर्म सचित किये हो, तदपि यदि वह सदागम-बोध-परायण होकर क्षणभर भी पुण्य या शुभकर्म करे तो अन्त मे वह पाप रहित होकर मोक्ष भी जा सकता है। [९९०]

इस वस्तुस्थिति को समझकर यथाशक्य शीघ्रातिशीघ्र मन के मैल को निकाल कर दूर फेंक दीजिये। मन के मैल को निकाल कर सदागम की सेवा करिये, जिससे सद्आगम के आधार पर आप भी अनुसुन्दर चक्रवर्ती की भाति मोक्ष प्राप्त कर सके। [९९१]

एक विशेष बात यह भी है कि अनुसुन्दर चक्रवर्ती कर्ममल के वशीभूत हुआ, जिससे उसे अनन्त भव-भ्रमण करना पडा। उसके वृत्तान्त को कथा मे इसलिये गूथा गया कि प्राणियो की बुद्धि विकसित हो और उन्हे अपनी वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाय। [९९२]

विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि जैसे अनुसुन्दर चक्रवर्ती को जिस पद्धति से अनेक भव करने पडे उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को भी करने पडे, यह आवश्यक नही है। क्योकि, बहुत से प्राणियो ने एक ही भव मे एकबार ही जिनेन्द्र-मत को प्राप्त कर उसी भव मे मोक्ष प्राप्त किया है। कुछ प्राणियो ने जैनेन्द्र-मत की प्राप्ति करने के बाद तीसरे या चौथे भव मे मोक्ष प्राप्त किया है। अनुसुन्दर ने जो-जो अनुष्ठान किये वे अनुष्ठान भिन्न-भिन्न रूप मे करके भी अनेक भव्य जीव मोक्ष गये हैं।

---

* पृष्ठ ७७४

भिन्न-भिन्न प्राणियो की भव्यता अलग-अलग होती है और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार वे अपने ससार का क्षय करते हैं, अत. ससार से पार उतरने के लिए मूल आधार प्राणी की अपनी भव्यता ही है। [९९३-९९४]

भव्यो! यदि आपको इस कथा के गूढार्थ/आन्तरिक भावार्थ को मन मे धारण करना हो, कथा के रहस्य को समझना हो तो सक्षेप मे इस परमाक्षर मूल-मन्त्र को अपने हृदय-पटल पर अकित करले।

इस ससार मे जिनागम/जिन-मार्ग को प्राप्त कर सुमेधा वाले प्रत्येक मनुष्य को जैसे भी हो सके, जितना भी हो सके, उतना कर्ममल का विशोधन करना चाहिये, पाप को ढू ढ-ढू ढ कर निकाल फेकना चाहिये। [९९५]

प्रस्ताव का उपसंहार

एतन्नि.शेपमत्र प्रकटितमखिलैर्युक्तिगर्भैर्वचोभिः,
प्रस्तावे भावसारं तदखिलमधुना शुद्धबुद्ध्या विचिन्त्य।
भो भव्या! भाति चित्ते यदि हितमनघ चेदमुच्चैस्तरा व-
स्तत्तूर्णं मेऽनुरोधाद् विदितफलमल स्वार्थसिद्ध्यै कुरुध्वम् ॥ ९९६ ॥

इस प्रस्ताव मे मैंने युक्तिपूर्ण वचनो से जो-जो वृत्तान्त/घटना कही है वह समस्त भावार्थो/निष्कर्षो से परिपूर्ण है। हे भव्य प्राणियो! इन सब पर शुद्ध बुद्धि से विचार करे। विचार के परिणामस्वरूप यदि आपको मेरा कथन निष्पाप लगे, यदि आपको यह कथन हितकारी लगे तो मुझ पर अनुग्रह कर इन ज्ञात-फल और अच्छे परिणाम वाली वातो को अपने जीवन मे शीघ्र ही उतार लीजिये, इन्हे स्वीकार कीजिये और इन्हे अपने चारित्र मे क्रियान्वित कीजिये। इसी मे आपके स्वार्थ की परम सिद्धि है। [९९६]

उत्सूत्रमेव रचित मतिमान्द्यभाजा,
किञ्चिद्यदीदृशि मयाऽत्र कथानिबन्धे।
ससारसागरमनेन तरीतुकामै-
स्तत्साधुभि कृतकृपैर्मयि शोधनीयम् ॥ ९९७ ॥

उपर्युक्त कथा की रचना मैंने ससारसागर को पार करने की भावना से की है। मेरी बुद्धि की अल्पज्ञता के कारण यदि इसमें कुछ सूत्र/सिद्धात के विरुद्ध लिखा गया हो तो सज्जन पुरुप/सत्साधुगण मुझ पर कृपा कर उसका सशोधन करले, सुधार ले। [९९७]

उपमिति-भव-प्रपच कथा के पूर्वसूचित वार्तामिलक
वर्णन रूप आठवां प्रस्ताव पूर्ण हुआ।

उपमिति-भव-प्रपंच-कथा सम्पूर्ण।

ग्रन्थकर्ता प्रशस्ति*

द्य तिताखिलभावार्थः सद्भव्याब्जप्रबोधकः ।
सूराचार्योऽभवद्दीप्तः साक्षादिव दिवाकरः ॥९९८॥

निखिल भावार्थो को प्रकाशित करने वाले और भव्य प्राणी रूप कमल को विकसित करने वाले साक्षात् सूर्य के समान तेजस्वी सूराचार्य हुए । [९९८]

स निवृत्तिकुलोद्भूतो लाटदेशविभूषणः ।
आचारपञ्चकोद्युक्त प्रसिद्धो जगतीतले ॥९९९॥

ये सूराचार्य निवृति कुल मे उत्पन्न हुए थे, लाट देश के आभूषण रूप थे, पचाचार के पालन मे सर्वदा तत्पर थे और जगतीतल मे प्रसिद्ध थे । [९९९]

अभूद् भूतहितो धीरस्ततो देल्लमहत्तरः ।
ज्योतिर्निमित्तशास्त्रज्ञः प्रसिद्धो देशविस्तरे ॥१०००॥

सूराचार्य के पश्चात् देल्लमहत्तर हुए, जो प्राणियो के हितकारी थे, धीर-वीर थे, ज्योतिष व निमित्त शास्त्र के ज्ञाता थे तथा देश के अधिकाश भाग मे प्रसिद्धि-प्राप्त थे । [१०००]

ततोऽभूदुल्लसत्कीर्त्तिर्ब्रह्मगोत्रविभूषणः ।
दुर्गस्वामी महाभागः प्रख्यातः पृथिवीतले ॥१००१॥

उनके पश्चात् ब्रह्मगोत्र के विभूषण महाभाग्यशाली दुर्गस्वामी हुए । जिनकी कीर्ति उल्लसित हो रही थी और जो पृथ्वीतल पर ख्याति प्राप्त थे । [१००१]

प्रव्रज्यां गृह्णता येन गृहं सद्धनपूरितम् ।
हित्वा सद्धर्ममाहात्म्यं क्रिययैव प्रकाशितम् ॥१००२॥

दुर्गस्वामी ने दीक्षा ग्रहण करते समय प्रचुर धन-धान्य से पूरित गृह को छोडकर, सत्क्रिया के माध्यम से सद्धर्म के माहात्म्य को प्रकाशित किया । [१००२]

यस्य तच्चरितं वीक्ष्य शशांककरनिर्मलम् ।
बुद्धास्तत्प्रत्ययादेव भूयांसो जन्तवस्तदा ॥१००३॥

दुर्गस्वामी का चन्द्रकिरण के समान निर्मल चारित्र देखकर, विश्वस्त होकर अनेक प्राणियो ने बोध को प्राप्त किया, अर्थात् संसार से विरक्त हुए । [१००३]

सद्दीक्षादायकं तस्य, स्वस्य चाहं गुरूत्तमम् ।
नमस्यामि महाभागं गर्गर्षिं मुनिपुंगवम् ॥१००४॥

---

* पृष्ठ ७७५

श्री दुर्गस्वामी और स्वय मुझ (सिद्धर्षि) को दीक्षा प्रदान करने वाले, महाभाग्यशाली मुनिपु गव सर्वोत्तम गुरु श्री गर्गर्षि को मै नमस्कार करता हूँ। [१००४]

क्लिष्टेऽपि दुष्षमाकाले, यः पूर्वमुनिचर्यया ।
विजहारेह निःसङ्गो, दुर्गस्वामी धरातले ।।१००५।।

श्री दुर्गस्वामी अत्यन्त हीन दु षमकाल मे भी पूर्णरूपेण नि सग होकर पूर्वकाल अर्थात् चौथे आरे की श्रमण-चर्या का पालन करते हुए भूतल पर विचरण करते थे। [१००५]

सद्देशनांशुभिर्लोके, द्योतित्वा भास्करोपमः ।
श्रीभिल्लमाले यो धीरो, गतोऽस्तं सद्विधानतः ।।१००६।।

सूर्य की उपमा के समान धैर्यशाली दुर्गस्वामी सद्देशना रूपी किरणो से लोक को उद्योतित करते हुए जीवन के साध्य काल मे सद्विधान पूर्वक श्रीभिल्लमाल नगर मे अवसान को प्राप्त हुए। [१००६]

तस्मादतुलोपशमः सिद्धर्षिरभूदनाविलमनस्कः ।

परहितनिरतैकमतिः सिद्धान्तनिधिर्महाभागः ।।१००७।।

दुर्गस्वामी के सिद्धर्षि (सद्ऋषि) हुए जो अतुलनीय उपशम के धारक, स्फटिक सदृश निर्मल चित्त वाले, परहित के करने में सदैव बुद्धि का व्यय करने वाले, सिद्धान्त के निधान और महाभाग्यशाली थे। [१००७]

विषमभवगर्तनिपतितजन्तुशतालम्बदानदुर्ललितः ।
दलिताखिलदोषकुलोऽपि सततकरुणापरीतमनाः ।।१००८।।

ससार के विषम गर्त मे पडे हुए सैकड़ो प्राणियो को अवलम्बन रूपी दान देने वाले थे, स्वयं लाड-प्यार मे पले थे, जिन्होने समस्त दोप-पुञ्जो का दलन कर दिया था तथापि जिनका मन सर्वदा करुणा से ओत-प्रोत रहता था। [१००८]

यः संग्रहकरणरतः सदुपग्रहनिरतबुद्धिरनवरतम् ।
आत्मन्यतुलगुणगणैर्गणधरबुद्धिं विधापयति ।।१००९।।

यह सिद्धर्षि सग्रह/सक्षेप करने की कला मे कुशल है, दूसरो पर निरन्तर सद् अनुग्रह और उपकार करता है और स्वय के अतुलनीय गुणगणो के कारण वह तीर्थंकर के गणधर ही हो, ऐसी बुद्धि अन्य प्राणियो मे उत्पन्न करता है। [१००९]

बहुविधमपि यस्य मनो निरीक्ष्य कुन्देन्दुविशदमद्यतनाः ।
मन्यन्ते विमलधियः सुसाधुगुणवर्णकं सत्यम् ।।१०१०।।

जिनका विविध प्रकार का मन कुन्द पुष्प अथवा चन्द्रबिम्ब के समान निर्मल देखकर आजकल के विमल बुद्धि वाले नवयुवक भी मौलिक ग्रन्थो मे प्रति-

पादित सुसाधुओं के गुण वर्णन को सत्य मानते है अर्थात् आदर्श साधु का जैसा शास्त्रो मे वर्णन है, उसका यह सिद्धर्षि जीता जागता उदाहरण है । [१०१०]

उपमितिभवप्रपञ्चा कथेति तच्चरणरेणुकल्पेन ।
गीर्देवतया निहिताऽभिहिता सिद्धाभिधानेन ॥१०११॥

यह उपमिति-भव-प्रपच कथा गीर्देवता अर्थात् सरस्वती देवी ने बनाई है और सरस्वती के चरणरज-कल्प सिद्ध नामक महर्षि ने इस कथा का कथन किया है। [१०११]

आचार्यो हरिभद्रो मे, धर्मबोधकरो गुरुः ।
प्रस्तावे भावतो हन्त, स एवाद्ये निवेदितः ॥१०१२॥

आचार्य हरिभद्रसूरि मेरे धर्मबोधकारक गुरु है। इस बात का मैने प्रथम प्रस्ताव मे ही निवेदन/सकेत कर दिया है। [१०१२]

विषं विनिर्धूय कुवासनामयं, व्यचीचरद्यः कृपया मदाशये ।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां, नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्रसूरये ॥१०१३॥

श्री हरिभद्रसूरि ने कुवासना से व्याप्त विष का प्रक्षालन कर मेरे लिये अचिन्तनीय वीर्य के प्रयोग से कृपा पूर्वक सुवासना रूप अमृत का निर्माण किया, ऐसे आचार्यश्री को नमस्कार हो। [१०१३]

अनागतं परिज्ञाय, चैत्यवन्दनसंश्रया ।
मदर्थैव कृता येन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥१०१४॥

अनागत काल का परिज्ञान कर जिन्होने मेरे लिए ही चैत्यवन्दन से सम्बन्धित ललितविस्तरा नामक वृत्ति की रचना की। [१०१४]

यत्रातुलरथयात्राधिकमिदमिति लब्धवरजयपताकाम् ।
निखिलसुरभवनमध्ये सततप्रमदं जिनेन्द्रगृहम् ॥१०१५॥

यत्रार्थस्टङ्कशालायां धर्मः सद्देवधामसु ।
कामो लीलावती लोके, सदाऽऽस्ते त्रिगुणो मुदा ॥१०१६॥

तत्रेयं तेन कथा कविना निःशेषगुणगणाधारे ।
श्रीभिल्लमालनगरे गदिताऽग्रिममण्डपस्थेन ॥१०१७॥

जहाँ अतुलनीय रथयात्रा महोत्सव से वर्धित, अखिल देवभवनो के मध्य मे श्रेष्ठ उन्नत जयपताका से विभूषित और सतत प्रमुदित करने वाला जिनेन्द्र भगवान् का मन्दिर विद्यमान है। [१०१५]

* पृष्ठ ७७६

जहाँ टकशालाओं मे अर्थ/धन है, सद्देवों के धाम (जिनचैत्यों) मे धर्म है और लीलावती ललनाओ के लोक में काम है। इस प्रकार जहाँ तीनो गुणों (अर्थ, काम और धर्म) का सर्वदा मोदकारी जमघट है। [१०१६]

ऐसे निखिल गुणगणो का आधारभूत श्री भिल्लमाल नामक नगर के अग्रिम मण्डप मे रहते हुए सिद्धर्षि कवि ने इस कथा की रचना की। [१०१७]

प्रथमादर्शे लिखिता साध्व्या श्रुतदेवतानुकारिण्या।
दुर्गस्वामिगुरूणां शिष्यिकयेयं गुणाभिधया ।।१०१८।।

श्रुतदेवता का अनुकरण करने वाली गुरुवर श्री दुर्गस्वामी की शिष्या गुणा नाम की साध्वी ने इस ग्रन्थ का प्रथमादर्श (प्रथम प्रति) लिखा। [१०१८]

संवत्सरशतनवके द्विषष्टिसहिते (९२)ऽतिलंधिते चास्या।
ज्येष्ठे सितपञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ।।१०१९।।

प्राय समाप्ति की ओर अग्रसर संवत् ९६२ सवत्सर मे ज्येष्ठ शुक्ला पचमी गुरुवार पुनर्वसु नक्षत्र मे इस रचना की पूर्णाहुति हुई। [१०१९]

ग्रन्थाग्रमस्या विज्ञाय, कीर्तयन्ति मनीषिणः।
अनुष्टुभां सहस्राणि, प्रायशः सन्ति षोडश ।।१०२०।।

मनीषियो के मतानुसार इस कथा-ग्रन्थ का ग्रन्थाग्र/श्लोक परिमाण अनुष्टुब श्लोक-पद्धति से प्रायशः सोलह हजार है। [१०२०]

इति ग्रन्थकर्त्ता प्रशस्ति

महर्षि सिद्धर्षि प्रणीत उपमति-भव-प्रपञ्च कथा
का हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।

श्रावणी पूर्णिमा सं० २०३९
जयपुर।